विश्व का इतिहास

१७७१

मलिक एण्ड कम्पनी (प्रकाशन)

[illegible]

मलिक एण्ड कम्पनी (प्रकाशन)

चौड़ा रास्ता, जयपुर-302 003

प्रधान कार्यालय
23, दरियागज, नई दिल्ली-110 002

शाखा
34, नेताजी, सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-3

मूल्य 40 00

मलिक एण्ड कम्पनी (प्रकाशन)
प्रथम सस्करण, 1991

फोटोकम्पोजिंग क्लासिक पब्लिशिंग हाउस चौड़ा रास्ता, जयपुर
मुद्रक ग्राफिक आफसैट प्रिन्टर्स, जयपुर

प्राक्कथन

इतिहासकार टायनबी ने मानव-सभ्यता को ही इतिहास माना है। अतः विश्व के विभिन्न देशों की विकसित सभ्यताओं की जानकारी प्राप्त करना हर इतिहास प्रेमी को आवश्यक है। इस जानकारी को प्राप्त करने का सुलभ साधन 'विश्व का इतिहास' ही हो सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दृष्टिकोण से अजमेर विश्वविद्यालय के प्रथम-वर्ष कला के छात्रों के लिए नवीनतम् पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है। सभ्यताओं का विशद विवेचन इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता है। देशों में विभिन्न काल में उनके क्रमिक सांस्कृतिक विकास के अंतराल में घटित राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ उस क्षेत्र की सभ्यता की विशेषताओं, उसकी देन तथा उसका अन्य सभ्यताओं पर प्रभाव विस्तृत रूप से उल्लेखित है।

पुस्तक को छात्रोंपयोगी बनाने की दृष्टि से विषय-वस्तु का सम्पादन सरल एवं सुग्राह्य भाषा में किया गया है। मेधावी छात्रों के ज्ञान-वर्धन हेतु प्रख्यात् इतिहासकारों के उद्धरण भी प्रस्तुत पुस्तक में यथोचित स्थलों पर अवतरित किये गये है।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में उपलब्ध सभी विश्वसनीय ग्रन्थों की सहायता ली गई है। उन सभी ग्रन्थकारों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

अन्त में अपने प्रकाशक महोदय को अन्तस्तल से धन्यवाद अर्पित करता हूँ जिन्होंने अपने सद्प्रयासों से सीमित समय में प्रस्तुत पुस्तक को सुन्दर आवरण में प्रकाशित किया।

लेखक

दिनांक 1 दिसम्बर 1990

विषय-सूची

सभ्यता की प्रगति में चीन की देन

इकाई (ब)

इकाई (स)

मानव सभ्यता का आदिकाल

''विश्व इतिहास में जैसा कि हमें ज्ञात है महानतम तथ्य यह है कि मानव में जगली अवस्था से निकल कर सभ्यता की ओर अग्रसर होने की क्षमता थी और यह भी उस समय जब उससे पूर्व यह बात कभी नहीं हुई थी।''

-जे एच ब्रेस्टेड

मानव सभ्यता के इतिहास में सबसे बड़ा दीर्घ व क्रान्तिकारी चरण उसका आदिकाल है। यह काल सृष्टि में मानव की उत्पत्ति से लेकर अब तक के समय का लगभग 95 प्रतिशत है। इसी युग में निर्माता-मानव ने मानव की निरन्तर प्रगति की आधार-शिला रखी थी। दुर्भाग्यवश आदि-मानव के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है, क्योंकि वाणी पर आश्रित यह मनुष्य अपने सघर्ष, सफलता एव प्रगति की कहानी लिपिबद्ध करने में समर्थ नहीं था। अत हमारे इन पूर्वजो द्वारा सभ्यता के विकास के अध्ययन के लिये हमें उनके द्वारा निर्मित पाषाण की अवशिष्ट कृतियों पर ही निर्भर रहना पडता है जो आकस्मिक रूप से अथवा विभिन्न देशों के पुरातत्व विभाग के सतत् प्रयत्नों द्वारा उपलब्ध होती हैं। विश्व के विभिन्न भागों में प्रागैतिहासिक पाषाण उपकरणों से ही हमें इस युग में मनुष्य द्वारा निर्मित विभिन्न जीवन-क्रमों एव सगठनों का ज्ञान प्राप्त होता है।

यद्यपि हमारा उद्देश्य मानव की प्रगति का अध्ययन करना है तथापि इसके लिये यह उचित होगा कि हम पृथ्वी पर जीव के उद्भव व विकास तथा मानव की उत्पत्ति का सक्षिप्त परिचय भी प्राप्त कर लें। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार आज से लगभग साढ़े चार अरब वर्ष तक उष्णता के कारण पृथ्वी व अन्य ग्रह सूर्य से पृथक हुये। लगभग दो अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीव का रहना सम्भव नहीं था। इस काल को सृष्टि-समय कहते है। इस युग के बाद के भूगर्भीय परिवर्तनों एव पृथ्वी पर जीव के उद्भव का अध्ययन कई विद्वानों ने किया है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से सबसे अधिक मान्यता चार्ल्स डारविन के विकासवाद के सिद्धान्तों को दी जाती है। उन्होंने पृथ्वी पर जीव का उद्भव प्रारम्भिक जीव-युग में माना है। इससे पहले के युगों को उन्होंने जीव-विहीन युग और प्राज़ीव-युग की सज्ञा दी है। पहले युग में 'स्तरीय पत्थर' का निर्माण हुआ। इन चट्टानों मे जीवन का चिन्ह नहीं मिलता। प्राजीव युग में लार्वा जैसे सूक्ष्म प्राणी का उद्भव माना जाता है। प्रारम्भिक जीव-युग मे समुद्र में अनेक प्रकार के अत्यन्त छोटे आकार की जेली-फिश के समान अस्थिहीन व अगहीन प्राणी पानी की सतह पर तैरते थे। इस प्रकार के प्राणियों का अस्तित्व सभवत 120 करोड़ पूर्व माना जाता है। इसी युग के दूसरे काल में जिसे प्राथमिक युग कहते हैं, समुद्र में पृष्ठवश रहित जीव की उत्पत्ति हुई। काई के समान घास व पौधे भी पानी में होने लगे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया नये जीवों का विकास होता गया। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रीढ की हड्डियों वाली मछलिया

थी। इसी समय पृथ्वी पर वनस्पति व पेड़ों का विकास हुआ। इसका सृजन-कारण पृथ्वी के जलवायु में परिवर्तन होना था। मध्य जीव-युग में पृथ्वी पर सरीसृप जाति के जीवों का विकास हुआ। इनमे से कई भूमि पर रहते थे व कई समुद्र में अपना जीवन व्यतीत करते थे। नवजीव युग का विकास आज से लगभग 8 से 4 करोड़ वर्ष के पूर्व हुआ। इस युग मे जगलों एव घास के मैदानों के प्रादुर्भाव के साथ उड़ने वाले प्राणियों का आगमन हुआ। स्तनधारी प्राणियों का आगमन इस युग की महत्त्वपूर्ण घटना है। इनमें बन्दर या लगूर (Ape)जाति के प्राणियों का अपना महत्त्व है क्योंकि डारविन के विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार इन्हीं ऊची नस्ल के वानरों से मानव का विकास हुआ। परन्तु आज कल कुछ विद्वानो का यह मत है कि आदि मानव का स्वरूप बन्दर से नहीं मिलता वरन चिम्पैन्जी, गोरिल्ला तथा गुटाग आदि से मिलता है।

अभी तक यह एक विवादग्रस्त विषय है कि हम मानव सम-प्राणी (Homonid) से पूर्ण या मेधावी मानव (Homo Sapien) की उत्पत्ति विश्व के किस भाग में किस समय हुई ? जावा के निकट ट्रिनिल नामक ग्राम में तथा चीन मे चोउकोउतिएन की गुफाओं से मिले मानव के एक अवशेष को प्रमाण मानकर युजीन, डुबोय आदि कई विद्वानों ने इगलैण्ड के ससक्स प्रान्त में पिल्टडाउन नामक स्थान में मिले एक प्रागैतिहासिक अवशेष के अध्ययन के आधार पर यूरोप को यह श्रेय देने की चेष्टा की है। इगलैण्ड में प्राप्त अवशेषों के आधार पर मानव का विकास दस लाख से लेकर ईसा पूर्व एक लाख पच्चीस हजार वर्ष के बीच माना जाता है। परन्तु कुछ वर्षों पहले यह सिद्ध हो चुका है कि उपर्युक्त अवशेष उतना प्राचीन न होकर केवल पचास सहस्र वर्ष पुराना है। कुछ अन्य विद्वानों ने अफ्रीका के विभिन्न भागों से मिले अवशेषों को मानव की प्राचीनतम अस्थियाँ माना है। रैमण्ड ए डार्ट ने 1924 में अफ्रीका में मानव के अवशेषो की खोज की और उन्हें आदि मानव माना है। मेकइन्स ने मानव की उत्पत्ति अफ्रीका के युगाण्डा व केनिया प्रदेशों में मानी है। डॉ डेविडसन ब्लेक की धारणा है कि आदिम मानव की सृष्टि उत्तरी भारत में आरम्भ हुई और वहाँ से अफ्रीका की ओर फैलती गई। यह मत मनु के कथन से मिलता जुलता है। एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्म श्लोक का शेष भाग है-पृथिव्याँ सर्वमानवा । इससे स्पष्ट है कि मानव का विकास उत्तरी भारत से हुआ। मनुष्य के आदिम इतिहास में पीकिंग के निकट से प्राप्त हुआ मानव अवशेष भी बहुत महत्वपूर्ण है। जर्मनी में हाईडलवर्ग से प्राप्त अवशेष भी काफी प्राचीन माना जाता है। इन सब अवशेषों का काल दस से पाच लाख वर्ष माना जाता है। अत यह कहा जा सकता है कि विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में बहुत ही कम सख्या में यह अर्द्ध-मानव उपर्युक्त काल में रहता था।

इस अर्द्ध-मानव ने ही मनुष्य की प्रगति की आधारशिला रखी। मेधावी मानव के स्तर तक आने में तथा फिर और प्रगति करने में उसे सहस्रों वर्ष लग गये। पुरातत्त्ववेताओं और मानव विज्ञान शास्त्रियों ने विकासक्रम के आधार पर इस काल का निम्नलिखित विभाजन किया -

1 पुरातन प्रस्तर युग-पूर्वकाल। 2 पुरातन प्रस्तर युग-उत्तरकाल।

3 मध्य या नूतन प्रस्तर युग। 4 धातु युग।

पुरातन प्रस्तर युग (Palaeolithic Age)पूर्वकाल-इस युग के मनुष्य गुफाओ मे निवास करते थे। ये आखेट की खोज मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहते थे क्योंकि जगली पशुओं का मास इनका मुख्य भोजन था। पशुआ के शिकार के लिए वे पत्थर के औजार काम में लाते थे। वे ऐसे पाषाणों की खोज में रहते थे जो हथियार का काम दे सकें। सभ्यता के इस प्रारम्भिक युग की अवधि आज से लगभग 20 लाख वर्ष पूर्व तक की मानी जाती है।

पुरातन प्रस्तर युग (Neolithic Age) उत्तर-काल-इस दीर्घकाल मे मानव ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की, यद्यपि उसकी प्रगति मन्द थी। इस युग का सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार मनुष्य द्वारा अग्नि का प्रयोग था। अग्नि से वह जगली जानवरों को भयभीत कर सकता था। वह अब मास भी भूनकर खाने लगा। उसने मछली पकड़ना भी सीख लिया था। शनै शनै कन्दराओं के अतिरिक्त पशुओं की खाल के तम्बू बनाकर भी मनुष्य उनमे निवास करने लगा था। इस युग के मानव (Neanderthal)का कद छोटा, सिर भारी, कन्धे चौडे तथा मस्तक छोटा होता था। उसके घुटने झुके होते थे। अत वह सीधा खड़ा नही हो सकता था और इसी कारण वह तीव्र गति से चलने में भी असमर्थ था। इस काल के मनुष्य अब भी पहले के समान भ्रमणकारी थे। परन्तु सुरक्षा की दृष्टि से वे अब समूह बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आया-जाया करते थे। इस युग में मनुष्य ने पत्थर के औजार बनाना सीख लिया था। मुट्ठी वाली कुल्हाड़ी का प्रयोग वह विविध कार्यो के लिए करता था। धीर-धीर उसने अन्य कई औजारों को बनाना सीख लिया। वह उन्हें चमकीले व परिष्कृत भी करने लगा।

इस युग के आदमी धर्म में भी श्रद्धा रखते थे। कन्द-मूल-फल की वृद्धि हेतु वे स्त्री-मूर्तियों की पूजा करते थे, और पशुओं की वृद्धि की अभिलाषा से वे हिरन व बारहसींगे के चित्रों की अर्चना किया करते थे। चित्रकला में उन्हें विशेष रुचि थी।[1] उसने केवल गुफाओं में भित्ति-चित्रों का ही निर्माण नहीं किया वरन् अस्थियों और सींगों से बने उपकरणों पर नक्काशी करके अपनी कला प्रियता का उसने परिचय दिया। कुछ नारी मूर्तिया मिली है। बालों का सकेत रेखाओं के माध्यम से दिखाया गया है। पुरातत्त्वविदों का विचार है कि ये वीनस (रति) की प्रतिमायें हैं। इससे प्रतीत होता है कि ये मातृ सतात्मक प्रवृति की सूचक थी। इस काल का मानव सगीत से भी अपरिचित नहीं था। उसके अपनाये हुए कई वाद्य-यन्त्र प्राप्त हुए हैं जो प्राय हड्डी के बने हुए हैं। इस सभ्यता के अवशेष सर्व प्रथम यूरोप के जर्मनी देश के डूसेल्होर्फ प्रदेश के नीनडर्थल (Neanderthal) स्थल पर 1856 में प्राप्त हुए। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में खोज करने पर इसी सभ्यता के अवशेष बेल्जियम, फ्रास, स्पेन, यूगोस्लाविया तथा क्रीमिया आदि देशों में

---

1 Art and fashion are a definitely rooted in old stone age as magic and superstition.

—Gordon Childe

और मिले हैं। पश्चिमी एशिया के देशों में भी ये बड़ी मात्रा में पाये गये हैं। इस युग के मानव नीनडरथल थे और वे 25,000 ई पूर्व तक रहे। जब वे समाप्त हो गये और क्रामेग्रान, ग्रिमाल्डी, कौबकोपेल मानव तथा शोसलाद लोग उत्पन्न हुए। वे अपने पूर्वजो से अधिक सभ्य थे। इनका कद लम्बा, पैर बड़े तथा सीधे होते थे। उनका मस्तक भी विशाल होता था।

आर्थिक व्यवस्था का उस समय कोई प्रश्न ही नहीं था। परन्तु मनुष्य आपस में वस्तुओं का आदान-प्रदान करने लग गये थे। इतिहासकार जे सी रेनिल का कहना है कि पुरातत्व सम्बन्धी अनुसधानों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय एक समुदाय दूसरे समुदाय से वस्तुओं का विनिमय करता था। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यापार उस समय आरम्भिक अवस्था में था। इस काल के उपकरण सीरिया, भारत, चीन, साइबेरिया और एशिया में उपलब्ध हुए हैं।

भारत में पुरातन प्रस्तर-युग के अवशेष-उन्नीसवीं सदी में भारत में अंग्रेजों की अध्यक्षता में अन्वेषण-कार्य आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम ब्रुसफुट नामक एक विद्वान ने इस युग की सभ्यता के अवशेष मद्रास के समीप पल्लवरम नामक स्थान पर ढूढ निकाले। सन् 1865 ई में ए बी वाईन ने गोदावरी नदी की घाटी में पैठन नामक स्थान पर इस काल के निर्मित पाषाण के हथियार प्राप्त किये। सन् 1930 में इग्लैंड से बहुत से विद्वान भारत आये और उनके सद्प्रयत्नो के फलस्वरूप पाषाण-युग के अवशेष भारत के कई स्थानों पर प्राप्त हुए। इस युग का काल पचास हजार वर्ष पूर्व से पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व तक का माना जाता है। उसमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

1 नर्मदा नदी की घाटी।
2 मद्रास के समीप ऑगल और कड़प्पा।
3 गोदावरी नदी की घाटी।
4 उड़ीसा के मयूरभन्ज में कुलियाना का क्षेत्र।
5 काश्मीर में पुन्छ का क्षेत्र।

मध्य पाषाण-काल (Mesolithic Age)

1895ई से पूर्व तक पुरातत्ववेत्ताओं की धारणा थी की पूर्वपाषाण कालीन (Palaeolithic Age) प्रकृति जीवी मानव के बाद ही नूतन पाषाण काल (Neolithic Age)का प्रारम्भ हो गया था। परन्तु उस वर्ष फ्रास के डी अजील नामक प्रसिद्ध स्थान पर खोज करने पर कुछ ऐसे उपकरण प्राप्त हुए जिनके आधार पर यह कहा जाता है कि वे उपकरण नवीन युग के न होकर पूर्व पाषाण काल व नूतन पाषाण काल के मध्य के थे। अत उन्हें दोनों युगों को सयुक्त करने वाली कड़ी कही जाती है। वास्तव में वह युग एक सक्रमण काल (Period of Transition) था और वह मध्य-पाषाण-काल (Mesolithic) के नाम से विख्यात है। इस युग में विभिन्न प्रकार के छोटे उपकरण बनाये गए और उनका प्रयोग काष्ठ या हड्डी के डडे लगाकर किया जाता था। इस काल के निर्मित उन छोटे उपकरणों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

(i)आकारहीन–इस श्रेणी के उपकरण अधिकाशत बिना आकार के होने के कारण भद्दे होते थे। वे अधिकतर कोर, फ्लेक तथा समानान्तर किनारे वाले उपकरणों से युक्त थे।

(ii)ज्यामिति-आकार वाले–इस श्रेणी के उपकरणों की बनावट विशेष प्रकार की होती थी। उनका आकार अधिकतर त्रिकोणात्मक होता था।

इस युग का मानव पूर्व पाषाण कालीन मानव से अधिक सभ्य था। अब वह केवल भ्रमणकारी ही न रहकर एक स्थान पर आवास करने वाला मानव बन गया था। वह आखेट के भी नवीन साधन अपना रहा था। उसने अहिंसक पशुओं को पालना तथा पौधे लगाना भी आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह काल नूतन पाषाण काल का प्रणेता था।

नूतन प्रस्तर-युग

प्रगतिशीलता मनुष्य की स्वाभाविक विशिष्टता है। हजारों वर्षों के निरन्तर संघर्षों के पश्चात् मानव इस स्थिति में आ गया जिसमें कि वह पशुओं का केवल भक्षक ही नहीं वरन् उनका पालक भी बन गया। इसीलिए इतिहासकार रे फ्लेनले (Flenley)लिखता है कि वह अब केवल शिकारी, पशु पकड़ने वाला व मछली पकड़ने वाला ही नहीं रहा वरन् उसने एक चरवाहा व कृषक के जीवन में पदार्पण किया। पशुआ की उपादेयता के साथ-साथ उसमें कृषि-विज्ञान का भी अंकुर प्रस्फुटित होने लगा। परन्तु मनुष्यों के औजार व हथियार अब भी पाषाण के होते थे। बड़ी-बड़ी कुल्हाड़िया, चाकू व अन्य प्रकार के शस्त्र बनने लगे। नि सन्देह ये पत्थर के हथियार पुरातन प्रस्तर-युग के औजारों से अधिक चिकने व परिष्कृत होते थे। मानव-विकास के इस काल को इतिहासकार मध्य और नूतन प्रस्तर-युग के नाम से पुकारते हैं। इसका प्रारम्भ काल आज से 15,000 वर्ष ई पूर्व माना जाता है तथा यह 7000 ई पू तक चलता रहा।

नूतन प्रस्तर-युग की सभ्यता

कृषि–इस युग की सभ्यता मानव-प्रगति के चिन्हों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। इस युग का मानव अब केवल मासाहारी ही नहीं रहा था। इस युग में उसने कृषि को अपना मुख्य व्यवसाय बना लिया था। इस युग के प्रारम्भ तक ईरान, पश्चिमी एशिया व उत्तरी अफ्रीका के पास के विस्तृत मैदान सूखने लग गये थे। जलवायु की ऊष्णता के कारण कई देशों में रेगिस्तानों का आविर्भाव भी हो गया। इस कारण भी उस युग का मानव खाद्य-सामग्री को बढ़ाने के लिए व्याकुल हो उठा। पौधे लगाना उसने पहले ही आरभ कर दिया था। अब उसने नदियों के किनारे कृषि करना भी आरभ कर दिया। तत्कालीन एक प्रस्तर शिला पर दो बैलों की सहायता से हल चलाते हुए एक कृषक का चित्र मिला है। अत इससे सभावना की जाती है कि उस युग का मानव हल की सहायता से कृषि करने लग गया होगा। पौधे काटने के लिए हसिये तथा आटा पीसने के लिए चक्की का उसने आविष्कार कर लिया था। प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि इस युग में गेहूँ, जो, मक्का, बाजरा, आदि की खेती होने लग गई थी। इसीलिए इतिहासकार जे ई स्वेन (J E Swain) का कहना है कि इस युग की मुख्य विशेषता

कृषि करना है। पेरी (Perry)महोदय का कहना है कि कृषि-कर्म सर्वप्रथम नील नदी की घाटी से आरंभ हुआ जबकि एक रूसी विद्वान की मान्यता है कृषि सर्वप्रथम अफगानिस्तान व पश्चिमी चीन मे आरभ हुई।

पशु-पालन-इस युग के मानव ने पशु-पालन भी आरभ कर दिया। वर्षा कम होने से घास के मैदान तो सूख गय और कड़ी गर्मी से रेगिस्तान अधिक हो गये। इन कारणों से पशुओं को खाने के लिए पर्याप्त घास नहीं रहा। इस कारण पशु मानव के अधिक समीप आ गया। मानव ने उनको पालतू बनाकर उन्हें अपना सहयोगी बना लिया।

गृह-निर्माण-आखेट से कृषि की ओर गमन ने मनुष्य को स्थिर जीवन व्यतीत करना सिखा दिया। गाँवो का बसना आरम्भ हो गया था। निजी सम्पत्ति की भावना उत्पन हो गई। परन्तु तत्कालीन ग्राम छोटे होते थे। उनमें प्राय 25 स 35 तक मकान बने होते थे। ये ग्राम झील या नदी के किनारे होते थे। शनै शनै समुदाय विकसित एव व्यवस्थित होने लगे थे। समुदाय का एक नेता हाता था और लोग उसके सरक्षण मे रहना पसन्द करते थे। भवन निर्माण में पत्थर व मिट्टी का प्रयोग होता था। झोपड़ियों की दीवार बनाने में लट्ठ तथा नरकुलों का प्रयोग किया जाता था। ऊपर से मिट्टी का लेप किया जाता था। छत लकड़ी, पत्तों व वृक्षों की छाल से निर्मित की जाती थी। फर्श प्राय कच्ची होती थी। गावों की रक्षार्थ उसके चारों ओर खाई व मोटी दीवार भी बनाई जाती थी।

मिट्टी के बर्तन बनाना-इस युग के मानव मिट्टी के बर्तन बनाना भी जान गये थे। अनाज अधिक उत्पन्न होने पर उन्हे उसे रखने में कठिनाई हुई होगी। उस समस्या के समाधान हेतु ही उन लोगों ने मृदभाण्ड बनाना आरम्भ किया। वे बर्तनों का निर्माण प्रस्तर के चाक पर करते थे। उस काल की प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि वे लोग मिट्टी के विभिन्न प्रकार के भाण्ड तो बनाते ही थे पर साथ म उन्हें विभिन्न चित्रों से चित्रित भी करते थे।

वस्त्र-व्यवसाय-मिश्र तथा पश्चिमी एशिया के स्थानों पर जो उत्खनन कार्य हुआ है और उसमें जो सामग्री उपलब्ध हुई है उसके आधार पर कहा जाता है कि उस काल में मानव ने वस्त्र बुनने की कला भी सीखली थी। मोटे वस्त्र बुनकर वे अपना तन ढकने लग गए थे, पर चर्म-परिधान इस युग में भी प्रचलित रहे। वस्त्र रंगीन भी बुने जाते थे। सभवत व रग वृक्षों की छाल व धातु-रसों से तैयार करते थे।

सामाजिक व राजनीतिक अवस्था-कृषि व्यवसाय ने उन्हें सामूहिक जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर दिया था। इतिहासकार स्वेन की धारणा है कि उस युग में सामुदायिक कृषि होती थी। इसी कारण उस युग के व्यक्ति सघो में सगठित भी हो गये थे। जाति प्रमुख रूप से दो श्रेणियों में विभक्त थी। प्रत्येक श्रेणी में वश होते थे। वे वश (Clan)परिवारों में विभक्त होते थे। उस युग में परिवार मातृसत्तात्मक होते थे। एक जाति (Tribe)का मुखिया एक सरदार होता था। विभिन्न जातिया अपने सरदारों के माध्यम से लीग में ... पाती थी। वह लीग आज के सहकारी राज्यों (Confederated State) ... थी। उस युग में मृतक मनुष्यों को भूमि में दफनाया जाता था तथा उन पर

पाषाण-निर्मित भव्य समाधिया भी बनाई जाती थीं। इगलैण्ड के दक्षिण में स्थित सेलिसबरी (Selisbary)में इस प्रकार की समाधिया प्राप्त हुई हैं जो उस काल की कला के उत्तम नमूने है। ये समाधिया खुली होने के कारण देवालय का भी कार्य देती थीं। वहाँ लोग धार्मिक उत्सव मनाते थे तथा चिन्तन करते थे। बाल्कन प्रायद्वीप में प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि उस युग में मनुष्यों ने सामान ढोने के लिए बैलगाड़ियों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। नदियों में काष्ठ-निर्मित नावों का प्रयोग होता था। इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में व्यापार भी उन्नत होता जा रहा था। इन परिवर्तनों के आधार पर जोसफ रैदर लिखता है कि भवन-निर्माण, भाषा, समुदाय-सगठन, कला व हस्तकला के क्षेत्र में इस प्रकार अग्रसर होने पर मानव अपने प्रारम्भिक जीवन को त्याग कर सभ्यता के प्रवेश-मार्ग में प्रवेश करता है। उसने अपने प्रयत्नों द्वारा पृथ्वी को अपने निवास के योग्य बना लिया था।

धार्मिक अवस्था-धार्मिक विश्वास निरन्तर मनुष्यों के हृदय में घर करता जा रहा था-यह युग इसका प्रमाण है। इस काल में देवी व देवताओं की पूजा आरम्भ हो गई थी। मिश्र,सीरिया, ईरान व दक्षिणी पूर्वी यूरोपीय देशों में बहुत सी स्त्री मूर्तिया मिली है। इससे प्रमाणित है कि इस युग के मनुष्य 'मातृ-देवता' के उपासक थ। कई विद्वान इस मत का भी प्रतिपादन करते है कि इस युग के आदमी देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जीवो की बलि भी दिया करते थे। परन्तु धार्मिक विश्वास की वृद्धि से जादू-टोने के प्रति अविश्वास उत्पन्न नहीं हुआ था। अधिक विद्वानों का यह मत है कि यह युग सर्वप्रथम पश्चिमी एशिया में आरम्भ हुआ और तत्पश्चात् पैलेस्टाइन, ईराक व मिश्र आदि देशों म फैला। इन बातों से स्पष्ट होता है कि इस नवीन पाषाण युग म हमारी आधुनिक सभ्यता की नींव पड़ी। इतिहासकार जे सी रेविल की धारणा है कि नवीन पाषाण-काल की सभ्यता पूर्ण विकसित थी। वह समय व क्षेत्र की दृष्टि से बहुत दूर तक फैली हुई थी और अफ्रीका तथा अमेरिका में तो यह सभ्यता अब समाप्त हुई है।

निष्कर्ष-इन आधारों से यह स्पष्ट होता है कि नूतन-प्रस्तर युग का मानव विकासोन्मुख था। उसने अपने जीवन के अभावों का दूर कर उसे शिष्ट एव उन्नत बनाने का प्रयास किया। कृषि व्यवसाय ने उनकी उदर पूर्ति की समस्या का तो समाधान किया ही पर साथ में उनको सगठित भी बना दिया। वे अब खानाबदोश न रहकर स्थायी जीवन व्यतीत करने लगे। उनके इस सगठन ने ही कालान्तर में राज्य का विकास किया जिससे कि उनका जीवन और सुखी तथा सुरक्षित हो गया। सामूहिक जीवन से श्रम-विभाजन का सूत्रपात हुआ जिसके कारण विभिन्न व्यवसायों का प्रादुर्भाव हुआ। यूरोप से लेकर भारत तक इस युग की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

भारत में नूतन प्रस्तर (Neolithic Age)युग के अवशेष-भारत में जो अन्वेषण कार्य चल रहा है, वह इस युग की सामग्री को उपलब्ध कराने में अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ, पर फिर भी निम्नलिखित स्थान इस युग की सामग्री के लिए महत्त्वपूर्ण हैं -

1 मैसूर रियासत के चितल द्रुग जिले में चन्द्रावल्ली और ब्रह्मगिरी,

2 दक्षिणी भारत में बेल्लारी,

3 काश्मीर में गान्धरबल के समीप नूसर,
4 उत्तरप्रदेश में मिरजापुर।

यद्यपि इस युग के अवशेष भारत में प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं हुए, परन्तु जो प्राप्त हुए हैं वे बताते है कि भारत में इस युग की सभ्यता विद्यमान थी। बहुत से विद्वान तो यहाँ तक कहते हैं कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता इस युग की सभ्यता का एक विकसित रूप थी।

धातु-युग (Age of Metals)

धातु युग का आरम्भ-मानव में समस्याओं को सुलझाने व पुरातन परिस्थिति को नवीन सुखपूर्ण परिस्थिति में बदलने की अपूर्व क्षमता होती है। मध्य व नूतन प्रस्तर कालीन सामाजिक व्यवस्था मानव की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ थी। मनुष्य को पत्थर के औजारों व हथियारों पर अधिक विश्वास न था। अत वह दृढ़ शस्त्रों के निर्माण के लिए आतुर होने लगा। अन्त में उसे धातु के प्रयोग का ज्ञान हुआ और मानव-समाज ने तत्पश्चात् धातु के युग में प्रवेश किया।

विद्वानों का ऐसा मत है कि मनुष्यों को धातुओं में सर्वप्रथम सोने का ज्ञान हुआ होगा, परन्तु उसे नमनीय समझ कर छोड़ दिया होगा। तदन्तर मनुष्यों की दृष्टि ताम्र पर पड़ी होगी। ताम्र कठोर होने के कारण मनुष्यों के आकर्षण का कारण बना। अत ताम्र ने पाषाण का स्थान लिया। पत्थर के औजार अब ताबे के बनने लगे। इसीलिऐ उस काल को ताम्र-युग (Copper Age) कहने लगे। इस सभ्यता का सर्वप्रथम उदय किस स्थल पर हुआ ? यह आज भी विवाद ग्रस्त है। परन्तु अधिकाश इतिहासकारों की मान्यता है कि ताम्र-सभ्यता का विकास सर्वप्रथम मिश्र व पूर्वी भूमध्य सागरीय प्रदेश से लेकर भारत में सिन्धु नदी की घाटी में हुआ क्योंकि ताम्र यहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध होता था।

इस ताम्र-युग का मानव पर भी प्रभाव पड़ा। प्रथम तो इस धातु के प्रयोग से मानव-समाज में ठठेरे वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ। दूसरे मनुष्य एक दूसरे पर निर्भर रहने लगे। इससे उनमें एकता व पारस्परिक सहयोग की भावना जाग्रत हुई। इस युग ने मुद्राओं के प्रादुर्भाव में भी सहयोग दिया। कुछ इतिहासकारों की यह धारणा है कि इस युग ने शासक व शासित की भावना भी उत्पन्न करदी क्योंकि जो इन आविष्कारों से परिचित हो गये वे शक्तिशाली होने के कारण अनभिज्ञ लोगों पर अपनी प्रभुता जताने लगे।

कांस्य-युग (Bronze Age)-अपने जीवन को अधिकाधिक सुखी एव सुरक्षित बनाने की मानव की स्वाभाविक मनोवृति है। उसने ताम्र धातु का पता तो चला लिया था तथा उससे नाना प्रकार के उपकरण बनाना भी आरम्भ कर दिया था। परन्तु उस समय भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण शस्त्र ही समझे जाते थे। ताम्र एक नमनीय धातु होता है। अत उससे निर्मित शस्त्र अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हुए। इस कारण मनुष्य ने कठोर धातु की खोज प्रारम्भ की। अन्त में उसने ताम्र को टिन के साथ गलाकर एक नया धातु तैयार किया जो कास्य (Bronze)कहलाया। यह धातु ताम्र की अपेक्षा ... होता था। अत इस धातु से निर्मित शस्त्र व अन्य उपकरण अधिक उपयोगी

व टिकाऊ सिद्ध हुए । इस कारण इस धातु को अधिक मात्रा में तैयार किया जाने लगा और जीवनोपयोगी समस्त उपकरण उससे ही बनाये जाने लगे। इसलिए उस युग को कास्य-युग कहा जाने लगा । इस धातु का प्रयोग भूमध्यसागर के पूर्वीय तटीय प्रदेशों में 4000 ई पू म्पेन व इटली में 2000 ई पू तथा मिश्र में 1580 ई पू होने लगा ।

लोह-युग (Iron Age)-कास्य-धातु के उपरान्त मानव ने लोहे का पता लगाया। यह धातु उन्हे कास्य से भी कठोर प्रतीत हुआ । इस कारण लोग सारे उपकरण लोहे के बनाने लगे । इस प्रकार उन्होंने लोह-युग का सूत्रपात किया । ऐसा स्वीकार किया जाता है कि लोहे का प्रयोग सर्वप्रथम हिट्टाइट जाति ने सीखा ।[1] लोहे से निर्मित चाकू 1350 ई पू के प्राप्त हुये हैं। हिट्टाइट जाति द्वारा लोहे का प्रयोग किये जाने के उपरान्त उसका प्रयोग शीघ्रता से पूर्व की ओर एशियायी देशों में तथा भूमध्यसागर के पश्चिमी देशों में आरम्भ हुआ । यूरोप में इस युग की सभ्यता का विकास सर्वाधिक आस्ट्रिया व स्विटजरलैड में हुआ । आस्ट्रिया के लुहारों ने तलवार, भाले, कटार, तीर व शिकार के अन्य उपकरण बनाये । इनके अलावा वे लोहे से ही कुछ अलकार भी बनाते थे ।

लोह-युग का महत्व-आज के युग में तो लोहे का महत्व व्याप्त है ही और उसे स्वर्ण से भी अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है । परन्तु उस युग मे भी लोहे का बड़ा महत्व समझा गया । लोहे के आविर्भाव से तत्कालीन मानव-समाज में एक नवीन युग का सूत्रपात हो गया । दृढ़ एव टिकाऊ शस्त्रों से उनका जीवन सुरक्षित हो गया । पहिये अब लोहे की सहायता से निर्मित होने लगे जिसके परिणामस्वरूप व्यापार विकसित हुआ। कुम्भकार भी अपना चाक लोहे का बनाने लगा जिससे भाण्ड-निर्माण में अद्भुत विकास हुआ । आटा पीसने की चक्की का निर्माण हुआ। इसके अलावा लोह-युग ने मुद्रा-विकास में भी भारी सहयोग दिया । इस प्रकार हम देखते है कि लोह-युग मानव-विकास मे अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ ।[2]

इतिहासकारों की ऐसी धारणा है कि धातु-युग का आरम्भ ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में हुआ और इस शताब्दी से ही विश्व के विभिन्न भागों में नदियों के किनारे विभिन्न सभ्यताओं का विकास आरम्भ हो जाता है । अत ताम्र और लोह-युग के प्रारम्भ के साथ ही प्रागैतिहासिक युग समाप्त हो जाता है और हम ऐतिहासिक युग की सीमा में प्रवेश करते हैं । विद्वानों का ऐसा मत है कि भारत में ऋग्वेद की रचना के समय लोह-युग आरम्भ हुआ था । डॉ आर पी त्रिपाठी की धारणा है कि लोहे का पता आज से पाच हजार वर्ष पहले लग गया था । परन्तु उसे कम व्यय से गलाने की क्रिया का रहस्य अनुमानत ईसा से डेढ़ हजार पूर्व ज्ञात हुआ ।

---

1 J.E Swain A History of World Civilization p 34 "The Hittites who lived along the shore of the Black sea east of the Halys River in Asia Minor were pioneers in the smelting of iron ore

2 J B Swain. A History of World Civilization p 34 "The potter s wheel, metallic currency numerous wheeled vehicles and a rotating mill to grind grain were all introduced and were not replaced or improved upon to any extent for many epochs

यद्यपि यह प्रागैतिहासिक युग मानव सभ्यता के विकास का एक विकसित युग नहीं था, तथापि यह वह युग था जिसने तत्कालीन जगली मानव के ज्ञान-हीन व अन्धकारमय हृदय में ज्ञान का दीपक जलाया, जो आज भी उसकी आत्मा व समाज को आलोकित कर रहा है। इस युग की सभ्यता ही वह आधारशिला थी जिस पर बाद की सभ्यताओं का भवन निर्मित किया गया।

प्रश्न

1 प्रागैतिहासिक युग से आप क्या समझते हैं ? पुरातत्ववेत्ताओं ने इसे कितने युगों में विभक्त किया है ?
What do you mean by the Pre historic Period ? In how many ages has it been divided by archeaologists ?

2 पाषाण-काल तथा धातु-काल की सभ्यताओं का वर्णन कीजिए।
Describe the civilization of the Stone Age and the Metal Age

3 नवीन पाषाण-काल में मानव जीवन में कौनसे महान् परिवर्तन हुए, बताइये।
Enumerate the great changes which occurred in human life during the New Stone Age

4 "नवीन पाषाण-काल मानव-प्रगति में एक क्रान्तिकारी काल था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
"The Neolithic Age was a revolutionary age in human progress " Discuss

5 "सभ्यता के लगभग प्रत्येक अग की नींव नवीन पाषाण-युग में पड़ गई थी।" विवेचना कीजिए।
The foundation of every aspect of civilization was laid by the Neolithic Age Elucidate

6 "प्रागैतिहासिक युग की सभ्यता ही वह आधारशिला थी जिस पर बाद की सभ्यताओं का भवन निर्मित किया गया।" इस कथन की विवेचना कीजिये।
"The civilization of the Pre Historic Age was that corner stone on which the edifice of later civilizations was built Discuss

2

मिश्र की प्राचीन सभ्यता

"यदि सभ्यता मौलिक रूप से दूसरे देशों में मिश्र से नहीं फैली जैसा कि कई विद्वान कहते हैं; किन्तु यह निश्चित है कि आदिकाल के अन्य सभ्य लोगों ने बहुत सी चीजें मिश्रवासियों से सीखीं।"

—एफ जी पीयर्स

मिश्र आदिकाल से ही विश्व में एक महत्त्वपूर्ण देश रहा है। प्राचीन उन्नत सभ्यताओं में भी मिश्र का स्थान अग्रिम है। यह अफ्रीका के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है। इसके पूर्व में लाल सागर इसे अरब तथा अन्य मुस्लिम राष्ट्रों से विलग करता है। भूमध्यसागर जो, इसके उत्तर में है, इसे कई शताब्दियों तक यूरोपीय देशों से अलग रखता रहा है। वास्तव मे देखा जाय तो इसकी भौगोलिक अवस्था एक सुदृढ़ कवच की भाति सिद्ध हुई है जिसकी सुरक्षा में यहाँ की सभ्यता अन्य समकालीन सभ्यताओं की अपेक्षा अधिक शाति से विकसित होती रही। परन्तु जिस प्रकार आधुनिक युग में स्वेज नहर ने इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का स्थान बना दिया है, उसी प्रकार पुरातन काल में इसको उन्नत एव विख्यात बनाने वाली इसकी नील नदी थी। जैसा कि हमे ज्ञात है कि प्राचीन काल में नदियों ने सभ्यता क विकास में अपूर्व सहयोग दिया है- नील नदी भी इस कथन की पुष्टि करती है। *नील नदी मिश्र की आत्मा स्वरूप है।* हालाकि प्राचीन सभ्यताओं के विकास के सन्दर्भ में इतिहासकार टयान्बी (Toynbee) ने एक नवीन धारणा प्रचलित की है। उनका कहना है कि प्राचीन सभ्यताओं के विकास म नदियों का ही अधिक योगदान नहीं रहा है वरन् अमुक स्थान की कठिनाइयाँ तथा वहाँ की विपरीत परिस्थितियों (Challenge) का प्रमुख योगदान रहा है।

मिश्र सभ्यता की प्राचीनता तथा उसका अनुसधान

लन्दन के प्रसिद्ध पुरातत्वेत्ता श्री परी (Perry)महाशय के मतानुसार मिश्र की सभ्यता विश्व की अति प्राचीन सभ्यता है। उनका कथन है कि पृथ्वी पर मिश्र में ही सर्वप्रथम सभ्यता का विकास हुआ और वहीं से दुनिया के अन्य लोगों ने सभ्यता सीखी थी। इस कथन की सत्यता को अन्य इतिहासकार पूर्णरूपेण तो स्वीकार नहीं करते, परन्तु यह अवश्य मानते है कि पाश्चात्य देशों में मिश्र की सभ्यता अति प्राचीन है। इतिहासकार जे सी रेविल की मान्यता है कि 3000 ई पू से 2000 ई पू के एक हजार वर्षों में मिश्र ने रहने की कला तथा सस्कृति को अफ्रीका तथा पूर्वी भूमध्यसागरीय प्रदशों में फैलाने में सर्वाधिक उन्नति की। इतिहासकार बर्न्स (Burns)का कहना है कि मिश्र और मैसोपोटामिया दोनों ही स्थानों की सभ्यता अति प्राचीन है। उन दोनों सभ्यताओं की तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन हो जाता है कि उनमें कौनसी अधिक प्राचीन

है। इधर आजकल कई इतिहासकार ऐसा भी मानते हैं कि जब पश्चिम में मिश्र तथा मैसोपोटामिया की सभ्यताए विकसित हो रही थीं उसी समय पूर्व में सिन्धु-घाटी व चीन की सभ्यता विकास पा रही थी। नि सन्देह यह प्रश्न विवादपूर्ण है, परन्तु इससे सब सहमत है कि मिश्र की सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है।[1]

यह सभ्यता 18 वीं शताब्दी के पूर्व तक अपने मरु-भूमि के टीलों में ही लुप्त रही। प्रचण्ड वायु के झोंकों से नित्य बदलने वाले टीलों व प्रतिवर्ष नील नदी में आने वाली बाढ़ से मुकाबला करने म समर्थ यहाँ के विशाल पिरामिड ही यहा की लुप्त सभ्यता के चिन्ह बने हुए थे। सभ्यताओं के उत्थान, पतन के अनावरण में विदेशी जातियों के आक्रमण भी कारण बनते है। यही बात मिश्र की सभ्यता के साथ है। जब 1798 ई० में फ्रासीसी विजेता नेपोलियन ने मिश्र को अपनी साम्राज्यवादी क्षुधा का ग्रास बनाया तब उसके साथ मिश्र के इतिहास मे रुचि रखने वाले कुछ विद्वान भी वहाँ आए थे। इन विद्वानों ने मिश्र के पुरातत्व के अध्ययन की नींव डाली। 1799 ई० में फ्रास के विद्वान चैम्पोलिओन (Champollion) ने रासेट के पत्थर पर अकित लेख को पढ़ने का प्रयास किया। उसके अनन्तर मिश्र में कई जगह खुदाई का कार्य चला और उनमें मिश्र की अपूर्व सभ्यता मिली। बहुत दिनों के अथक परिश्रम के पश्चात् उन्हें कुछ ऐसे लेख प्राप्त हुए जिनका अनुवाद यूनानी उत्कीर्ण लेखो में हुआ। इस प्रकार यूनानी भाषा के सहारे मिश्री भाषा के उत्कीर्ण लेख पढ़े गये और उनसे एक अति प्राचीन व समृद्ध सभ्यता का पता लगा। मिश्र की खुदाई में हथियार, औजार व अन्य उपकरण उपलब्ध हुए। उनसे ईसा के 10 000 वर्ष पूर्व से लेकर 4000 वर्ष ईसा पूर्व के इतिहास का पता चलता है।

नील नदी मिश्र के लिए एक वरदान है-वैसे सभी प्राचीन सभ्यताए नदियों के सहयोग से विकसित हुई हैं, परन्तु मिश्र सभ्यता नील नदी की विशेष रूप से ऋणी है। यदि नील नदी मिश्र में से बहती हुई भूमध्यसागर में नहीं गिरती तो यह निश्चित है कि मिश्र राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में इतना विकसित नहीं होता। इस नील नदी के महत्व को समझते हुए जे एच ब्रेस्टेड लिखता है-"नील नदी हमारे लिए एक विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिससे हमें बर्बर असभ्यता से लेकर सभ्यता तक क्रमानुसार मानव के प्रथम उत्थान का ज्ञान होता है।" उस काल में कृषि ही मानव समाज की जीविका-उपार्जन का एक मात्र साधन थी और इसी नदी के कारण मिश्र कृषि-प्रधान देश बना। यह नदी विश्व की महान नदी है जो मध्य-अफ्रीका की विशाल झीलों से निकलती है। उसके मार्ग में अनेक चट्टानी अवरोध (महाप्रपात) आते हैं। अत उन्हें लाघ कर जब यह मिश्र के मैदानी भाग में बहती है तो इसकी धारा में प्रवाह होता है। इस कारण प्रतिवर्ष इस नदी में बाढ़ आती थी और यह विलडच्रेन्ट के मतानुसार 100 दिन तक रहती थी। इसका परिणाम यह होता था कि नदी का पानी इसके किनारे से भी बहुत दूर तक फैल जाता था। इससे पानी के साथ प्रतिवर्ष उपजाऊ मिट्टी भी आती थी। इससे

---

1 Although the Egyptian civilization was not necessarily the oldest in the ancient world it certainly of great antiquity

P.L. Ralph.

इस नदी के किनारे व समीप के भागों में खूब खेती होती थी। इसीलिए इतिहासकार जार्ज एलेन ने लिखा है-"देश की सम्पन्नता नील नदी की बाढ़ पर आश्रित।" बाढ़ के समय नील नदी का पानी शैवाल घास के कारण हरा रहता था। उसका हरा रग मिश्रवासियों के लिये प्रेरणा का स्रोत था। इसके अलावा इस नदी में विशेषता यह है कि इसमें बाढ़ ग्रीष्म ऋतु के अन्त में आती थी, क्योंकि मध्य-अफ्रीका मे गर्मियो के प्रारम्भ में ही मूसलाधार वर्षा होती है। इस कारण सर्दी के मौसम में इसके किनारे सब्जी पैदा की जाती थी। बाढ़ के उपरान्त जमीन मुलायम हो जाती थी। अत लकड़ी के हलके हल से जुताई कर खेती की जाती थी। फसल को माडने के लिए मवेशियों का सहयोग लिया जाता था। इस प्रकार कृषि उनका मुख्य उद्यम बन गया था।

मिश्र की भूमि को उपजाऊ बनाने के अतिरिक्त इस नदी ने इस भाग म रेगिस्तान को भी बढ़ाने से रोका है। उत्तर में नदी का डेल्टा इस प्रदेश की बाहरी आक्रमणकारियो से रक्षा करता है। इसी कारण इसके किनारे स्थायी मानव-समाज की स्थापना हुई तथा यहाँ के निवासी सुमेरिया के लोगों की भाति युद्ध प्रेमी न होकर सिन्धु सभ्यता के लोगो की तरह शान्ति प्रिय बने। इसीलिए इतिहासकार बेन फिंगर ने लिखा है कि प्राचीन मिश्र में आदमी बिना शस्त्रों के विचरण करते थे, तथा अपने जीवन को सुरक्षित समझते थे। मनुष्य नील नदी की उपजाऊ घाटी में कई प्रकार के उत्सव मनाते थे। क्रेन ब्रिन्टेन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ऐतिहासिक मिश्र तो 800 मील लम्बी नील नदी की तग घाटी से बना है। मिश्र के सब प्राचीन नगर इस नदी के तट पर ही स्थित है। इसके डेल्टा प्रदेश में सिकन्दरिया बसा है तो इससे 120 मील दक्षिण पूर्व म काहिरा नगर बसा है जो कि मिश्र का पेरिस कहलाता है। इससे 20 मील दूर मिश्र की सबसे पुरानी राजधानी मेम्फीस है। इसी मार्ग में हमें कारनाक के खण्डहर मिलत है। अत इतिहासकार एच० ए० डेविस का यह कथन है कि नील नदी समस्त युगों म मिश्रवासियो के जीवन तथा उनकी सम्पन्नता का साधन रही है-उचित ही जान पड़ता है।

पिरामिडों के निर्माण से नवीन धार्मिक विचारधारा का सूत्रपात हुआ व मिश्र की प्राचीन सभ्यता सुरक्षित रही। इससे मिश्र के बहुत से लोगों को रोजगार भी मिला। इसी कारण मिश्रवासी नील नदी की इस प्रकार पूजा करते हैं जिस प्रकार भारतवासी गगा नदी की करते है। नील नदी को इतना महत्त्वपूर्ण समझते हुए ही इतिहासकार हेज व मून ने मिश्र को नील नदी की पुत्री माना है तथा भारतीय इतिहासकार सर देसाई ने मिश्र को नील नदी की भेंट बताया है और विश्व के प्रथम इतिहासकार हिरोडोटस ने 'मिश्र को नील नदी का वरदान' कहा है।

मिश्र सभ्यता का ऐतिहासिक विभाजन-यह सही है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने मिश्र सभ्यता को विश्व की प्राचीनतम सभ्यता माना है और इसका आरम्भ 10 000 ई० पू० माना है परन्तु 10,000 ई० पू० से 4,000 ई० पू० तक तो मिश्र का विश्वसनीय इतिहास उपलब्ध नहीं है। उस काल मे भी सम्भवत मिश्र के लोग कृषि करते होंगे और नदी किनारे छोटे-छोटे गाव में बसते होंगे। इतिहासकार बेन फिंगर अपनी पुस्तक 'कोन्साइज वर्ल्ड हिस्ट्री' में लिखता है-"मिश्र ने प्रागैतिहासिक काल में उद्यान-संस्कृति का आनन्द

उठाया था। कृषि शान्तिपूर्ण सुगम साधन था।" शिकार के लिए वे पाषाणों से निर्मित हथियार ही काम में लेते होंगे। छोटे ग्राम व कबीले सरदारों द्वारा शासित होते होंगे। केन्द्रित शक्तिशाली राज्य व राज्यों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। उस समय मिश्र ऊपरी मिश्र (Upper Egypt) और निचला मिश्र (Lower Egypt) दो भागों में विभक्त था और वे दोनों परस्पर में स्वतन्त्र थे। परन्तु कहा जाता है कि समय पाकर निचले मिश्र ने ऊपरी मिश्र को अपने अधिन कर लिया और वह सयुक्त मिश्र 800 वर्ष तक रहा। फिर समय के फेर में पड़कर ये दोनों प्रदेश अलग हा गये। इससे स्पष्ट है कि उस समय का राजनीतिक जीवन शान्ति का नहीं था। 4000 ई० पू० के उपरान्त मिश्र के इतिहास में परिवर्तन आता है। इतिहासकार एलेन का मत है कि 4000 ई० पू० में मिश्र में मीनीज (Menes) ने शक्तिशाली राजतन्त्र स्थापित किया। इसके उपरान्त मिश्र का क्रमबद्ध इतिहास आरम्भ होता है और उस इतिहास काल को इतिहासकारा ने निम्न प्रकार से विभक्त किया है -

1 पिरामिड युग (3400 ई० पू० से 2500 ई० पू० तक)
2 सामन्त युग (2500 ई० पू० से 1800 ई० पू० तक)
3 साम्राज्यवादी युग (1800 ई० पू० से 1090 ई० पू० तक)
4 नवीन साम्राज्य युग (1090 ई० पू० से 332 ई० पू० तक)

मिश्र में वर्गों की उत्पत्ति-नील नदी के कारण जब मिश्र के किसान अधिक अनाज उत्पन्न करने लगे तो अपने अधिक उत्पादन से सम्पन्न किसानों ने सेवक रखना आरभ किया। इस प्रकार मिश्र के लोगों में स्वामी व सेवक की भावना उत्पन्न हुई।

दासों का आविर्भाव-मिश्र का जन समुदाय भी कई कबीलों में विभक्त था। उन कबीलों के मध्य सघर्ष होना स्वाभाविक था। अत विजेता कबीले का नायक परास्त कबीले के आदमियों को अपना दास बना लिया करता था। सम्भ्रान्त लोग दासों को खरीद लिया करते थे और दास उनके खेतों पर सुबह से रात तक कार्य करते थे। वे बाध बनाते तथा इमारतों के पत्थर तोड़ते थे। उनकी निजी सपत्ति नहीं होती थी। मालिक उन्हें शारीरिक दड दे सकते थे। सम्भ्रान्त लोग छोटे किसानों का भी शोषण करते थे।

राजनैतिक इतिहास

मिश्र में राज्य की उत्पत्ति-जब मिश्र में दास-वर्ग और सम्भ्रान्त वर्गों का आविर्भाव हो गया तो शोपक और शोपित वर्ग भी बन गये। जब दास-वर्ग ने स्वामी वर्ग से स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष करना आरभ किया तो स्वामी वर्ग ने सैनिक रखना आरभ किया। सैनिकों के नायक अपनी सैनिक शक्ति के सहारे अपने कबीलों के सर्वसत्ता सम्पन्न शासक बन बैठे। इस प्रकार चौथी शताब्दी ईसा पूर्व मिश्र में राज्यों का उदय हुआ।

पिरामिड युग-जैसा कि इसके पूर्व बताया जा चुका है कि मिश्र का वास्तविक राजतन्त्र 3400 ई० पू० से आरम्भ होता है। इतिहासकार एलेन के मतानुसार इसका सस्थापक मीनोज (Menes) फॉल्कन जाति का सरदार था। उसने प्रथम राजवश की डाली और निचले मिश्र को परास्त कर अपने राज्य में मिला लिया। इस सयुक्त की राजधानी उसने मेम्फीज (Memphies) नगर को बनाया। इतिहासकार डेविस

का कहना है कि मिनीज से मिश्र में वंशीय शासन चालू होता है और वह इस वंश का प्रथम शासक था। मिश्र का शासक फेरोह (Pharoh) कहलाता था। फेरोह शब्द (Per o) से लिया गया जान पड़ता है जिसका अर्थ है सर्वोच्च भवन, जहा कि परमात्मा रहता है। तात्पर्य यह है कि फेरोह सर्वशक्तिशाली होता था। सारे मिश्र की जनता उसके आधीन होती थी। भूमि व जल पर उसका एकछत्र अधिकार होता था। अत वह मिश्र में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ।

इस युग की विशेषता यह है कि मिश्र में इस काल के फेरोह द्वारा उच्च एव भव्य पिरामिडों का निर्माण करवाया गया, जो आज भी मिश्र की प्राचीन सभ्यता के भव्य प्रतीक तथा विश्व के आश्चर्य बने हुए हैं। इस वंश के चौथे फेरोह चियोप्स (Cheops) ने गिजे पर लगभग 2900 ईसा पूर्व एक पिरामिड बनवाया जिसे कि चियोप्स का पिरामिड कहते हैं। यह पिरामिड 484 फुट ऊचा तथा इसके चारों तरफ की भुजाए 775 फुट थीं। यह 13 1/4 एकड़ भूमि पर विस्तृत है। इसके निर्माण में 23 लाख विशाल प्रस्तर खण्ड लगे है। प्रत्येक प्रस्तर खण्ड का वजन औसतन ढाई टन है। सबसे बड़े खण्डों का वजन 150 टन है। ऊचाई में वह सेंट पीटर के गिर्जाघर से भी अधिक ऊचा था। इतिहासकार हेरोडोटस का कहना है कि इसके निर्माण में 1 20,000 मजदूर लगे थे और उन्होंने बीस वर्ष तक कार्य किया था। इस विशाल पिरामिड के निर्माण से केवल श्रमिक-कार्य ही ज्ञात नहीं होता वरन् इसके निर्माता की शक्ति का भी आभास होता है।[1] ब्रेस्टेड का कथन है कि यौगिक शक्ति को वश में करने की ऐसी उन्नति 19 वीं सदी तक विश्व के इतिहास में अन्य काल में नहीं मिलेगी। उसके उपरान्त मिश्र के अन्य फेरोह ने अपनी यादगार में कई पिरामिड बनवाये। फेरोह पिरामिडों में ही दफनाये जाते थे। कालान्तर में फेरोह के उच्चाधिकारियों ने भी यथाशक्ति उनके पिरामिडों के पास ही अपने पिरामिड बनाने आरम्भ कर दिये। उनकी धारणा थी कि यदि वे भी अपने फेरोह के समीप ही दफनाये जावेंगे तो उन्हें अमरता सुगमता से प्राप्त हो जावेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि मेम्फीज से कुछ दूरी पर 60 मील के क्षेत्र में आज भी लगभग 70 पिरामिड देखे जा सकते हैं, जिनमें गिजे का पिरामिड विश्व के सात आश्चर्यों में से एक है।

पिरामिड निर्माण के कारण-मिश्र के शासकों (फेरोह) ने पिरामिडों का निर्माण भारत के मुगल शासका व यूरोप के ईसाइयों की भाति अपने विनाशी शरीर की स्मृति को अमर बनाये रखने के लिए नहीं किया था। उनकी धारणा तो इसके विपरीत थी। वे आत्मा और शरीर को अलग मानते थे। उनका कहना था कि 'का' मानव शरीर के एक प्रतिरूप के रूप इसी लोक में रहती है। इसीलिये वे आवागमन में विश्वास नहीं करते थे। उनका विचार था कि इस शरीर को त्यागने पर भी उन्हें रहने की स्वतन्त्रता है। इसीलिये वे इतने उच्च तथा विशाल पिरामिड बनाते थे जिसमें कि उनके जीवनोपयोगी समस्त वस्तुए पर्याप्त मात्रा में आ जावें।

---

1 [1]E.Swain A History of World Civilization ▮ 51 "T" amount of manual labour but also reflects the power of a mighty ruler command it.

इस सामग्री में उनके जीवित दास-दासियाँ व रानियाँ भी सम्मिलित थीं। मृतकों को अनन्त जीवन प्रदान करने के लिए उनके शवों को मसाले से भर कर उनकी 'ममी' बनाकर पत्थर के शव-घरों में बन्द रखा गया।

सम्भवत मिस्र के फेरोह अपनी महानता का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से भी विशाल पिरामिडों का निर्माण करवाते थे। इसके साथ ही ये पिरामिड उनके स्मारकों का भी कार्य करते थे। इसके अलावा फेराह इन पिरामिडों के निर्माण से अपनी प्रजा को रोजगार भी देना चाहते थे। इतिहासकार वेन फिगर लिखता है कि बहुत से मनुष्य पिरामिडों को झूठे अभिमान की स्मृति समझते है। परन्तु सम्भवत ये उस समय लोगों को रोजी देने के लिए बनाये जाते थे जब कि नदी में बाढ़ होती थी और खेत पानी से पूर्ण रहते थे। बाद में ये जनता से बेगार लेकर भी बनाये जाने लगे थे।

इसके अलावा मिस्र के फेरोह तथा आम लोग अपनी संस्कृति के स्थायित्व में विश्वास करते थे। अत अपनी संस्कृति व सभ्यता को दीर्घायु बनाने की दृष्टि से भी फेरोह ने इन पिरामिडों का निर्माण कार्य आरम्भ किया था। इसी का समर्थन करते हुए हरबर्ट जे मूलर अपनी पुस्तक 'दी यूजेज ऑफ द पास्ट' में लिखा है कि पिरामिड मिस्रवासियों के दीर्घजीवी विचारों के प्रतीक हैं। जो भी हो पिरामिड निश्चित रूप में विश्व की आश्चर्य जनक कलाकृतियां हैं। ये मिस्र-निवासियों की कला कुशलता के ज्वलन्त प्रमाण हैं।[1]

स्फिक्स (Sphinx)-यह मिस्रवासियों की रहस्यमयी भावना को स्पष्ट करता है। यह भी गिजे के पिरामिड के समीप ही है। यह एक पूरी चट्टान को तराशकर बनायी हुई विराट नाहरसिंही मूर्ति खड़ी की गई है। इसका सिर मनुष्य जैसा है तथा शरीर सिंह जैसा। यह 50 गज लम्बा 20 गज ऊंचा है। इसका चेहरा 13 फीट 8 इंच लंबा है और इसकी नाक की लंबाई 5 फीट 7 इंच है। मानव द्वारा निर्मित यह सबसे महान मानव-सिर है। यह एक प्रकार से दानवाकार मूर्ति लगती है। लोग इससे भयभीत होते थे। इस कारण 'इसे आतंक का पिता' (अबुलहोल) भी कहते थे। स्फिक्स आम जनता के समक्ष पहेलियाँ प्रस्तुत कर उनका हल चाहता [illegible]। अत इसका निर्माण आज भी रहस्मय ही बना हुआ है। प्राचीन मिस्रवासी इसे 'हू' अथवा 'सुरक्षा का चौकिदार' कह कर पुकारते थे।

इस युग में राजा दैव-सिद्धान्त के आधार पर शासन करता था। वह स्वयं अपने को ईश्वर की सन्तान समझता था। जनता को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी। राज्य का समस्त शासन उसके हाथ में रहता था। युद्ध के समय वह सेनाध्यक्ष होता था तथा शान्ति के समय वह उद्योग एवं व्यापार का प्रबंध करता था। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक हित के कार्यों का निरीक्षण भी पूरी तरह वह ही करता था।

सामन्त युग–चौथे राजवंश की समाप्ति पर मिस्र की केन्द्रीय शक्ति शनै शनै क्षीण होने लगी। धर्माधिकारियों [illegible] अपने वजीर के अधिकार बढ़ने लगे। अब फेरोह दिनों

---

1 The more one studies these great pyramids the more one is amazed [illegible] the science skill of the Egyptian engineers who built them about 2600 B C. Swain.

दिन धर्माधिकारियों व वजीर द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के प्रभाव में आने लगा। ऊपरी मिश्र में तो ऐसे ही पदाधिकारी थे। उनकी नियुक्तियां वजीर द्वारा होती थीं और उनके स्थान पैतृक हो गये थे। पचम वश के फेरोह शासनकाल से होती थीं और उनके स्थान पैतृक हो गये थे। पचम वश के फेरोह शासनकाल में सवैधानिक परिवर्तन हुए। इन सबके परिणामस्वरूप मिश्र में भी सामन्तों का प्रभाव बढ़ गया। वे फेरोह के नाम पर शासन न कर अपने नाम पर करने लगे। इस प्रकार का शासन दसवें राजवश तक चलता रहा।

दसवे राजवश के अन्त में मिश्र का शासन शिथिल पडने लगा। राज्य में अराजकता अपने पाव फैलाने लगी। इस युग मे केन्द्रीय-शासन छिन-भिन्न हाने लगा और शासन सत्ता विकेन्द्रित होकर सामन्तों के हाथ मे चली गयी।

इस प्रकार सामन्त युग का जन्म अराजकता के मूल में 11 वे राजवश के काल में हुआ। इसे सामन्त युग इस कारण कहा जाता है कि बड़े-बड़े भूमिपतियो की शक्ति असाधारण रूप से तथा यूरोप से मिलती जुलती आर्थिक तथा राजनीतिक दशा के रूप में मौजूद थी। इस सामन्तवादी युग मे नगरों का निर्माण व विकास अवश्य हुआ, परन्तु जनसाधारण की दशा शोचनीय हो गई। यह महान बौद्धिक क्रान्ति का भी युग था इस काल में लोगों की नैतिक उन्नति भी हुई। मिश्र की पर्वत श्रेणियों पर निर्मित कब्रे इस काल की सभ्यता की साक्षी है। इनमें हमें बहुत सी पेपरस कागज की तहो पर अपूर्व ऐतिहासिक घटनाए अकित मिलती है। उनमें मानव-अधिकारों के सन्दर्भ म भी हमे देखने को मिलता है।

सामन्तों के अत्याचारों से उत्पीड़ित जनता के हृदय में स्वतन्त्रता की भावना अकुरित अवश्य हुई, पर विदेशी आक्रमणों ने उस पनपने नहीं दिया। कला के क्षेत्र में मिश्र इस युग में उन्नति न कर सका। इस काल की कुव्यवस्था तथा मिश्रवासियों के पारस्परिक वैमनस्य ने अपने शत्रु सीरिया को मिश्र पर आक्रमण करने का अवसर दिया।

सामन्त-युग की सरकार पिरेमिड-युगीन सरकार से निर्बल सिद्ध हुई और सामन्तवाद को केन्द्रीय शक्ति का छिन्न-भिन्न होना बहुत महगा पड़ा। सीरिया की सैमिटक जाति के सरदार ने मिश्र पर आक्रमण कर दिया। उसने मिश्र को परास्त कर वहाँ हाईकॉस वश की नींव डाली। सीरिया की इस जाति का मिश्र पर कितने वर्षो तक शासन रहा-यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। प्रसिद्ध इतिहासकार डेविस का भी यही कहना है कि 12 वें राजवश और 18 वें राजवश के बीच का समय अनिश्चित घटनाओं से पूर्ण है।

सामन्त युग में मिश्र की राजधानी थीब्स नगर थी। 16वें राजवश तक सामन्तों का शासन निर्विघ्नता से चलता रहा। इस काल में व्यवस्था कायम हो गई थी और मध्यम वर्ग की प्रतिष्ठा समाज में बढ़ रही थी। भविष्य के लिए चिन्तन का अधिकार प्रत्येक को दिया गया और आर्थिक व राजनीतिक विकास इस समय के विकास चिन्ह तुल्य थे। इस युग म मिश्र के व्यापार में उन्नति हुई तथा कला विकसित हुई। लाल सागर से नील नदी को मिलाने के लिये एव नहर बनाई गई।

हाईकॉस-कुल के राजाओं ने मिश्रवासियों पर नाना प्रकार के ... अत उनके अत्याचारों से उत्पीड़ित दक्षिणी मिश्र के नवयुवक थीब्स के ।

अहमोज सरदार की अध्यक्षता में सगठित हो 1580 ई० पू० के लगभग विद्रोह कर बैठे। सदियों से राज्य करने वाले हाईकॉस राजाओं के मिश्र से पाव उखड़ गये। हाईकॉस (Hykoss) मिश्र पर दो शताब्दी ई० पू० (1786 से 1575 ई० पू०) तक शासन करने में सफल अपनी सैनिक शक्ति के कारण रहा और उनकी सैनिक की दृढ़ता की जड़ थी उसकी अश्वारोही सेना। मिश्र में घोड़ों का प्रयोग सर्वप्रथम इसी जाति ने किया था। उन्होंने घोडों से खैचे जाने वाले रथों का भी युद्ध में प्रयोग किया था। विजेता अहमोज अठारहवें राजवश की नींव डालने वाला था। उसके शासन-काल से मिश्र का तृतीय ऐतिहासिक युग आरम्भ होता है।

साम्राज्यवादी युग इतिहासकार एम आर रे का कहना है कि हाईकॉस के शासन की समाप्ति तथा 18 वें राजवश की स्थापना के साथ ही मिश्र में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। इस युग का सस्थापक अहमोज ही माना जाता है। इतिहासकार बर्न्स (Burns) का कहना है कि अहमोज ने 18वें राजवश की स्थापना की और वह एक तानाशाह बन गया। उसने फिलीस्तीन व सीरिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। 18वें और 19वें राजवश के समय में मिश्र ने आशातीत उन्नति की। इस काल में साम्राज्य के विस्तार हेतु अनेक युद्ध लड़े गये। इस युग में अनेक प्रतापी एव शक्तिशाली शासक हुए। उन्होंने अपनी शक्ति से अनेक पड़ौसी राज्यों को विजित कर मिश्र के साम्राज्य को विस्तृत किया। उन उल्लेखनीय शासकों में सर्वप्रथम थटमोस प्रथम का नाम आता है।

थटमोस प्रथम (ThutmoseI, 1545 1514 B C) थटमोस प्रथम अहमोज की मृत्यु के उपरान्त मिश्र का शासक बना था। वह एक महान पराक्रमी एव साम्राज्य-वादी शासक था। उसने पश्चिमी एशिया पर आक्रमण कर वहा से अतुल सम्पत्ति प्राप्त की। उस सम्पत्ति से उसने अपने राज्य में अनेक भव्य-भवन, देवालय व पिरामिड निर्मित करवाये। उसने अपने जीवन-काल में ही स्वय को दफनाये जाने का स्थान निश्चित कर लिया था और वहाँ पर पिरामिड भी बनवा लिया था। उसकी मृत्यु पर उसे वहीं दफनाया गया। कालान्तर में उसके उत्तराधिकारी भी वहीं दफनाये गये। अत वहाँ राजाओं के कई मकबरे खड़े हो गये और वह स्थान राजाओं की घाटी' (The Valley of the Kings) के नाम से प्रख्यात हुआ।

हतशेपसुत (Hatshepsut)व मिश्र का स्वर्ण-काल—थटमोस प्रथम की मृत्यु के पश्चात उसकी पुत्री हतशेपसुत मिश्र की शासिका बनी। वह विश्व की प्रथम शासिका थी। वह 1501 ई० पू० में गद्दी पर बैठी थी और 1479 ई० पू० तक राज्य करती रही थी। मिश्र में भी उस समय एक स्त्री का शासक बनना वर्जित था। अत वह पुरुष की भाति रहती थी। वह नकली मूछें व दाढ़ी भी धारण करती थी। उसने इसी प्रकार की एक मूर्ति बनवाई थी जिसका वक्षस्थल पुरुष का सा था।[1] उसने अपने सामन्तों को आदेश दिये थे कि वे उसे पुरुष की भाँति सम्बोधित करें। उसने भी अपने पूर्वजों की भाँति अपने को सूर्य का पुत्र ही कहना आरम्भ किया।

---

1. पी त्रिपाठी विश्व का इतिहास' पृ० स० 45

हतशेपसुत की रुचि युद्धों मे न हो कर देश के व्यापार बढाने व देवालयों के निर्माण में अधिक थी।[1] उसके शासन-काल में मिश्र में पूर्ण शान्ति रही। इसी कारण व्यापार तथा कला का समुचित विकास हुआ। उसने कारनाक के देवालय को सुन्दर भित्ति-चित्रों से अलकृत किया तथा अन्य कई देवालय बनवाये जिनमें देर-एल-बहरी का देवालाय अति प्रख्यात था। उस देवालय के भित्ति-चित्र भी दर्शनीय थे। इनके अतिरिक्त उन देवालयों व भवनों की मरम्मत करवाई जो हाईकॉस जाति के आक्रमण से नष्ट हो गये थे। इसकी पुष्टि में उसके शासन-काल का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है।[2] इसलिए कहा जाता है कि उसके शासन-काल में कला का सर्वांगीण विकास हुआ।

विदेशी मामलों मे भी उसने शाति की नीति ही अपनाई। उसने अपने काल में केवल पुट (Punt)पर आक्रमण किया था और वह भी केवल देश के व्यापार को बढ़ाने की दृष्टि से। पुट अफ्रीका का पूर्वी भाग था और उसकी विजय से वास्तव में मिश्र के व्यापारियो का बडा हित हुआ।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि हटशेपसुत के शासन काल में मिश्र ने शान्ति का अनुभव किया। उसकी स्थापन्य एव चित्र-कला का पर्याप्त विकास हुआ। इनके अलावा व्यापार की वृद्धि से देश की सम्पन्नता में वृद्धि हुई। इन्हीं कारणों से उसका शासन-काल मिश्र के इतिहास में 'स्वर्ण-काल' के नाम से विख्यात है।

थटमोस तृतीय(Thutmose III, 1479 1447 B C)-जब हतशेपसुत इस लोक से विदा हो गई तो मिश्र की गद्दी पर थटमोस तृतीय बैठा। वह हतशेपसुत का भ्राता एव पति था। महत्वाकाक्षिनी स्त्री होने के कारण अपने पति के रहते हुए भी वह शासिका बनी थी। रानी की मृत्यु हो जाने पर जब थटमोस ने शासन का भार सभाला तो उसे ढग से सचालित किया। वह भी एक साम्राज्यवादी शासक था। वह मिश्र का महान विजेता तथा विश्व का प्रथम साम्राज्य निर्माता कहा जाता है। सीरिया पर उसने आक्रमण किये और अन्त में उसे विजित कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि उसने अपने साम्राज्य को नील नदी से लेकर फरात नदी तक विस्तीर्ण कर लिया। बेबिलोनिया, असीरिया, साइप्रस, क्रीट व एशियामाइनर भी उसे कर देने लग गये थे। इसके अलावा उसने एक सुदृढ़ जहाजी बेड़ा और तैयार करवाया। इसका परिणाम

---

1 J.E.Swain A History of World Civilization p 52 She was more interested in having great temples built and in developing Commerce than in fighting wars

2 I have restored that which was in ruins I have raised up that which was unfinished since Asiatics were in the midst of the northland overthrowing that which had been made

3 Donald A. Mackenzie Ancient Civilizations p 56 ...as her most interesting recorded achievement was the sending of a fleet to Punt to obtain myrrh frankincense ivory gold and other articles...

यह निकला कि उसकी भू-मध्यसागर पर धाक जम गई और वह "मिश्र का नेपोलियन" कहा जाने लगा।[1]

उसने विशाल साम्राज्य स्थापित कर उसे 55 सूबों में विभक्त कर दिया तथा उनका प्रशासन सूबेदारों को सौंप दिया। स्वय की सहायता के लिए उसने दो प्रधान मन्त्री नियुक्त किए। उनमें से एक थीब्ज(Thebes)में रहता था। इसके अधीन दक्षिणी मिश्र का शासन था। दूसरा प्रधानमन्त्री हेलीओपोलिस में रहता था। यह उत्तरी मिश्र के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता था। दोनों प्रधान-मन्त्री फेरोह के प्रति उत्तरदायी होते थे। इसके अलावा उसने हर जगह सैनिक छावनियाँ स्थापित कीं। कहते है कि मिश्र के इतिहास में वह पहला व्यक्ति था जिसने जल-सेना पर ध्यान दिया। इस प्रकार सेना के शक्तिशाली हो जाने के कारण उसके राज्य में विदेशी आक्रमण नहीं हुए और उसके शासनकाल से शान्ति बनी रही।

शान्ति स्थापना के अलावा उसने भी मिश्र को कई कला-कृतियों से अलकृत कर दिया। विलड्यूरेन्ट (Will Durant) का कहना है कि उसे लूट में अपार धन मिला और उसने इस धन का कलापूर्ण कार्यों में व्यय किया। शाही कोष धन से पूर्ण था।[2] थीब्स में व्यापार की जितनी उन्नति इसके काल में हुई उतनी पहले कभी नहीं हुई। देवालयों में खूब भेंट चढ़ने लगी। मिट्टी के बर्तना पर चित्रकारी का कार्य भी इसके काल में बहुत हुआ। अत हतशेपसुत तथा थटमोस तृतीय के शासन-काल को मिश्र के इतिहास में स्वर्ण-काल कहते हैं। आर्थिक विकास व साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से मिश्र उसक शासन काल में अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गया था।

थटमोस तृतीय की मृत्यु के बाद अमन ेटप तृतीय(Amenhotep III 1411-1375 B C) मिश्र की गद्दी पर बैठा। यह 18वें वश का अन्तिम राजा था। इसके शासन काल में मिश्र साम्राज्य प्रादेशिक और आर्थिक दृष्टिकोणों से अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँच गया।उसके काल में भी मिश्र के व्यापार की अच्छी प्रगति हुई। उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र अमनहोटप चतुर्थ मिश्र का शासक बना। बाद में उसने अपना नाम अखनेतन (Ikhnaton)रखा था। उसका शासन काल 1378 ई० पू० तक रहा। यद्यपि वह एक अच्छा आदर्शवादी तथा सुधारक शासक था। उस समय मिश्र में बहुदेववाद प्रतिष्ठित था। बहुदेववाद के साथ उस समय मिश्र में पुरोहितवाद का भी बोलबाला था। सभी धार्मिक कार्य पुरोहितों द्वारा ही सम्पन्न किये जाते थे। सम्पत्तिवान होने के कारण उनका जीवन विलासी हो गया था। देवालयों में रहने वाली देवदासियाँ अनाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। अमनहोटप धर्म की इस दयनीय अवस्था से विक्षुब्ध था। इसी कारण उसने धर्म में सुधार

---

1 Donald A. Mackenhzie Ancient Civilizations p 58 Egypt which had been made so strong by Thotmes III remained supreme a world power untill the close of the reign of Amenhotep III....

2. Under the last magnificient ruler of the 18th dynasty Amenhotep III (1411 1375 B C.) the Egyptian Empire reached its height both territorially and economically

—Robinson

करना चाहा और वह इसमें बदनाम हो गया। सुधारों की भावुकता में वह वास्तविकता और व्यावहारिकता को भुला बैठा। फिर भी विद्वान उसे भावुक कवि मानते है।[1] उसके काल में थीब्स नगर इतना श्री-शोभा-सम्पन्न हो गया था कि उसकी समानता प्राचीन ससार का कोई भी नगर नहीं कर सकता था। देवालय उसके शासन काल मे सम्पत्ति से भरपूर थे। वह व्यापार का केन्द्र बना हुआ था। चारों ओर के व्यापारी आकर वहाँ जमा होते थे। वह कवि, दार्शनिक एव सहृदय शासक था। देवालयों में दी जाने वाली नरबलि व पशुबलि का उसने विरोध किया था। उसके बाद तूताखामेन(Tutankhaman)गद्दी पर बैठा। यह अखनेतन का दामाद था। उसने अपने श्वसुर के समस्त सुधारों को समाप्त कर दिया। इस कारण धर्माधिकारियों तथा सम्पन्न लोगों ने उसकी नीति का समर्थन किया।

उसके शासक बनने से पूर्व मिश्र की आर्थिक व राजनीतिक अवस्था बड़ी दयनीय बन गई थी। मिश्र पर विदेशियों के आक्रमण होना आरम्भ हो गये थे। परन्तु फेरोह ने मिश्र के लुप्त गौरव को पुन प्राप्त करने का प्रयास किया। 1234 ई० पू० म इसकी मृत्यु हो गई और इसके साथ ही अठारहवें राज्यवश का पतन हो गया।

उन्नीसवा राजवश-अमनहोटप चतुर्थ की मृत्यु के साथ ही 18 वे राजवश का पतन हो गया। 19 वें राजवश की स्थापना हर्महाब नामक एक सेनापति ने की। ईसी वश म रैम्जीज द्वितीय (Ramses II) एक विख्यात राजा हुआ। वह एक वीर योद्धा था। साम्राज्यवादी होने के कारण उसने सीरिया (Syria) से युद्ध किया और उसका बटवारा कराने में सफल हो गया। विजेता के साथ-साथ वह महान निर्माता भी था। उसने कई देवालयों का निर्माण करवाया। थीब्ज में उसने रैमेसिअम (Ramessium)का देवालय तथा कर्नाक (Karnak)मे एक विशाल इमारत बनवाई। यह ईमारत विश्व की विशालतम इमारतों में गिनी जाती है।

रैम्जीज तृतीय (Ramses III, 1198 1167 B C)-यह 20 वे राजवश का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक था। उसका शासन-काल घोर आपत्तियों का शासन-काल कहा जाता है। उसके शासन में सिबियन तथा फिलिस्तनी लोगों ने अपने को स्वतन्त्र बनाने का प्रयास किया। उसने बड़ी कठिनाई से अपने राज्य की रक्षा की।

इस समय तक मिश्रवासी अकर्मण्य एव विलासी बन गये थे। सैनिक जीवन अच्छा नहीं समझा जाता था। अत मिश्र की सेना में विदेशी भरती होने लगे। अत देश की रक्षा करना कठिन हो गया।

नवीन राज्य युग-1100 ई० पू० मे मिश्र की बिगड़ती दशा को सुधारने का प्रयास किया गया, परन्तु इस प्रयास में विशेष सफलता न मिली। अन्त में 21 वें (1090 ई०पू०) राजवश से मिश्र में नवीन युग का श्री गणेश हुआ जिसे कि नवीन राज्य युग कहते है। मिश्र इथोपिया द्वारा परास्त कर दिया गया परन्तु 26 वें राजवश के शासक पसामतिक प्रथम (Pasamtik I) द्वारा वह पुन स्वतन्त्र बना लिया गया। 720 ई० पू०-525

1 He was a poet than a philosopher

ई०पू० के काल में फेरोह ने मिश्र के लुप्त गौरव को प्राप्त करने का पुन प्रयास किया। फेरोह नेको ने मेगिडो पर जूडर लोगों को परास्त कर दिया, पर वह स्वय कारकीमिश पर कैल्डियन लोगों से परास्त हो गया। पसामतिक तृतीय कैम्बसेस से परास्त हो गया और 525 ई० पू० में मिश्र फारस का एक अग बन गया। वह अपने प्राचीन गौरव को कभी पुन प्राप्त नहीं कर सका।[1] 332 ई० पू० में जब मिश्र पर सिकन्दर महान (Alexander)का अधिकार हो गया तो यह नवीन राज्य युग भी समाप्त हो गया। यूनान का टालमी वश मिश्र पर राज्य करने लगा। इस वश की अन्तिम शासिका रानी क्लीओपेट्रा थी। जूलियस सीजर की मृत्यु के बाद रोम में आन्तरिक युद्ध हुआ तो रानी ने मिश्र को पुन स्वतन्त्र कराने का प्रयास किया, परन्तु वह असफल रही। इस पर 31 ई में उसने आत्म-हत्या कर ली और 1956 ई तक मिश्र विदेशी हकूमत के पराधीन रहा।

मिश्र के इस पतन पर इतिहासकार मेकेब (Mc Cabe)अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करता है—" मिश्र के पतन का स्पष्ट व प्रमुख कारण युद्ध था। जिन्होंने तलवार ग्रहण की थी वे तलवार से ही समाप्त हुए। सदियों की लड़ाई ने मिश्र के सैनिक साधनों को समाप्त कर दिया और साम्राज्य की तीव्र लालसा अब एक देश से दूसरे देश को जा रही थी।"

सभ्यता का वर्णन

जो सभ्यता विश्व मे इतनी प्राचीन व उन्नत मानी गई हो उसका मानव-समाज पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस का प्रभाव राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय भी था और यह इतनी विकसित थी कि कालान्तर मे यूनान, रोम व यूरोप की सभ्यताये इससे प्रभावित हुई। उस सभ्यता का सक्षेप म वर्णन इस प्रकार से है -

सामाजिक जीवन - मिश्र का सामाजिक जीवन मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था पर आधारित था। इस कारण स्त्रियों का समाज में पर्याप्त आदर था। योग्य स्त्रियों का यथायोग्य सम्मान होता था। बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी, परन्तु केवल सामन्त व कुलीनवश के लोग ही इस प्रथा के आदी थे। साधारण श्रेणी में केवल एक विवाह होता था। केवल राजा ही बहुत सी न्यायोचित स्त्रियाँ रख सकता था। स्त्री व पुरुष दोनों परस्पर प्रेम करते थे। वे एक दूसरे का विश्वास करते थे। स्त्रिया का उस समय पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। तलाक की प्रथा उस काल में न होने के समान थी।[2] परन्तु व्यभिचारिणी पत्नी को पति तलाक दे सकता था। पति के लिए भी सच्चरित्रता आवश्यक मानी जाती थी। मैक्समूलर ने लिखा है "प्राचीन या आधुनिक किसी भी देश के लोगों ने स्त्रियों को इतने अधिक कानूनी अधिकार नहीं दिए जितने कि नील नदी के निवासियों ने दिये थे। भगिनी-विवाह की प्रथा उस समय प्रचलित थी। मिश्र के काव्य म भाई और बहिन का वही अर्थ होता है जो हमारे यहाँ प्रेमी और प्रेमिका का होता है। राजवश को छोड़ कर

1 'The ancient civilization was never again revived

—Burns

2. Wives were not secluded and there is no record of any divorce

Burns

अन्य वर्गों में अन्तर्जातीय विवाह होते थे। खान-पान में भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। अपने रक्त की शुद्धता बनाये रखने की दृष्टि से राजवंश अन्तर्जातीय विवाह से अवश्य बचता था। भारत की भांति वहाँ भी देवदासी की प्रथा थी। थीब्स के उच्च परिवार की सबसे सुन्दर लड़की को देवता एमोन की दासी के रूप में मन्दिर में भेंट कर दिया जाता था। मिश्र में कई स्त्रियाँ शासक एवं विजेता के रूप में अवतरित हुईं। हतशेपसुत और क्लीओपेट्रा नामक साम्राज्ञियों ने बड़ी योग्यता से मिश्र का राज्य संचालन किया था। इसलिये इतिहासकार स्वेन (Swain) का कहना है कि "समाज में स्त्रियों को जो स्थान मिश्र में प्राप्त था वह तत्कालीन किसी सभ्य देश में नहीं था।"[1] परन्तु जब मिश्र में भी भारत की तरह समाज पितृ-सत्तात्मक रूप धारण करने लगा तो स्त्रियों का आदर समाज में घटने लगा।

सामन्त युग से पूर्व मिश्र में सामाजिक असमानता नहीं थी। उस समय लोग चिन्ताहीन होते थे और प्रेमपूर्वक अपना जीवन यापन करते थे। परन्तु ज्यों ही सामन्त युग का समागम हुआ कि मिश्र का सामाजिक ढांचा ही बदल गया। समाज में सुखी व दुखी सभी प्रकार के मनुष्य दृष्टिगत होने लगे।

मिश्र के समाज में सर्वोपरि वहाँ का शासक होता था। राजा को परमात्मा का ही एक अंश माना जाता था। जन-साधारण को सम्राट के विरुद्ध बोलने का अधिकार प्राप्त न था। अन्य प्राचीन देशों की भांति मिश्र के जनसमुदाय में भी श्रेणियाँ पनपने लग गई थीं। इनमें प्रथम श्रेणी पुजारियों व उच्च पदाधिकारियों की थी। इस वर्ग के मनुष्य धनी एवं बौद्धिक-विकास के क्षेत्र में अधिक बढ़े हुए थे। इन्हीं लोगों से कृषक मन्त्रणा लेते थे तथा समाज के अन्य लोग अपनी परम्परा निर्धारित करते थे। दूसरी श्रेणी में वहाँ का सामन्त वर्ग था। सामन्त लोग धनी होते थे। निर्बल शासक के शासन में वे स्वतन्त्र रहते थे और शक्ति शाली के काल में उनके नियन्त्रण में रहते थे। शहरी व्यापारी लोग मध्यम वर्ग बनाते। तीसरी श्रेणी में कृषक थे। कृषक वर्ग अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक व्यापक था। परन्तु कृषकों के पास भूमि अधिक नहीं होती थी। एक किसान के पास अधिक से अधिक 250 एकड़ भूमि हो सकती थी। कारीगर भी मिश्र में अपनी एक श्रेणी अलग रखते थे। वे चौथी श्रेणी में आते थे। पाँचवीं श्रेणी में मिश्र के गुलाम सम्मिलित थे। महत्व की बात यह है कि मिश्र के ये वर्ग जन्म पर आधारित नहीं थे। बहुधा एक वर्ग के सदस्य दूसरे वर्ग में प्रवेश पा सकते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि मिश्र में उस आदिम-काल में भी गुलाम-प्रथा विद्यमान थी। शिपेरो व मोरिस की मान्यता है कि "मिश्र में तत्कालीन समाज में गुलामों की संख्या अत्यधिक थी।[2]

1 "The position that women held in Egypt was not equalled in any other early civilizations and not until very recent times has it been surpassed

—J.E.Swain

2 Schapiro and Morris Civilization in Europe p 16 Perhaps the great majority were slaves captives men who could not pay their debts children who were sold by their parents"

परन्तु मिश्रवासियों मे उस समय अनुशासन समुचित रूप में वर्तमान में था। यही कारण था कि ये लोग अपने अपूर्ण शस्त्रों के होते हुए भी शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में समर्थ रह।

वस्त्र तथा आभूषण–आरम्भ में मिश्र के निवासी नग्न रहते थे। परन्तु शनै -शनै वे अपने तन को ढकने का उपचार भी ढूढने लगे। सतरह व अठारह वर्ष की आयु होने पर लड़किया अपनी कमर में मिट्टी की गोलियों की मालाएँ लटकाया करती थीं। कृषक तथा निम्न-श्रेणी के मनुष्य कम चौड़ी धोतिया पहिनते थे। मिश्र में साम्राज्यवादी युग से पूर्व वस्त्र-निर्माण का अभाव था, पर इस युग के आरम्भ में वस्त्र बुना जाने लगा था। सुन्दर लिनन वस्त्र का वहाँ निर्माण होने लग गया था और उन पर सुन्दर काम भी किया जाने लगा था। धनी पुरुष कीमती वस्त्र पहनते थे।

मिश्र निवासियों को सिन्धु-घाटी के निवासियों की भाति अलकारों से मोह था। धातु के प्रयोग से अवगत होने के कारण वे स्वय के आभूषण बनाने लग गये थे। पुरुष अगूठी पहिनना पसद करते थे और स्त्रिया जजीर। जजीर के अतिरिक्त यहा की स्त्रिया कन्हर, बाजू,कुडल तथा कगण भी धारण करती थी। विल डन्यूरेण्ट के शब्दों में "पाचीन मिश्र की स्त्रिया यदि आज हमारे बीच पुन जन्म लें तों उन्हें शृगार-सामग्री और आभूषणों के विषय में हमसे बहुत कम सीखने को मिलेगा।"[1] आधुनिक स्त्री की भाति वहा की स्त्री अपने को आभूषणों के अतिरिक्त पाउडर, नाखूनी तथा लिपस्टिक आदि से भी अलकृत करती थीं। परन्तु मिश्र का जन-साधारण निर्धन था। लोग सरकण्डों व मिट्टी से निर्मित झोंपडियों में निवास करते थे। झोपडिया गन्दी और छोटी होती थीं। सामान्य घरों मे दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के अलावा और कुछ नहीं होता था। परन्तु मिश्रवासियों का जीवन नैतिक होता था।

धार्मिक जीवन-मिश्र में धर्म प्रधान था। धर्म का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी प्रकार की व्यवस्थाओं पर पूर्ण प्रभाव था। जिस प्रकार भारतवासी अनेक देवी-देवताओं में विश्वास रखते हैं उसी प्रकार मिश्रवासी भी अनेक देवी-देवताओं की उपासना करते थे। परन्तु बहुदेववाद के प्रसार में फेरोह का हाथ प्रमुख था। वह अपने शासन को दृढ बनाने हेतु अपनी प्रजा को चाहे जो धर्म व चाहे जो देवता मानने को बाध्य कर सकता था।[2] देश में अधिकाश कृषक लोग थे। इस कारण यहा के निवासी भी आकाश, पृथ्वी, पाताल आदि को किसी न किसी रूप में अवश्य पूजते थे। आकाश मिश्र वालों का सबसे प्राचीन आराध्य देव था। आकाश को वे लोग सिबु' और पृथ्वी

---

1 The women of ancient Egypt could learn very little fromus in the matters of cosmetic Jewellery if they were incarnated among us to day

—Will Durant

2 A powerful pharaoh could dictate the type of religion for his subjects and it was his advantage

—J F Swain

को 'हाथोर' या नुइत' कहते थे। आकाश के देवों में चन्द्रमा (सिन) और सूर्य (रा या होरेस) अधिक पूजनीय थे। सूर्यदेवता (रा) को मिश्रवासी देवाधिदेव मानते थे। उनकी धारणा थी कि जिस प्रकार फेरोह उन सब लोगों पर शासन करता है उसी प्रकार 'रा' अन्य सब देवताओं पर शासन करता है। वे कहते थे कि सूर्य प्रतिदिन अपनी स्वर्ण-नौका पर आकाश की यात्रा करता है और सध्या होने पर वह रेगिस्तान में चला जाता है। उस समय उनको सूर्य की दैनिक गति का ध्यान नहीं था। देवों के साथ उनकी पत्नियाँ तथा पुत्रियाँ भी पूजी जाती थीं। इस प्रकार वहा भी अनेक देवी-देवता उपासना के योग्य माने जाते थे। इन देवों के अतिरिक्त वे पशुओं की भी उपासना करते थे। पशुओं में मुख्यत वे साड व बकरे की पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि देवताओ का निवास अधिकतर पशुओं में रहता है। मिश्रवासियों ने अपने देवों का रूप रोद्र रूप में कल्पित कर रखा था। अत उनकी उपासना भय तथा विभत्स रस उत्पन्न करने वाली होती थी। परन्तु देवालयों में भक्ति के निमित्त सुन्दर गायन भी होते थे।

प्रत्येक प्राकृतिक घटना वे अपने अलग देवता या देवी से सम्बद्ध मानते थे। देवी-देवताओं को आमतौर पर किसी प्राणी जैसे सिरवाला चित्रित किया जाता था। मिश्रवासियो की मान्यता के अनुसार जलदेवता का सिर मगर जैसा और सूर्य देवता का सिर बाज जैसा था। युद्ध की देवी की मुखाकृति वे सिहनी जैसी मानते थे और उससे वे बहुत भयभीत रहते थे। रेगिस्तान को वे दुष्ट देवता 'सेत' कहते थे और उसका चेहरा उन्होंने लाल कल्पित कर रखा था। कृषि में सहायता करने वाले देवता को वे ओसिरिस कहते थे।

पारलौकिक जीवन में विश्वास–ओसिरिस को ही मिश्रवासी परलोक (स्वर्ग) का स्वामी मानते थे। उनकी धारणा थी कि नैतिक व्यक्तियों का ही ओसिरिस (Osiris)अपने लोक में स्थान देता है जहा पानी की कोई कमी नहीं है। रेगिस्तान की रेतीली आधी नहीं चलती तथा फसल भी वहा खूब होती है। न्यायाधीश के रूप में वह निर्णय देता है कि किन लोगों ने देवताओं की इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है। उनको वह कठोर दड देता था। अत परलोक जाने की अभिलाषा से मिश्रवासी विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते थे।

मिश्र-के राजा भी भारत के नृपों की भाति धार्मिक जीवन व्यतीत किया करते थ। भूमि का 1/3 भाग देवालयों के व्यय के लिए निश्चित था। थीब्स के समीप कारनाक मन्दिर के अवशेष अब भी इस तथ्य के परिचायक बने हुए हैं कि तत्कालीन राजा मन्दिरों पर कितना व्यय किया करते थे। मिश्र में देवों की बाहुल्यता इतनी थी कि प्रत्येक सूबे में देव भिन्न-भिन्न रूपों में होते थे। अमनहाटप चतुर्थ (अखनेतन) ने इस क्षेत्र में एक महान परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। उसने बहु-देववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद का प्रचार करना आरम्भ किया। इस राजा ने सब देवताओं के स्थान पर एक देवता अतॉन को प्रोत्साहन दिया। उसने अतॉन की कोई मूर्ति स्थापित न होने दी। इस प्रकार उसने उस समय निराकार तथा निर्गुण उपासना का सूत्रपात किया।

अखनेतन मिश्र के इतिहास में प्रथम व्यक्ति था जो कि एक आदर्शवादी सुधारक था। परन्तु जब इसने अपना एकेश्वरवादी धर्म चलाना आरम्भ किया तो राजकीय समस्त धर्माधिकारी उससे नाराज हो गये। इसके अलावा आम लोगों में प्राचीन बहुदेववादी भावना इतनी गहरी जड़ जमा चुकी थी कि वे भी इस नवीन धर्म के समर्थक नहीं बने। अत जब वह 1358 ई० पू० में इस लोक से विदा हुआ तो उसका धर्म भी मिश्र से इस प्रकार लुप्त हो गया जिस प्रकार कि भारत में अकबर के मरते ही उसका 'दीन इलाही' धर्म समाप्त हो गया था।

उसकी मृत्यु पर तुताखामेन फेरोह बना। वह एक निर्बल शासक था। उसमें इतना साहस कहा कि अखनेतन के धार्मिक विचारों का प्रतिपादन करता रहे। वह जनता का विरोध सहन नहीं कर सकता था। अत जिस प्रकार मेरी ने अपने भाई एडवर्ड षष्टम् से प्रतिकार लेने की भावना से प्रोटेस्टेन्ट धर्म के स्थान पर पुराना कैथोलिक धर्म चला दिया था, उसी प्रकार तूताखामेन ने एकेश्वरवाद को समाप्त कर बहुदेववाद का पुन प्रचार करना आरम्भ कर दिया और अखनेतन की प्रार्थना के विरुद्ध अपनी स्तुति बनाई।

फेरोह जो स्वय को परमात्मा की सन्तान समझते थे, देवों की उपासना के लिए भव्य देवालय बनाना श्रेयकर समझते थे। थीब्स में कारनाक का मन्दिर इस बात का सुन्दर प्रतीक है। देवालयों की भित्तियों व स्तम्भों पर जो सुन्दर चित्रकारी बन पाई वह भी उनके धार्मिक भावनाओं की द्योतक है। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इस देवालयों के विषय में इस प्रकार लिखा है- मिश्र के देवालय अब भी इस बात के प्रमाण है कि नील नदी की घाटी में बसे लोग परमात्मा में विश्वास रखते थे। उपासना लक्जर के मन्दिरों मे सदियों तक चलती रही। उपासना की भावना यहाँ आज भी विद्यमान है और वह स्थान आज भी उतना ही पवित्र है जितना कि 1500 वर्ष पूर्व था।"

मिश्रवासी आवागमन के सिद्धात में विश्वास रखते थे। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भारतीय दार्शनिक चारवाक की भाति भौतिक था। वे जीवन को इस लोक-परलोक दोनों में सुखी देखना चाहते थे। उनमें कुछ अन्धविश्वास अवश्य था। उनका विश्वास था कि शव को यदि सुरक्षित रखा जावे तो आत्मा उसमें पुन लौट सकती है। अत वे शव से अतडिया आदि को निकाल कर उसे एक लवणयुक्त घोल से साफ करते और फिर विशेष रालों में भिगोये हुए सफेद वस्त्र में लपेट कर उसे रख देते थे। ऐसा करने पर शव सूख अवश्य जाता था पर सड़ता नहीं था। सूखे शव को ममी'(Mummy) कहते थे। जादू के कथनों से पूर्ण एक पुस्तक (The Book of the Deed)भी ममी के साथ रखी जाती थी ताकि मृतक असीरिस के समक्ष उचित विचारों को व्यक्त कर सके।[1] इसके अलावा उनमें और भी कई अ घविश्वास विद्यमान थे। परन्तु वह अन्धविश्वास उनके विकास में बाधा नहीं बना। मिश्रवासियों की गहरी धार्मिक भावना ने सभ्यता के कई उपकरण उत्पन्न करने में सहयोग दिया। यह भी धार्मिक प्रेरणा ही थी जिसने कि

1 A Collection of magical sayings known as 'The Book of the ead was buried with the mummified corpses so that soul would express the proper thoughts before Osiris
—Roselle

मिश्रवासियों को विश्व का महान् निर्माता बनाया। मिश्रवालों ने आचार और व्यवहार पर विशेष रूप से ध्यान दिया। उस विषय पर उन के उल्लिखित नियम चीन के लिखित नियमों स भी पुराने है। सत्य, न्याय, औदार्य एव सदाचार का वह सम्मान था। उनका अमरत्व मे विश्वास था।

आर्थिक जीवन–मिश्र से प्राप्त अवशेष इस बात को प्रामाणित करते है कि तत्कालीन मनुष्यों की आर्थिक दशा अच्छी थी। व लाग सम्पन्न एव वैभवशाली थे। परन्तु यह सम्पन्नता व वैभव केवल सम्राटों, सामन्तों व धनी पुरुषों तक ही सीमित थी। कृषक-वर्ग निर्धन था। खेती उन लोगों का प्रमुख व्यवसाय था। कई तरह का अनाज पैदा किया जाता था। मिश्र के कृषको ने सिचाई-साधनो को विकसित कर लिया था और वे कई प्रकार की पैदावार करते थे। इसीलिए नील नदी का क्षेत्र विश्व का 'अनाज का भण्डार' बना हुआ था। सिचाई की व्यवस्था में सरकारी कर्मचारी सहायता करते थे। खुदाई से प्राप्त उपकरण इस बात की ओर भी सकेत करते है कि मिश्र में उस समय फलों के उत्पादन की ओर भी ध्यान दिया जाता था। उस काल में पशु पाले जात थ। गाया का वे लोग आदर करते थे। बाढ़ के समय वहाँ मछलियाँ पकड़ी जाती थीं। भूमि पर राजा का ही अधिकार था। किसान उसी की आज्ञा से जमीन जोतते थे। शासक-वर्ग कृषक-वर्ग का शोषण करता था। किसानों को बेगार देने के लिए बाध्य किया जाता था। नहरों व महलों का निर्माण दीन मजदूरों की कड़ी मेहनत को बगार के रूप म लेकर किया जाता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन विश्व मे मिश्र सर्वाधिक आर्थिक अधिनायकतन्त्र-वादी था। शासक किसानो को गायों की भाति बेच सकते थे। किसान अपनी कृषि भूमि को छोड़ कर नहीं जा सकते थ। उनके अधिक उत्पादन को फेरोह जब्त कर लिया करते थे।

डॉ० आर पी त्रिपाठी का कहना है कि-"मिश्र निवासी धर्मभीरु थे और राजा को ईश्वर का अश समझते थे। अत श्रमदान करना उनके लिये स्वाभाविक कर्त्तव्य सा था। उस युग की इस प्रेरणा का समावेश उतना ही महत्व रखता था जितना कि आधुनिक ससार में देश-सेवा अथवा जनसेवा का है।" यह सब होते हुए भी गरीब किसान अपनी दशा से सतुष्ट था और धैर्य के साथ अपना कार्य करता रहता था।

उद्यम-मिश्र के कारीगर धातु का प्रयोग जानते थे और वे काँसे के औजार व हथियार बनाते थे। ताबे व सोने की वे खाने खोदते थे और इस कार्य में वे बड़े प्रवीण थे। मिश्र के लोग कपड़ा बुनना तथा उनको रगना भी जानते थे। परिधान के लिए वे सुन्दर वस्त्र बुनते थे। वे काँच के सुन्दर गिलास तथा बर्तन बनाते थे। फर्नीचर बनाना और उस पर सुन्दर रग व खुदाई का काम भी करते थे। जहाज निर्माण में भी वे दक्ष थे और जहाजों के द्वारा ही वे अपने समीप के समुद्र पार देशों से व्यापार करते थे। कारीगर भी अपने निर्धारित व्यवसाय को छोड़ नहीं सकते थे। अधिकाश व्यवसाय सरकारी लाभ के लिए किए जाते थे। फेरोह के भडार और पशु-शालाएँ, शराब, गेहूँ, वस्त्रों और पशुओं से परिपूर्ण रहती थीं। वे वस्तुए लोगो द्वारा दिए गये करों के रूप में प्राप्त होती थीं। नील नदी के डेल्टा में स्थित नगरों का मध्यम वर्ग भी धनी था। कारीगर नम्र व अपने

कार्य के ज्ञाता होते थे।[1] व्यापार समुद्री मार्ग से होता था। देश में वस्तुओं के आयात-निर्यात से लोगो को अच्छा लाभ होता था। अत स्पष्ट है कि मिश्रवासियों की आर्थिक अवस्था अच्छी थी।

पशु-पालन-मिश्रवासी कृषि के साथ पशु भी पालते थे। इस व्यवसाय से उन्हें दूध, मास, चमड़ा व हड्डी प्राप्त होती थीं। पालतू पशुओ में गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़, गधा और सुअर प्रमुख थे। हाइकॉस जाति के आक्रमण के उपरान्त वे घोड़ों से भी परिचित हो गये थे।

कृषि की उन्नति के साथ ही उद्योग और व्यापार का विकास हुआ। व्यापार का यहा शनै शनै विकास हुआ। धातुओं का यहा अभाव था। अत मिश्र वाले अरब और नूबिया (एथोपिया) से अपनी आवश्यकताओं की वस्तुए मगाते थे। लोहा हिट्टाइट लोगो से बदले म लिया जाता था। इसके अतिरिक्त यहा के लोग ईंट, सीमेंट और पलास्तर बनाने में दक्ष थे। लकड़ी व चमड़े का काम भी यहा अच्छी मात्रा में होता था। पेपरस (Papyrus)नामक घास से वहाँ कागज बनाने का कार्य भी चालू था। उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में विकसित मिश्रवासिया के विषय में पेशेल महोदय लिखते है कि यदि हम मिश्रवासियों की हस्त-कला की तुलना अपनी हस्त-कला से करें तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि भाप-इजिन के आविष्कार के पहले हम उनसे किसी चीज में आगे नहीं थे। साराश मे हम यह कह सकते है कि प्राचीन काल म मिश्र में खेती तथा अन्य उद्योगों की दशा अच्छी थी। अत यहा के निवासी सुखी एव समृद्धिशाली थे।

व्यापार के क्षेत्र में मिश्र दिनों दिन उन्नति कर रहा था। पेपी प्रथम (Pepı I) के शासन का मे मिश्र का व्यापार काफी बढ़ा हुआ था। अभी तक व्यापार का राष्ट्रीयकरण नहीं हुआ था। फेरोह केवल दूर के राज्यों स ही राज्य की तरफ से व्यापार कर सकता था। आबनूस,हाथीदात व स्वर्ण की खोज के लिए काफिले इधर-उधर घूमा करते थे। सिनाई की ताबे व फीरोज की खानो पर सरकार का नियन्त्रण था। परन्तु मिश्र में अभी तक मुद्रा का प्रचलन नहीं हुआ था। अत व्यापार वस्तु -विनिमय (Barter)के माध्यम से ही होता था। व्यापारी लेन-देन क अनुबध व रुका लिखने की प्रणाली का भी प्रयोग करते थे।

राजनितिक अवस्था-मिश्र के सम्राट या फेरोह उस समय राज्य के सर्वाधिकारी होते थे। वे देवी सिद्धान्त में विश्वास रखते हुए अपनी जनता पर निरकुश रूप से शासन-सचालन किया करते थे। जनता भी राजा को परमात्मा का ही एक प्रतिनिधि समयती थी। राजा की आय का मुख्य साधन कर था। यदि कोई कृषक कर देने में विलम्ब करता तो उसके खेत को सिचाई के पानी से वचित कर दिया जाता था। परन्तु फेरोह की सत्ता पिरामिड युग तक ही रही। इस युग के लिए तो एच ए डेविस लिखता है- पिरामिड के

---

1 A.E.R Boak and Preston Glosson 'The Growth of Western Cıvılızatıon p 25 'The Egyptıans were endowed wıth a hıgh degree of manual dexterıty and ınventıveness, and made notable advances ın varıous ındustrıal crafts

फेरोह निरकुश सम्राट थे और इसम कोई सन्देह नहीं कि मिश्रवासियों का बहुदल एक दास का जीवन व्यतीत करता था। वे अपने सम्राट को अपनी आत्मा तथा शरीर दोनों का स्वामी समझते थे।"

फेरोह को शक्तिशाली बनाये रखने में धर्माधिकारियों का भी बड़ा हाथ था। अखनेतन (Ikhnaton) के अलावा सब फेरोह धर्माधिकारियों से मिले हुए थे। लालची पुरोहित फेरोह के तानाशाही शासन का समर्थन करते थे, क्योंकि फेरोह उनको कर देने से वचित रखता था तथा उन्हें विशाल जागीरें देकर विलासी जीवन व्यतीत करने में सक्षम बनाता था। मंदिरों के पास अपार सम्पत्ति होती थी। फेरोह का पद पैतृक होता था। फेरोह का ज्येष्ठ पुत्र युवराज की भाति प्रशासन में भाग लेता था। इस कारण वह युवराज अवस्था में प्रशासन से अवगत भी हो जाता था।

परन्तु सामन्तवाद में फेरोह की यह अवस्था नहीं रही। उस पर सामन्तों का प्रभाव होने लगा। इस युग मे चान्सलर का स्थान वजीर ने ले लिया। चान्सलर के अधीन एक मन्त्रिमण्डल होता था जिसमें अधिकाश सदस्य लोअर मिश्र के होते थे। परन्तु जब वजीर नियुक्त होने लगा तो सामन्तों के सम्बन्धी व उनके पुत्र उच्च पदों पर नियुक्त होने लगे। पद पैतृक हो जाने के कारण वे शासन भी अपने नाम से ही करने लगे। यद्यपि वजीर का स्थान राजा के बाद था, किन्तु उसके प्रमुख कर्त्तव्य न्यायाध्यक्षता तथा राजकी। पुस्तकाध्यक्ष के थे। वजीर के बाद अन्य प्रमुख अधिकारी थे, कोषाध्यक्ष और कृषि-मन्त्री। नवीन युग तक उनके सुपुर्द शासन, सेना, कृषि, राजकीय पत्र-व्यवहार भी कर दिये थे।

सूबो को उस समय नाम्स (Nomes)कहते थे , और सूबेदार (Nomarch) अपने करो व खर्चों का पूरा हिसाब रखते थे। कृषक-वर्ग को उस समय यह छूट थी कि वह कर चाहे अनाज के रूप में दे या फलो के रूप में। परन्तु मिश्र की शासन-व्यवस्था सामन्तवादी ही थी। राज्य के छोटे-बड़े समस्त पद उन्हें ही उपलब्ध होते थे। उनके पद भी पैतृक हो गये थे। इस कारण वे बहुत शक्तिशाली एव प्रभावशाली बन गये थे। फेरोह के पास स्थायी सेना न होने के कारण भी सामन्त अपनी सैनिक सहायता से फेरोह को अपने प्रभाव मे रखते थे। लेकिन मध्यकाल में अमनहोतप प्रथम व तृतीय जैसे शक्तिशाली राजाओ ने सामन्तों का दमन भी किया।

मिश्र की राजधानी मेम्फिस थी। राजा राजधानी में प्रान्तों से आई अपीलों को सुनता था। देश में शान्ति रखने का उत्तरदायित्व राजा पर ही होता था और अपनी सेना का वह प्रधान नायक होता था। सूबों के सरदार अपने सूबों से कर सकलित कर राजा के कोष में भेजते थे। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि उस प्राचीन काल में मिश्र की शासन-व्यवस्था सुव्यवस्थित थी।

न्याय व्यवस्था--न्याय करने के लिए अदालतों की व्यवस्था थी। कानून सब के लिए समान होते थे। सेस नगर में कानून बनाने उत्तम सरकार सचालन की शिक्षा दी जाती थी। "हजारों वर्षों के शासन में भी हमें मृत्यु दण्ड का कोई उदाहरण प्राप्त नहीं हुआ।" इससे स्पष्ट होता है कि मिश्र की सभ्यता कितनी सभ्य एव विकसित लोग स्वय अनुशासन में रहना पसन्द करते थे। परन्तु उस युग में भी रिश्वत

थी और इसके सहारे धनी पुरुष महा अपराध करके भी बच जाते थे।[1] परन्तु वहाँ की न्याय-व्यवस्था यूनान व रोम की भांति विकसित नहीं थी क्योंकि वहाँ सोलन व हम्मुरबी जैसे कानून वेत्ता नहीं हुए।

कला

मिश्र सभ्यता की सबसे महान विशेषता उसकी कला थी। विल ड्यूरेण्ट की धारणा है कि यह कला बड़ी सबल और परिपक्व थी तथा किसी भी आधुनिक राष्ट्र की कला से आगे थी और एक मात्र यूनानी कला ही इसकी समता कर सकती थी।[2] मिश्रवासी वास्तव में महान निर्माता थे। उन्होंने स्थापत्य कला, मूर्ति-कला व चित्र-कला सबमें दक्षता प्राप्त करली थी। उन प्राचीन कला-कृतियो में से आज भी कुछ विद्यमान हैं जो इनमें निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट करती है।

(१) स्थायित्व-उनकी कला-कृतिया शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं हैं। उनका निर्माण कठोर व सुदृढ है।

(२) विशालता-कलाकारो ने जो भी बनाया, वह विशाल रूप में बनाया है।

(३) असम्प्रदायिक-यह विशेषता भी प्रमुख है। उन्होंने अपनी कला-कृतियों को विशेष धर्म से प्रभावित न रख कर (Secular)बनाई हैं।

(४) रुढ़िवाद से प्रभावित-मिश्र क कलाकार रुढ़िवादी थे। अत वे एक ही कला का अनुकरण सदियों तक करते रहे।

मूर्तिकला-ऐसा कहा जाता है कि मूर्तिकला में उस समय मिश्र की समता कोई नहीं कर सकता था। पाच हजार वर्ष पुरानी पशु और मानव मूर्तियाँ आज भी सुरक्षित हैं। उस समय मूर्तियाँ पत्थर व लकड़ी दोनों की बनाई जाती थीं। मूर्तियाँ प्रधानतया देवमूर्तियाँ होती थीं। प्रतिरूपों के बनाने में उन्हें अधिक सफलता प्राप्त थी। उनमें प्रतिमा के व्यक्तित्व एव तद्रूपता की प्रतिष्ठा पाई जाती है और विकास के लक्षण भी पाये जाते है। अपनी कृतियों के वे रग चढ़ाने के भी शौकीन थे। उनमें स्फिक्स की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। प्रतीक में सम्भवत यह खाफ्रे के वीरतापूर्ण निडर,शेर जैसे व्यक्तित्व को प्रकट कर रही है। इसक पहले होठों पर पाँच हजार वर्षों से एक प्रकार की हलकी मुस्कान नाच रही है। इनके अतिरिक्त बहुत से राजा-रानियों तथा पशु-पक्षियों की भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई *। ये मूर्तियाँ सभ्यता एव गम्भीरता की साक्षात् प्रतीक हैं, ।रानी नोफ्रत का सिर उस समय की मूर्तिकला का सुन्दर नमूना है। काहिरा के सग्रहालय में रखी खाफ्रे की पाषाण मूर्ति इतिहास में सबसे सुन्दर मानी जाती है। मूर्तिकला का सुन्दर नमूना चट्टानों

---

1 Schapiro and Morris Civilization in Europe p 18 "In Egypt the poor complained that the bribe of the rich man was often stronger than the justice of the poor man's cause.

2. The greatest element in this civilization was its art Hence almost at the threshold of history we find an art powerful and mature superior to that of any modern nation equalled only by that of Greece

—Will Durant

पर कटी हुई अन्य मूर्तियों में भी देख सकते हैं। मूर्तिकारों के मस्तिष्क में सदैव यथार्थवाद व स्थायित्व के सिद्धान्त ही प्रमुख रूप से रहते थे।

चित्रकला-यह उस समय अपनी शैशव-अवस्था में थी। यद्यपि थीब्स के मन्दिरों और पिरामिडो की भीतरी दीवारों पर चित्रकारी के चिन्ह मिले है पर वे इस काल के उत्कर्ष के द्योतक नहीं हैं। मिश्र की तत्कालीन चित्रकला तो उस काल की स्थापत्यकला तथा मूर्तिकला की एक सहायक मात्र थी। उत्कीर्ण मूर्ति को रगते-रगते मिश्र में चित्रकला का विकास हुआ। परन्तु यह सब होते हुए भी तत्कालीन चित्रकला इतनी हीन नहीं थी। कलाकारों को विधिवत शिक्षा देने के लिए कला केन्द्र स्थापित थे। काच व मिट्टी के बर्तनों पर वे सुन्दर चित्र बनाते थे। सुमेरिया व सिन्धु सभ्यता की भाति पशुओं के भी चित्र प्राप्त हुए हैं। चित्र काल्पनिक होते थे। परन्तु फिर भी वे मिश्र के तत्कालीन विचारों को बताने में सहायक हैं। युद्ध के नीरस चित्र भी सुन्दर रगो के समन्वय से सजीव व अच्छे बना दिये जाते थे। मिश्री चित्रों की समता करने वाले चित्र चीन वाले भी सैकड़ों वर्षों के बाद तक नहीं बना पाये।

सगीत कला-इस कला को उन्नत करने का श्रेय मिश्र के धर्माधिकारियों को जाता है। सगीत प्रधानत आध्यात्मिक होता था। देवालय में सगीत पर्याप्त मात्रा में होता था। यद्यपि मिश्र का सगीत प्रधानत, गुप्त व धार्मिक था, परन्तु व्यावसायिक गायक मनुष्यों की दावतों में प्रचलित सगीत भी दिया करते थे। हार्प उस समय का प्रमुख वाद्य यन्त्र था। प्राचीन सगीतज्ञों में स्नेफरू नोफर तथा रेमरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

नृत्य कला-मिश्र में जो उस समय हर प्रकार से सम्पन्न देश था नृत्य कला का भी अभाव न था। धार्मिक कार्यों में सगीत को विश्राम देने के लिए सुन्दर नृत्य भी होते थे। देवालयो में नर्तकिया रहती थीं। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो की मान्यता है कि मिश्र के धार्मिक नृत्य परमात्मा द्वारा प्रतिपादित थे क्योंकि उनकी कल्पना शक्ति पूर्णत पारलौकिक थी।

आरम्भ में मिश्र की कला रूखी व अविकसित थी। धीरे-धीरे गतिवान समय के साथ यह मधुर एव सरस होती गई।

स्थापत्यकला-मिश्र की वह प्राचीन सभ्यता स्थापत्य कला के क्षेत्र में श्रीहीन न थी। स्थापत्य कला उस समय पर्याप्त रूप में विकसित थी। साधारणतया मकान मिट्टी और लकड़ी के बनाये जाते थे। मकानों की छत ताड़ के डठल व पत्तों से छाई जाती थी। धनी पुरुषों के भवन निर्मित तो मिट्टी से ही होते थे, पर उनमें उनके सुख की सामग्री समुचित रूप से सग्रहित होती थी। मिश्र के सामन्तों की, सुन्दरता से निर्मित ईंटों की दीवारें अच्छी तरह रगा से रगी जाती थीं। भवनों में उद्यानों की व्यवस्था होती थी। मन्दिर व पिरामिडों के निर्माण में खम्भों का प्रयोग होता था। कारनाक का देवस्थान और तत्कालीन अनेक पिरामिड उस समय की स्थापत्य-कला के जीते जागते नमूने हैं। कारनाक का मन्दिर और लक्सर का मन्दिर अपनी कला के लिए अति विख्यात है। इनके अलावा अबू सिंबल का देवालय भी स्थापत्य कला की दृष्टि से दर्शनीय है। क॰। का मन्दिर अपनी कला, सौन्दर्य एव विशालता के लिए अति प्रसिद्ध है।

स्तम्भों का काम देखने योग्य है ।[1]यह थीब्ज के समीप ही स्थित हैं । इसका निर्माण साम्राज्यकाल में हुआ था । यह विश्व का सबसे महान देवालय माना जाता है । इसके स्तभ 23 फीट ऊँचे है । दीवारो व स्तँभो पर फेरो और पशुओं के सिरवाले देवी-देवताओं के चित्र उकरे गये है । कुछ चित्रों मे फेरो को देवताआ से वार्तालाप करता बताया गया है तो कुछ में शत्रु सेना से युद्ध करता हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन मिश्र में कला को देवी-देवताओ तथा शासकों (फेरो) की शक्ति में विश्वास दृढ़ करने हेतु एक माध्यम के रूप म प्रयुक्त किया जाता था । मिश्र की स्थापत्य-कला ने उसके बाद की कला को बहुत प्रभावित किया है और कारनाक देवालय ने तो विशेषकर पश्चिमी स्थापत्य-कला को बहुत ही प्रभावित किया है । इन स्मारकों व देवालयों में स्तम्भ इतनी बाहुल्यता से प्रयुक्त हुए है कि वे एक जगल के जाल जैसे दृष्टिगत होते है । ये खम्भे अपने सौन्दर्य तथा अपनी भव्यता और दृढ़ता मे अद्वितीय हैं । कारनाक के निर्माण में दो हजार वर्ष लग गये थे जबकि उसकी लम्बाई तीन चौथाई मील है । इसके समीप ही बना हुआ अमन का मन्दिर कला का उत्कृष्ट नमूना है । पिरामिड भी मिश्र की स्थापत्य कला के अनुपम उदाहरण है । इनके निर्माण के आगे विश्व के विकसित देश आश्चर्य चकित हैं। परन्तु जब दूसरी शताब्दी ई० पूर्व पिरामिडों का निर्माण बन्द हो गया तो पहाड़ियों मे समाधि-स्थान बनाये जाने लगे । फेरो व अमीर लोगो को दफनाने के लिए ये समाधिया पहाडा को तराश कर बनाई जाने लगीं जिनमें कई कमरे भी होते थे । समाधि में 'ममी' भी रखी जाती थी । विजय स्तम्भ भी उस काल मे निर्मित होने लग गये थे । थामस प्रथम का विजय स्तम्भ 64 फुट ऊचा तथा महारानी हतशेपशुत का 92 फुट ऊचा था।[2]

भाषा और साहित्य-भाषा विज्ञान में मिश्र की सभ्यता प्राचीन ठहरती है । मिश्र के अवशेषों में प्राप्त लख यह सिद्ध करते है कि 3500 वर्ष ईसा के पूर्व मिश्र वालों को भाषा का ज्ञान था । आरम्भ में वहाँ चित्र-लिपि प्रचलित थी और तत्पश्चात् वह चित्रलिपि विचारलिपि में परिवर्तित हुई । इस प्रकार शनै शनै यह विकसित होती गई और उसने अन्त में वर्णलिपि का रूप धारण कर लिया । उस समय मिश्र में चौबीस व्यजनो की वर्णमाला का विकास हुआ । परन्तु मिश्री भाषा में सभी भाषाओं के बहुत से शब्द मिलते हैं । अत बहुत से विद्वान ऐसा अनुमान लगाते है कि इस भाषा का उद्गम पश्चिमी एशिया से हुआ होगा । भारतीय इतिहासकार सर देसाई की धारणा है कि लेखन कला के आविष्कार ने मानव-समाज में सबसे बडी क्रान्ति उत्पन्न की है और इसके लिए मिश्र का कृतज्ञ होना चाहिए । मिश्र में उपलब्ध होने वाले

---

1 J.E Swain A History of World Civilization p 56 'There was built into the temple of Karnak a fully developed clerestory a feature that was later utilized in the churches of the Christian Era.

2 Boak and Glossan Growth of Western Civilization p 25 'They were the first people to develop stone architecture in any high degree

पेपरस नामक पौधे ने इसको विकसित करने में महान सहयोग दिया क्योकि कागज इसी से बनाया जाता था। सेस और हेलियोपैलिस उस समय शिक्षा के केन्द्र थे। मिश्र में उस समय शृगार-रस की रचनायें भी रची जाती थीं। इसके अलावा मिश्र के लोग समुद्र में होने वाले वीरता के कार्य व स्त्री के धोखे की कहानियाँ भी पढ़ा करते थे। मन्दिरों से सम्बद्ध विद्यालयों में सम्पन्न परिवारों के बच्चों को पुरोहितगण शिक्षा देते थे। एक मुख्य पुरोहित शाही शिक्षा का प्रधान होता था। वह शिक्षा का मन्त्री भी कहा जा सकता है। शिक्षा की मुख्य समस्या आज ही की भाति अनुशासन था। विद्यालयो की व्यवस्था का सर्वप्रथम विकास मिश्र में ही हुआ। मिश्र का साहित्य थीब्स में सग्रहीत था जो कि विश्व का सबसे बड़ा साहित्य का केन्द्र था।

शिक्षा-प्रणाली-प्राचीन मिश्र में दो प्रकार की पाठशालाए होती थीं- प्रथम देवालयों में चलने वाली व दूसरी सरकारी पाठशालाए। धर्माधिकारी धार्मिक कार्यों के सम्पन्न कराने के अलावा बालकों को पढ़ाते भी थे। उनकी शिक्षा प्राथमिक (Primary) स्तर की होती थी। सरकारी पाठशालाओं में विशिष्ट और उच्चतर शिक्षा दी जाती थी। बहुधा शिक्षा नि शुल्क ही होती थी। प्राचीन कालीन मिश्र में शिक्षा कुछ विशेष उद्देश्यों के साथ दी जाती थी जैसे बालक को राजकीय पद के योग्य बनाना, युवा वर्ग को धार्मिक-क्रिया-काण्डों से अवगत कराना, कुछ बालकों को नीति व आचरण की शिक्षा दी जाती थी तो कुछ को टेकनीकल शिक्षा दी जाती थी।

इस काल में मिश्र के साहित्य का भी सर्वांगीण विकास हुआ। देवताओं की प्रशसा में काव्य रचना होती थी। देवी-देवताओं तथा फेरो की प्रशस्ति में भी रचना की जाती थी तथा आम लोगों के जीवन तथा देशों की यात्राओं के विषय में कहानियाँ रची जाती थीं। मिश्रवासियों ने बहुतसी पौराणिक आख्यानों की भी रचना की। इनमें सर्वाधिक विख्यात 'ओसिरिस' का आख्यान था। गीत अधिकाश करुण रस से पूर्ण होते थे। उस समय इतिहास, धर्मशास्त्र, गणित आदि विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया था। वहाँ के पिरामिडों का निर्माण इस बात को स्पष्ट बताता है कि वहाँ गणित कितना विकसित था। लगभग सभी विद्वान इस बात पर सहमत है कि ज्योमिति का आविष्कार मिश्रवासियों ने ही किया था। परन्तु साहित्य में धर्म की प्रधानता थी। मिश्र के प्रौढ़ साहित्य में यथार्थवादी जीवन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यथार्थवादी साहित्य यौवन व जीवन से पूर्णत प्रभावित था। परन्तु कालान्तर में वह रुढ़िवादी बन गया।

प्राचीन मिश्र के साहित्य में एक अभाव स्पष्ट झलकता है। उस काल में महाकाव्यों एव नाटकों की रचना नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है प्राचीन मिश्रवासी काव्यात्मक साहित्य पर अधिक ध्यान न देकर उपयोगितात्मक साहित्य पर विशेष बल देते थे। उस साहित्य पर भौतिकवाद की स्पष्ट छाप थी। मध्य-काल में मिश्रवासियों के जीवन में दो परस्पर विरोधी तत्व दृष्टिगोचर होते हैं, भौतिकवादा और स्वार्थ-परक। साम्राज्यकाल में प्रकार का साहित्य उपलब्ध है।

विज्ञान-जिस प्रकार मिश्र में शिक्षा प्रचार में वहाँ के पुरोहित ... था उसी प्रकार वैज्ञानिक अनुसधान व अन्वेषणों में भी वहा के ...

था। गणित-विद्या वहाँ पर्याप्त विकसित थी। किसानों के श्रम ने ही एक प्रकार से गणित को जन्म दिया। मिश्रवासी भिन्न से भी परिचित थे। वे दस लाख तक की सख्याओं का जोड़ व उनका भाग कर सकते थे। उसकी सहायता से मिश्र के उच्च एव भव्य पिरामिड नील नदी की बाढ़ से बचने के लिए नापतोल कर ही बनाये गये होंगे। इस प्रकार भूमि की नाप-जोख ने रेखागणित को जन्म दिया होगा। परन्तु मिश्र की गणित पद्धति कठिन थी। दशमलव प्रणाली का ज्ञान मिश्रवासियों को नहीं था। साथ में ही उन्हें शून्य का भी बोध नहीं था। पहाड़ा, गुणा, भाग आदि गणित की क्रियाओं से भी वे उस समय अनभिज्ञ थे।

मिश्र के भौतिक-शास्त्र व रसायन-शास्त्र के बारे में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। खगोलविद्या का भी उन्हें न्यून ज्ञान था। नील नदी की बाढ़ से मिश्रवासियों ने आकाश के नक्षत्रों का अध्ययन आरभ किया। इस पर्यवेक्षण से ही खगोलविद्या के अध्ययन की नींव पड़ी। कहते हैं कि मिश्रवासियों ने नक्षत्रों से युक्त आकाश का मानचित्र भी बना लिया था। सागर व रेगिस्तान में नक्षत्रों को देखकर वे दिशा निर्धारण करते थे। दूरबीन न होते हुए भी उन्हें नक्षत्रों का ज्ञान हो गया था। 2700 ई० पू० उन्होंने पचाग (Calender)का निर्माण कर लिया था। 12 मास का वर्ष तथा प्रत्येक मास में 30 दिन होते थे।

मिश्रवासियों ने चिकित्सा शास्त्र मे भी उन्नति की थी। उन्हें शव के मसाले लगाकर सुरक्षित रखने की कला का बोध अवश्य था परन्तु शरीर रचना के ज्ञान उन्हें सीमित रूप में था। वे लोग अपने स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रखते थे। वे उस समय घाव के टाके भी लगाना जानते थे और उसका औषधि से उपचार करना भी जानते थे। मिश्र के चिकित्सक नाड़ी की गति देखकर रोग का निदान करते थे। वे बहुत सी वनस्पतियों के रोगहर गुणों से परिचित थे। वे शल्य-चिकित्सा से भी अवगत थे। मिश्र उस समय मेडिकल विज्ञान में मार्गदर्शक था और मिश्र के डॉक्टर समस्त प्राचीन विश्व में विख्यात थे। इसके अलावा वहाँ के लोग जड़ी बूटियों से भी उपचार करना जानते थे। इतिहासकार बेन फिगर का कहना है कि मिश्रवासी निश्चेतन (Anaesthesia)के सिद्धान्त से भी परिचित थे।

मिश्र का नैतिक ज्ञान-प्लेटो जैसे विश्व विख्यात दार्शनिक ने नैतिक शास्त्र का ज्ञान मिश्र में ही सीखा था। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन मिश्र नैतिक शास्त्र में भी अग्रिम होना चाहिये। प्राचीन काल में जब विश्व के अन्य देश अविकसित तथा असभ्य थे-उस समय भी मिश्रवालों ने नैतिक सिद्धान्त निर्धारित किये जो बाद के आने वाले विभिन्न धर्म प्रवर्तकों व धर्म सुधारकों द्वारा अपनाये गये थे। मिश्र में मध्यम श्रेणी के लोग जब व्यापार के कारण कुछ सम्पन्न हुए तो उनका बौद्धिक विकास भी आरम्भ हुआ। मध्यम श्रेणी ने ही विश्व को सदैव व्यावहारिक ज्ञान के विचारक दिये हैं। उन्होंने मिश्र के रहस्यवादी विचारों को बिना छेड़े कई नैतिक नियम बनाये। मनुष्य को अपने समाज में अपने साथियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये-यह पताह होतप(Ptah Hotep)द्वारा रचित एक पुस्तक में स्पष्ट रूप से मिलता है।

मिश्र की सैनिक व्यवस्था–जैसा कि मिश्र की भौगोलिक परिस्थितियों से स्पष्ट होता है, प्रकृति ने स्वय उसे सुरक्षा प्रदान की है। रेगिस्तान व समुद्र ने उसे बाहरी आक्रमणोंसे बचाने का कार्य किया है। इसके अलावा यहाँ के लोग भी सुमेरियन व बाद में स्पार्टा के लोगों की भाति युद्ध प्रेमी नहीं थे। उन्होंने सिन्धु सभ्यता के लोगों की भाति अपने नगरों को चारदीवारी से सुरक्षित नहीं किया और साथ में युद्ध में शस्त्रों से भी अपने को सुसज्जित नहीं किया। परन्तु जब हाइकॉस जाति के आक्रमण ने मिश्र का दरवाजा विदेशियों के लिए खोल दिया तो उन्हें युद्ध के लिए तैयार होना पड़ा। उन्होंने अपनी सैनिक व्यवस्था इस प्रकार व्यवस्थित की -

देश को सुरक्षित रखने के लिए प्रथम रगरूट भर्ती किये जाते थे और उनमें से सैनिकों की नियुक्ति होती थी। सेना का वर्गीकरण था और प्रत्येक प्रकार की सेना एक सेनाध्यक्ष के आधीन होती थी। सेनाध्यक्ष व अन्य सैनिक उच्च अधिकारी राजवश से व सामन्त वर्ग से ही सम्बन्धित होते थे। उनके पद पैतृक होते थे। उनको राज्य की सीमा पर निर्मित दुर्गों में रखा जाता था। उनको शस्त्र शस्त्रागार से भेजे जेते थे। फेरोह स्वय युद्ध करने जाता था। किन्तु फिर भी हम कह सकते है कि मिश्रवासी अच्छे लड़ाकू नहीं थे।

मिश्र की विचार पद्धति–मिश्र के निवासी सादा, अध्यात्मवादी व नैतिक जीवन व्यतीत करने वाले थे। उनके इन्हीं गुणों से उनकी विचार पद्धति का निर्माण हुआ। वे परलोक की ओर ध्यान न देकर इस लोक की ओर ध्यान अधिक देते थे। इसी कारण विश्व की साधारण वस्तुओं के प्रति भी उनका अधिक प्रेम रहा। उनका जीवन सुखी था और वह उसे प्रेममय भी बनाना चाहते थे। वे हिन्दू, ईसाई की भाति इस जग से भगाना नहीं चाहते थे और न यूनानियों की भाति वे इस जग में अधिक रहना ही चाहते थे। उनके जीवन का आशय केवल इतना ही था कि सादगी के साथ नैतिक जीवन व्यतीत करते हुए वे इस जीवन को सुखी बनावें और पारलौकिक जीवन की कल्पना से इसको दु खी न बनावें।

मिश्र सभ्यता की विश्व को देन–इस सभ्यता का उपरोक्त वर्णन इस बात को स्पष्ट करता है कि यह सभ्यता प्राचीनकाल में अति विकसित सभ्यता थी। इस सभ्यता ने विश्व की अन्य सभ्यताओं को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। विल डयूरेन्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि पूर्वी देशों की किसी भी प्राचीन सभ्यता ने आधुनिक विश्व को इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि मिश्र की सभ्यता ने किया है।[1] सामाजिक जीवन में सदाचार का महत्व इसी सभ्यता से प्रसारित हुआ है। मिश्रवासियों ने अपने सामाजिक जीवन को महान महत्व दिया था। सामाजिक जीवन की सफलता के लिए उन्होंने नैतिक नियमों का निर्धारण किया जिनको कि अन्य देशवासियों ने ग्रहण किया। शिक्षा के क्षेत्र में व्यवस्थित विद्यालयों का सर्वप्रथम प्रयोग यहीं हुआ और यहीं से यह अन्यत्र प्रचलित

1 No Civilization of the ancient East surpassed the Egyptian in its importance modern world.

हुआ। विज्ञान के क्षेत्र में मिश्रवासी विश्व में अग्रगण्य समझे जाते है। रेखागणित में जितना ज्ञान उन्हें था उतना विश्व के अन्य लोगों को नहीं था। इसके प्रमाण में पिरामिड ले सकते हैं। केलेण्डर सर्वप्रथम यहीं तैयार हुआ। सूर्य घड़ी व जलघड़ी का सर्वप्रथम आविष्कार यहीं हुआ। शव के मसाला लगाकर कई वर्षों तक सुरक्षित रखना इन्हें ही आता था।

मिश्रवासियों को सुख-समृद्धि, विलास-सामग्री आदि से बड़ा प्रेम था। अत उन्होंने नाना प्रकार के आभूषण, वस्त्राभरण, फर्निचर, शृगार के प्रसाधन आदि का प्रयोग कर अन्य देशों के लोगा के दिलों में इनक प्रति आकर्षण उत्पन्न किया। भौतिकवाद के साथ-साथ मिश्रवालो ने विश्व के देशों को एकेश्वरव व विशुद्ध नैतिक दृष्टि कोण से भी अवगत कराया। उनके नैतिकगुणों ने विश्व की बौद्धिक प्रगति में महान योग दिया।

स्वास्थ्य का जितना ध्यान मिश्रवासी रखते थे उतना कोई नहीं। उनका आज की भाति कहना था कि मानव-स्वास्थ्य उसके भोजन पर निर्भर करता है। अत स्वास्थ्य को अच्छा रखने के लिए भोजन का पचना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार आज इस विज्ञान के युग मे मानव अपनी पाचन क्रिया को व्यवस्थित रखने के लिए एनीमा का प्रयोग करता है-उसका प्रचलन सर्वप्रथम मिश्र में ही हुआ था। रोम के इतिहासकार प्लिने का कहना है एनीमा लेने की आदत मिश्रवासियो ने इबिस (Ibis)नामक एक चिड़िया से सीखी होगी जो भोजन के कब्ज करने वाले अश को पचाने की जगह बनाने के लिए अपनी लम्बी चोंच को एनीमा की पिचकारी के रूप में काम में लाती है। हिरोडोट्स का कहना है कि मिश्रवासी प्रति मास तीन दिन जुलाब लेते हैं तथा एनीमा आदि की सहायता से अपने स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं क्योंकि उन लोगों का मत है कि मनुष्य को होने वाले सारे रोग उस भोजन से ही होते हैं जिसे वे खाते है। अत स्पष्ट है कि एनीमा की प्रणाली मिश्र से ही प्रचलित हुई।

स्थापत्य कला में भी मिश्रवासियों ने विश्व के लोगों को प्रभावित किया है। वास्तव में मिश्रवासी ससार के महानतम भवन निर्माता और स्थापत्य विशेषज्ञ थे। नील नदी की मिट्टी से सर्वप्रथम ईंटा का निर्माण यहीं आरम्भ हुआ। मध्यम श्रेणी के मनुष्य अपने मकान ईंटा से बनाते थे। इसके अलावा पाषाण का प्रयोग भवन निर्माण में सर्वप्रथम यहाँ हुआ। देवालयों म (कारनाक, लक्सर) स्तम्भों का प्रयोग सर्वप्रथम मिश्र वालों ने किया। इतिहासकार विलड्रेन्ट का कहना है कि रोम व यूनान ने स्तम्भों का प्रयोग मिश्रवासियों से ही सीखा था और भारतवासियों ने स्तम्भों का प्रयोग यूनानियों से सीखा था। मिश्रवासी स्मारक बनाने में भी दक्ष थे तथा उनके महराबों व समाधियों को देखकर आज भी विश्ववासी दग रह जाते हैं। मेहराब कला का प्रचार भी मिश्र से हुआ मानते हैं। आर पी त्रिपाठी का कहना है कि प्राचीन ससार में मिश्र की विशाल निर्माण कला की समता करने वाला कोई नहीं हुआ। उन्होंने विशाल पिरामिड, समाधियाँ, प्रासाद, देवालय, बाध, नहरें आदि बनाकर वास्तुकला, स्थापत्य कला तथा इजीनियरिंग के ज्ञान को विकसित किया। मूर्ति कला के क्षेत्र में भी मिश्रवासियों ने विश्व के देशों को प्रभावित किया। यहाँ क लाग नर्म पाषाण पर मूर्ति बनाते थे। वे मूर्तियाँ अन्य देशों के शिल्पकारों क लिए

आज भी आदर्श बनी हुई हैं। मास्पेरो(Maspero) का कहना है कि यदि मुझसे कोई ससार की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से किसी को चुनने को कहा जाय तो मै इस मूर्ति (लूव्र के सग्रहालय में रखी शेख की पलथी मारकर बैठी) को चुनूगा।

इतिहासकार मैकेन्जी की धारणा है कि नाव बनाने की कला सर्वप्रथम मिश्रवालों को ही आती थी। नावें बनाकर उन पर सेल लगाकर खेना इन्होंने ही आरम्भ किया था। शनै शनै अच्छी प्रकार की नावें बनाकर भूमध्यसागर के तटीय देशों से उन्होंने व्यापार करना आरम्भ किया। जब हिरोडोट्स मिश्र आया था तो उसने यहाँ विभिन्न प्रकार की नावे पाई थीं। इससे स्पष्ट है कि अन्य देशों ने नावें बनाना भी मिश्रवालों से सीखा।

खानें खोदने का कार्य भी सर्वप्रथम यहीं आरम्भ हुआ। सोने व ताबे की खानें खोदने व उनके प्रयोग में ये बहुत दक्ष थे। उत्सवों में प्रयुक्त होने वाले चाकू की मूठ व कलम के मुह पर सोने का काम किया जाता था। चीनियों ने चीनी के बर्तनों पर रग करने की कला यहीं से सीखी जान पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्र की प्राचीन सभ्यता ने विश्व को बहुत कुछ सिखाया है। इतिहासकार स्वेन(Swain) का कहना है कि चाहे मिश्र की सभ्यता आधुनिक स्तर को अधिक प्रभावशाली प्रतीत न हो पर हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मिश्रवासी सभ्यता के मार्ग-दर्शक व उसको जन्म देने वाले थे।[1] यूनान तो मिश्र का हर क्षेत्र में ऋणी है। डॉ राधाकृष्णन लिखते हैं-"कई अवसरों पर यूनानी अपने को मिश्र की प्राचीन सभ्यता का शिष्य मानते थे।" यूनान का ही नहीं वरन् विश्व का महान दार्शनिक प्लेटो मिश्र की सभ्यता से अति प्रभावित था। वह लिखता है-"मिश्रवासी यूनानियों को अपने बच्चों की भाति देखते थे।" मिश्र सभ्यता की इन विशेषताओं से प्रभावित होकर ही डा आर पी त्रिपाठी ने लिखा है कि "इतिहास के उषा काल में मिश्र ने जो कुछ किया उसका प्रभाव प्रत्येक युग में मानव सभ्यता के ऊपर रहा है। एफ जी पियर्स इस सभ्यता की समालोचना करते हुए लिखता है-"यदि सभ्यता मौलिक रूप से दूसरे देशों में मिश्र से नहीं फैली जैसा कि कई विद्वान कहते हैं, किन्तु यह निश्चित है कि आदि-काल के अन्य सभ्य लोगों ने बहुत सी चीजें मिश्रवासियों से सीखीं।" परन्तु यह सब होते हुए भी मिचलेट (Michlet)ने इसकी आलोचना में लिखा है कि मिश्र तो एक श्मशान की यादगार है।"

मिश्र सभ्यता की विशेषताएं–उपरोक्त वर्णन से यह तो सिद्ध होता है कि मिश्र की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक उल्लेखनीय सभ्यता थी। उसका प्रभाव न केवल तत्कालीन सभ्यताओं पर ही पड़ा वरन् परकालीन सभ्यताओं पर भी पड़ा। वेलड्यूरेन्टकी धारणा है कि पूर्वी देशों की किसी भी प्राचीन सभ्यता ने आधुनिक विश्व को इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि मिश्र की सभ्यता ने किया है। अत इस सभ्यता

1 Compared with modern standards, the civilization of the Egyptians may not impress we but one should not forget that they were pioneers originators of civilization.

—J.E. Swain.

में कुछ विशेषताओं का होना स्वाभाविक है। उनमें प्रमुख कतिपय हम यहाँ दे रहे है-

(अ)मिश्र एक राजतन्त्रात्मक राज्य था और वहाँ का फेरोह राजनीतिक व धार्मिक कार्यों में सर्वोच्च था।

(ब)भारत की भाति मिश्र के प्रशासन में पुरोहितों का प्रभाव अवश्य था परन्तु यहाँ की भाति उन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे।

(स)मिश्र में धर्म-निरपेक्ष राज्य था।

(द)मिश्र की व्यवस्था दैवी न समझी जाकर राजनिर्मित समझी जाती थी।

(य)मिश्र के शासकों ने देवालय बनाये अवश्य पर अन्य देशों के शासकों की भाति उन्होंने देवालयों के निर्माण में रुचि नहीं ली। इसके विपरित उन्होंने समाधियाँ बनाकर अपना नाम विश्व में अमर किया।

मिश्र सभ्यता का ह्रास-इस प्रकार मिश्र की यह प्राचीन सभ्यता ईसा के 5000 वर्ष पूर्व नील नदी की घाटी में फली-फूली और तत्पश्चात् अपनी उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त कर विलिन हो गई। मिश्र देश में कुल मिलाकर 31 राजवशों ने राज्य किया। नीको द्वितीय (Necho II)के राज्य के बाद ही मिश्र का अध पतन आरम्भ हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि मिश्र का गौरव काफी लबे समय तक बना रहा और यह और भी लबे समय तक रह सकता था। परन्तु यह सिकन्दर जैसे साम्राज्यवादी एव महत्वाकाक्षी सम्राट की गिद्ध-दृष्टि से न बच सका। उसके पश्चात् ईसा की प्रथम सदी में मिश्र रोम के सम्राटों के आधिपत्य में चला गया और शनै शनै अपनी उस प्राचीन सभ्यता को खो बैठा। इस सभ्यता के पतन पर प० जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं-' कई हजारों वर्षों के गौरवमय इतिहास के उपरान्त मिश्र की प्राचीन सभ्यता लुप्त हो गई और सिवाय महान् पिरामिड, स्फिन्क्स व मेम्फीज के नगरों के पीछे कुछ भी निशान नहीं छोड़ गई।" इस सभ्यता के विनाश के कारण निम्नलिखित हो सकते हैं —

(1)सामन्त व शासक वर्ग द्वारा निम्न श्रेणी के लोगों का शोषण किया गया। इस कारण शोषित वर्ग समय पड़ने पर शासक का परम सहयोगी सिद्ध नहीं हुआ।

(2)मिश्र में धार्मिक सहिष्णुता का भी अभाव था। वहाँ के फेरोह अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म भी नये चला दिया करते थे। इस कारण भी वहाँ का जनसाधारण शासक-वर्ग से असन्तुष्ट था।

(3)मिश्र के पुरोहित भी शोषण करने में दक्ष थे। उन्होंने अपनी शोषण नीति से देश की अर्थ व्यवस्था को शोचनीय बना दिया। इसके अलावा उन्होंने स्वतत्र चिन्तन को भी प्रोत्साहन नहीं दिया।[1] इस कारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं कर सके।

---

1 "The priesthood sapped the people of their material wealth and discouraged in-depe ndent thinking."

—J. E. Swain.

(4)मिश्र सदैव लड़ाकू शत्रुओं से घिरा रहा। असीरियन व सुमेरियन लोग मिश्रवासियों से अधिक लड़ाकू थे। वे निरन्तर मिश्र पर आक्रमण करते रहे। उनके पश्चात् वह रोम का शिकार हो गया। जूलियस सीजर के समय से रोम वाले उस पर आक्रमण करने लग गये और अन्त में उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

(5)पिरामिडों और देवालयों के निर्माण में मिश्र की जन-शक्ति और सम्पत्ति प्राय समाप्त हो गई थी। यदि यह सम्पत्ति अन्य जन उपयोगी कार्यों में खर्च की जाती तो मिश्र अपने गौरव-काल और दीर्घ-कालीन बना सकता था।

(6)मिश्र के आपसी कलहों ने देश की राजनीतिक एकता समाप्त कर दी। फेरो व पुरोहितों के निजी स्वार्थों ने इन कलहों को और वैमनस्यपूर्ण बना दिया। इससे पडौसी प्रतिद्वन्दी देशों को मिश्र पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया।

विदेशी आक्रमणो से मिश्र की राजनीतिक स्वतन्त्रता अवश्य नष्ट हो गई, परन्तु वह अपने सास्कृतिक गौरव को अवश्य बनाये रहा। बीसवीं सदी के लोग भी अपने देश की प्रगति के लिए मिश्र की प्राचीन सभ्यता को ही आधार बनाते रहे।

प्रश्न

1 मिश्र को विश्व में सभ्यता का उद्गम स्थान क्यो माना जाता है?
Why is Egypt considered as Pioneer of Civilization in the world?

2 मिश्र की प्राचीन सभ्यता का सक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Write a short account of ancient Egyptian Civilization

3 प्राचीन मिश्र की वास्तुकला तथा मूर्तिकला की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Enumerate the chief features of the Architecture and Sculpture of the early Egyptian Age

4 "मिश्र ने अनेक खोज तथा आविष्कार किये जो मनुष्य के लिये बड़े लाभदायक सिद्ध हुए हैं।" इस कथन की पुष्टि कीजिये।
"Egypt made many discoveries and inventions which have proved very useful to men" Justify this statement

5 प्राचीन मिश्र के धर्म एव कला के विषय में आप क्या जानते है?
What do you know about the religion and art of ancient Egypt?

3

मैसोपोटामिया की सभ्यता

(उपजाऊ चन्द्राकार प्रदेश)

"आदिम मनुष्यों में सुमेरियावासी सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न, सभ्य तथा सभ्यता के जन्म-दाता थे।"

-लैंगडन

मैसोपोटामिया ईराक का एक पहाड़ी भाग है। इसके दक्षिण में फारस की खाड़ी है जो इसे समुद्र के विशाल भाग से सयुक्त करती है। इसके अतिरिक्त इसके दक्षिण पश्चिम में मिश्र तथा पूर्व में ईरान व उत्तरी भारत स्थित है। अत जब इसके समीप के देश मिश्र व भारत में प्राचीन सभ्यताओं का विकास क्रमश नील व सिन्धु नदी की घाटियों मे हो रहा था तो उस प्रभाव से यह किस प्रकार अप्रभावित रह सकता था ? यह पठार भी नदियों के आँचल में ही आबाद है। जिस प्रकार पजाब पाच नदियों का द्योतक है उसी प्रकार मेसोपोटामिया दो नदियों का द्योतक है। मैसोपोटामिया 'मैसो' और पोटामिया' इन दो शब्दो से मिलकर बना है, 'मैसो' का अर्थ है मध्य' और 'पोटम' का अर्थ है 'नदी', अत जो भू-भाग दजला (Tignes)और फरात (Euphartes)के बीच में स्थित है उसे ही मैसोपोटामिया कहते हैं।

ये दोनों नदिया टर्की के (काकेशस) पहाड़ों से निकलती है और उत्तर दिशा से निकल कर दक्षिण में फारस की खाड़ी में गिरती है। यूनानियों ने इन दो नदिया के प्रदेश का नाम मैसोपोटामिया रखा था जब कि अन्य लोग इसे शिनार का प्रदेश'(Land of Shinar) कहते थे। इतिहासकार ब्रेस्टेड (Breasted) ने इसे 'उपजाऊ चन्द्रकार प्रदेश' (The Fertile Crescent)बताया है। कुछ समय पूर्व इस सभ्यता को मिश्र से भी प्राचीन माना जाता था। कुछ नगरों की खुदाई में प्राप्त अवशेष इस बात को सिद्ध करते हैं कि यह सभ्यता मिश्र की सभ्यता से प्राचीन है। किश (Kish)तथा सूसा (Susa) के खडहर पूर्व तथा उत्तर पाषाण युगों से प्रारम्भ होते हैं। किश का इतिहास लगभग 4500 ई पू से प्रारम्भ होता है और तीसरी शती ई पू तक यह नगर प्रभुत्व सम्पन्न बना रहा। किश' का अर्थ है सार्वभौम राज्य'। इसके खडहरों के आधार पर ब्लैक्सलैण्ड स्टब्ज का कथन है कि सभ्यता का इससे प्राचीन कोई स्थायी केन्द्र नहीं था। उनका कहना है कि किश नगर ने अपना अभिमानपूर्ण योग सबसे प्राचीन सुमेरिया सभ्यता की राजधानी के रूप में ही नहीं अपितु अगेड तथा बेबीलोन के साम्राज्यों में भी राजनीतिक तथा धार्मिक दोनों ही क्षेत्रों में, सासानी साम्राज्य के अन्त (650 ई) तक अपनी स्थिति को निरन्तर ज्यों को त्यों बनाये रखा।[1] सूसा का इतिहास भी किश के समान है। वह एलम

1 Kish, the World s oldest city In the wonders of the Past I' p 413 418

4

(Elam) की राजधानी था। यहा बीस हजार वर्ष पुराने मानव अवशेषों तथा एक उन्नत सस्कृति का पता चला है। हिन्सक तथा ओपर्ट नामक दो व्यक्तियों ने कीलाक्षर लिपि में अंकित एक अति प्राचीन सस्कृति के प्रथम चिह्नों का पता लगाया। उस लिपि को सर्वप्रथम रालिन्सन ने पढ़ा था। मैसोपोटामिया की प्राचीन इमारतों के खडहरों की खुदाई का कार्य 1842 में लायर्ड के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। उसके उपरान्त लियोनार्ड वूले तथा लैंडन के नेतृत्व में आग्ल-अमेरिकी ने यहाँ आश्चर्य-जनक शोध-कार्य किये।

जिस प्रकार नील नदी ने मिश्र को जीवन दिया उसी प्रकार दजला और फरात इन दोनों नदियों ने मैसोपोटामिया की सभ्यता का पालन किया। यह भी यथार्थ है कि इन नदियों ने यहा के लोगों के जीवन को उन्नत एव सुरक्षित बनाने के साथ सदैव सकटग्रस्त भी रखा है। थोरकिल्ड जैकोबसेन (Thorkiled Jacobsen)का कहना है कि दजला और फरात नील नदी के समान नहीं हैं। वे बिना पूर्व सूचना के आवेश में चढ़ सकती है और बहुत से बाधों को तोड़ती हुई फसल में प्रवेश कर सकती है। इससे स्पष्ट है कि यहा के कृषकों का जीवन सदैव सदेहजनक रहता था।[1]

इसके अलावा यह भी स्पष्ट है कि दोनों नदिया उत्तर के घास के मैदानों को पार करती हुई दक्षिण की ओर बहती हैं। मिश्र की नील नदी की भाति इन नदियों ने भी ऊपरी घाटी और निचली घाटी मैसोपोटामिया में बना रखी थीं। दोनों घाटियों के शासक भिन्न थे तथा उनकी सभ्यतायें भी भिन्न ही थीं। इस कारण निचली घाटी के लोग ऊपरी घाटी के लोगों से सदा सशकित रहते थे। निचली घाटी की भूमि नदियों द्वारा लाई गई चिकनी व उपजाऊ (कच्छार) मिट्टी से बनी हुई है। इसलिए यह ऊपरी घाटी से अधिक उपजाऊ है। इसके अलावा यह भाग मैदानी भी है। इसी कारण उत्तरी घाटी के निवासियों के आक्रमण का भय बना रहता था। दूसरे उनके द्वारा पानी रोकने की भी शका रहती थी। फल भी यही हुआ कि उत्तर से नये लोग आते और निचली घाटी के लोगों को परास्त कर उनकी सभ्यता नष्ट करने का प्रयास करते। अत मैसोपोटामिया की सभ्यता को प्राचीन विश्व में एक 'क्रास रोड'(Cross Road) की सज्ञा दी है। यह उत्तर की ओर से आने वाले खानाबदोश लोगों के आक्रमण के लिए सदा खुला रहा। इसका प्रमुख कारण यह भी रहा कि इसके उत्तर-पूर्व में फैले पहाड़ इतने ऊंचे नहीं है जो कि उत्तर से आने वाले शत्रुओं को रोक सके। इसी प्रकार इसके पश्चिम में विस्तृत रेगिस्तान भी बाहर से आने वालों को रोकने में सहायक सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए मैसोपोटामिया का इतिहास सघर्षों व विजयों का इतिहास रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि यहा किसी एक सभ्यता का विकास न होकर विभिन्न सभ्यताओं का विकास हुआ है और उन्हें अपने अस्तित्व के लिए सदैव कड़ा सघर्ष करना पड़ा है। इसीलिए भारतीय इतिहासकार सरदेसाई लिखते हैं-"मैसोपोटामिया एक शक्ति से दूसरी शक्ति के अधीन जाता रहा, नवीन सस्कृति प्राचीन सस्कृति द्वारा अपने अन्दर मिला ली जाती थी और प्राचीन सस्कृति में वास्तविक परिवर्तन होते रहे। देश सस्कृतियों के विलुप्त होने का भाजन बन गया।"

---

1 Donald A. Mackenzie : Ancient civilization p 114

मैसोपोटामिया की प्रमुख सभ्यताएँ-यह इससे पूर्व स्पष्ट किया जा चुका है कि दजला व फरात के उदार अचल में किसी एक ही सभ्यता का विकास न होकर कई सभ्यताओं का विकास हुआ। इसीलिए दजला और फरात कई सभ्यताओं के पालने व कब्रिस्तान के रूप में सिद्ध हुई है। यहा विभिन्न प्रकार की शासन-विधिया विकसित हुई। कभी तो इन दोनों नदियों में साथ-साथ विकसित हुई, कभी एक दूसरे के बाद। यहा विकसित होने वाली सभ्यताओं में सुमेरिया, बेबीलोन, असीरिया व कैल्डियन सभ्यताए प्रमुख थीं। इन सभ्यताओं के विकास के विषय में इस प्रकार कहा जाता है-सुमेरिया ने सभ्यता को जन्म दिया, बेबीलोन ने उसे चरम सीमा पर पहुचाया और असीरिया ने उसे ग्रहण किया। अत अब हम सर्वप्रथम सुमेरिया सभ्यता को लेते हैं।

सुमेरिया सभ्यता

सुमेरियन लोग कौन थे ?-अब प्रश्न यह उठता है कि सुमेरियन लोग कौन थे और वे कहा से आये ? इस प्रश्न का उत्तर अभी तक सही प्राप्त नहीं हुआ है। उनकी भाषा अन्य तत्कालीन भाषाओं से नहीं मिलती। इतिहासकार मेकनेव लिखता है कि उनका अस्थिपजर भी उस समय की किसी जाति से नहीं मिलता। अत उनका पता लगाना कठिन हो जाता है। परन्तु यही इतिहासकार अपनी पुस्तक 'दी राइज आफ दी वेस्ट' (The Rise of the West) में लिखता है कि सुमेरियन लोग अपने धर्म व कला में जानवरों को विशेष स्थान देते थे। इससे सिद्ध होता है कि उनमें से कुछ चरवाहे रहे होंगे। उनके प्राप्त कुछ रीति-रिवाजों से ऐसा भी भास होता है कि वे दक्षिण से समुद्री मार्ग से आये हों। परन्तु एल्बिन माइकेल (Albin Michel) कहते हैं कि ये सब होते हुए भी हम किसी विशेष भू-भाग को उनका जन्म स्थान निर्धारित नहीं कर सकते। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट की मान्यता है कि वे मध्य एशिया से आये थे। सुमर का अर्थ है उपजाऊ। अत कई इतिहासकार इन्हें दजला और फरात को निचली घाटी के ही मानते हैं। परन्तु इतिहासकार वीच (W N Weech) लिखता है-"सुमेरियन लोग आक्रमणकारी थे और उनका मूल स्थान अनिश्चित है। किन्तु उनकी पौराणिक कथा से ज्ञात होता है कि वे फारस की खाड़ी से आये थे।" फारस स आय मानने पर डॉ० आर० पी० त्रिपाठी इनका मूल स्थान सिन्धु नदी की घाटी को मानते हैं। वे लिखते है कि सभवत वे मोहनजोदड़ो के निवासियों की ही कोई शाखा हो।[1] अत अभी इस प्रश्न का उत्तर विवादग्रस्त है।

परन्तु इतना निश्चित है कि लगभग 3500 ई० पू० ऐतिहासिक दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि वे इस प्रदेश में विदेशी थे। वे उस समय फारस की खाड़ी के मुहाने पर डेल्टा पर आबाद हुए थे। बाइबिल में इस प्रदेश को ही 'शिनार' (Garden of Eden) कहा गया है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यह प्रदेश वनस्पति की दृष्टि से उस समय स्वर्ग के समान हो। इसी कारण सुमेरियन लोगों न यहा आने का प्रयास किया हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि सुमेरियन अच्छे योद्धा थे एव प्रशासन-कला में पटु थे।

---

1 आर पी त्रिपाठी विश्व इतिहास' पृ 3

कद से वे छोटे अवश्य थे पर उनका शरीर गठा होता था। उनके मुख की आकृति अण्डाकार होती थी। दाढ़ी-मूछ रखने का उन्हें चाव नहीं था। वे ही इसी घाटी के प्रथम सभ्य व्यक्ति माने जाते है।

इस सभ्यता का पता 19वीं शताब्दी में चला और इसका श्रेय इगलैंड व फ्रास के पुरातत्ववेत्ताओं को जाता है।

सभ्यता का विकास–सुमेरियन सभ्यता का विकास 4500 ई० पू० माना जाता है। इतिहासकार रेविल ने इरेक (Erek)को इस जाति का प्रथम शासक माना है। 3000 ई० पू० तक उन्होंने भूमि को उपजाऊ बनाकर उपज बढ़ाना व कृषि सम्बन्धी अन्य कार्य सीख लिए थे। 2900 ई० पू० तक उन्हें हल का प्रयोग,व खाद की उपयोगिता ज्ञात हो गई थी। इस समय तो वे लोग कई देवताओं में विश्वास करने लगे थे। 2600 ई० पू० शासक गुडेया (Gudea)ने जन साधारण के लिए बहुत से कानून भी बनाये थे। उसके शासन के उपरान्त सुमेरियन जाति समेटिक जाति के पराधीन हो गई। परन्तु इससे सुमेरियन सभ्यता का ह्रास नहीं हुआ। वह पूर्ववत फलीभूत होती रही। इसी के परिणामस्वरूप सुमेरियन लोग 2622 ई पू में पुन स्वतन्त्र हो गये और उनकी सभ्यता पुन विकासोन्मुख होने लगी। परन्तु 2358 ई पू में सुमेरियन पुन पराधीन हो गये। इस आक्रमण से इनकी सभ्यता तो बनी रही परन्तु ये लोग पुन सत्ता प्राप्त नहीं कर सके।

सुमेरियन सभ्यता का वर्णन

सामाजिक जीवन–सुमेरियन लोग साधारण कद के होते थे। शरीर उनका बलिष्ठ होता था। उनकी नाक कुछ विशेषता लिए होती थी। वह ऊची और नुकीली होती थी। इनका मुख अण्डाकार होता था। इनके बाल काले होते थे। इस कारण भी वे सुमेरियन (Black headed) कहलाते थे। उन्हें दाढ़ी रखने का शौक था। उनका समाज तीन वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राज्य-परिवार के लोग व धर्माधिकारी थे। इनका यह उच्च वर्ग कहलाता था। दूसरे वर्ग में कृषक व छोटे व्यापारी थे तथा गुलाम लोग तीसरे वर्ग को बनाते थे। धर्माधिकारियों को समाज में विशेष स्थान प्राप्त था। आरम्भ में तो उनका स्थान लगभग शासक के तुल्य होता था। वे धार्मिक व राजनीतिक दोनों कार्य करते थे। इतिहासकार मेकनेल लिखता है कि धर्माधिकारी नियमित रूप से प्रबन्धकों का व योजना बनाने का कार्य करते थे। ये मानव-कार्यों में सहयोग देते थे जिनके बिना सुमेरियन सभ्यता टिक नहीं सकती थी। भूमि कृषकों को देते थे व साथ में वे यह भी देखते थे कि पैदावार आवश्यकता से अधिक होती है या नहीं। अधिक अनाज उनके आधीन देवालयों में संग्रह किया जाता था और इस अनाज का आवश्यकता पड़ने पर बटवारा भी वे ही करते थे। वे भगवान के विशेष प्रतिनिधि माने जाते थे। इससे स्पष्ट है कि धर्माधिकारी उस समाज में सर्वाधिक सम्मानित होते थे। गुलामों की अवस्था इसके विपरीत थी। युद्ध में बन्दी बनाये गये व्यक्तियों को दास बनाया जाता था। दास देवालयों व सम्भ्रान्त लोगों के खेतों में काम करते थे। मैसोपोटामिया में दासों को आख न उठाने वाला कहा जाता था। उनके साथ बुरा व्यवहार किया जाता था। स्त्रियों की दशा विशेष अच्छी न थी। कर्ज चुकाने में पुरुष अपनी स्त्री को बेच सकता था। व्यभिचारी पुरुष

को क्षमा कर दिया जाता था किन्तु व्यभिचारिणी स्त्री को प्राण दण्ड दिया जाता था। अपने पिता के घर से प्राप्त दहज पर स्त्रियों का पूरा अधिकार होता था। पिता की अनुपस्थिति में माता परिवार में अनुशासन रखती थी। वे स्वतन्त्र रूप से व्यापार भी करती थीं। उनके दासिया भी होती थीं। परन्तु इसके साथ ही उन्हें नैतिक उत्तरदायित्व भी पूरा निभाना पड़ता था। पुत्र हीन हाने पर वे पति द्वारा तलाक दी जा सकती थीं। देवालयों में सुन्दर लड़कियों को देव-दासियों के रूप में रखा जाता था। वे अपने त्यौहार भी ठाट-बाट से मनाते थे। परन्तु वे त्यौहार फसल के समय जबकि उनमें परिवर्तन आता था, मनाये जाते थ। मिश्र की भाति यहाँ भी स्त्री को समाज में बहुत अच्छा स्थान प्राप्त नहीं था।

वेश-भूषा-वस्त्र उस समय बुना जाने लगा था। पुरुष केवल घुटने तक ही वस्त्र धारण करते थे, जबकि स्त्रिया कधे से तन ढकने के लिए वस्त्र लटकाती थी। कालान्तर में जब सभ्यता विकास की ओर अग्रसर होती गई तो पुरुषों के वस्त्रों में सुधार होता रहा। वे अपने शरीर पर भी वस्त्र पहिनने लगे थे। सेवक व सेविकाए घरों में सिर से कमर तक नग्न रहती थीं। किन्तु सिर पर विशेष प्रकार की टोपी पहिनती थी। पैरों में वे जूते भी धारण करते थे। स्त्रियों को आभूषणों से प्रेम था। वे कगन, कठहार, अगूठी तथा कानों के आभूषणों को धारण करती थीं। इतिहासकार चाइल्ड का कहना है कि सुमेरिया की तत्कालीन स्त्रिया आभूषणों में आज की अमेरिकन औरता की भाति लगती थीं। प्रोफेसर वूली के मतानुसार स्त्रिया अपना नाना प्रकार से श्रृगार भी करती थीं।

धार्मिक जीवन-मैसोपाटामिया की सभ्यता एक शहरी सभ्यता थी। कृषि करते हुए भी यहाँ के निवासी नगरों में रहते थे। सुमेर व अक्कद नगर तो ईसा के 6000 वर्ष पूर्व ही बसा लिए गये थे। इनके बाद उर, निपुर, लागस, लरसा आदि नगर बसाये गये। नगरों की प्रधानता के कारण ही सुमेर की सभ्यता यूनान की भाति शहरी सभ्यता कहलाती थी। इन नगरों के प्रधान (Patesi) ही धर्माधिकारी भी होते थे। प्रत्येक नगर में एक देवता होता था। *एक नगर का देवता दूसरे नगर के देवता से भिन्न होता था।* वे अपने देवताओं की मर्यादा के अनुकूल मन्दिर बनाकर यहा उन्हें प्रतिष्ठित करते, बड़ी श्रद्धा एव भक्ति से साथ उनकी स्तुति और प्रार्थना करते थे।[1] धर्माधिकारी उस देवता की सेवा करता था तथा अपने देव की इच्छाओं की पूर्ति धार्मिक उत्सवों व बलिदानों द्वारा करता था। उस समय सुमेरिया का प्रत्येक देवालय एक विशेष देवता का ही स्थान माना जाता था। धर्माधिकारी तथा अन्य सेवक देवता के परिवार जन माने जाते थे। सुमेरियन लोगों का विश्वास था कि समय-समय पर बाढ़ उनके देवताओं द्वारा ही भेजी जाती है और इसका कारण वे उनका नाराज होना मानते थे। इस कारण वे लोग उनको प्रसन्न रखना अपना धर्म मानते थे। कालान्तर में उनकी यह भी धारणा बन गई थी कि परमात्मा ने हमें अपने कार्यों को कराने के लिए उत्पन्न किया है। अत वे अपने को परमात्मा का दास समझते थे। भगवान को भोजन देना भी वे अपना कर्त्तव्य

---

1 आर पी त्रिपाठी 'विश्व का इतिहास' पृ 11

समझते थे।[1] आरम्भ में धार्मिक क्रिया-कर्म जटिल नहीं थे। परन्तु सुमेरिया की सम्पन्नता ज्यो-ज्यों वृद्धि पाती गई, धार्मिक कार्य भी बड़े ठाट-बाट से सम्पन्न किये जाने लगे।

सुमेरियन धर्म की एक यह विशेषता थी की वह इस लोक से सम्बन्धित था। वे परलोक की चिन्ता नहीं करते थे। वे परलोक एक अस्थायी (Sheol) स्थान समझते थे जहा से उन्हें शीघ्र ही वापिस इस लोक में आना होता था। इसीलिए वे मृत शरीर की सुरक्षा के लिए मिश्रवासियों की भाति अधिक ध्यान नहीं देते थे। वे देवताओं को अनिश्वर न मान कर मानव रूप में ही मानते थे। अत मानव में पाई जाने वाली सारी दुर्बलतायें वे अपने देवो में पाते थे।

उर नगर उस समय प्रधान था। अत उर नगर का देवता सिन (Sin) लारसा (Larsa) नगर के शामेश (Shamash) और अरुक (Uruk)नगर की देवी इस्तर (Ishtar) से भी अधिक सम्मानित बन गया था। सिन को चाद का देवता, शामेस को सूर्य तथा ईस्तर को रक्षा करने वाली देवी मानते थे। सुमेरिया के लोगों को ऐसा विश्वास था कि पृथ्वी की रचना नर अपसु (Apsu) और मादा (Thiamat) से मिलकर हुई है। अत नर के रूप में उन्होंने अनसर की तथा माता के रूप में किशार की आराधना करना आरम्भ किया। इससे उन्होंने तीन देवों की उत्पत्ति मानी-अनु- जिसको उन्होंने आकाश का देवता माना, एनिल- जिसको पृथ्वी का देवता माना और आ (Ea)-जिसको समुद्र का देवता माना। इनके अलावा उनकी नक्षत्रों में बड़ी श्रद्धा थी जैसा कि उनके ऊचे देवालयों से ज्ञात होता है। अत उन्होंने सिन (Moon God), शामेश (Sun God) और ईस्तर (Venus) को परम-देवताओं में माना।

जैसा कि इससे पूर्व बताया जा चुका है कि प्रत्येक नगर में एक देवालय होता था। ये देवालय समय के साथ-साथ अधिकाधिक भव्य व सुन्दर बनते गये। परन्तु फिर भी हर साधारण व्यक्ति को उन देवालयों में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वय की एक मूर्ति रखनी पड़ती थी। उस व्यक्तिगत मूर्ति के माध्यम से वह व्यक्ति देवालय के देवता से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता था। कालान्तर में निपुर का देवता एनिल (Enil) सुमेरिया का सर्वसम्मानित देवता बन गया। इतिहासकार हेनरी फ्रेंकफोर्ट का कहना है कि प्रत्येक नगर के देव प्रतिवर्ष के लगते ही एक स्थान पर वर्ष के भविष्य पर विचार करने के लिए इकट्ठे होते थे और ऐसे विषयों में सुमेरिया के लोग एनिल को सर्वाधिक महत्व देने लग गये थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मैसोपोटामिया के सुमेरियन लोग भी बहुदेववादी थे और कुछ अन्धविश्वास भी रखते थे।

राजनीतिक अवस्था-सुमेरिया में उस समय कई नगर-राज्य विद्यमान थे। उनमें से प्रमुख उर, निपुर (Nippur), लगाश (Lagash) लासा (Lassa) तथा अरुक (Uruk)

---

1 A dominant idea in the sumerian religion was the notion that man was cereated in order that he might serve the Gods-not merely by worshipping them,But also by giving them food

आदि थे। वे परस्पर एक-दूसरे से स्वतन्त्र थे तथा इनके शासक भी स्वतन्त्र थे। सुरक्षा की दृष्टि से वे अपने में से किसी एक को अपना नेता चुन लेते थे। हर राज्य का शासक पटेसी (Patesi) कहलाता था। इन शासकों को जनता असाधारण योग्य तथा परमात्मा से वरदान प्राप्त समझती थी। इसी कारण शासक धर्म के भी प्रधान बन जाते थे। यह युद्ध के समय एक सेनापति का भी कार्य करता था तथा राज्य को बाह्य आक्रमणों से बचाना वह अपना परम-कर्तव्य समझता था। सरदेसाई की मान्यता है कि नगरों का शासन देवालयों द्वारा ही सचालित होता था। राजा राज्य के व्यापार की ओर भी ध्यान देता था।

इससे स्पष्ट है कि नगरों का लगभग सारा शासन धर्माधिकारियों द्वारा ही सचालित होता था। परन्तु इस पर भी मध्यम वर्ग का महत्व दिनों दिन बढ़ता गया। इस वर्ग में छोटे व्यापारी भी थे। उनके व्यापार से आर्थिक प्रशासन सबधी समस्या जटिल होती जा रही थी। इन समस्याओं के कारण अन्त में सुमेरिया सभ्यता का राजतन्त्र में विकास हो गया था। इसके अलावा यह युग शक्ति का था। एक नगर का पटेसी अपने पड़ौसी पटेसी को निर्बल देख कर उसके नगर पर अधिकार करने का प्रयास करता था। विजेता पटेसी 'लूगल' कहलाता था। यह पदवी बड़ी समझी जाती थी। कालान्तर में लूगल ने राजा का स्थान ग्रहण कर लिया। 2000 ई पू में सुमेरिया के सब लोग एक राजा के नेतृत्व में सयुक्त हो गये।[1] धीरे-धीरे वे राजा को देव तुल्य समझने लगे।

जब नगरों के धर्माधिकारियों का स्थान स्थायी राजाओं ने ले लिया तो समय पड़ने पर इन नगर-राज्यों को सयुक्त होकर एक शासन के अधीन होने की आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार सुमेरियन में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना हो गई। राजतन्त्र की स्थापना से नगरों में राज्यपालों की नियुक्ति होने लगी। उस समय समाज में कानून की अच्छी व्यवस्था थी। हम्मूरबी से तीन शताब्दी पूर्व सुमेरिया के शासक दुगी ने एक कानून सहिता तैयार करवायी थी। उसने फौजदारी कानून कठोर नहीं बनाये। आख के स्थान पर आख (Eye for an Eye) लेने की व्यवस्था न कर जुर्माने की व्यवस्था की। उसके उपरान्त शासक लिप्त ईस्तर ने दूसरी कानून सहिता तैयार करवायी। सुमेरिया के कानून वहा की परम्पराओं के आधार पर विकसित हुए थे और ये कानून सुमेरियन सभ्यता की महान उपलब्धि माने जाते हैं। इन सब सुधारों से स्पष्ट है कि सुमेरिया के शासक प्रशासन में चतुर थे। शासक प्रजा की भलाई की भी चिन्ता करते थे।

युद्ध-विधि-सुमेरिया के लोग अच्छे किसान व व्यापारी होते हुए भी युद्ध में प्रवीण सैनिक थे। युद्ध में लड़ने योग्य सैनिकों की सूची देवालयों में रहती थी जो युद्ध के समय एकत्र होकर पटेसी के नेतृत्व में युद्ध करते थे। पैदल सैनिक तावे के टोप पहिनते थे। युद्ध भालों व लोहे की छड़ों से करते थे। अपनी सुरक्षा के लिए वे ढ़ाल का प्रयोग करते थे। पैदल सैनिकों के पीछे रथ होते थे। रथ उस समय के टैंक माने जाते थे।

---

1 E.M. Burns 'World Civilizations' V.I. p 56
'Not until about 2000 B C. however were all of the Sumerian people united under e authority of the same nationality as themselves.

ऐसी सम्भावना है कि वे युद्ध में धनुष और बाण का भी प्रयोग करते थे। विजयी शासक सैनिकों को दास बना लेते थे और कभी-कभी देवता को प्रसन्न करने की दृष्टि से उनका सामूहिक वध भी करा दिया करते थे।

व्यवसाय-सुमेरिया के लोग अच्छे कृषक थे। उन्हें हल का प्रयोग ज्ञात था तथा वे बैलों की सहायता से हल चलाते थे। कहा जाता है कि धातु के हल (Metal plough) का आविष्कार उन्होंने ही किया था। भूमि को उपजाऊ बनाने हेतु वे खाद का भी प्रयोग करते थे। जब उनकी भूमि नदियों से दूर पड़ने लगी तो वे नहरें बनाकर खेती करते थे। उन्होंने नहरों का जाल सा बिछा रखा था।[1] इसी प्रकार बाढ़ से अपने खेतों को बचाने के लिए वे बाध बनाते थे। कृषि की उपज को बढ़ाने का प्रोत्साहन धर्माधिकारी देता था। प्रत्येक कृषक को अधिक अनाज उत्पन्न करने के लिए कहा जाता था। किसान भी अपने कृषि-ज्ञान के आधार पर गेहू, जो व खजूर की खेती खूब करते थे। अधिक उत्पादन देवालयों में जमा करा दिया जाता था।[2] परन्तु अधिकाश भूमि शासक, धर्माधिकारी व सैनिक अधिकारियों में विभक्त होती थी। इस कारण किसान तो दास रूप में ही कृषि करता था। यहा के लोग अच्छे व्यापारी भी थे। इतिहासकार वीच का कहना है कि यातायात सभ्यता का सर्वस्व नहीं तो कम से कम सुखी जीवन का मुख्य स्रोत अवश्य है, यथार्थ लगता है। दजला और फरात नदिया सिचाई का मुख्य साधन होने के अलावा यातायात के साधन स्वरूप भी काम आती थीं। इन नदियो की सहायता से सुमेरिया के लोग व्यापार करते थे। जल-मार्ग के अलावा थल-मार्ग भी उपलब्ध थे। उर उस समय व्यापार का केन्द्र थी। यह सुबारतू से राल, काकेशस से ताबा, सीलीसिया से चादी, एलेम से सोना, सीरीया से कासा व फरात नदी की ऊपरी घाटी से चूने मिले पत्थर मगाता था। इनके अलावा मध्य एशिया से नीले रग का बहुमूल्य पत्थर तथा सीरिया से देवदार लकड़ी मगाता था। मिश्र से भी सुमेरिया का पर्याप्त व्यापार होता था। व्यापारियों ने दजला नदी के किनारे असुर व अगादे (Agade) पर, फरात नदी के किनारे किल, मारी व बेबिलोन पर अपनी व्यापारिक बस्तियाँ स्थापित कर ली थीं। असुर में व्यापारियों की एक बस्ती सी बन गई थी जो कि बाद में एक दृढ़ राजतन्त्र में अधिक विकसित हुई। व्यापारियों के काम आने वाली कुछ ऐसी मोहरें मिली हैं जिनमें भारत और मिश्र के साथ व्यापार होने का प्रमाण मिलता है। व्यापार में सिक्कों के स्थान पर चादी की छड़ों का प्रयोग होता था। यहा सोने व चादी के काफी आभूषण मिले हैं। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों धातु यहाँ प्राप्त थे। धर्माधिकारी व सैनिक ही इन वस्तुओं के मुख्य खरीददार होते थे।

कला-मिश्र की भाति सुमारिया में सगीत कला का पर्याप्त प्रचार था। देवालय सगीत के प्रमुख केन्द्र थे। उर के देवालयों में सुन्दर वीणा प्राप्त हुई है। बीन वाद्य-यन्त्र को उस समय भाग्य का निर्णायक समझा जाता था। सुमेरिया में पवित्र व लौकिक दोनों का सगीत विद्यमान था। सुमेरिया की यह कला इतनी उच्चता को प्राप्त नहीं थी कि इसका प्रभाव बाद में भी बना रहे। चित्रकला व मूर्तिकला भी उस समय अच्छी अवस्था

---

1 विलड्रेन्ट सभ्यता की कहानी पृ 121

2. John J Van Nostrend Western Civilization p 33

में थी। मूर्तिकला का विकास विभिन्न देवों की उपासना के कारण हुआ। चित्रकला में युद्ध के दृश्य विशेष स्थान पाते थे। उर के उत्खनन में उस काल की कई महत्वपूर्ण कृतिया प्राप्त हुई है। रथारूढ़ राजा बताया गया है जो विजय से उन्मादित हो रहा है। मन्दिर के चबूतरे पर वृषभ की अत्यधिक सजीव मूर्ति दर्शनीय है। एक अन्य चित्र में विजय-उत्सव चित्रित किया गया है जिसमें राज पुरुष कुर्सिया पर आसीन हैं तथा एक कोने मे वीणा-वादन चल रहा है। पाषाण पर दूध-उद्योग का चित्र भी अच्छा बन पड़ा है।

भवन निर्माण–सुमेरिया के लोग स्थापत्य कला में काफी बढ़े हुए थे। यद्यपि उस समय वहा पत्थर उपलब्ध नहीं था तथापि वे सुन्दर भवन बनाने में समर्थ थे। मिट्टी को पका कर वे ईंट बनाते थे तथा ईंटों की सहायता से भवन निर्माण करते थे। उस समय के देवालय तत्कालीन स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने है। इसके अलावा वे फरात की घाटी से चूने मिले पत्थर भी मगा लिया करते थे। धनी नागरिक अपने भवनों को भूमि से 40 फुट तक के ऊचे टीले पर बनाते थे। ऊपर जाने का केवल एक ही मार्ग होता था। इस प्रकार प्रत्येक सुमेरियन का घर एक प्रकार का किला होता था।[1] दीवारों के भीतरी भाग पर पलस्तर किया जाता थाऔर सादा नीति चित्रों से अलकृत किया जाता था। पानी कुओं से प्राप्त किया जाता था। नगर के गन्दे पानी को जाने के लिए नालियो की अच्छी व्यवस्था थी।[2] आरम्भ में सुमेरिया के लोग सीधा चौकोर मकान ही देवा के लिए बनाते थे। वे ऊचे चबूतरे पर होते थे। ऐसा वे सम्भवत बाढ़ से बचाने के लिए करते थे। परन्तु कालान्तर में देवालय ऊचे और ऊचे होते चले गए और वे भूमि के स्तर व पूजन के स्थान के बीच कई मजिल जोड़ने लग गये। देवालयों को उच्च बनाने के साथ-साथ उन्हें सुन्दर भी बनाना आरम्भ कर दिया। हेनरिच जे ल्यूजान (Henrich J Leuzon) लिखता है कि भूमि से ऊचे उठते हुए तथा सुन्दर सजावट व अच्छी मूर्तियों तथा अन्य पदार्थों से अलकृत होते हुए देवालय अति प्रभावोत्पादक भवन बन गये। उर में नर्मित ननार का देवालय सारे मैसोपोटामिया के लिए आदर्श है। इसमें हल्के नीले और पालिशदार टाइल जड़ी हुई थीं। कभी-कभी देवालयों को जानवरों की मूर्तियों से भी सजाया जाता था। देवालयों के अतिरिक्त राज-प्रासाद निर्मित होने लगे तथा नगरों की सुरक्षा के लिये दीवारें बनने लगीं। वे स्तभ व मेहरावों के निर्माण से भी परिचित थे। निपुर (Nipur) की खुदाई में 3000 ई० पूर्व के मेहराव प्राप्त हुए हैं। मिट्टी की पटियों पर कुछ मकानों के नक्शे भी मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सुमेरिया के लाग भवन बनाने से पूर्व उनके नक्शे भी तैयार करते थे। इससे स्पष्ट है कि सुमेरिया के लोग स्थापत्य कला में दक्ष थे।

लिपि व शिक्षा–1929 ई० में प्रो ऊले (Prof Wolley) ने उर के खण्डहरों की खुदाई करवाई। वहा उन्हें मिट्टी की पट्टिया उपलब्ध हुईं। उनका उन्होंने ध्यान से अवलोकन किया और वे इस परिणाम पर पहुचे कि मिश्र की भाति सुमेरिया में भी लिपि

---

[1] लहरेन्द्र सभ्यता की कहानी पृ 121

[2] 129

विद्यमान थी। इतिहासकार स्वेन का कहना है कि सुमेरिया सभ्यता की सबसे बड़ी देन उसकी लिपि ही है।[1] राजकार्य व व्यापार का लेखा-जोखा इसी लिपि में रखा जाता था। परन्तु लिपि के अक्षर अजीब मिले हैं और उस लिपि को उन्होंने कीलाक्षर नाम दिया है। यह लिपि दाये से बायें लिखी जाती थी। लिपि से साहित्य तक के विकास मे सभवत कई सौ वर्ष का समय लगा होगा। कई सदियों तक लिपि व्यापार का साधन मात्र रही। इसके अलावा धार्मिक दस्तावेज, पवित्र गाथाओं और प्रार्थनाओं को सुरक्षित रखने में भी लिपि का प्रयोग किया जाता था। इस लिपि से तत्कालीन अन्य सभ्यताएँ भी प्रभावित हुईं। इस लिपि में जो मिट्टी की पट्टिया खुदाई में प्राप्त हुई हैं, वे आज बड़े महत्व की सिद्ध हो रही हैं। जिस प्रकार भारत में मुगल काल में मस्जिदें मकतबों में परिणित हो गईं थीं-उसी प्रकार सुमेरिया में भी ये देवालय ही उस समय शिक्षा के केन्द्र बने हुये थे। वहा छात्रों को कानूनी शिक्षा तथा व्यापारिक हिसाब-किताब रखना सिखाया जाता था। इतिहासकार जेकॉइस पिरेनी की मान्यता है कि शिक्षा के कारण भी यह सभ्यता विकसित एव स्थायी बन सकी थी।

सुमेरियन सभ्यता की मिश्र की सभ्यता से तुलना-दोनों सभ्यताओं के विकास के सन्दर्भ म यह विवाद है कि इनम प्राचीन कौनसी है ? परन्तु यह यथार्थ है कि 4000 ई० पू० में मेसोपाटामिया सभ्यता का भी विकास आरभ हो गया था। अत दोनों सभ्यताओं का विकास समकालीन था, परन्तु फिर भी दोनों सभ्यताओं में महान अन्तर था। धार्मिक विश्वासों व सामाजिक ढाचे में कई विभिन्नताए थीं। मिश्र की सभ्यता मूलत नैतिक थी जब कि मैसोपोटामिया की तर्क पर आधारित थी। जीवन के विषय में मिश्रवासियों की धारणा सुखद थी जब कि मैसोपोटामिया की जीवन के विषय में निराशावादी व भाग्यवादी थी। मिश्रवासी अमरता में विश्वास करते थे। अत वे अपने परलोक को सुधारने के लिए केवल इस लोक की चिन्ता करते थे, परलोक की नहीं। नील नदी के वासी एकेश्वरवाद व समाज की समानता में विश्वास करते थे जबकि दजला व फरात नदी के मैदान में बसने वाले बहुदेववादी तथा स्वार्थी मनोवृत्ति के होते थे ' इन असमानताओं के होते हुए भी सामाजिक न्याय में दोनों विश्वास करते थे। साम्राज्यवादी दोनों जगहों के सम्राट थे तथा दास प्रथा के भी दोनों समर्थक थे।

सुमेरिया सभ्यता का विनाश-सुमेरिया सभ्यता के लोग पर्याप्त विकसित थे। कृषक होते हुए भी व अच्छे सैनिक थे। अत विदेशी आक्रमण से भी वे अपनी रक्षा कर सकते थे। शासक भी दृढ़ एव सुयोग्य थे। परन्तु यह सब होते हुए भी सुमेरियन अपनी सभ्यता को विदेशी आक्रमण से नहीं बचा सके। लगाश के शासक उरुकेगिना (Urukagina) के शासन-काल में सभ्यता विकासोन्मुख थी तथा जनता शान्ति का अनुभव कर रही थी। परन्तु इसी समय अकादियन जाति जो कि एक खानाबदोश व भेड़ चराने वाली जाति थी, अति शक्तिशाली बन गई। उसकी दृष्टि सुमेरिया पर पड़ी। इस जाति

1 'The greatest contribution of the Sumerians was their sy' em of writing which was in use about 4000 B C.

J.E. Swain

ने सीरिया से समीप अकादियन साम्राज्य की स्थापना पहले ही कर ली थी। सेरगॉन प्रथम इस वश का प्रथम प्रतापी सम्राट था। इसने सुमेरिया साम्राज्य को समाप्त कर वहा अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

अकादियन साम्राज्य

सेरेगॉन प्रथम (Saragon I, 2772 2717 B C)- ' वह एक शाही खानदान का नहीं था। उसके पिता को कोई पता नहीं तथा माता भी एक निम्न महिला थी।'' वीच (Weech)लिखता है कि यह एक बागवान का पुत्र था तथा इसकी माता ने इसे नरसलों की छोटी सी नाव में बिठा कर नदी में छोड़ दिया था। बड़ा होने पर वह किश नगर के शासक के यहा एक साधारण सेवक की हैसियत से कृषि करता था और अपना जन्म एक सराय के चौकीदार से बताता था। नल (Neil) का कहना है कि सेरगॉन का जीवन किश के शासक के प्याले उठाने वाले से आरम्भ होता है। इन सब विद्वानों के कहने का आशय यह है कि वह एक साधारण कुल में जन्मा था। निम्न पदों पर कार्य करते-करते ही उसने किश नगर के राज्य को हड़प लिया था। शनै-शनै उसने साम्राज्य का विस्तार किया था।

यद्यपि वह मैसोपोटामिया के एक छोटे से भाग पर शासन करता था तथापि वह अपने को विश्व-राज्य का राजा कहता था। कई इतिहासकारों ने उसे 'महान' की पदवी से सुशोभित किया है। पश्चिमी एशिया का वह प्रथम साम्राज्य निर्माता माना जाता है। उसने सगर्व घोषणा की थी कि सूर्योदय के प्रदेश लेकर सूर्यास्त के प्रदेशों तक उसने अधिकार कर लिया है। इसका एक मात्र कारण उसकी विजय थी। उसने आस-पास के कई नगर राज्यों पर अधिकार कर लिया था। उसने सुमेरियन जाति को परास्त किया तथा उसने ल्यूगल जैगिसी का (जिसने की लगास को लूटा था) भी बुरी तरह परास्त किया। उसे बन्दी बना कर वह निपुर ले गया। इतिहासकार वीच लिखता है कि सेरगॉन के विवरण से ज्ञात होता है कि उसका साम्राज्य भू-मध्य सागर तक फैल गया था और उसने साइप्रस पर भी अधिकार कर लिया था। इस प्रकार उसने ४५ वर्ष राज्य किया। किन्तु उसके अन्तिम दिनों में कई विद्रोह हुए। अत उसके अन्तिम दिन सुख व शान्ति के प्रतीक न रहे।

उसके उत्तराधिकारी- उसके उत्तराधिकारी भी उसके समान ही योग्य सिद्ध हुए। नरम-सिन (जो उसका पौत्र था) ने सेरेगॉन की भाति ही योग्यता तथा बुद्धिमानी से शासन किया। उसके समय में अव्यवस्था के स्थान पर शान्ति स्थापित हुई। उसकी जनता उसे देवतुल्य समझने लगी तथा उसकी पूजा करने लगी। वृद्धावस्था में वह इतना शक्तिशाली नहीं रहा था। एक बार उसके विरोधियों ने बगावत कर उसे अक्कड़ में घेर लिया था। परन्तु अन्त में वही विजयी हुआ। इस प्रकार उसने अपने 58 वर्ष के शासनकाल में वह कीर्ति प्राप्त की जो सदियों तक बनी रही।

अकादियन साम्राज्य का अन्त- इस प्रकार सुमेरियन राज्य की भाति अकादियन भी शनै-शनै गौरवशाली बनता रहा। किन्तु इतिहासकार वील ड्यूरेन्ट का कहना शान शीघ्र लुप्त हो गयी और पूर्व के लड़ाकू इलेमाइट ने उस पर अधिकार

कर लिया। इतिहासकार जे सी रेविल (Revell) लिखता है कि पहाड़ी लोगों के आक्रमण के परिणामस्वरूप वह साम्राज्य समाप्त हो गया। इस विनाश का एक कारण सुमेर व अकाद लोगों का पारस्परिक संघर्ष भी था। आपस की छीना-झपटी से वे निर्बल हो गये और बेबीलोनिया की सेमेटिक जाति ने उनको परास्त कर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

अकादियन सभ्यता–नि सन्देह अकादियन परिश्रमी तथा अच्छे लड़ाकू थे और उसके शासक भी प्रशासन में योग्य थे। किन्तु जब वे विजेता के रूप में सुमेरियन लोगों के सम्पर्क में आये तो उन्होंने सुमेरियन सभ्यता को पर्याप्त रूप से विकसित पाया। इसी कारण अकादमियों ने सुमेरियन की सभ्यता को अपना लिया और उनकी अपनी कोई नवीन सभ्यता न पनप सकी। इसी कारण कई इतिहासकारों ने तो अकादियन साम्राज्य को भिन्न न रखकर सुमेर अकादि साम्राज्य का उल्लेख किया है। अत अकादियों की सभ्यता ठीक वैसी ही थी जैसी हम सुमेरियन सभ्यता के नाम से इससे पूर्व लिख आये है।

अकादियन साम्राज्य में धर्माधिकारियों का स्थान वह न रहा जो सुमेरियन सभ्यता में था। भूमि का प्रबन्ध धर्माधिकारी न कर जाति के नेता करते थे। व्यक्तिगत कृषि का भी सूत्रपात होने लगा था। सिंचाई के साधन इस समय अधिक विकसित हुए। सैरगॉन के समय युद्ध में बनाए गए बन्दियों से नहरें खुदवाई जाती थीं। भाषा के क्षेत्र में ये लोग सुमेरियन लिपि से कम प्रभावित हुए। उन्होंने निजी भाषा को ही चालू रखा जो कि कालान्तर में समस्त मैसोपोटामिया की भाषा बन गई। परन्तु अकादियन जाति के शासकों ने सुमेरियन सभ्यता में विशेष परिवर्तन नहीं किया। 2000 ई पू तक अकादियन सभ्यता भी सुमेरियन सभ्यता के समान उन्नत हो गई थी।

बेबीलोनियन साम्राज्य

सभ्यता का उत्कर्ष–निरन्तर युद्धों व पारस्परिक वैमनस्य से जब सुमेरियन तथा अकादियन सत्ताओं का पतन होने लगा तब उन्हीं के पराभव पर समेटिक संस्कृति वाले बेबीलोनिया वासियों ने मैसोपोटामिया पर अधिकार कर लिया और उन्होंने एक नवीन सभ्यता का सूत्रपात किया जो कि इतिहास में बेबिलोनिया सभ्यता कहलाती है। यहा आने से पूर्व समेटिक लोगों की कोई संस्कृति व सभ्यता नहीं थी, ये लोग मूल रूप से अरब निवासी थे और वह वे खानाबदोश का जीवन व्यतीत करते थे। अरब को छोड़कर वे लोग केनान में बसे और उन्होंने अपना खानाबदोश का जीवन छोड़ दिया। यहा रहकर उन्होंने अपना सम्बन्ध मिश्र व सुमेरिया से स्थापित कर लिये। बेबीलोनिया पर सुमेरियन लोगों का प्रभाव था। अत जब समेटिक लोग बेबीलोनिया में आकर बस गये तो उन्होंने सुमेरियन सभ्यता को ही अंगीकार किया और उसे और भी विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने बेबीलोन (Babylon) को अपनी राजधानी बनाया और शीनार मैदान (Plain of Sh nar)को बैबीलोनिया (Babylonia) नाम दिया। यह राज्य शीघ्र ही सम्पन्न हो गया।

बेबीलोनिया पर समेटिक जाति का अधिकार होना मेसोपोटामिया के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना मानी जाति थी। समेटिक जाती के लोगों ने वहा एक नवीन युग का सृजन किया और उसका वहा की सभ्यता पर व्यापक प्रभाव पड़ा।



राजनीतिक विकास

इस वश का सस्थापक समु-अबुम (2225 B C) था। उसके बाद क्रमश समुल-इलु, जबुम, इमेरूम, अपिलसिन, सिन-मुवालित तथा हम्मूरबी हुए।

हम्मूरबी (1792-1750 B C)-हम्मूरबी इस जाति का प्रथम प्रतापी शासक था। जे सी रेविल इसे इस जाति का छठा शासक मानते हैं। इसका आशय यह है कि इस वश का यही प्रथम सम्राट था जिसने कि इलेमाइट जाति को परास्त कर सुमेरिया को अपने आधीन कर लिया था। अपने शासन काल में उसने कई सुधार किये। कृषि को उन्नत करने की दृष्टि से उसने किश से फारस की खाड़ी तक एक नहर बनवाई। उसने अपने साम्राज्य को कई जिलों में विभक्त किया और जिलों को उसने राज्यपालों के आधीन रखा। जो राज्यपाल पैतृक अधिकार से नियुक्त हुए थे, उनके स्थान पर उसने योग्य व्यक्ति नियुक्त किये। अक्कद के देवालयों द्वारा शासित भू-भागों व सुमेरिया के नगर-राज्यों को उसने अपने केन्द्रीय शासन से शासित करना आरम्भ किया। इसके अलावा कर्जदारों को राहत देने की दृष्टि से उसने रेहन रखने की प्रथा चालू की। देवालय, जो अतुल धन-राशि से बैंकों का रूप धारण किये हुए थे, उनको बाध्य किया कि वे निर्धनों को ऋण दें। इस प्रकार उसने अपने शासनकाल के कई जनोपयोगी सुधार किये तथा अपूर्व शक्तिशाली तथा सम्पूर्ण अनुशासन से युक्त साम्राज्य की स्थापना की। इस विशाल साम्राज्य की स्थापना में उसे बैबीलोन की अपार सपदा भी महान सहायक सिद्ध हुई। उसने तत्कालीन राज्यों के पारस्परिक झगड़ों का भी लाभ उठाया। उसने उन राज्यों के साथ मैत्री तथा शक्ति (Kiss and Kick) नीति का प्रयोग किया। धार्मिक क्षेत्र में इसने यह परिवर्तन किया कि एनिल के स्थान पर बेबीलोन के देवता मारदुक (Marduk) को सर्वोच्च बना दिया। परन्तु इन सब सुधारों का प्रभाव इतना चिरस्थायी सिद्ध न हुआ जितना कि उसकी विधान सहिता का हुआ।

हम्मूरबी की विधि-सहिता-बैबिलोन के प्रासाद के खण्डहरों की खुदाई से हम्मूरबी द्वारा जारी किये गये कई आदेश प्राप्त हुए हैं। ये आदेश उसने अपने राज्यपालों व सचिवों के लिए जारी किये थे। उस प्राप्त सामग्री में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उसकी विधि-सहिता है। यह विधि-सहिता आठ फीट के प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण 1902 में प्राप्त हुई। धाराओं के ऊपर सूर्य-देवता (Marduk) को यह विधि-सहिता हम्मूरबी को भेंट करते हुए बताया गया है। यह पेरिस के लूवरे सग्रहालय में आज भी सुरक्षित है। इसकी एक उत्तम अनुकृति ब्रिटिश सग्रहालय लन्दन में विद्यमान है। हम्मूरबी वास्तव में एक महान शासक था। उसने फरात की घाटी को सयुक्त किया तथा अपने लोगों के कानून इकट्ठे किये। उसने इस कानूनों के सग्रह द्वारा कानूनी असमानता को दूर करना तथा जनसाधारण के साथ अधिकाधिक न्याय का व्यवहार करना चाहा। इसीलिए हम्मूरबी स्वय गर्व से कहता था, "कानून व न्याय देश में स्थापित मैंने किया है। मैंने मानव जाति को सुखी बनाया है।" इससे पूर्व शासक देवतुल्य पूजे जाते हैं। परन्तु यह बात उसके साथ नहीं थी। उसने अपनी प्रेजा को अपने सुप्रशासन से ही प्रसन्न एवं सन्तुष्ट किया था।[1]

---

[1] Mackenzie Ancient Civilization p.139
was not regarded and worshipped as a God as had been the late Sumerian recognised instead of as the chosen of the Gods

विधि-सहिता की कुछ प्रमुख धाराएँ-यह सविधान एक बेलनाकार पत्थर पर खुदा हुआ है, जिसमे सम्राट को देवता से विधि-सहिता को प्राप्त करता हुआ दिखाया गया है। यह विधि सहिता 3600 पक्तियो में लिपि बद्ध की गयी थी और उसमें 285 धाराए थीं-उनमें से कुछ निम्नलिखित है- ।

1 सभी प्रकार के ठेकों के नियम बना दिये गये।
2 कर्जदारो को राहत देने के लिए रहन रखने की प्रथा चालू की।
3 ब्याज की दरें निर्धारित कर दी गईं। ठेकों के लिए 33 प्रतिशत व व्यापारी कार्यों के लिए 20 प्रतिशत ब्याज की दर निश्चित की गई। इसके अलावा सरकार स्वय 12 5 की दर से रुपया देती थी।
4 मुआवजा देने की प्रथा भी चालू की।
5 नौकर रखने वाले तथा नौकर दोनों के लिए नियम बनाये गये जिनमें दोनो के कार्यों व उत्तरदायित्व का स्पष्टीकरण किया गया।
6 रोज की मजदूरी पर कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी भी तय की गई।
7 जहाज पर कार्य करने वाले डाक्टरों की फीस तथा कारीगरो की पारिश्रमिक दरें भी सहिता द्वारा निर्धारित की गईं।
8 देवालयों को, जिनके पास पर्याप्त धन था, कर्जदारों को मुफ्त पैसा देने के लिए बाध्य किया गया, ताकि वे गुलामी से मुक्ति पा सकें।

विधि सहिता की विशेषताए -

1 यह दृढ़ राजतन्त्र प्रणाली पर आधारित थी।
2 समस्त साम्राज्य में समान कानूनों की नींव पड़ी जिससे आगे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होना सम्भव हो सका।
3 बेबीलोन में लागू किये गये नियम सीरिया में प्रचलित हो सके और 7वीं शताब्दी ई पू तक भी इनमें कोई कानूनी सहिता समता नहीं कर सकी।
4 हम्मूरबी का यह कानूनी सकलन इस नियम पर आधारित था कि शक्तिशाली निर्बलो को न दबा सके।
5 सामाजिक समानता की स्थापना हुई।
6 इसके नियमों को वैज्ञानिक ढग से विभिन्न शीर्षकों से अन्तर्गत व्यवस्थित किया गया।

समालोचना-यह सत्य है कि हम्मूरबी ही सुमेरिया के शासकों में प्रथम शासक नहीं था जिसने कानूनी सहिता तैयार करवाई तथा राज्य में सख्ती से लागू किया हो। उससे पूर्व सुमेरिया के दो शासक कानूनी सहिता बनवाकर लागू कर चुके थे। इसके अलावा उनके कानून कठोर भी नहीं थे। हम्मूरबी के कानून 'आँख के स्थान पर आँख' (Eye for an Eye) लेने की नीति पर आधारित थे जबकि उनके कानून इस सिद्धान्त के विपरीत थे। परन्तु यह सब होते हुए भी हम्मूरबी इस दिशा में उन सबसे बाजी मार ले गया। वास्तव में देखा जाय तो कानूनों के सहारे ही वह समस्त सुमेरिया को एक शक्ति के अधीन कर सका तथा अपनी दृढ़ सत्ता समस्त नागरिकों पर लागू

बेबीलोन की सारी प्रजा को इसका पालन करना अनिवार्य था तो सरकारी अधिकारी इस सहिता में उल्लेखित धाराओं के अनुसार ही नागरिकों के अभियोगों का निर्णय करते थे। विधि सहिता में स्पष्ट बताया गया था कि किस प्रकार के अपराधों के लिए क्या दड दिया जाना चाहिए। इतिहासकार जेकाइस पिरेनी इस कानून सहिता की समालोचना करता हुआ लिखता है कि शासक जिसने कि सृष्टि के रचियता मारदुक से शक्ति ली थी, वह जनता के कानून व सत्ता के प्रति उत्तरदायी था। अत राजा के कानून विश्वव्यापी कानून की अभिव्यक्ति थे और इसी प्रकार राजा की सत्ता पारलौकिक व लाभप्रद थी।" इसके *अलावा उसने अपन इन कानूनों से दीन, निर्बल, असहाय व कर्जदार को बड़ा आराम* पहुचाया। इन कानूनों से पूर्व कर्जे लेन वालों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। उन्हें अपना ऋण चुकान के लिए दासता स्वीकार करनी पड़ती थी और कभी-कभी तो ऋण चुकाने में उन्हें अपनी स्त्रियों से भी हाथ धोना पड़ता था व नैतिकता से गिरना पड़ता था। परन्तु हम्मूरबी ने इन सब सामाजिक बुराइयों को कानूनों से दूर करने का प्रयास किया। इसीलिए बेन फिंगर लिखता है कि बेबीलोन के कानूनों ने दीन मनुष्यों, विधवाओं, अनाथ बच्चों, कर्जदारों व उधार वालों के अधिकारों की रक्षा की। इन कानूनों से दीन ऋणी मनुष्यों की दशा में तो आशातीत सुधार हुआ ही-परन्तु इनका व्यापार के क्षेत्र में भी प्रभाव कम नहीं पड़ा। अत इनमें अमीर व गरीब दोना ही प्रकार के व्यक्तियों को लाभ पहुचा। इसलिए इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट अपनी सम्मति व्यक्त करता हुआ लिखता है-' असीरिया में हजारों वर्ष बाद बनने वाल कानूना स यह अधिक सभ्य तथा विकसित था और कई बातों में आधुनिक यूरापीय राष्ट्रों के समान था।" हम्मूरबी स्वय कहता है कि उसकी सहिता सहायों की शक्तिशाली व्यक्तियों से सुरक्षा तथा सर्व साधारण की भलाई करना है।[1]

वास्तव में हम्मूरबी की विधि-सहिता- (Code of Laws) विश्व के इतिहास मे विशिष्ट स्थान रखती है। इन कानूनों को लिपिबद्ध करके विशाल साम्राज्य के जन-समूह में उन्हें लागू करना नि सन्देह उसका एक महान कार्य था। इसकी धाराओं से हम्मूरबी का निजी उत्साह का पता चलता है जिसका ज्वलन्त प्रमाण उसकी निर्धन तथा पीड़ित जनता के पत्र है। इसके अलावा उसकी मृत्यु के उपरान्त भी ये कानून प्रचलित रह-यह भी इसकी महानता का ही प्रमाण है। इसीलिए कहा गया है कि मृत्यु के हजारों वर्ष उपरान्त भी आज विश्व के इतिहास में हम्मूरबी का नाम विद्यमान है-यह उसकी विधि-सहिता के कारण ही है।

बेबिलोनिया साम्राज्य का अन्त-वैसे तो एक न एक दिन हर साम्राज्य का अन्त आता ही है। परन्तु हम्मूरबी का अन्त अति शीघ्र आया। हम्मूरबी के उत्तराधिकारी इतने योग्य नहीं थे। अत उनकी मृत्यु के आठ वर्ष बाद ही बेबिलोन में अशान्ति व अव्यवस्था फैलने लगी। उस विशाल साम्राज्य को उसके अयोग्य उत्तराधिकारी नहीं सम्भाल सके।

---

1 'To prevent the strong from oppressing the weak, to enlighten the land and to further the welfare of the people I brought plenty and abundance

Hammurabi

इसके अतिरिक्त जनता साम्राज्य की सम्पन्नता के कारण विलास की ओर अग्रसर हो रही थी। इन्हीं कारणों से उत्तर में रहने वाली हिट्टाइट (Hittetues) व केसाइट (Kassaities) जाति के लोगों ने बेबिलोन पर आक्रमण करके बेबिलोनिया के विशाल साम्राज्य को झकझोर दिया। वह विशाल-साम्राज्य पुन छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। कुछ समय के लिए समृद्ध तटीय राज्य पर बेबिलोन का दूसरा वश राज्य करता रहा। अन्तत यह हिट्टाइट व केसाइट जाति के आक्रमणकारियों के अधिकार में चला गया।

बेबीलोनिया की सभ्यता

सामाजिक अवस्था-बेबीलोनिया का समाज लोगों की आर्थिक अवस्था के आधार पर तीन वर्गों मे विभक्त था। जो लोग अधिक कर देते व शारीरिक आघातों का प्रतिशोध लेने की क्षमता रखते थे, उन लोगों की गिनती उच्च-वर्ग में होती थी। मध्य वर्ग के लोगों को कर कम देना पड़ता था। तीसरा वर्ग दासों का था, जिसे 'अरद्' कहते थे। समाज में अधिक ऊच-नीच की भावना विद्यमान न थी। स्त्रियों व दासों की दशा कुछ इतिहासकारों ने उस समय अति दयनीय बताई है। उनका कहना है कि उस समय स्त्रियों की दशा अति शोचनीय थी। वे नैतिकता से गिरी होती थीं व उन्हें गिरने को बाध्य भी किया जाता था। उस समय वैश्यावृत्ति का बहुत जोर था। इस कथन का समर्थन विश्व के प्रथम इतिहासकार हिरोडोटस ने भी किया है। परन्तु कुछ इतिहासकार इसके विरुद्ध हैं। स्वेन (J E Swain) का कहना है कि स्त्रियों की समाज में इज्जत थी। "प्राचीन बेबिलोन में स्त्रियों के अधिकारों का आदर होता था। युवा स्त्रियों को उस समय उपलब्ध शिक्षण सस्थाओं में भाग लेने दिया जाता था। कानूनी विवाह माता-पिता द्वारा सम्पन्न कराये जाते थे। उसमें उपहारों का आदान-प्रदान होता था। उन्हें सम्पत्ति अधिकार प्राप्त होता था। तलाक देने का उन्हें समान अधिकार था। अनाथ बच्चों व विधवाओं के लिए न्याय प्राप्त था।

इसी प्रकार गुलामों की भी अवस्था कुछ इतिहासकार खराब ही बताते हैं। उनका कहना है कि धूर्त एव निर्दयी स्वामियों द्वारा उनके कोड़े मारे जाते थे तथा उनके दाग लगाये जाते थे। युद्ध के समय वे इतनी बड़ी सख्या में प्राप्त किये जाते थे कि उनके साथ पशुओं से भी अधिक बुरा व्यवहार किया जाता था। देवालयों के निर्माण में उन्हे जोता जाता था। इस प्रकार के व्यक्तिगत सम्पदा के रूप में समझे जात थे। परन्तु अच्छे स्वामी उन्हें कुछ अधिकार भी देते थे। उनमें निम्नलिखित प्रधान थे-

(i) परिश्रम करके वे व्यक्तिगत सम्पत्ति अर्जित कर सकते थे।
(ii) वे अपने सम्बन्धियों की सम्पत्ति पर अधिकार कर सकते थे।
(iii) निश्चित धन देकर वे दासता से मुक्त भी हो सकते थे।
(iv) वे स्वतत्र स्त्री से विवाह भी कर सकते थे तथा उनके बच्चो पर उनका अधिकार रहता था।

हिरोडोटस इन तथ्यों के अतिरिक्त बताता है कि बीमार व्यक्ति को ऐसी खुली जगह पर रखा जाता था जहा कि प्रत्येक उसके सुख दुख की जानकारी कर सके, परन्तु इसके साथ यह भी लिखता है कि शादी की आयु वाली लड़कियों को नीलाम

था। विल ड्यूरेन्ट लिखता है "मिस्र तथा रोम की नारी की अपेक्षा बेबिलोनिया की नारी का स्थान अधिक निम्न था।" इन्हीं कारणो से मिश्रवासी बेनिलोनिया के लोगों को पूरा सभ्य नहीं मानते थे। दहेज-प्रथा भी उस समय लड़कियों की शादी में कुछ बाधा बनी हुई थी। परन्तु यह सब होते हुए भी हम कह सकते हैं कि बेबिलोनिया साम्राज्य मे जनता सुखी एव सम्पन्न थी।

धार्मिक अवस्था-बेबीलोन में बहुदेव प्रथा प्रचलित थी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि उनके 65 हजार देवता थे। बाद में इन सब मे प्रधान सूर्य का देवता मारदुक (Marduk) था। परन्तु वे सूर्य से भी अधिक एक शक्ति को मानने लग गये थे। उसको वे शक्ति प्रदायक तथा ज्ञान का स्रोत समझते थे।

सूर्य को ही वे शक्ति का केन्द्र तथा प्राणदाता मानते थे। हम्मूरबी का जो पाषाण-चित्र मिला है, उसमें भी वह अपूर्व विधान सहिता सूर्य भगवान से ही लेता बताया गया है। इनके अलावा ईस्तर और वीनस (Ishtar and Venus)भी उनकी अधिक प्रिय आराध्य देवियों में से थीं। ईस्तर को वे सृष्टि की माता मानते थे। तैमूज (Tammuz) को उसका पति मानते थे जो कि वनस्पतियों के उत्पादन का मूल कारण माना जाता था। बेबिलोनिया को लोगों की यह धारणा थी कि तैमूज प्रतिवर्ष मर जाता है और ईस्तर उसे खोजने के लिए पाताल लोक में जाती है। किन्तु वे मिश्रवासियों की भाति अपने देवों का रौद्र रूप कल्पित नहीं करते थे। उर में सिन का देवालय मिला है उसमें क्रोध, भय व आदर के भावों से ओतप्रोत मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। पुरोहित लोग धार्मिक कार्यों के सम्पन्न कराने में दक्ष होते थे और इसी कारण उनका धर्म में महत्वपूर्ण स्थान था। पुरोहित वर्ग सितारा के अध्ययन में पारगत होते थे और वे भविष्यवाणी भी किया करते थे। लोगों में धर्म के नाम पर कुछ अन्ध-विश्वास भी था। सन्देह करने वाले बेबीलोनिया के निवासी प्रत्येक विषय में सगुन मनाया करते थे। अत डॉ राधाकृष्णन लिखते हैं-आकाश के गृह-नक्षत्र ही बेबीलोन के सबसे पुराने देवता थे। प्रत्येक परिवार का एक कुल देवता होता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि खेतों के ऊपर एक देवता मडराया करता था जो कि उनको उपजाऊ बनाया करता था।[1] कुछ देवताओं का काम यह माना गया था कि वे राज्य के अदृश्य सिपाहियों की भाति काम करें। धनी लोग अपनी आय का अधिकाश भाग देवता के भेंट स्वरूप चढ़ा दिया करते थे।

देव की आराधना के लिए देवालय भी सुन्दर व भव्य होते थे। बेबिलोनिया के नगर भव्य देवालयों से अलकृत होते थे। राजधानी में उस समय 53 देवालय तथा 55 पवित्र स्थान थे। बहुदेववादी होने के कारण देवालयों में विभिन्न देवताओं की मूर्तिया मिली हैं। उनकी लोग पूजा करते थे तथा पुरोहित लोग भक्तों की तरफ से भेड़ व बकरी की बलि चढ़ाते थे। वे परलोक में अधिक विश्वास नहीं करते थे। अत भक्ति में श्रद्धा का अभाव रहता था। लोग भविष्यवाणी में विश्वास करते थे। पुरोहित लोग जिगुरात (Ziggurat) की छतों पर नक्षत्रों का अध्ययन कर भविष्यवाणी करते थे। जिगुरात पिरामिड

1 विल ड्यूरेन्ट सभ्यता की कहानी' पृ 216

आकार के कई मंजिल के होते थे। अत ये जिगुरात ही पुरोहितों की वैध-शाला होती थी। उस समय वहा के लोगो की धारणा यह थी कि भले व बुरे दोनों प्रकार के ही व्यक्ति स्वर्ग में जाते ह। उनका यह भी विचार था कि भलाई का फल पुरस्कार में भोगना पड़ता है जब कि बुराइयों का फल बुरा भागना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नैतिकता पर भी उस समय पर्याप्त जोर डाला गया था। बेबीलोनिया के एक देवालय से कुछ सामग्री प्राप्त हुई है जिससे पता लगता है कि उस समय नैतिक जीवन पर भी बहुत जोर दिया जाता था। भगवान के समक्ष सत्य बोलना, भगवान के समक्ष आत्मा को शुद्ध करके बोलना, जल्दी से कोई बात न कहना, घमण्ड से स्वय को बचाना और अत्यन्त खुशी में अपन होठों को बन्द रखना आदि बातों पर उस समय उपदेश दिया जाता था। इस कारण समाज में पुरोहिता का महत्व बहुत बढ गया था। पुरोहितों के इस प्रभाव ने स्त्रियों की दशा को अति दयनीय बना दिया था। जो स्त्री सन्तान की कामना करती थी उन्हें ईस्तर देवी की उपासना के नाम पर निर्लज्ज गुप्त पूजा करनी पड़ती थी।[1] अजनबी व्यक्ति के रूप में पुरोहित सदा तैयार रहते थे। इस निर्लज्ज कार्य के लिए व स्त्रियों से कीमती भेंट और लेते थे। इस प्रकार देवालय पापाचार के अड्डे बन गये थे तथा वेश्यागमन को कानूनी रूप मिल गया था। परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि पुरोहित चरित्रहीन ही होते थे। उनके जीवन में भी कुछ आदर्श होते थे।

हिरोडोटस (Herodotus) बेबीलोनिया के सामाजिक जीवन का वर्णन करते लिखता है, "-------नौजवान अपन बाल रगते थे और केश सवारते थे। अपने शरीर पर इत्र लगाते थे और गालों पर रग लगाते थे। गले में हार, हाथों में कड़े और कानों म झूमके तथा बालिया पहिनते थे।" फारस विजय के उपरान्त तो बेबीलोनिया के व्यक्ति और भी विलासी हो गये थे।

शासन व्यवस्था–यद्यपि राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था, तथापि सत्ता केन्द्रीय सरकार मे निहित थी। कहने का तात्पर्य यह है कि बेबीलोनिया में एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार कार्य करती थी। जिले के पदाधिकारी को सम्राट के आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। कानून कठोर थे। किन्तु फिर भी शासक न्याय करना पसन्द करते थे। जनता की प्रार्थना सुनने के लिए कई प्रकार के न्यायालय विद्यमान थे। शासक भी अपिल सुनता था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। राजाज्ञाएं मिट्टी की पत्तियों पर भेजी जाती थीं। न्याय करते समय अमीर व गरीब का भेदभाव नहीं देखा जाता था। इसीलिए डेनियल लिखता है कि वहा सरकारी कार्यों के लिए सावधानी से नियुक्त किया हुआ सगठन विद्यमान था।

धमाधिकारी का राजनीतिक क्षेत्र में अब कोई प्रभाव नहीं रहा था। अत नगर-राज्य की व्यवस्था अब राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा होती थी। इसके अलावा धर्माधिकारी

---

1 J.E.Swain A History of World Civilization p 76
Every woman who hoped to bear children was expected to go to temple of Ishtar and sell herself for one hour to some unknown man.

कृषि व सिचाई के सम्बन्ध में जो व्यवस्था करता था वह भी राजा के अधिकारियों द्वारा होने लगी। इस प्रकार सुमेरिया की प्राचीन शासन-व्यवस्था समाप्त हो गई और एक नवीन दृढ़ केन्द्रीय शासन प्रणाली आरम्भ हुई। परन्तु यह सब होते हुए भी आतंकि अव्यवस्था वृद्धि पा रही थी और बेबिलोन का साम्राज्यवाद भी समाप्ति पर आ रहा था।

बेबीलोनिया की सभ्यता का विकास प्रधानत हम्मूरबी के समय ही हुआ था। सही अर्थ में वही मैसोपोटामिया साम्राज्य का निर्माता था। हालाकि उसके दैवी अधिकार का कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता था तथापि उसने अपने साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर रखा था और उनके प्रशासन के लिए योग्य गवर्नर नियुक्त किये जाते थे।

आर्थिक अवस्था-भूमि उपजाऊ थी। अत वहा विभिन्न प्रकार का अन्न उत्पन्न होता था। उपज में वृद्धि करने की दृष्टि से नहरें भी बनाई गई थीं। यहा का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। इतिहासकार हिरोडोट्स लिखता है कि बेबिलोन अन्न उत्पन्न करने में अधिक समृद्ध था। अन्न के अतिरिक्त खजूर, अगूर व जैतून आदि भी पैदा होते थे। रूई भी पैदा होने लग गई थी। इनके अतिरिक्त अनेक छोटे मोटे गृह उद्योग धन्धे प्रचलित थे। चमड़े का व ऊनी वस्त्र का उद्योग बहुत उन्नत था। व्यापारी वर्ग उन्नत था और अच्छी मात्रा मे व्यापार करता था। पुरोहित भी व्यापार करते थे। उन्हें कृषि तथा व्यापार की वस्तुओं से अच्छी आमद होती थी। अत एक इतिहासकार ने लिखा है कि धर्म और व्यापार दोनों मित्र थे तथा देवालयों के पास बहुत जायदाद होती थी। अन्य इतिहासकारो ने लिखा है कि देवालय उस समय बैंक बन गये थे, धर्माधिकारी धन उधार दिया करते थे। यद्यपि उस समय चादी कुछ मात्रा में उपलब्ध थी किन्तु अभी सिक्का की कमी थी, परन्तु फिर भी व्यापार में चादी के सिक्कों का प्रयोग होता था। हम्मूरबी के कानूनों ने व्यापार को भी सुगम बना दिया था। व्यापारी पैसा न होने पर हुण्डी लिख सकते थे तथा निर्धारित ब्याज की दर पर पैसा उधार भी ले सकते थे। देवालय जब बैक बन गये तो व्यापार और भी विकसित हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यापार केवल देश तक ही सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय बनता जा रहा था। इसीलिए व्यापार उस समय सास्कृतिक आदान-प्रादान का भी एक साधन बन गया था। यह राज्य की आय का दूसरा प्रमुख साधन था। बेबीलोनिया में उस समय उद्योग धन्धे भी विकसित हो गये थे। स्वर्ण, चादी, ताबा, सीसा व लोहे की खानें खोदी जाने लगी थीं। इन धातुओं से विभिन्न आभूषणों तथा शस्त्र बनाये जाते थे। चमड़ का भी सामान बनाया जाता था। पशु-पालन भी जीविका-उपार्जन का एक उत्तम साधन था। सम्राट स्वय उस समय भारी सख्या में पशु-पालता था। पशुओं पर सरकार की ओर से कर भी लगाया जाता था।

साहित्य-बेबीलोन में विद्वानों का पर्याप्त आदर था। हम्मूरबी के शासन के पूर्व कीलाक्षर ही मुख्य लिपि बनी हुई थी। परन्तु अब लिपि चित्रात्मक होने के साथ-साथ ध्वन्यात्मक भी बनती जा रही थी और यह प्रथम अवसर था जबकि सुमेरियन तथा और भाषा के शब्दों को मिलाकर अमरकोष बनाया जाने लगा था। मिट्टी की पट्टियों पर लिखने की प्रणाली ने शिक्षा व साहित्य को और भी विकसित किया। एक विद्यालय की भिति

पर लिखा पाया गया है कि जो मिट्टी की पट्टियों पर लिखने में बाजी मारेगा वही सूर्य के समान चमकेगा।[1] शिक्षा में धर्माधिकारियों को प्रधानता मिली हुई थी। बहुत से स्कूल देवालयों से ही सम्बन्धित होते थे। स्त्रियो को शिक्षा पाने से ही नहीं रोका जाता था। बेबिलोन में अच्छी पुस्तकों के सुसज्जित पुस्तकालय थे और मिट्टी से निर्मित होने के कारण वे नष्ट भी नहीं की जा सकीं। गिलगेमिश (Gilgamesh) उस समय का प्रमुख महाकाव्य था। इस महाकाव्य में सृष्टि की रचना तथा महान् बाढ़ का वर्णन किया गया है। इस पर धर्म का प्रभाव अवश्य था। परन्तु इसे धार्मिक ग्रन्थ न मानकर साहित्यिक ग्रन्थ मानना ही अधिक उचित होगा।

विज्ञान-बेबिलोनियन ज्योतिष में अधिक दक्ष थे। देवालय उस समय वेधशाला बने हुए थे। देवालय की ऊपर की बुर्ज में नक्षत्रों का अध्ययन किया जाता था। प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी (Toynbee) का कहना है कि बेबिलोनिया के ज्योतिष के अध्ययन ने ही ज्योतिष की नींव रखी है। गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्रों के उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। गणित के आधार पर ही यहा के ज्योतिषी नेब रम्मानी बिन वलत ने ग्रहण का ज्ञान प्राप्त किया था। वृत को उन्होने 360 अशों में विभक्त कर दिया था। परन्तु लिखने में वे केवल तीन अकों का ही प्रयोग करते थे, जिससे सकेतात्मक रूप में अक-गणना करते थे। नक्षत्रों का उन्हें इतना ज्ञान हो गया था कि वे सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण की भविष्यवाणी करने लग गये थे। तारों की गति से भी वे परिचित थे। उन्होंने कलेण्डर भी तैयार कर लिया था। दिन को बराबर के भागों में विभक्त किया था और प्रत्येक भाग को 1 घंटे का रखा था, घंटे को वे बेयर कहते थे। उनका एक घटा आज के दो घंटे के बराबर था क्योंकि वे दिन में 12 घंटे ही मानते थे। समय वे धूप व जल घड़ी से देखा करते थे। इनके अलावा उस समय उनको स्वास्थ्य व स्वच्छता सम्बन्धि बातों का भी पूर्ण ज्ञान था। गणित का भी उन्हें ज्ञान था और इसी गणित के सहारे ही वे अच्छे इजीनियर बन सके थे। मानचित्र बनाने की विधि सर्व-प्रथम उन्हें ही ज्ञात हुई थी। वे नगरों व प्रान्तों के मान-चित्र बना लेते थे। विज्ञान के क्षेत्र में धर्माधिकारी भी आगे बढ़े हुए थे। इतिहासकार टायनबी के मतानुसार वे धर्माधिकारी भारत के बौद्धिक ज्ञान से प्रभावित थे। इनके अतिरिक्त उन्हें रोग-निदान के साधन भी ज्ञात थे। आश्चर्य इस बात का है कि अन्धविश्वासी होते हुए भी वे विज्ञान में इतने विकसित थे। उनके वैज्ञानिक ज्ञान के विषय में विल ड्यूरे इस प्रकार लिखता है-"औषधिया विकसित थीं और प्रत्येक रोग के लिए विशेष प्रकार की औषधि होती थी। परन्तु वे अभी तक धर्मशास्त्र से आबद्ध थीं और यह माना जाता था कि रोग किसी भूत पिशाच के प्रभाव के कारण हुआ है और उपचार भूतप्रेत के झाड़ा दिये बिना नहीं हो सकता।"

कला

भवन-निर्माण-स्थापत्यकला में बेबिलोन की सभ्यता पर्याप्त विकसित थी। साधारणतया भवन मिट्टी की ईंटों से बनाये जाते थे। दरवाजों में लकड़ी का प्रयोग होता

---

1 "He who shall excel in tablet writing shall shine like a sun." —B V Rao

था । छत बनाने में नरसल प्रयुक्त होते थे । अत वे मकान अधिक सुदृढ़ नहीं होते थे और चालीस-पचास वर्षों मे ही नष्ट हो जाते थे । राजप्रासाद व देवालय उस समय की स्थापत्य के सुन्दर नमूने थे । देवालय भव्य व उच्च बनाये जाते थे । देवालय में सबसे ऊपर एक बुर्ज होती थी । बुर्ज सोने से अलकृत की जाती थी । डेल (Del) का देवालय इसका सुन्दर प्रतीक था । बेबिलोन का जिगुरत (Ziggurat) एक अद्वितीय देवालय था। यह कई मजिल का पिरामिडनुमा था । बुर्ज के ऊपर देव की प्रतिमा होती थी । बेबिलोनिया एक समृद्धिशाली नगर था । परन्तु वहाँ की सड़कें सकरी थीं । मकान की बाहर की दीवारों का पलास्तर भद्दा होता था । मकान बहुधा दो मजिल के होते थे । ऊपर की मजिल सोने के काम में ली जाती थी । हम्मूरबी के समय का बेबिलोन विनाश के गर्त में समा चुका है । अत स्पष्ट है कि बेबिलोनिया की स्थापत्यकला मिश्र की स्थापत्यकला का मुकाबला नहीं कर सकती ।

मूर्तिकला में भी बेबिलोनियन पीछे नहीं थे । वे पत्थरों की मूर्तिया बनाते थे । मूर्तिया विशालकाय होती थीं । राजा व दास दोनो की प्रस्तर मूर्तिया विशाल रूप में मिलती है । प्राचीन मूर्तिया बहुत ही कम उपलब्ध हुई हैं । मूर्तिकला के विकास का श्रेय उनकी धार्मिक भावना को है । मूर्ति-कला में मौलिकता का अभाव झलकता है । चित्रित सभी मुखाकृतियाँ एक ही आकार की लगती है । उत्खनन म जो मूर्तिया प्राप्त हुई हैं-उनमें हम्मूरबी का पाषाण-स्तभ पर उत्कीर्ण दृश्य उल्लेखनीय है ।

चित्रकला का स्थान गौण था । उसका प्रयोग एक पूरक कला के रूप में होता था । उस समय के राजाप्रासादों व देवालय की दीवारो पर चित्र प्राप्त हुए है । चित्र अधिकाश युद्ध व जगली जीव जन्तुओं के होते थे । प्रवेशद्वार पर साडों के चित्र मिले हैं जिनके पख पक्षियों के [illegible] तथा शरीर मनुष्यों का । उनकी चित्र-कला की गणना उच्चकोटि में नहीं की जाती ।

सगीत कला-बेबिलोनिया के लोग सगीत में विशेष रुचि लते थे । सामाजिक अवसरों पर वे सगीत की व्यवस्था करना आवश्यक समझते थे । सगीत समारोहों में वे रगीन वस्त्र-मुलायम कम्बल व मेज-कुर्सियों का प्रयोग करते थे । उनके पास वाद्ययन्त्र कई प्रकार के थे । बासुरी, बीन, एक तारा, सारगी, ढोल आदि के प्रमाण मिले हैं । वृन्द-वादन होता था । सामूहिक गायनों में गायक लोग गात थ । परन्तु सगीत का कार्यक्रम बहुधा देवालयों में ही होता था । परन्तु सगीत समारोह के उपक्रमों में कला का अभाव था ।

सभ्यता का प्रभाव-बेबिलोन की सभ्यता प्राचीन तथा उन्नत सभ्यता थी । इसके अतिरिक्त यह तत्कालीन विकसित सभ्यताओं के केन्द्र में थी । मिश्र व भारत दोनों सभ्यताओं के यह बीच में थी । अत सभ्यताओं का पारस्परिक आदान-प्रदान होना स्वाभाविक था । टॉयनबी क मतानुसार ज्योतिष का प्रसार यहीं से हुआ । अत भारत को इसका ऋणी होना चाहिए । यहाँ के देवालयों का प्रभाव कालान्तर में मुस्लिम स्थापत्य कला पर पड़ा । उनकी मस्जिदें उन्हीं के नमूनों पर बनाई गईं । गणित-विद्या का भी दूसरे पर प्रभाव पड़ा । यद्यपि कलेण्डर मिश्र ने भी तैयार कर लिया था परन्तु आज का कलेण्डर

बेबिलोनिया पर ही आधारित है। आज का भौतिक जीवन भी उस समय बेबिलोन में मिलता था। अत हम देखते है कि बेबिलोन-सभ्यता विश्व मे प्राचीन व प्रभावोत्पादक सभ्यता थी।

सभ्यता का विनाश-वेबिलोनिया की सभ्यता का विकसित करने वाले स्वय पहले खानाबदोश थे। वे कठोर जीवन व्यतीत करते थे। परन्तु यहाँ आकार वे विलासी हो गये। इस कारण उनका जीवन भौतिकवाद की ओर दिनोदिन अग्रसर होने लगा। इसके विपरीत इनकी सभ्यता अन्य विदेशी जातियों को अपनी ओर आकर्षित करती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि विलासी बेबिलोनियन केसाइट जाति के लोगों को रोकने में असमर्थ रहे। यह जाति 7 वीं शताब्दी ई० पू० में बेबिलोन में शासक के रूप में बस गई। इतिहासकार जेकोंइस पिरेनि क अनुसार कसाइट जाति के जगली लोग सात ई० पू० में गद्दी पर बैठ गये। सुमेरियन नगरों का पूर्ण पतन हो गया और बेबिलोन का सम्राट अब उन मनुष्यो से परास्त हो गया जो कि खानाबदाश से अधिक कुछ नहीं थे। केवल एक शहर बेबिलोन रहा किन्तु वह भी राजधानी के रूप मे नहीं। हर्नेशा का कथन है-"उनकी सभ्यता हमारे विधि-विधान, हमारे ज्योतिष ज्ञान , कलेण्डर, समय-विभाजन आदि मे आज भी जीवित है।"

सभ्यता के विनाश के कारण-ईसाई धर्म-ग्रन्थ एक्लेज्यास्ट (Ecclesiastes) के अध्ययन से इस सभ्यता के विनाश के कुछ कारणों का पता चलता है-

(i) बेबिलोनिया के निवासियों का भौतिकवादी जीवन- उनकी धारणा थी - 'अपने मार्ग पर चल, आनन्द से रोटी खा और प्रसन्न चित्त हो मदिरा-पान कर, क्योंकि ईश्वर को तेरा यह कार्य स्वीकार है।"

(ii) सम्राटों की क्रूर मनोवृत्ति-बेबिलोनिया के सम्राटों में मानवता का अभाव था। युद्ध के समय वे बड़े क्रूर सिद्ध होते थे। एक स्थान पर अकित है "जो जिन्दा रहे उन्हें जिन्दा ही जमीन में गड़वा दिया है।" हिरोडाटस (Herodutus) लिखता है कि शत्रुओं से घिर जाने पर बेबिलोनिया के लोगों ने अपनी स्त्रियों के गले घोट दिए। उन्हें भय था कि स्त्रियों के जीवित रहने पर पुरुषों के भोजन मे कमी आ जावेगी।

(iii) जीवन में नैतिकता का अभाव-स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार उनके विनाश का तीसरा कारण था। दहेज-प्रथा ने विवाह को एक कठार कार्य बना दिया था। धार्मिक अन्धविश्वासो ने नारी का जीवन वेश्या तुल्य बना दिया था। देवालयो के पुरोहित ईश्तर देवता की पूजा के नाम पर खुले रूप में पापाचार करते थे। वेश्यागमन को वैधानिक मान लिया गया था। एक समाज जिसमें नैतिकता इस सीमा तक गिर जावे,अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती।

अत बेबिलोनिया की सभ्यता नष्ट अवश्य हो गई पर विल ड्यूरेन्ट (Durant) कहना है कि दो हजार वर्ष पूर्व बेबिलोन न केवल सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुच सका था वरन् एशिया के इने गने धनी शहरों में गिना जाता था।

असीरियन साम्राज्य

दजला नदी के किनारे एक असुर नाम का नगर था। वहाँ एक खानाबदोश जाति

रहती थी । इस जाति को इनके नगर के नाम पर असीरियन कहते हैं । जब सुमेरिया में सैरेगॉन प्रथम (Saragon I) का शासन था तो उसने इस यायावरी जाति को परास्त कर अपने आधीन कर लिया था । परन्तु सैरेगॉन प्रथम का उन पर शासन अधिक दिनों नहीं रहा । ज्योंही उसका प्रभाव असुर नगर से लुप्त हुआ उनके मस्तिष्क में पराजय का प्रतिकार लेने की भावना प्रबल हो गई । अत उन्होंने 1300 ई० पू० के लगभग बेबिलोन पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया और अन्त में उसके वैभव को विनष्ट कर उन्होंने उस पर अपना अधिकार कर लिया । इन्होंने निन्वेह (Nineveh) नगर को अपने राज्य की राजधानी बनाया और वे लगभग 700 वर्ष तक यहाँ शासन करते रहे ।

सेरेगॉन द्वितीय (Saragon II 722 705 B C) यद्यपि इस जाति में कई प्रतापी शासक हुए किन्तु सबसे प्रसिद्ध सेरेगॉन द्वितीय हुआ । उसके पूर्व टीगलेथ पिलसर (Tiglethe Pileser) एक नामी शासक और हो गया था । उसने हिट्टी जाति को परास्त कर काले सागर तक अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था । किन्तु इसका राज्य इसकी मृत्यु के उपरान्त इसके पुत्र से न सभल सका और उसके सेनापति ने उससे राज्य छीन लिया । वही सेनापति सैरेगॉन द्वितीय के नाम से शासक बना । इतिहासकार मानते हैं कि उसके नेतृत्व में असीरियन साम्राज्य की नींव पड़ी । वह एक महत्वाकाक्षी शासक सिद्ध हुआ । उसने कई लड़ाइयाँ लड़ीं और उन सब में वह विजयी हुआ । 'यह सम्राट वीर तथा उत्साही था और जो भी वह युद्ध लड़ता था, उसमें वह स्वय व्यक्तिगत रूप से भाग लेता था और प्रत्येक युद्ध में, जिसमें वह लड़ता, सकटमय स्थान ग्रहण करता था ।'' उसने मिश्र के फेरोह को परास्त किया । उसने एलम व फिलिस्तीन के यहूदियों को अपने आधीन कर लिया। उसने निन्वेह में एक सुन्दर प्रासाद बनवाया तथा एक नया नगर बसाकर अपने नाम पर नवीन राजधानी को जन्म दिया । उसका नाम सैरेगॉन बर्ग रखा गया। उसने राज्य विस्तार के साथ-साथ व्यापार को भी विकसित किया। वह सदैव राज्य की चिन्ता करता था और अन्त में 705 ई० पू० में उसने देश के निमित्त लड़ते-लड़ते ही वीर गति प्राप्त की।

सेनोचेरिब (Senachenb, 705 681 B C)-यह सेरेगॉन द्वितीय का पुत्र था। यह भी अपने पिता की भाति एक वीर-योद्धा तथा कुशल प्रशासक था । उसके समय में असीरियन साम्राज्य बहुत विस्तीर्ण हो गया था । अत जगह-जगह विद्रोह होने लगे। जब मिश्र ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास किया तो वह स्वय वहाँ सेना लेकर गया तथा मिश्र की सेना को परास्त कर दिया । कहा जाता है कि उसने 89 नगरों पर धावा किया तथा 2 08 000 बन्दी बनाये । वह अपने पिता से भी अधिक महान योद्धा तथा राजनीतिज्ञ था । सेनाचेरिब केवल एक योद्धा ही नहीं था वरन् एक अच्छा निर्माता भी था। उसने भी अपने पिता की भाँति नवीन राजधानी बनाई। वह राजधानी निन्वेह (Nineveh) नगर ही था । यह अन्य नगरों से ठडा एव सुरक्षित था । नगर के चारों ओर चार दीवारी बना कर उसे और सुरक्षित कर दिया । नगर में पानी की व्यवस्था करने के लिए उसने एक नहर बनवायी । उसके नगर ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की ।

सफल प्रशासक की हैसियत से उसने राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर रखा । प्रान्तपति व जिलाधीश उसकी आज्ञानुसार कार्य करते थे । व्यापार को विकसित

करने हेतु उसने सड़कों का निर्माण कराया तथा डॉक-प्रथा भी चालू की। किन्तु दुर्भाग्यवश वह महान् शासक अपने पुत्र द्वारा ही कत्ल कर दिया गया।

असुरबनिपाल (Assurbanipal)-यह 668 ई पू मे राजगद्दी पर बैठा। इसे यूनानी लोग सारदानापालुस कहते थे। यह सेनाचेरिब का पौत्र था। यह इस वश का अन्तिम प्रतापी सम्राट समझा जाता था। यद्यपि इसके पिता ईसराडोन (Esarhaddon) ने भी एक कुशल प्रशासक की भाति ही शासन किया था। उसने बेबिलोन को पुन सुन्दर भवनों से अलकृत किया। उसने बेबिलोनिया वालों के प्रति धार्मिक सहिष्णुता भी प्रकट की। इसी कारण यह न्यायी व दयालु शासक माना जाता है। किन्तु यह सब होते हुए भी अनुरबनिपाल अपने पिता से अधिक महान् विजेता एव प्रशासक माना जाता है। वह एक महान् क्रूर विजता था। युद्ध क समय वह सैनिकों के साथ कठोर व्यवहार करता था। एलम-विजय और वहा किये गय विध्वस का हमें एक शिलालेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि उस युग में खूनी लड़ाइयाँ व शहरों में घेरा बन्दी होती रही। नगर निवासी भूख मरते रहे। उसने यह सब कुछ वहा आतक स्थापित करने की दृष्टि से किया था। यह अपने आतककारी कार्यों को राजनीतिक दृष्टि से उचित समझता था। यह सब होते हुए भी उसके 42 वर्ष के शासन-काल में उसका साम्राज्य व्यापार, शिक्षा, कला आदि समस्त क्षेत्रो में विकासोन्मुख ही रहा। इसीलिए इसके शासन काल को इतिहास में ''स्वर्ण-काल'' मानते है। उसने बेबिलोन नगर को नष्ट अवश्य कर दिया था। उसे भवन-निर्माण-कला से अति अभिरुची थी। अपनी राजधानी निन्वेह नगर को तो उसने भव्य प्रासादो से अलकृत किया ही पर उन भव्य प्रासादों को उसने सुन्दर चित्रों से चित्रित भी किया। इससे स्पष्ट है कि वह क्रूर विजेता होते हुए भी एक कला-प्रेमी शासक था।

असीरियन सभ्यता

इस जाति के अधिकाश शासक कठोर व लडाकू थे। उनका सर्वाधिक ध्यान निष्ठुरता से साम्राज्य विस्तार पर ही रहा। इसके लिए उन्होंने पराजित लोगों के साथ बड़ा अमानुषिक व्यवहार किया। इस कारण सभ्यता के विकास की ओर उनका ध्यान कम रहा। अत उनके शासन-काल म कोई नवीन सभ्यता विकसित नहीं हुई और बेबिलोनिया की ही पुरानी सभ्यता चलती रही। किन्तु उनकी साम्राज्यवादी नीति व कठोर व्यवहार के कारण उनके शासन काल की सभ्यता मे कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ। उनके समय की सभ्यता में विशेष परिवर्तन निम्नलिखित क्षेत्रों में दृष्टिगत हुए।

प्रशासन-उनका साम्राज्य बहुत अधिक विस्तृत था। असुरनिपाल का शासन असीरिया, बेबिलोनिया, आरमीनिया, मेडिया, फिलीस्तीन, सीरिया, फिनिशिया, सुमेरिया तथा मिश्र में फैला हुआ था। अत शान्ति व सुव्यवस्था बनाये रखने क लिए उन्होंने उस महान् साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर दिया था। प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तपति होता था। परन्तु इस पद पर इन्होंने अपने व्यक्तियों को ही नियुक्त किया। प्रान्तों को भी उन्होंने तीन श्रेणियों में विभक्त कर रखा था -

(1) जो प्रान्त प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय सरकार को निर्धारित कर देते थे।
(2) कुछ ऐसे भी प्रान्त थे जिन्हें कर के अलावा बेगार भी देनी पड़ती थी।

(3) तीसरी श्रेणी में वे प्रान्त आते थे जो पूर्णत सम्राट के आधीन रहते थे। इस श्रेणी ं प्रान्तपति शक्नु' कहलाते थे। परास्त लोगों को या तो मौत के घाट उतार दिया जात था, या उन्हे बहुत बुरी दशा में अपना पराधीन बनाकर रखा जाता था। अत इनका शास शक्ति पर आधारित था और प्रान्तपति शासक की इच्छानुसार शासन सचालित करते थे इसीलिए कहा जाता है कि इतिहास में सर्वप्रथम पूरी तरह से सैनिक साम्राज्य की स्थापन असीरिया वालों ने ही की थी।

अपने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा के लिए उन्होने एक स्थायी सेना की स्थाप की। जैसा कि पहले बताया जा चुका है वे युद्ध के समय महान क्रूर बन जाते थे नगरों को जला डालते थे तथा युद्ध के बन्दियो को निर्दयता के साथ मौत के घाट उत दिया करते थे। युद्ध में भय उत्पन्न करने के लिए वे विभिन्न विधि का प्रयोग करते थे बहुधा नगर के समस्त लोगों को कत्ल करवा दिया करते थे और यदि यह भी पर्या नहीं होता तो लोगों की खाल खिचवा लिया करते थे। उनकी इस प्रकार की युद्ध विधि तथा कठोर शासन पर अपनी राय व्यक्त करता हुआ एच जी वेल्स लिखता है- 'असीरिय ही प्रथम शक्ति थी जिसने लोहे और रुधिर (Iron and blood) के सिद्धान्त को विश में प्रतिपादित किया।

सेना के बाद राजा साधारणतया पुरोहितों व महतों पर निर्भर रहता था। इसीलि वह देवालयों को खूब दान दिया करता था। राज्य का प्रधान आसुर (Assur) नाम देवता माना जाता था। युद्ध के समय इतनी क्रूरता इसी देवता को प्रसन्न करने की नियत से की जाती थी।[1] उसने कानून सुमेरिया व बेबिलोनिया से प्राप्त किये थे। अग भ करना तथा कोड़े से पीटा जाना उस समय दण्ड देने की आम व्यवस्था थी। स्थानीय शासन पहले सामन्त चलाते थे। परन्तु बाद में यह कार्य भी प्रान्तपति को ही सौंप दिय था। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि असीरिया की राज्य व्यवस्था मुख्य रूप से एव प्रकार से युद्ध तन्त्र का ही रूप थी।[2]

सैनिक व्यवस्था–जैसा कि ऊपर व्यक्त कर आये हैं कि विशाल साम्राज्य को बनाये रखने के लिए असुर सम्राटो ने एक विशाल स्थायी सेना स्थापित कर रखी थी उस सेना में सैनिक दो प्रकार के होते थे। प्रथम साधारण सैनिक, दूसरे सैनिक-विद्या में दक्ष स्थायी सैनिक होते थे। इसके अलावा उस काल में सैनिक-सेवा एक प्रकार से अनिवार्य करदी थी। प्रत्येक नागरिक को कुछ काल सेना में कार्य करना पड़ता था। प्रत्येक प्रान्त में शान्ति-स्थापन के लिए सेना रहती थी। सेना तीन प्रकार की होती थी। (1) रथ सेना, (2) अश्वारोही सेना तथा (3) पैदल सेना। रथ सेना पर अधिक जोर न देकर अश्वारोही सेना व पैदल सेना को विशेष महत्व दिया जाता था।

---

1 Paul Schaffer Westerm Civilization p.57
All this was done for the glory of the God Assur

2. विलड्यूरेन्ट सभ्यता की कहानी पृ 249

सामाजिक जीवन-सामाजिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। समाज म अब एक चौथा वर्ग कारीगरा का बन गया था। परन्तु तीसरे (गुलाम) और चौथे वर्ग की दशा अति दयनीय थी। गुलामो के उत्थान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। गुलामों के प्रति नियम बड़े कठोर होते थे। इस प्रकार उनकी युद्ध-प्रिय नीति के कारण व्यापार व अन्य उद्योग धन्धे भी नहीं पनप सके। अत कारीगरों की भी अवस्था अच्छी नहीं थी। राज परिवार के सदस्य व उनके सम्बन्धी सुखी थे। धर्माधिकारियों का भी समाज में पहले जैसा आदर व स्थान नहीं रहा था।

असीरियन जीवन के सभी क्षेत्रों में एक दृढ़ पितृसत्तात्मक व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है क्योकि वे लोग युद्ध व आक्रमण पर अधिक निर्भर रहते थे। युद्ध में बनाये गये बन्दीजनों को जगली जानवरा से युद्ध करा कर वे अपना मनोरजन करत थे। बन्दी व्यक्तिया के बच्चा की उनके सामने ही आखे निकाल लेते थे। बन्दियो की खाल खिचवाकर भी उन्ह मौत का ग्रास बनाया जाता था। अपना अस्तितत्व बनाये रखने के लिये व अपनी जन सख्या म वृद्धि करने क पक्षपाती थ। इस कारण उस काल में गर्भपात व भ्रूण हत्या कानून से वर्जित था। स्त्रियों से विवाह शक्ति व छल प्रपच के जरिये किया जाता था।[1] स्त्रिया बिना पर्दे के घर से बहार नहीं निकल सकती थीं। उन्हें चरित्रवान रहना पड़ता था। अपनी सख्या में वृद्धि करने हेतु असीरियन स्त्रिया आव्रजकों (विदेशी) से विवाह कर सकती थीं। विवाह करने के उपरान्त आव्रजकों को नागरिकता मिल जाती थी। वेश्यावृत्ति उस समय प्रचलित थी और सरकार से उसे सरक्षण प्राप्त था। राजा के हरम में स्त्रियों की सख्या काफी होती थी। पत्नी के प्रेमी की हत्या पति द्वारा करना उचित समझा जाता था। सरकार ऐसे व्यक्तियों को दण्डित नहीं करती थी। कभी-कभी स्त्रिया को अपने पिता के घर ही रहना पड़ता था। वे यदा-कदा पति के यहा आया करती थीं। विवाह से पूर्व यदि वर की मृत्यु हो जाती तो कन्या वर के छोटे भाई के साथ विवाह कर सकती थी। इससे स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी।

धार्मिक जीवन-धर्म राजा की इच्छा और आवश्यकता से सचालित होता था। सूर्य उनका राष्ट्रीय देवता था। वह युद्ध-प्रिय समझा जाता था। उससे वे शत्रु के प्रति निर्ममता का व्यवहार करने की प्रेरणा लेते थे। उसके देवालय के सामने ही वे युद्ध-बन्दियों को नाना प्रकार की अमानुषिक यातनाए देकर मौत के घाट उतारते थे। उनका विश्वास था कि इससे उनका देवता उनसे प्रसन्न हाता है। इस धर्म के माध्यम से ही भावी नागरिकों में राष्ट्रीयता व देश-भक्ति की भावना उत्पन्न की जाती थी। उनका कुछ धार्मिक साहित्य उपलब्ध भी हुआ है। यह साहित्य देव-प्रार्थनाओ के रूप में है। उस साहित्य से विदित होता है कि असीरियन जादू टोने मे विश्वास करते थे। वे शकुन देखकर कोई कार्य आरभ करते थे। वे भूत-प्रेत में विश्वास करते थे तथा उनके प्रभाव से मुक्त रहने के लिए वे ताबीज धारण करते थ। वे आत्मा में भी विश्वास करते थे। उनकी धारणा थी कि मृत्यु के उपरान्त आत्मा (Narga) अलात (Alat) में प्रवेश करती है। अलात को एक राक्षसी रूप में माना जाता था। उसका चेहरा सिह की आकृति का माना जाता था।

---

1 विलड्यूरेन्ट 'सभ्यता की कहानी' पृ 251

आर्थिक जीवन–असीरिया के लोगा का आर्थिक जीवन बेबिलोनिया के आर्थिक जीवन के तुल्य ही था। इसके उत्तरी भाग के निवासी खेती करते थे तथा दक्षिणी भाग के लाग व्यापार। व्यापार यहा क धनी पुरुषों व सामन्तों के हाथ था। वे उन लोगों को हेय समझते थे ज सस्ती कीमत पर सामान खरीद कर ऊँची कीमतों पर बेचते थे। नदियों के पानी से खेता की सिचाई की जाती थी तथा बाढ़ रोकने के लिए दोनों तरफ बाँध बनाये जाते थे। गेहूँ, तिल, जौ व ज्वार की कृषि विशेष रूप से की जाती थी। नगर व्यापार के केन्द्र नहीं होते थे, पर उनको वैभवशाली युद्ध में लूटे माल से बनाया जाता था। खानें खोदी जाती थीं और 700 ई पू के लगभग यहा लोहा मिलने लग गया था जिससे कि वे अपने शस्त्र बनाते थे। कपड़ों की रगाई होने लग गयी थी। मिट्टी के बर्तन बनाये जाते थे तथा उन पर चमकदार रोगन किया जाता था। निन्हवे नगर के प्राय सभी घर भरे पूरे होते थे। सेनाचरिब के शासन में एक नहर बनाई गई थी जो निन्वेह म तीस मील दूर से पानी पहुचाती थी। अभी हाल में इस नहर का 1000 फुट लबा भग्नावशेष प्राप्त हुआ है। यह इतिहास की प्रथम पक्की नहर मानी जाती है। व्यापारी लोग व्यापार में निजी स्तर पर पैसा लगाते थे। धन उधार दिया जाता था तथा 25 प्रतिशत ब्याज की दर से धन वसूल किया जाता था। मुद्रा के रूप में सीसा ताबा और सोना प्रयुक्त किया जाता था। सेनाचरिब ने चाँदी के सिक्के चलाये थे। वे विश्व के इतिहास म प्रथम सिक्के माने जाते हैं। परन्तु सैनिक अभियानों के निरन्तर चलते रहने के कारण असीरिया की आर्थिक अवस्था विशेष अच्छी नहीं थी।

विज्ञान एव साहित्य–असीरिया ने सर्वाधिक उन्नति विज्ञान में की थी। औषधियों का ज्ञान उन्होंने बेबिलोनिया से प्राप्त किया था। वे खगोलशास्त्र के भी ज्ञाता थे। परन्तु उन्होंने यह ज्ञान भी बेबिलोनिया स प्राप्त किया था। उनके दार्शनिक चिन्तन के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। उन्हें वनस्पति विज्ञान का भी ज्ञान था। उन्होंने ऐसे पौधों की सूची बनाई थी जो औषधियों के निर्माण में सहायक थे। इन सूचियों में जो नाम प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ यूनानी हैं तथा यूनानी शब्दों को अग्रेजी में रूपान्तरित किये गये है, जैसे अमोनिया, केन, सेसमी, केमल, चेरी आदि। मिट्टी का तख्तियाँ प्राप्त हुई हैं-उससे प्रतीत होता है कि असीरियन इतिहास-लेखन से भी परिचित थे। उनका यह वर्णन रक्तरजित विजयों से परिपूर्ण है तथा उनमें पराजयों का विवरण उपलब्ध नहीं है। असुरबनिपाल के पुस्तकालय में पुस्तकों के रूप में 30 000 मिट्टी की तख्तियाँ उपलब्ध हुई है। इनमें से बहुत कम तख्तियाँ ही ऐसी है जा साहित्य की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। अधिकाश तख्तियाँ सरकारी दस्तावेज के रूप में हैं। असीरिया के लोग 'ऐ-रे-मियन' भाषा का प्रयोग करते थे। अत उनकी रचनाए अधिकतर इसी भाषा में उपलब्ध हैं। असीरियन सम्राटों ने भी इसी भाषा को प्रोत्साहन दिया। इस भाषा के अलावा असीरियन सुमेरियन तथा अक्कादी भाषाओं का भी प्रयोग करते थे।

कला

भवन निर्माण-कला-कला के क्षेत्र में असीरिया के लोग बेबिलोनिया का अपना गुरु थे। प्रस्तर-चित्रों के निर्माण में तो असीरिया बेबिलोनिया वालों से भी

आगे बढ़ गये थे। धनी व सामन्त नगरों में निवास करते थे। कला का विकास भी सर्वाधिक नगरों में हुआ। धनी पुरुषों के भवनों में कला विकास पाने लगी। राजमहलों में नक्काशी का काम होने लगा। बेबिलोनिया तथा आधुनिक अमरीकी स्थापत्य कला की भाँति असीरियाई स्थापत्य कला भी सौन्दर्य के स्थान पर विशालता पर विशेष जोर देती थी। उनकी धारणा थी कि भवन जितने विशाल ेंगे उतने ही सुन्दर होंगे। मैसोपोटामिया की कला परम्पराओं का अनुसरण करके असीरियाई स्थापत्य कला में भवन-निर्माण के मूलभूत साधन के रूप में ईंटों को ही अपनाया। लेकिन साथ ही उन्होंने पत्थरों का भी पर्याप्त प्रयोग किया। दक्षिणी प्रदेश से असीरिया ने मेहराब बनाने की कला अपनाई। वे लोग स्तम्भों का भी प्रयोग करते थे। कहते है कि ईरानियों ने स्तम्भो का प्रयोग इन्हीं लोगों से सीखा था।[1] राज प्रासादों के तोरण द्वारों पर भयानक आकृति के जानवरों की विशाल मूर्तिया स्थापित की जाती थीं। छत में बड़े-बड़े धरने रखे जाते थे तथा उन्हें खूब अलकृत किया जाता था। छत के भीतरी भाग पर प्राकृतिक दृश्य अकित किये जाते थे। असीरिया के छ सबसे विशाल एव वीर सम्राट थे। उन सबने भव्य-प्रासाद बनाने में महान सहयोग दिया। असुरबनिपाल द्वितीय ने कालाख मे ईंटों का एक विशालकाय देवालय बनवाया था। परन्तु दृढ़ता की दृष्टि से ये प्रासाद स्थूल थे।

मूर्ति-कला—असीरिया की मूर्ति-कला का हमे विशेष ज्ञान नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि निन्हवे और कालाख के कलाकार गोल मूर्तियो को गढ़ने के बजाय प्रस्तर चित्रों के अकन में अधिक रुचि लेते थ। खुदाई में मूर्तिया बहुत कम मिली है और जो मिली भी है, वे भी अविकसित है। पशुओं की मूर्तियाँ सजीव व शानदार बनती थीं। इसका प्रमाण हमें खोरसाबाद क नगर द्वार के समीप निर्मित बैलों की मूर्तियों से मिलता है। जानवरों की तुलना में मानव व देवताओं की मूर्तिया काफी अनगढ़ सी हैं और भौंडी लगती हैं। उनमे सजीवता का सर्वथा अभाव पाया जाता है। परन्तु ब्रिटिश सग्रहालय में रखी असुरबनिपाल द्वितीय की विशालकाय मूर्ति इनका अपवाद है। इसीलिए स्वेन (J E Swain) का कहना है कि असीरियन मूर्ति-कला बेबिलोनिया की मूर्ति-कला से अधिक यथार्थ तथा सजीव थी।[2]

चित्र-कला—असीरिया की चित्र-कला का विकास प्रस्तर-चित्रों के माध्यम से हुआ। उन समस्त प्रस्तर-चित्रों में मानव आकृतिया ही चित्रित हैं और वे सब समान ही मॉडल की बार-बार नकल की गई है। सिर समस्त चित्रों के विशाल है। मूछें भी सबकी समान है। धड़ इतने मोटे है कि गर्दन दृष्टिगत ही नहीं होती। इसीलिए मानव-चित्र पशुओं के चित्रों की अपेक्षा अधिक निर्जीव व बनावटी प्रतीत होते हैं। पूजा करते देवताओं के चित्र भी चित्रित है परन्तु चित्रों में भी मूर्तिकला की भाँति पशुओं के चित्र ही अधिक प्रभावशाली बन पड़े है। दीवारों पर जडी हुई पत्थर की पट्टियों पर आमतौर से युद्ध

1 विलड्यूरेन्ट 'सभ्यता की कहानी' पृ 256

2 Assyrian scaulpture was more realistic and like that of Babylonians

1 J E Swain

और आखेट के दृश्य ही अंकित है। इनमें सजीवता व तीव्रता खूब भरी पडी है। एक प्रस्तर चित्र का टुकडा मिला है उसमे एक बाघ बाघिन के साथ वृक्ष की छाव मे सुस्ता रहा है। यह चित्र प्रस्तर-चित्रकला का विश्व में सर्वोत्तम नमूना माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि असीरियन लोगो को अश्व व शेर अधिक पसन्द थे। परन्तु उन्होने गधा, बकरा, कुत्ते व हिरनो के भी चित्र काफी सख्या मे चित्रित किय है।

सभ्यता का विनाश–शक्ति के द्वारा प्राप्त वस्तु शक्ति स ही नष्ट हाती है। असीरियन लोगो का विश्वास अपनी ताकत पर था और इस ताकत के सहारे वे अपना शासन 150 वर्ष तक चलाते रहे। अन्त में उनकी युद्धप्रिय नीति के कारण व्यापार, कला व शान्तिपूर्ण सामाजिक जीवन सब नष्ट हो गये। सुप्रसिद्ध इतिहासकार टॉयनबी (Toynbee) अपनी पुस्तक 'स्टडी ऑफ हिस्ट्री' मे लिखता है-' *असिरियन सभ्यता क विनाश का कारण* यह नहीं था कि उनके शस्त्रो पर जग लग गई थी। सैनिक दृष्टि से वे निरन्तर प्रगतिशील व योग्य रहे। उनका विनाश इसलिए हुआ कि उनकी आक्रान्ता नीति ने उनको थका *दिया और वे अपने पडौसियों को असह्य हो गये।" अत हम देखते है कि असीरियन* इतिहास खूनी जमाने का इतिहास है। असीरिया निर्बल को अपना आसान शिकार समझता था और परास्त को इस प्रकार परेशान करता था कि वह उसका कभी बदला ही न ले सके। अत इस प्रकार अपमानजनक धूल म मिलना ही उसकी किस्मत म होना चाहिये। उनके समय में न तो मानव अधिकारों को सुरक्षा थी और न सुव्यवस्थित सरकार ही थी। प्रान्तो म स्थायी शासन भी नहीं था। कृषि गुलामो स कराई जाती थी और परास्त *सैनिक को ही उनकी सेना में रखा जाता था जो कि उनके प्रति वफादार नहीं हो सकते* थे। अत इस प्रकार का साम्राज्य विनाश को प्राप्त हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? असीरिया सभ्यता के विनाश के सन्दर्भ में विल ड्यूरेन्ट(Will Durant) लिखता है, "एक आघात से असीरिया इतिहास से विलुप्त हो गया। असीरिया के पतन पर लोगा को आश्चर्य अधिक हुआ, सुख उससे भी अधिक और दुख *किंचित मात्र भी नहीं हुआ।'* यह आघात था बैबिलोनिया व मीडीज का आक्रमण।

कालडीयन साम्राज्य व उसकी सभ्यता

असीरियन शासकों ने कालडीयन जाति को शक्तिशाली बनने स रोका था। परन्तु वे अपने प्रयास में असफल रहे। कालडीयन जाति के नेता नेबापोलेस्सर (Nabopolassar) (625 604 B C) ने असीरियन जाति पर आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया। यह भी प्रथम असीरियन सम्राट असुरबनिपाल का एक सूबेदार ही था। सम्राट की मृत्यु होते ही उसने 625 ई पू अपनी स्वतन्त्रता घोषित करदी। उसके राज्य की सीमा बेबिलान राज्य से मिलती थी। असीरियन साम्राज्य की निर्बलता का लाभ उठाते हुए उसने मीडिया के शासक उवक्षत्र से सधि करली और 612 ई पू में निन्वेह पर धावा बालकर असीरियन *साम्राज्य सदैव के लिए समाप्त कर दिया।* ये लोग बेबीलोन के समीप क निवासी थे और इस नगर से उन्हें प्रेम भी था। इस कारण इन शासकों ने बेबीलोन को ही अपने राज्य की राजधानी बनाया। इसके परिणाम स्वरूप बेबीलोन अपने लुप्त गौरव का पुन लगा। नेबूचद नजर (Nebuchad Nazzar) इस जाति का सर्वाधिक प्रतापी

सम्राट था। 604 ई पू म वह शासक बना था। उसने शासन सचालन योग्यता से किया। सर्वप्रथम उसने अपने राज्य के विद्रोहियो को दबाया और तदुपरान्त उसने आस-पास के राज्य को जीतना आरम्भ किया। यहूदी लोग इससे अप्रसन्न थ। इस कारण इसने जेरूसलम पर आक्रमण किया और यहूदियों को परास्त किया। बहुत से यहूदिया को बन्दी बना लिया गया। इस घटना का वर्णन बाइबिल में भी मिलता है। इसके उपरान्त उसने मिश्र के नीको फेराह पर आक्रमण किया और उसे भी परास्त कर दिया। इन सफलताओ से स्पष्ट होता है कि नेबूचद नजर एक कुशल सैनिक व साम्राज्यवादी शासक था।

योग्य शासक होने के नाते उसने सामाज्य की सुरक्षा व कला के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। बेबीलोन की सुरक्षा के लिए उसने 200 वर्ग मील में एक ऊँची दीवार बनवाई तथा नगर को भव्य प्रासादों से अलकृत किया। फरात नदी नगर के बीच से बहती थी। अत नदी के दोना किनारों की बस्तियों को मिलाने के लिए उसने एक पुल भी बनवाया। भाग्यवश उसे एसी रानी प्राप्त हुई थी जिसे कि प्रकृति से काफी प्रेम था। वह ईरान की राजकुमारी थी जहा कि अनेक अच्छे उद्यान थे। अत अपनी इस रानी को प्रसन्न करने की दृष्टि से उसने बेबीलोन में एक सुन्दर बाग लगवाया जिस कि "हैंगिग गार्डन" कहते है। वह बाग आज भी विश्व का आश्चर्य बना हुआ है। बाग व पासादा क अतिरिक्त उसन नगर में कई सुन्दर देवालय भी बनवाये।

धर्म-कालिडयन अपने को प्राचीन बबीलानिया वासियों का वशज मानते थ। अत उन्होंने बेबीलानिया सस्कृति को ही पुन जीवित करने का प्रयास किया। उन्होंने मार्दुक को ही अपना सर्वोच्च देवता स्वीकार किया, परन्तु उसका मानवीय रूप का त्याग कर उसका सम्बन्ध ग्रहों के साथ स्थापित कर दिया और इसीलिए उन्होंने गहो का अध्ययन भी आरभ कर दिया। देवताओ का यह रूप स्वीकार करने पर वे भाग्यवादी अधिक हो गये। वे अपने को भपने देवताओं की तुलना मे तुच्छ समझने लगे, परन्तु उनका जीवन भौतिकवादी अधिक बनता चला गया। उनकी धारणा बन गई कि कोई मनुष्य जीवन म बिना पाप किये नहीं रह सकता'। इसीलिए उनकी देव-स्तुतियों में भी भौतिक सुखों की याचना ही दृष्टव्य है।

विज्ञान-काल्डीयन लोग अन्धविश्वासी न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण क थे। अत उनके शासन-काल में विज्ञान की उन्नति सर्वाधिक होना स्वाभाविक था। सात ग्रहा को उन्होंने देवता समझा तथा वे उनकी उपासना भी करने लगे थे। तारा मण्डल को उन्होंने १२ भागों म विभक्त किया तथा उनका अच्छा अध्ययन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके शासन-काल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हुआ। इतिहासज्ञों का कहना है कि विश्व में वह पहली जाति थी जिसने कि ज्योतिष को ढगपूर्ण तथा क्रम से चलाने वाला विज्ञान बनाया। नबो रिमनु (Nabo Rimanu) तथा किडिनु (Kidinnu) उम काल के दो उल्लेखनीय ज्योतिषी थे।

साम्राज्य का अन्त-नेबूचद नजर की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य एव वीर योद्धा नहीं हुए। उनके निर्बल होने से केन्द्रीय शक्ति शिथिल पड़ने लगी और सामन्त वर्ग दिन पर दिन शक्तिशाली बनने लगा। इस जाति का अन्तिम शासक

भाग्यवश विद्वान था। इस कारण उसे प्रशासन में अभिरुचि न रही। इन कारणों से इस जाति का साम्राज्य भी अन्य साम्राज्यों की भांति विनाश को प्राप्त हुआ। यह सभ्यता मैसोपोटामिया सभ्यता का अन्तिम चरण मानी जाता है। इस सभ्यता को विनाश के गर्त मे पहुचाने वाला फारस का सम्राट सइरस (Cyrus) था।

मैसोपोटामिया की विश्व सभ्यता को देन

प्रोफेसर विल डयूरेन्ट इस विषय में लिखते है, 'जहा तक हमारे ज्ञान की पहुच हो सकती है हम यह कह सकते है कि सुमेरिया में ही सबसे पहले हमें राज्यों व साम्राज्यों के दर्शन होते है। सिचाई की सबसे पहली व्यवस्था का पता यहीं चलता है। वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के रूप में सबसे पहले सोने व चादी का प्रयोग यहीं हुआ। यहीं सबसे पहले लिपि का एक व्यापक पैमाने में विकास हुआ। सृष्टि और प्रलय की प्रथम कहानिया यहीं तैयार हुई। इतिहास के प्रथम विद्यालय और पुस्तकालय यहीं स्थापित हुए। साहित्य एव कविता के प्रथम दर्शन सुमेरिया में ही हुए। इतिहास के सबस पहले महल और मन्दिर, महराब, गुम्बद और स्तम्भ यहीं प्राप्त हुए है। इसके अलावा सुमेरिया म भी जहा तक पता चलता है सभ्यता के अभिशापों का व्यापक पैमाने पर प्रचलन सबसे पहल यहीं हुआ। गुलामी, स्वेच्छाचारिता, धार्मिकता, साम्राज्यवाद, युद्धों क पथम दर्शन हमे यहीं मिलते है।"

प्रश्न

1 दजला और फरात नदियों की घाटियो को महान सभ्यताओं का उद्‌गम क्या माना जाता है ?
Why should we call the valley of Tigris and Euphrates the cradle of great civilizations ?

2 हम्मूरबी कौन था ? वह इतिहास में इतना प्रसिद्ध क्या है ?
Who was Hammurabi ? For what he is so famous in History ?

3 हम्मूरबी कौन था ? बेबीलोनिया की सभ्यता को उसकी क्या देन थी ?
Who was Hammurabi ? What was his contribution to the Babylonion Civilization ?

4 सुमेरियन सभ्यता पर एक विवेचनात्मक लेख लिखिए।
Write a critical essay on Sumerian Civilization

5 बैबीलोनियन सभ्यता की निम्नलिखित क्षेत्रों में देन बताइये।
(अ) प्रशासन (ब) कला (स) साहित्य (द) विज्ञान।
Describe the legacy of Babylonian Civilization in the following fields
(a) Administration (b) Art (c) Literature (d) Science

4
चीन की सभ्यता

''कला, साहित्य तथा दर्शन के क्षेत्र में सुदूर पूर्व के पास जो भी निधि है वह लगभग पूर्णतया अथवा अप्रत्यक्ष रूप में चीनी प्रतिभा की उपज है।''

वी ए रिनाउफ

चीन की सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यता है। कुछ इतिहासकार बेबिलोनिया व रोम की सभ्यता का चीन की सभ्यता से प्राचीन बताते है, पर तथ्य यह है कि ससार के अन्य देश जब बर्बरता क अधकार में निमग्न थे, उस समय चीनी सभ्यता की ज्योति विश्व में जगमगा रही थी। जिस समय रोम शब्द का कोई अर्थ भी नहीं जानता था, यूनान और ईरान का कहीं अस्तित्व न था, उसके बहुत पहले ही चीनी लोग अपने देश का सभ्य बना चुके थे। प्रो तानयुनशान अपनी चीनी सभ्यता की प्राचीनता के विषय मे इस प्रकार कहत है, ''**पाश्चात्य विद्वान मिश्र और बेबिलोनिया की सभ्यता को काल के हिसाब से सबसे पुराने मान लेने मे गलती करते हैं। उनकी यह गलती इसलिए होती है कि लोगों को चीन के इतिहास का ज्ञान प्राय नहीं के बराबर है एव वे चीनी सस्कृति को हृदयगम नहीं कर पाये हैं।**'' अत चीन की सभ्यता मिश्र और रोम की सभ्यता से भी पुरानी है। इस सभ्यता का विकास भी मिस्र, सुमेरिया व भारत की भाति नदियों की उपजाऊ घाटियों में ही हुआ है।

राजनीतिक विकास–यदि हम पौराणिक गाथाओं म विश्वास कर चीन की सभ्यता का प्रारम्भिक काल खोजना चाहें तो हमें उसका विकास काल ईसा से हजारो वर्ष पूर्व का ज्ञात होता है। राजतन्त्र के चिन्ह चीन मे आरम्भ से ही पाये जात है। वैसे तो प्राचीन चीन म अनेक सम्राट् हुए परन्तु उनम से पॉंच सम्राट प्रमुख माने जाते हैं। चीन के इतिहासकार फ्यू-सी (Fu Hsi) को चीन का प्रथम सम्राट मानते है और उसका कार्य-काल 2852 ई० पू० से 2738 ईसा पूर्व निर्धारित करते है। चीन वालो की ऐसी मान्यता है कि वही यह सम्राट था जिसने चीनवासियों का शिकार खेलना, मवेशी पालना, सगीत, चित्रकला तथा रेशम के कीड़े पालना सिखाया था। इसके उपरान्त चीन का दूसरा प्रमुख सम्राट शेन नुग (Shen Nung) था। इसने चीन को एक कृषि प्रधान देश बनाने का प्रयत्न किया। चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान भी इसक शासन-काल में ही हुआ था। दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओ की नाप-तौल की विधि भी इसी सम्राट द्वारा चालू की गई थी। छोटे-छोटे भू-भागा म विभाजित चीन को सयुक्त देश बनाने का श्रेय ह्वाग टी (Huang Ti) को जाता है। इसे पीत सम्राट् भी कहा गया है। यह प्रथम व्यक्ति था जिसे महा सम्राट' की पदवी से विभूषित किया गया। इसने चीन मे जनसाधारण के लिए यातायात के साधन सुगम बनाये। नावों क निर्माण से उसने जल-मार्ग से भी यातायात आरम्भ करवाया।

कहा जाता है कि कुतुबनुमा का आविष्कार भी इसी ने किया था।[1] इसका कार्य-काल 2737 ई० पू० स 2705 माना जाता है। शेन-नुग वश का अन्तिम सम्राट ह्यू (Yu) था जिसने कि हासिया (Hesia) वश की नींव डाली। इस वश का कार्य-काल 2205 ई० पू० से 2197 ई० पू० माना गया है। चीन का प्रथम इतिहासकार चिएन माना जाता है। हालाकि उसने अपना वर्णन ह्वाग टी (पीत सम्राट) से किया है फिर भी उसन अधिक महत्व ह्यू (Yu) को दिया है। ह्यू का अर्थ 'सभ्यता' बताया गया है। इस वश में कुल 17 समाट् हुए और अन्तिम सम्राट् ने 1766 ई० पू० तक राज्य किया। इस वश का अन्तिम मम्राट् च्यीह (Chieh) था जो कि अपनी विलासिता के कारण त्वाग (Tuang) द्वारा गद्दी से उतार दिया गया।

त्वाग ने शाग वश की नींव डाली। इस वश के राजाओं ने 1766 ई० पू० से 1122 ई० पू० तक राज्य किया। इस वश के राजाओ के शासन-काल में चीन ने मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति कर ली थी। इतिहासकार जौन बाउल का कहना है कि शाग-वश के शासन काल में चीन साहित्य व कला में बहुत विकसित था। इनके 644 वर्षों के शासन काल में 28 सम्राट् हुए। उनके शासन काल मे चीन ने कला-कौशल व व्यवसाय में इतनी उन्नति की कि उसकी छाप दसवीं सदी तक बनी रही। इस वश के उपरान्त चाउ-वश (Chou Dynasty) चीन पर शासन करने लगा। इस वश का राज्य चीन पर 1122 ई० पू० से 250 ई० पू० तक रहा। इस वश का सस्थापक सम्राट् वु-वाँग (Wu Wang) था। इस वश के 872 वर्ष के शासन काल में 37 सम्राटों ने शासन किया और शासन इतना प्रजाहितकारी था कि इस वश के शासन का स्वर्ण-काल (Golden Age) की सज्ञा दी जाती है। 'चाऊ-ली' नामक पुस्तक से हम उस काल के कार्य-कलापों का विशद-ज्ञान होता है। कन्फूशियस, लाओ-जे, तथा मनशस मन्त भी इमी युग में आविर्भूत हुए थे।

इसी काल से चीन का क्रमबद्ध इतिहास आरम्भ होता है। इस काल मे चीन सभ्यता का विकास निरन्तर होता रहा। काँसे के अमृतवान व गुलाबदानो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होने लगा। लोहे के शस्त्रों का निर्माण भी इस काल में आरम्भ हो गया था। कृषि-कार्य म लोगों को परिश्रम करना पड़ता था, पर वे रुचि से इस कार्य को करते थे। प्रशासन की दृष्टि से यह एक आदर्श युग था। प्रो० तानयुनशान का मत है कि चाऊ वश के अधिकारियों और उनकी कर्त्तव्यपरायणता की प्रशसा करनी पड़ती है।'' इस वश के शासन-काल का एक बुरा परिणाम था सामन्तवाद का जन्म। इस वश का पतन सामन्तवाद के विकास और हूण जाति के आक्रमण के कारण ही हुआ।

सामन्तवाद के विकास ने चीन को अनेक छोटे-छोटे राज्यों मे विभक्त कर दिया। चीन की राजनीतिक एकता प्राय नष्ट हो चुकी थी। राज्य म अराजकता अपना पाव जमा रही थी, पर चिन (Chin) वशीय राजाओं ने इसका अस्तित्व की रक्षा की। यद्यपि चिन वश के राजाओं ने चीन पर शासन कम समय किया परन्तु चीन में सबसे पहले

[1] डॉ एस आर शर्मा 'मानव इतिहास की रूपरेखा' पृ 66

केन्द्रीय शासन स्थापित करने का श्रेय इस वश को ही है। इसी वश के नाम पर आज तक यह देश चीन कहलाता है। इस वश का सबसे प्रतापी सम्राट् शीह-व्हांगटी (Shih Huangti, 221 B C) था। इसके नाम का अर्थ है- प्रथम सम्राट्। वह सामन्त वर्ग का शत्रु था। अत उसने सामन्तवाद के दृढ़ दुर्ग को धराशायी कर दिया। सामन्तवर्ग ने अपना सगठन भी कर लिया था। उनके सगठन का नाम 'लू' (Lu) था। इस पर कन्फूशियस (Confucius) ने अपनी पुस्तक "Spring and Autumn Annals" में अच्छा प्रकाश डाला है। वह साम्राज्यवादी भी था। सिकन्दर महान की भाति वह भी एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित करना चाहता था।[1] चीन में एक सगठित सरकार की स्थापना करना भी उसका एक प्रशसनीय कार्य था। वह एक युग का सृष्टा बनना चाहता था। इसलिये उसने समस्त प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों को जलवा दिया। विश्व के सात आश्चर्यों में से एक चीन की दीवार उसी के द्वारा बनवाई गई थी। यह दीवार उसने चीन को हूणा के आक्रमणों से बचाने के लिए बनवाई थी। यह 1500 मील लबी, 20 फीट चौड़ी तथा 22 फुट ऊची थी। इसमें जगह-जगह बुर्जे भी निर्मित थीं। परन्तु उसी दीवार का अब वह महत्व नहीं रहा है। वहा की वर्तमान साम्यवादी सरकार इसे हेय दृष्टि से देखती है और उसे नष्ट करा रही है। इस कारण अब उसे विश्व के सात आश्चर्यों मे न माना जाय तो कोई अत्युक्ति न होगा। उसकी मृत्यु के 30 वर्ष बाद उसका वश भी राज वश नहीं रहा।

हान-वश (Han Dynasty, 202 B C 220 A D) इस वश का समागम चीन के दक्षिणी भाग से हुआ और इस वश के शासनकाल में अनेक सुधार हुए। इस वश की स्थापना एक दीर्घकालीन क्राति के उपरान्त हुई थी। इस क्राति के सेनानायक परस्पर लड़े थे और अन्त मे 202 ई० पू० में इस क्राति की समाप्ति हुई तो हान वश की प्रभुता आरम्भ हुई।

आर्थिक सुधार-1 पन्द्रह वर्ष से छप्पन वर्ष तक के पुरुषों से पॉल टैक्स लिया जाने लगा। 2 भूमि कर 1/10 कर दिया गया। 3 राज्य की सुरक्षा के लिए महान सेना रखी गई और उस सेना का व्यय भी जनता ही पर डाला गया। 4 देश के व्यापार को विकसित करने के लिए 175 ई० पू० में सम्राट् टीसिन (Tisin) ने ताँबे के सिक्के चलाये और 130 ई० पू० इन सिक्कों में सुधार किया गया। 5 राज्य के बढते हुए व्यय का सामना करने के लिए सरकार ने नमक पर एकाधिपत्य कायम कर लिया। 6 राज्य के उच्च कर्मचारियों का वेतन आधा धन स्वरूप व आधा अनाज के रूप मे दिया जाने लगा।

शासन सम्बन्धी सुधार-1 इस वश के शासनकाल में सामाजिक असमानता को दूर करने का प्रयास किया गया। कानून पर हम्मूरबी के कानूनों का प्रभाव था। न्यायालय अमीर व गरीब के भेद के बिना न्याय करने लगे। 2 राज्य के प्रान्तों से

1 Like Alexander the great he sought to strengthen his dynasty by spreading the notion that he was God...

Will Durant

सैनिक अफसरों को हटाकर राज्यपाल नियुक्त किए गये। 3 कर्मचारियों की नियुक्ति परीक्षा लेने के उपरान्त की जाने लगी। परीक्षा मे उत्तीर्ण उम्मीदवारों को ही उनके योग्य पदों पर नियुक्त किया जाता था। 4 राज्य को प्रशासन की दृष्टि से कई प्रांतों में विभक्त कर दिया गया। 5 योग्य एव शिक्षित कर्मचारियों की प्राप्ति व जनता को शिक्षित करने की दृष्टि से स्कूल भी खोले गए। जिस प्रकार से मिस्र में सिकन्दरिया शिक्षा का केन्द्र था उसी प्रकार स 124 ई० पू० हीन-याग (Hien Yang) को चीन में शिक्षा का केन्द्र बनाया गया। वह विज्ञान का केन्द्र भी बन गया। यहा के प्राध्यापक विदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे। इतिहास, ज्योतिष व प्राकृतिक विज्ञान पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

केन्द्रीय शासन व्यवस्था-सम्राट् सबका प्रधान होता था और शासन सत्ता उसी के हाथ में केन्द्रित रहती थी। परन्तु सलाहकार के रूप में वह प्रधान मन्त्री रखता था और उस प्रधान-मन्त्री के नेतृत्व में न्याय, शिक्षा व धर्म आदि कई विभाग होते थे। कर्मचारी जनता व कृषकों को परेशान न कर सकें इस हेतु शासक उनके पीछे गुप्तचर रखता था। सैनिक कर्मचारियों में कमी की गई। राजा दैवी-सिद्धात में विश्वास करते थे व जनता भी उन्हें देवता का अश मानती थी।

परिणाम-इस प्रकार की शासन व्यवस्था से सम्राट् के अधिकारों में वृद्धि हुई। वह दिनों-दिन निरकुश शासक का रूप धारण करता गया। दैवी-सिद्धान्त का पोषक होने के नाते वे अपने को परमात्मा का पुत्र घोषित करने लगे। 140 ई० पू० से 87 ई० पू० तक शासक वू-टी (Wu Ti) के समय में यह निरकुशता अपनी चरम सीमा पर पहुच गई। राज्यपालों के पद पैतृक बन जाने के कारण सामन्तवाद प्रबल हो गया। नगरों की जनसख्या बढ़ जाने के कारण कई सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो गईं। परन्तु यह सब होते हुए भी हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि चीन का उस समय व्यापार विकसित हुआ तथा लोग शिक्षित हुए। उसने अपनी विजय नीति से साम्राज्य का विस्तार किया। कोरिया (Korea) और मचूरिया को अपने साम्राज्य का अग बना लिया। चीन की दीवार के होते हुए भी हून (Huns) जो आक्रमणकारियों के रूप में चीन आने लगे थे, उन्हें वू-टी ने धकेल दिया। इन समस्याओं का समाधान सम्राट् वाग-माग (Wang Mang) द्वारा भी करने का प्रयास किया गया। परन्तु फिर भी राज्य में अशाति फैल गई। जगह-जगह उपद्रव होने लगे। इस अशात वातावरण को शात करने में तीस वर्ष लगे और अन्त में इस वश की सत्ता फिर दृढ़ता से स्थापित हो गई।

शाति स्थापित हो जाने के उपरान्त चीन का व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय रूप लेने लगा। चीन के व्यापारी भारत, फारस, सीरिया और रोम साम्राज्य से व्यापार करने लगे। रेशम के क्षेत्र में चीन प्रमुख हो गया। व्यापार विकसित होने के साथ-साथ इस काल में बौद्ध-धर्म (Buddhism) भी चीन में प्रबल रूप से प्रसारित होने लगा। शिक्षा का विकास तीव्र गति से होने लगा। कला का विकास हुआ।

तांगवश (618 907 A.D) 581 619 ई० तक चीन में स्यूई (Sui Dynasty) वश का शासन रहा। इस वश के शासक ने 611 614 ई० तक कोरिया से युद्ध किया जिसका अन्त चीन की पराजय में हुआ। इस युद्ध में चीन को काफी जन व धन

की हानि उठानी पड़ी। इस कारण युद्ध के समाप्त होते ही चीन की आन्तरिक अवस्था शोचनीय हो गई और राज्य में हर जगह उपद्रव होने लगे। राज्यपालों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इसी बीच सेनानायक ली-यान (Li Yuan) ने सत्ता हथिया ली और ताग-वश की स्थापना की। इस वश में ताई-सुग (Tai Sung 627 ई) अति उल्लेखनीय सम्राट् हुआ। उसने अपनी विजय-नीति से चीन को एक विशाल साम्राज्य बना दिया। इसी के शासन-काल में चीन में इस्लाम (Islam 628 ई०) तथा ईसाई धर्म (635 ई०) ने चीन में प्रवेश किया। इसने दोनों धर्मों का स्वागत किया।

इस वश के शासन काल में चीन ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की और वह एशिया में एक महान देश बन गया। सर्वप्रथम तो इस वश के शासकों ने राज्य के विस्तार की ओर ध्यान दिया। शीघ्र ही समस्त पूर्वी मगोलिया, तुर्किस्तान, अनाम (Annam), चम्पा (Champa) और खेमर राज्य जीत लिए गये। इस साम्राज्य विस्तार का परिणाम यह हुआ कि चीन के व्यापारी अब दूर-दूर जाने लगे और 613 ई० में जापान ने भी अपना बाजार चीन के कारीगरों के लिए खोल दिया। इस प्रकार इस काल में चीन का आर्थिक विकास काफी अच्छा हुआ।

केन्द्रीय शासन व्यवस्था-इस वश के शासनकाल में सत्ता का केन्द्रीयकरण हुआ। केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के अधिकार कम करके अपने को शक्तिशाली बना लिया। शासक के आधीन तीन मन्त्रियों का एक मन्त्रिमण्डल होता था। प्रधानमन्त्री आन्तरिक विषय, कृषि व न्याय व्यवस्था की देखभाल करता था। दूसरा मन्त्री उद्योग, यातायात व जन-हित के काम देखता था। मन्त्रिमण्डल का तीसरा सदस्य सेनाध्यक्ष होता था। राज्य के समस्त महत्वपूर्ण विभाग इन मन्त्रियों के ही अधीन होते थे। शिक्षा सरकार के अधीन थी। जगह-जगह स्कूल खुलवा कर जनता को शिक्षित बनाने का प्रयास किया गया। राज्यों के राज्यपाल पुन सैनिक अधिकारी नियुक्त होन लगे। इस प्रकार ताँग वश के शासन काल में चीन में एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना हुई जिससे चीन में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ।[1]

शासन-सुधार

भूमि-सम्बन्धी-भूमि को राज्य की सम्पदा घोषित कर दी गई और सरकार ने अपनी इच्छा से कृषकों को भूमि वितरण किया। जकाइस पिरेनी का कहना है कि 1917 की रूस की क्रान्ति से पूर्व सिवाय चीन के भूमि सम्बन्धी सुधारों में ऐसा कठोर सुधार किसी भी देश ने नहीं किया था। इस भूमि सुधार का मुख्य प्रयोजन यही था कि चीन के समस्त किसानों को कृषि के लिए भूमि प्राप्त हो जाय। 90 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले प्रत्येक कृषक को 15 एकड़ भूमि दी गई। भूमि-कर लेने के स्थान पर अब उनसे वार्षिक किराया लिया जाने लगा। भूमि बेचने का अधिकार अब कृषकों का नहीं रहा। भूमि के बदले आवश्यकता पड़ने पर कृषकों से सैनिक सेवा भी ली जाति थी।

---

1 'The consolidation of the Tang Dynasty is a turning point in the history of China.

धार्मिक-चीन में इस समय बौद्ध-धर्म फैल रहा था। परन्तु इस वश के शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता लाने की दृष्टि में बौद्धों के समस्त मठों को धराशायी करवा दिया और केवल तीन मठ रहने दिये। सब धर्मों के प्रसार की अनुमति दी गई।

न्याय-सम्बन्धी-जस्टीनियन दण्ड सहिता की भाति 637 ई० में चीन के शासक ने भी एक कानून सहिता तैयार करवाई। यह कानून सहिता मानवता व सामाजिक समानता पर आधारित थी। इसके बन जाने से सामाजिक असमानता दूर हो गई थी। शिक्षित मनुष्यों का राज व समाज दोनों जगह आदर होने लगा और राजकीय पद भी शैक्षणिक की योग्यता पर मिलन लग, सामन्त व दीन मनुष्ययों का भेद मिटने लगा। इस कानून सहिता पर कन्फ्यूशियस के मानवीय विचारों का भारी प्रभाव था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ताग वश के शासन काल में भी चीन ने पर्याप्त प्रगति की। साम्राज्य विस्तार के साथ राज्य में सुख व शान्ति का प्रसार हुआ। इसीलिए इस काल को चीन का द्वितीय स्वर्ण-काल कहते हैं।

शुग-वश (960 to 1279 A D) यह सत्य है कि ताग वश के शासन काल में चीन ने पर्याप्त उन्नति की। परन्तु अन्त में इस वश के राजाओं के समय भी शान्ति न रही। आठवीं शताब्दी के अन्त में इस वश के शासकों को उत्तरी चीन से हटना पड़ा। जब वे दक्षिणी चीन में बस गये तो तिब्बत से उनका झगड़ा हो गया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि ताग वश दिनोंदिन निर्बल होता चला गया और 960 ई में एक वीर योद्धा चाओ काग यीन (Chao Kuang Yin) ने चीन में अपनी प्रभुता कायम कर ली और शुग (Sung Dynasty) वश की स्थापना की।

जॉन बाउल का मत है कि शुग-वश के शासक सर्वाधिक सभ्य थे। चाओ काग यीन एक महान् राजनीतिज्ञ सम्राट् था। उसका पुत्र चेन त्सुग (Chen Tsung) था। वह भी अपने पिता की भाति एक शक्तिशाली सम्राट् था। परन्तु वह शक्ति के सहारे राज्य नहीं करना चाहता था। उसने कई प्रकार के सुधार किये जिन्हें जनसाधारण ने स्वीकार किया। ताई-त्सू (Tai Tsu 960 976) इस वश का एक प्रतापी शासक था। उसने कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों पर शासन करने का प्रयास किया। परन्तु इस वश का महानतम शासक वाग अन-शिह (Wang An Shih) माना जाता है। उसका कथन था कि "राज्य को वाणिज्य, व्यापार तथा कृषि का समस्त प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेना चाहिए और इस उद्देश्य से कि मजदूरों के हितों की रक्षा हो सके और उन्हें धनिकों के शोषण से बचाया जा सके।" इसीलिए उसने कृषकों के हित के लिए ग्रीन शूट्स (Green Shoots) नियम बनाये। इसके अन्तर्गत कृषक सरकार से ऋण ले सकते थे। उन्हें अब जमींदारों व ऋण देने वालों से ऊची ब्याज दर पर ऋण लेने की आवश्यकता नहीं थी। उन्हें जमानत के रूप में अपनी उपज रखनी पड़ती थी और जो मनुष्य कर देने में असमर्थ होते थे वे बेगार देकर कर से मुक्त हो सकते थे। माप-तोल अधिनियम से उसने राज्य में बेईमानी को दूर करने का प्रयास किया। विदेशी आक्रमणों से रक्षा के लिए उसने सेना को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। इसके लिए उसने सैनिक सेवा अनिवार्य . परन्तु उसके विचार व सुधार समय से आगे थे। इसीलिए यह सब होते हुए भी

शुग वश के राजाओं के समय में अराजकता प्रसारित होने लगी। इस अराजकता ने मगोलों को चीन में आने का अवसर दिया। मगोलों ने चीन को लूटा। इस शुग वश के अन्तिम सम्राट् को मार डाला गया। इस प्रकार चीन पर मगोलों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। मगोलों के इस आधिपत्य के साथ ही चीन में युयान वश की नींव पड़ी और प्राचीन युग समाप्त हो गया।

चीन के प्राचीन विचारक-जिस प्रकार हमारे भारत देश में महान् महात्मा तथा विचारक उत्पन्न होते रहे हैं उसी प्रकार महात्मा व विचारक चीन में भी समय-समय पर उत्पन्न होते रहे हैं। प्राचीन चीन में उत्पन्न हुए विचारकों में कन्फूशियस, लाओ-त्से तथा मैन्सिअस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके विचारों ने चीन के धर्म, दर्शन व सामाजिक जीवन को महान रूप से प्रभावित किया है।

कन्फ्यूशियस (Confucious, 551 to 497 ई० पू०)

इसका जन्म 551 ई. पू. में चीन के एक उच्च कुल में हुआ था। उसका जन्म स्थान शानतुग प्रदेश (Shantung) का लू (Lu) स्थान था। परन्तु इसके पिता का देहान्त इसके बाल्यकाल में ही हो जाने के कारण इसे दरिद्रनारायण का उपासक बनना पड़ा। दरिद्रता इसको ज्ञान उपार्जन से नहीं रोक सकी। पढ़-लिखकर जब वह विद्वान हो गया तो उसने अपने विचारों को जनसाधारण तक फैलाने की दृष्टि स एक विद्यालय खोला।

एक शिक्षक के रूप में-उसके समय में चीन में युद्ध चल रहा था। इस कारण चीन का वातावरण क्षुब्ध एव अशान्त बना हुआ था। परन्तु उसे मानव की नेकी मे विश्वास था। उसने अपने जीवन का परम-उद्देश्य जनसाधारण को सुखी बनाना बना लिया था। वह ऊच-नीच तथा पारस्परिक राग-द्वेष में विश्वास नहीं रखता था। इसी कारण उसके विद्यालय में अमीर व गरीब दोनों प्रकार के छात्र स्थान पा सके। विद्यालय के छात्रों में किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था और उन्हें वहा अमीर व गरीबी के भेदभाव को भूलना पड़ता था।

उन्होंने चार वस्तुओं-जादू भरी कहानिया, शक्ति प्रदर्शन के कार्य, भयकर अपराध व देवता का कभी उल्लेख नहीं किया।

कन्फ्यूशियस ने मानव-समाज के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने का सतत् प्रयत्न किया। उसने मानव-समाज का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण किया और समाज की नैतिकता को उन्नत करने की दृष्टि से उसने जीवन के प्रत्येक अग के विभिन्न नियम बनाये। कर्त्तव्य का पालन करना ही ज्ञान प्राप्त करना था। वह कहा करता था कि मानव अपने सुआचरण से स्वय का तथा अपने परिवार का कल्याण कर सकता है। पारिवारिक जीवन सुखी बनाने की दृष्टि से वह स्त्री को पुरुष के अधीन रहना श्रेयस्कर समझता था। पिता और पुत्र में पारस्परिक कैसे सम्बन्ध होना चाहिए तथा उन्हें एक दूसरे के प्रति किस प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिऐ, इसका विश्लेषण भी उसने बड़ी ही उत्तम रीति से किया। उसकी शिक्षा का मूल सिद्धान्त सद्व्यवहार था। सरकारी कर्मचारियों की शिक्षा पर भी वह जोर देता था। शिक्षा में उसने कर्म करने को भी स्थान दिया। उसका कहना था कि हमारा प्रत्येक कर्म ऐसा होना चाहिए जो कि दूसरों के लिए उदाहरण

हो। उसकी मान्यता थी कि अपने पूर्वजों के पद-चिन्हों पर चलकर मानव अपना जीवन सुखी बना सकता है। अन्त में उन्होंने एक श्रेष्ठ मनुष्य में तीन गुण बताये। वे थे-प्रतिभा, साहस और दूसरों के प्रति कल्याण की भावना। उसने सच्चाई व अल्प भाषण पर जोर दिया। ईर्ष्या का त्याग तथा विनम्रता को आवश्यक बताया।

एक प्रबन्धक के रूप में-चिरकाल तक शिक्षक रहने के उपरान्त उसको चुग-टू (Chung tu) का मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। इस पद के ग्रहण करने के उपरान्त उसका राजनीतिक जीवन आरम्भ होता है। इस सेवा-काल में वह अपराधों की कमी करने व सरकार को सुव्यवस्थित करने में बड़ा सफल रहा। इस प्रकार के पद पर आसीन रहते हुए भी उसने मानव की भलाई में अपार श्रद्धा रखी। सरकार की आवश्यकता के सम्बन्ध में उसकी धारणा थी कि सरकार, केवल प्राकृतिक सम्बन्धों को जो कि मानव से मानव के बीच होने चाहिऐ-कायम रखती है। यह शासक में शासकीय गुणों को जन्म देती है। इसके अतिरिक्त वह सरकार को प्रजा में स्वामिभक्ति, पिता में वात्सल्य प्रेम तथा पुत्रों में पुत्रीय प्रेम उत्पन्न करने का भी सुगम साधन समझता था। जब उसने मजिस्ट्रेट पद पर सन्तोषजनक कार्य किया तो उसको ल्यू (Lu) राज्य का न्याय मन्त्री नियुक्त किया गया। इस पद पर उसका कार्य सन्तोषप्रद रहा। उसके सद्प्रयत्नों से राज्य में चोरी, फरेब और अत्याचार समाप्त होने लगे। वह राजतन्त्र का समर्थक था। वह जन-साधारण को शासन-कार्य के लिए अयोग्य समझता था। उसका कहना था कि शासन कुलीन लोगों के हाथ में रहना चाहिए। परन्तु उसका यह भी कहना था कि राजा को परोपकारी व प्रजाहितकारी होना चाहिए। इसी कार्यकाल में एक बार उससे प्रश्न पूछा गया कि अपराधी का सिर काटना कहा तक उचित है ? इसके प्रत्युत्तर में उसने कहा, " श्रीमन् राज्य में मृत्यु-दण्ड की आवश्यकता ही क्या है ? यदि आप वास्तव में अच्छा होने की इच्छा व्यक्त करेंगे तो प्रजा भी आपकी भाति अच्छी हो जायेगी। शासक में हवा का गुण होना चाहिए और प्रजा में घास का।" उसके सुधारों की जनता ने सराहना की, परन्तु वे सुधार शासक को अच्छे नही लगे। इस कारण अपने पद से उसे त्याग-पत्र देना पड़ा।

लेखक के रूप में-राजकीय पद से त्याग-पत्र देने के उपरान्त वह 13 वर्ष तक देश में इधर-उधर भ्रमण करता रहा। इस भ्रमण काल में वह अपने दार्शनिक विचारों का प्रसार करता रहा। वह अपने को धर्म-प्रवर्तक नहीं मानता था वरन् एक संदेशवाहक समझता था। इसीलिए उसने अपने दार्शनिक विचारों को अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से जन-साधारण तक पहुचाने का प्रयास किया। उसने अपने जीवन-काल में पाच ग्रन्थों की रचना की। वे ग्रन्थ थे- बुक ऑफ हिस्ट्री, स्प्रिंग व ओटमन के एनेल्स, बुक आफ ओड्स, बुक ऑफ चेन्जेज और बुक ऑफ राइट्स। अब वह साहित्य सेवा करके अपने विचार जन-साधारण तक पहुचाने लगा। इसकी साहित्य सेवा भी इतनी प्रभावपूर्ण थी कि तत्कालीन शासक उससे विचलित हो उठे और उन्होंने उसके समस्त साहित्य सामग्री को अग्नि-देव के भेंट चढ़ाने के आदेश दे दिए।

कन्फ्यूशियस एक अच्छा दार्शनिक भी था और उसका दर्शन-शास्त्र राजनैतिक सदाचार पर आधारित होता था। अत उसने अपने साथियों को सिखाया कि ज्ञान में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता है। सब मनुष्य आपस में भाई हैं। उसने बुद्धि, सत्य, मानवता को मनुष्य के अपूर्व गुण बताये। कन्फ्यूशियस का धर्म सुनागरिक बनाना था। वस्तुत वह सामाजिक एव राजनीतिक सुधारक था। उसकी शिक्षाओं में दार्शनिकता की अपेक्षा व्यावहारिकता अधिक थी।[1]

दार्शनिक के रूप में- कन्फूशियस की तुलना बहुधा एक धर्म-प्रवर्तक के रूप में महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी से की जाती है। परन्तु वह न तो धर्म प्रवर्तक ही था और न धर्म प्रसारक ही। वह मानव प्रकृति का अध्ययन कर्त्ता था। अत वह धार्मिक कार्यों पर अधिक न बोलकर मानव विचारों पर अधिक अपने विचार व्यक्त करता था। वह आवागमन के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता था। उसका कहना था कि जब तक तुम्हें *जीवन का ही पता नहीं तब तक तुम मृत्यु के विषय में कैसे जान सकते हो ?* वह ससार से पलायन करने के विरुद्ध था। उसका कहना था कि ईश्वर की खोज में समय व्यतीत करने से अच्छा है कि मानव-सेवा में अपने समय का सदोपयोग करो। कन्फूशियस सामान्यतया परिवर्तन को भी एक बुराई ही मानता था।

अन्तिम दिन और मृत्यु- परन्तु इतना सब करने पर भी कन्फूशियस अपने जीवन काल में न तो अधिक समाज का ही प्रिय बना और न शासक वर्ग का ही। उसने चीन के प्रत्येक राज्य का भ्रमण किया, परन्तु कोई भी शासक सच्चे रूप में उसका अनुकरण करने वाला नहीं बना। निरन्तर 13 वर्ष तक उसने विभिन्न राज्यों का भ्रमण किया। अधिक सफलता न मिलने पर वह वापस लौट आया। अपने जीवन से वह निराश हो गया। अत वह अधिक जीने का इच्छुक नहीं था। इसी समय उसके एक प्रिय शिष्य की मृत्यु हो गई। उस शिष्य के दारुण दु ख को वह सहन नहीं कर सका और 497 ई पू में इस स्वार्थी दुनिया से वह सदैव के लिए विदा हो गया। मरते समय भी उसकी निराशा उससे दूर नहीं थी। अत मरते समय उसने कहा, 'मरन का समय मेरा समीप है, परन्तु किसी योग्य शासक ने मुझे अपना गुरु नहीं बनाया।' यद्यपि उन्हें अपने जीवन काल में निराशा प्राप्त हुई परन्तु बाद में उनकी शिक्षाओं का प्रचार हुआ। विल ड्यूरेन्ट के अनुसार कन्फ्यूशियस के "इस दर्शन की सहायता से चीन ने एक सामूहिक सम्मिलित जीवन का, विद्या और ज्ञान के प्रति प्रशसा की उत्साहमयी भावना का एव एक शात तथा स्थायी सस्कृति का विकास किया जिसने चीनी सभ्यता को इतनी सुदृढ व शक्तिशाली बना दिया कि प्रत्येक आक्रमणों का सामना करने के बाद भी जीवित रही।"

---

1 J E. Swain A History of World Civilization p 228
'These sayings make it clear that Confucius was primarily a social and political reformer with strongly human tendencies'

लाओ-त्से (Lao tse, 604 ई पू 517 ई पू)

लाओ का मूल नाम 'ली' था जिसका अर्थ होता है 'बेर' । लाओ का अर्थ है 'पुराना आचार्य' । अत जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर सिद्धार्थ बुद्ध कहलाया उसी प्रकार कीर्ति प्राप्त होने पर वह 'लाओ-त्से' कहलाया । वह देश की तत्कालीन राजनीति से असन्तुष्ट था । ज्ञान व चिन्तन से भी उसे घृणा थी । वह बौद्धिक मनुष्य को खतरनाक समझता था । वह ज्ञान का सदाचार से कोई सम्बन्ध नहीं समझता था । इसीलिए वह सीधे-सादे या भोले-भोले लागों को चाहता था । वह स्वार्थी व धूर्त व्यक्तियों को घृणा करता था। वह जीवन की कसौटी अनुभव को समझता था । उसका कहना था कि लागों के जीवन में राज्य की ओर से कम हस्तक्षेप किया जाय और उन पर कम से कम नियम लागू किये जावें ।

लाओ-त्से मानव की कृत्रिम सभ्यता को हेय समझता था । वह प्रकृति पर अधिक निर्भर करता था । इस कारण वह कहा करता था कि मनुष्यों को प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए । प्रकृति चुपचाप अपना कार्य सम्पन्न करती है । इसी प्रकार मानव को भी अपनी प्रकृति के अनुकूल कार्य करते रहना चाहिए । लाओ-त्से जीवन की सादगी के लिए शहरी जीवन भी घृणास्पद समझता था । उसने जन-साधारण को प्रेम व दया का उपदेश दिया । लाओ-त्से के कुछ उपदेश सक्षेप में इस प्रकार हैं -

"यदि तुम किसी से झगड़ा न करो तो ससार में किसी को भी तुमसे झगड़ा करने का साहस न होगा । यदि तुम्हें कोई चोट पहुचाये तो उसका बदला दयालुता से दो। ससार में सबसे कोमल वस्तु कठोर वस्तु से टकराकर उसे परास्त कर देती है ।"

स्पष्ट है कि लाओ-त्से के उपदेश महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी से समानता रखते हैं।

लाओ-त्से एक रहस्यवादी था और उसके जीवन के विषय में बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है । कुछ लोग उसे कल्पित ही मानते हैं । लेकिन अधिकाश इतिहासकार इस धारणा के हैं कि उसका जन्म 604 ई पू में होनान प्रात में हुआ था और वह कनफ्यूशियस के समकालीन था । उन्होंने अपने उपदेशों की 'ताओ-ते-चिग' (Tao Te Ching) नामक पुस्तक रची । 'ताओ' का अर्थ है मार्ग और 'ते' का अर्थ है सद्गुण । अत इस ग्रन्थ का अर्थ हुआ *'मार्ग तथा सद्गुण का ग्रथ'* । इस ग्रन्थ के आधार पर ही ताओवाद एक नवीन पथ चल पड़ा । उसका कहना था कि परमात्मा के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए गहन-चिन्तन व प्रार्थना आवश्यक है । उसने दु ख का मूल कारण लालच बताया है । जीवन के उत्थान के लिए उसने नैतिकता को आवश्यक माना है ।

मैन्सिअस (Mencius , 372 ई पू -289 ई पू)

कनफ्यूशियस के अनुयायियों में मैन्सिअस का नाम अधिक उल्लेखनीय है । उसका विश्वास था कि मनुष्य जन्म से अच्छा होता है, किन्तु वह यह नहीं जानता कि वह सर्वदा अच्छा ही रहेगा और सत्य का पालन करेगा । उसका कहना था कि मानव को विनम्र रहना चाहिए । उसने नैतिकता पर विशेष बल दिया था । उसका कहना था कि । अपने माता-पिता के प्रति सम्मान का भाव रखना चाहिए ।

मैन्सिअस भी लाओ-त्से की भाति प्रकृति को जीवन में महत्व देता था। उसका कहना था कि मनुष्य प्रकृति से अच्छा होता है। राज्य को कानून के माध्यम से उसके जीवन में न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिए। वह राजनीति में अभिरुचि रखता था। वह जनतन्त्रवादी था। उसके कुछ विचार इस प्रकार हैं- **"सब लोग बराबर हैं। राज्य में जनता का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और राजा का कम। राजा में जो भी बुराइया हैं उन्हें दूर करो। शेष अपने आप ठीक हो जावेगा।"** वह प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का महान् विरोधी था। उसकी धारणा थी कि सरकार जनता के भले के लिए होती है न कि उसके शोषण के लिए। वह बेगार व जबरन कर लेने का विरोधी था। उसने क्रान्ति का समर्थन किया है पर युद्धों का निन्दनीय बताया है। परन्तु मैन्सिअस की महानता तथा विद्वता का श्रेय उसकी माता को जाता है।

प्राचीन सभ्यता का वर्णन

सामाजिक जीवन-चीन का सामाजिक जीवन शान्ति का प्रतीक है। चीन के तत्कालीन सामाजिक जीवन ने भी शान्ति में अपूर्व सहयोग दिया है। चीन निवासी सैनिक बनना घृणास्पद समझते थे। इतिहासकार डेविस इस कथन के समर्थन में लिखते हैं कि **"चीनी सभ्यता सुनिश्चित रूप से शांति के लिए सगठित है और चीन ही केवल ऐसा देश है, जहां सैनिक होना अपमानजनक समझा जाता है।"**

उस समय चीन में चार वर्ग थे। उनमें प्रथम वर्ग मण्डारिन (Mandarin) का था। मण्डारिन भारत के ब्राह्मण वर्ग तुल्य शिक्षित एव बुद्धिमान वर्ग था। इस मण्डारिन वर्ग का समाज में बडा महत्व था। विद्वान होने के कारण समाज इनका आदर करता था वह उनके निर्देशन में चलता था। इसलिए क्रेनब्रिन्टन लिखता है कि **इस वर्ग ने चीन में बाहरी विचारों को ही आने से नहीं रोका वरन् इसने चीन की सभ्यता को स्थायी बना दिया।** दूसरा वर्ग किसानों का था। चीन भी भारत की भाति एक कृषि प्रधान देश है। अत द्वितीय कृषक वर्ग चीन का एक प्रमुख वर्ग था। तीसरा वर्ग कारीगरों का था। वह वर्ग भी सम्पन्न था। चौथा वर्ग अधिकारियों का था। अधिकारी वर्ग में ऊच-नीच के भेद-भाव नहीं थे। इस प्रकार चीन में साधारणत वर्गवाद नहीं था। नागरिकों का सामाजिक स्तर प्राय समान ही था।

समाज व परिवार में विद्वान मनुष्य का आदर होता था। जब किसी परिवार के एक सदस्य को विद्वान मान लिया जाता था तो उस परिवार के समस्त सदस्य खुशी मनाते थे क्योंकि एक मनुष्य को विद्वान मान लेने से बढ़कर परिवार व समाज में और कोई सम्मान न था।

चीन के तत्कालीन सामाजिक जीवन की आधार-शिला वहा की सयुक्त परिवार प्रथा थी। चीन वाले भी भारतवासियों की भाति सयुक्त परिवार प्रथा के अभ्यस्त थे। **इतिहासकार नैथैनियल प्रैट तथा म्यूरियल जीन ड्रमड का कहना है कि जो व्यक्ति चीनी परिवार को नहीं समझता, वह चीन को नहीं समझ सकता। चीन में बड़े परिवार वाला होना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता है।** पिता व अन्य वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार रूपी राज्य का शासक होता था। प्रत्येक व्यक्ति की आय उस वयोवृद्ध के पास जमा

होती थी। घर का सारा खर्च वही व्यक्ति चलाता था। राज्य की ओर से भी परिवारों के वैधानिक रूप को मान्यता प्राप्त थी। परिवार में पुत्रों का अधिक आदर था। चीन के सामाजिक जीवन में नैतिकता पर भी ध्यान दिया जाता था। पुत्र और पुत्रियों की शादिया भारतवर्ष के समान माता-पिता द्वारा ही की जाती थी। बाल-विवाह उस समय प्रचलित न था। तलाक-प्रथा उस समय थी। धनी पुरुष बहु-विवाह के अतिरिक्त रखेलिया भी रखते थे। सयुक्त-परिवार प्रथा में सबकी श्रद्धा थी और प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान करना अपना कर्तव्य समझता था। सयुक्त-परिवार प्रथा के अन्तर्गत् स्त्रियों को कुछ अधिकार प्राप्त न थे - हालाकि कन्फूशियस ने स्त्रियों को अधिकार देने की बड़ी वकालत की थी। परन्तु ताई-सुग (Tai Sung) की मृत्यु के उपरान्त कई स्त्रियों को उच्च तथा उत्तरदायी स्थानों पर नियुक्त करने का भी उल्लेख मिलता है। चीन में उस समय जाति प्रथा भी थी। परन्तु मानव-समाज को विभिन्न जातीय वर्गों में मनुष्य का *कर्म ही विभक्त करता था न कि उसका जन्म।*

सामाजिक जीवन में नैतिकता-चीनी समाज में शिष्टाचार तथा विनय पूर्ण व्यवहार को बहुत महत्व दिया जाता था। कनफ्यूशियस के विचारों की प्रधानता के कारण सदाचार चीन सभ्यता का मेरूदण्ड बन गया था। परन्तु इस अपूर्व गुण का कारण वहाँ के लोगों की कायरता नहीं समझना चाहिये, क्योंकि वे स्वाभिमानी होते थे और वे उजड्डपन व मारपीट को अशिष्टता का द्योतक समझते थे। शताब्दियों तक चीन की सरकार दुराचारी व्यक्तियों के साथ-साथ उसके सम्बन्धियों को भी दड देती रही। चाऊ-वश के समय से ही चीनी परिवार अपने बच्चों को यह शिक्षा देते रहे कि वे हर हालत म अविनय, नशेबाजी और झगडे से बच कर रहें।

चीनियों का भोजन-चीनी परिवार साधारणत चावल खाते थे। धनी पुरुष मच्छली व सूअर का मास खाते थे। चीना गरीब आदमियों का भोजन था। चीना एक प्रकार का ज्वार या बाजरे के समान अन्न होता था। पेय पदार्थों में चाय प्रमुख थी।

भवन-अधिकाश व्यक्ति ईंटों, सरकडों व मिट्टी से निर्मित मकानों में रहते थे। छतें टहनियों, मिट्टी या खपरेल की होती थी। खिड़किया व दरवाजे कम रखे जाते थे। मकानों की फर्श भी कच्ची होती थी। परन्तु धनी पुरुषों के मकान भव्य होते थे। उनके भवनों के चारों ओर बगीचे तथा सुन्दर सरोवर होते थे।

वस्त्र-चीनी प्रारभ में सन (Jute) के वस्त्र धारण करते थे। इसके उपरान्त सूती वस्त्र बुने जाने लगे। सर्दी से बचाने के लिए जाकिट धारण किया जाता था। मण्डारिन लोग कीमती वस्त्र धारण करते थे। उनकी पत्निया भी रगीन कढ़ाई युक्त लम्बे व लहराते वस्त्र पहिनती थीं। मण्डारिन लोग सिर पर टोप भी धारण करते थे। उनके कढ़ाई के वस्त्र उनके राजकीय पदों के द्योतक होते थे।

धर्म-चीनवासी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे भी प्रकृति की उपासना करते थ। व आकाश (Yang) और पृथ्वी (Yin) को क्रमश पुरुष और स्त्री के रूप में समझते थ। आकाश उनका सर्वशक्तिमान देवता था। मण्डारिन वर्ग भारत के ब्राह्मण वर्ग तुल्य था,

परन्तु भारत की भांति चीन में पुजारियों का वर्ग न था। चीन का राजा परमात्मा का पुत्र माना जाता था। इस कारण चीन में राजा का समुचित आदर होता था।

चीन का धर्म कन्फ्यूशियस की विचारधारा व भारत के बौद्ध धर्म से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुआ। इतिहासकार क्रेन ब्रिन्टन की तो यह धारणा है कि चीन में भारत, यूरोप व अरब की भांति विशेष धर्म नहीं था। यहां के लोग नैतिकता में अधिक विश्वास रखते थे। अतः उनका धर्म नैतिक सिद्धान्तों पर ही विशेष रूप से आधारित था और इसमें कन्फ्यूशियस से महान सहयोग प्राप्त हुआ। शनैः शनैः कन्फ्यूशियस की शिक्षायें चीनियों के धर्म का प्रमुख अंग बन गईं। चीन के अशिक्षित अपने पूर्वजों की पूजा करते थे पर शिक्षित लोगों की इसमें आस्था कम थी। चीनी परिवारों में मृत व्यक्तियों की पटिकायें रखी जाती थीं जो धार्मिक उत्सवों में प्रस्तुत की जाती थीं। मरने के उपरान्त भी माता-पिता का उसी प्रकार आदर किया जाता था जैसा कि उनका जीवन-काल में किया जाता था। चीन के लोग उस समय अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि भी चढ़ाते थे। चीन के धर्म की भारत के धर्म से तुलना करते हुये जॉन बाउल लिखता है कि "भारतीय धर्म चाहे काल्पनिक हो परन्तु चीन का धर्म वास्तविक, धार्मिक कार्यों से सम्बन्धित तथा ठीक आचरण वाला था।" चीनवासी अपनी धार्मिक भावनाओं से सम्बन्धित कई उत्सव भी मनाते है। नव वर्ष का उत्सव दो हफ्ते तक मनाते है और हेमन्त का उत्सव सबसे उत्साहप्रद होता है।

भाषा और साहित्य–चीन की भाषा मिश्र की तरह चित्रलिपि में है। भाषा की उत्पत्ति अति प्राचीन मानी जाती है। चीनी भाषा का सीखना कठिन है। इस कारण मण्डारिन वर्ग के मनुष्य ही अधिक विद्वान बनते हैं। परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के महत्व को समझते हुये वहां की सरकार द्वारा उसे सरल एवं सुगम बनाने का प्रयास किया जा रहा है। चित्रलिपि शनैः शनैः वर्ण लिपि में परिवर्तित की जा रही है।

भारत की भांति चीन का भी प्राचीन साहित्य पद्यात्मक था। चीनी लोग अपने विचारों को कविता द्वारा व्यक्त करते थे और कवितायें संक्षिप्त लिखना पसन्द करते थे। कवियों में अपनी रचनाओं द्वारा पाठकों के समक्ष चित्र प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता होती थी। फिर भी जन साधारण को शिक्षा ग्रहण करने में कठिनाई होती थी। महान् से महान् विद्वान को दस हजार से अधिक चीनी शब्द याद करना कठिन होता था। परन्तु अधिकांश चीनी लोग अपने व्यवसाय के अनुकूल शब्दावली भली-भांति याद कर लेते थे। चीन देश में अनेक बोलियां प्रचलित थीं। कभी-कभी तो चीन के एक ही प्रदेश के व्यक्ति को दूसरे प्रदेश की बोली समझने में कठिनाई होती थी।

चीन में उस समय निःशुल्क शिक्षा नहीं थी। अतः साधारण व्यक्तियों के बच्चे शिक्षा पाने में अक्षम रहते थे। इसी कारण उच्च पदों पर बहुधा मण्डारिन लोग ही आसीन होते थे। परन्तु महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपनी सुविधाओं में कटौती करके अपने बच्चों को शिक्षा के लिए विद्यालय भेजते थे। नियमित रूप से होनेवाली परीक्षाओं में विद्यार्थियों की स्मृति और साहित्यिक योग्यता की परख की जाती थी। चीनी विद्यार्थी लकड़ी की तख्तियों व लिनन के वस्त्र पर लिखते थे।

ताई-ली-पो (Tai Li po) उस समय का विख्यात कवि था। विद्वान उसकी तुलना कीट्स (Keats) से करते हैं। साहित्य के दृष्टिकोण से चाऊ-वंश का शासनकाल चीन के इतिहास में स्वर्ण युग तक माना जाता है। इसी काल में 'इतिहास का ग्रन्थ' और 'गीतों का ग्रन्थ' इन दो महान् ग्रन्थों की रचना हुई। सू-मा-शीन (Ssu Ma Chien) ने इतिहास लिखना आरंभ किया। तई-ली-पो के अलावा तू-फ्यू (Tu Fu) भी उस काल का एक प्रख्यात कवि था। साहित्य की दृष्टि से प्राचीन चीन को तीन भागों में विभक्त किया है - प्रथम कन्फ्यूशियस काल, द्वितीय हान का रजत-युग (Han Silver Age) और तीसरा ताग का स्वर्ण काल। च्यू-सी (Chu Hsi) ने अपनी गद्यात्मक रचनाएं वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र पर रचीं। ल्यू-सन (Lu Hsun) का हम आधुनिक चीनी उपन्यास का प्रतिनिधि मान सकते हैं। हान वंश के शासनकाल में चीन के प्रथम शब्दकोष का प्रकाशन हुआ। ऐतिहासिक पुस्तकें भी लिखी गईं।-

दर्शन और विज्ञान-भारतवासियों की भांति चीन निवासी भी आत्मचिंतन तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य होते है। वहाँ के दर्शनशास्त्र पर भारत की तरह धार्मिक भावनाओं का प्रभाव स्पष्ट पड़ा है। चीन का दर्शन-साहित्य आरंभ से ही उच्च कोटि का तथा गम्भीर भावों से पूर्ण रहा है। लाओत्से (Lao tse) चीन का प्रथम दार्शनिक माना जाता है। लाओत्से तथा मेन्सियस की विचारधाराओं से चीन का दर्शन साहित्य प्रभावित हुआ है पर कन्फ्यूशियस के विचारों का चीन क दर्शन पर अधिक प्रभाव पड़ा है। इनके अतिरिक्त मोत्सू भी एक अच्छा विचारक था। वह विश्व बन्धुत्व की भावना का समर्थक था। उसका कहना था कि ईश्वर भलाई चाहता है और बुराई से घृणा करता है। मेन्सियस ने युद्ध की निन्दा की व योद्धाओं को अपराधियों की सज़ा दी। वह प्रजातन्त्र से राजतन्त्र को अच्छा समझता था। चीनी दार्शनिक मनुष्यों को आपस में प्रेम करना, आपस के कार्यों में सहयोग देना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहिष्णुता का पाठ सिखाते थे। चीनी कहावत थी कि मेरे शत्रु में भी कुछ है जिससे मै कुछ सीख सकता हूँ।

विज्ञान के विकास में तत्कालीन चीन पिछड़ा हुआ था। इसके अतिरिक्त जिन वस्तुओं का आविष्कार भी हुआ, उन आविष्कारों को विध्वंसक कार्यों में प्रयुक्त नहीं किया गया। चीन ने पारा और बारूद को पाश्चात्य देशों की भाँति जीवन के विनाश का साधन नहीं बनाया। परन्तु चीनी आतिशबाजी से परिचित थे और उसके लिए वे विस्फोटक सामग्री का प्रयोग करते थे। ईसा से १५२ वर्ष पूर्व चीन में बीजगणित व रेखागणित पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो गई थीं। चाउ के सामन्त ने कुतुबनुमा का आविष्कार किया था। अन्ध-विश्वास ने चीन निवासियों को शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में बढ़ने से रोक रखा था। भारत की तरह चीन वाले ज्योतिष विद्या के भी अच्छे ज्ञाता थे और ईसा से 152 वर्ष पूर्व चीन के ज्योतिषियों ने ग्रहण के विषय में पता लगा लिया था। यूरोपवासियों से पांच शताब्दी पूर्व वे पुस्तकें छापते थे। वे अपनी पुस्तकों में जिस कागज का प्रयोग करते थे, वह विश्व का पहला वास्तविक कागज था। व्यक्तियों की पहिचान के लिए अंगुलियों की छाप के महत्व को समझने वाले सर्वप्रथम चीनी लोग ही थे।

कला-दर्शनशास्त्र में अग्रसर होने पर भी चीन वासी कला के प्रति उदासीन नहीं रहे। प्राचीनकाल में चीन में कला इस प्रकार विकसित थी कि उसे कलाकारों का देश कहा जाता था। कलाकार का भी समाज में आदर होता था, परन्तु फिर भी स्थापत्यकला और मूर्तिकला चीन में अधिक विकसित नहीं थी। स्थापत्यकला का उदाहरण तो केवल चीन की दीवार ही है। दीवार के मेहराव वाले दरवाजे तथा चौकोर बुर्जे दर्शनीय है। शी-ह्वाग-टी (Shi Haung Ti) का प्रासाद भी उस समय की स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण था। चीन की स्थापत्य कला का सौन्दर्य वहा के पेगोडाओं (Pagodas) में भी देखा जा सकता है। मूर्तिकला को चीन वाले कला नहीं मानते थे। अत इस क्षेत्र में उनका पिछड़ा होना स्वाभाविक था। शाग, चाऊ, हान तथा ताग वशीय राजाओ के समय मूर्ति-कला का भी विकास हुआ। चीनी मूर्ति-कार कासे के बर्तनों पर नाना प्रकार की मूर्तिया अकित करते थे। उड़ते हुए अश्व तथा नागों के चित्र भी उन बर्तनो पर चित्रित है। बौद्ध-धर्म के प्रसार के साथ भी चीन में मूर्ति-कला का विकास हुआ, चित्रकला में चीन निवासी बहुत सिद्धहस्त थे। शान-तुग (Shan tung) के प्रदेश में ईसा के दूसरी सदी पूर्व की कब्रें उस काल की विकसित चित्रकला का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। उन कब्रों की दीवारों पर रथ, घुड़सवार, सम्राटों के स्वागत हाथी, घोड़ों के जुलूस के सुन्दर चित्र चित्रित हैं।आरभ में चीनी चित्रकार ऊटों के बालों क बुश का प्रयोग करते थे। वाटर कलर से वे टाट पर दैनिक जीवन के चित्र बनाते थे। इसके उपरान्त चीनी चित्रकारों ने सिल्क के वस्त्र पर चित्र बनाना आरभ किया। प्रकृति के चित्रण मे उन्हें आश्चर्यजनक सफलता मिली। चित्र-कला के विकास में उनकी चित्र-लिपि से भी महान सहयोग मिला। चित्र-कला के विकास में समय के साथ बदलते राजवशों के साथ भी परिवर्तन आता रहा। चीनी चित्रकार अपने मनोविनोद के लिए चित्र बनाते थे। ह्वाग-वी (Wang Wei,699 759 ई) अपने समय का एक उल्लेखनीय चित्रकार था। वह चित्रकार के साथ कवि भी था। अत वह अपने काव्यात्मक विचारों को बहुधा अपनी चित्र-कला द्वारा अभिव्यक्त कर दिया करता था। मू-हिसी (Mu Hsi) तथा लैग क्यूई (Lang Kuei) भी अपने समय के अच्छे चित्रकार थे। चीनी के बर्तनों की चित्रकारी (Parcelain) सुग (Sung) वश के समय चरमोत्कर्ष पर थी। सगीत-कला को भी चीन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। चीनियों का मत था कि सगीत विहीन जीवन, जीवन नहीं है। सगीत को वे अपनी ग्लानि निर्वाण का साधन समझते थे। कहा जाता है कि चीनियों ने 5000 वर्ष पूर्व सगीत का आविष्कार कर लिया था। परन्तु प्रारम्भिक सगीत भी दर्शन-शास्त्र पर ही अवलम्बित था। चाहे चीन का सगीत हमारे कानों को प्रिय न लगे परन्तु फिर भी वह उच्च कोटि का था।

व्यवसाय-चीन भारत की तरह आरम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। अत वहा के निवासियों का भी उस काल में मुख्य व्यवसाय खेती करना था। चावल की पैदावार के लिये वे आरम्भ से ही नहरों का प्रयोग करते थे। कृषि के अतितिक्त उनका दूसरा व्यवसाय पशुपालन था। मछली पकड़ने का व्यवसाय भी उस समय उन्नत दशा में था। चीन में बुना हुआ उच्च कोटि को रेशम पाश्चात्य देशों में भेजा जाता था।

कहने का तात्पर्य यह है कि चीन के मनुष्य हस्त-कला से अनभिज्ञ नहीं थे और वे व्यापार करने में भी पटु थे। चीनी व्यापारी मलाया, तुर्किस्तान, भारत और रोम आदि देशों के साथ व्यापार करते थे। दूसरी ई पू से वे चाय का उत्पादन करने लगे। शाग-वश के काल में खानों का खोदना आरभ हो गया। चीनी के बर्तन बनाना उनका खास उद्यम था। पीतल के बर्तनों पर वारनिश करने में भी वे बड़े दक्ष थे। कागज तथा स्याई व रगों का निर्माण भी उनका प्रमुख व्यवसाय हो गया था।

शासन-व्यवस्था-सम्राट को चीन में परमात्मा का पुत्र माना जाता था। इससे स्पष्ट है कि चीन के तत्कालीन सम्राट देवी-सिद्धान्त के आधार पर शासन करते थे। वह राज्य का सर्वोच्चाधिकारी होता था। अपने समस्त अधिकारियों की नियुक्ति वह स्वय करता था। उसके आधीन चार मन्त्रियों की परिषद् होती थी। इस परिषद का अध्यक्ष राजकुमार होता था।

प्रातीय प्रशासन का प्रारम्भ ग्राम से होता था। प्रत्येक प्रात में एक न्यायाधीश और राज्यपाल होता था। परन्तु आज की भाति जैसा कि प्रजातन्त्र राष्ट्रों में होता है, प्रातो को कई मामलों में स्वतन्त्रता प्राप्त थी। प्रान्त के समस्त कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा सचालित नहीं होते थे। परन्तु चीन के इस राजनैतिक सगठन में सामन्तों का विशेष जोर था। बड़े-बड़े पद केवल शिक्षित वर्ग को दिये जाते थे। सामन्त लोग करों द्वारा अपने खजानों को ही भरने में व्यस्त रहते थे। अत केन्द्रीय सरकार की आर्थिक दशा अच्छी नहीं रहती थी। इसी कारण चीन के साम्राज्य के उत्थान व पतन में इन सामन्तों का बहुत हाथ रहा। आय का प्रमुख साधन कृषि-कर था। बेन फिंगर का कहना है कि हैनरी जॉर्ज ने जिस भूमि-कर पर 19 वीं शताब्दी में जोर दिया था वह भूमि-कर चीन में उस समय था।

पाश्चात्य देशों के राजनीतिज्ञों ने चीन के तत्कालीन प्रशासन की पर्याप्त प्रशसा की। विल ड्यूरेन्ट (Will Durant) ने चीन की शासन व्यवस्था को बहुत अच्छा बताया है और कहा है कि चीन का प्रशासन राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र का एक सुन्दर समन्वय था।

चीन में जब भी वश-परिवर्तन होता था तो साम्राज्य में अशान्ति व अराजकता फैल जाती थी। इसके बावजूद भी प्राचीन चीन में महान तथा सुप्रशासक सम्राट पैदा हुए। शी-हयाग-टी (Shi Huang Ti) चीन का महान सम्राट माना जाता है। उसने सामन्तवाद को समाप्त किया तथा उत्तरी तथा दक्षिण चीन को सयुक्त किया। उसने एक विधि-सहिता भी तैयार करवाई। चीनवासियों को एक महान नेशन में बदलने वाला वही था। वू-टी (Wu Ti) तथा ताई-शुग (Tai Sung) भी उसके पद-चिन्हों पर ही चले। शुग वश के समय राजकीय समाजवाद (State Socialism) का भी प्रयोग किया गया। चीन की जनता को कई सुविधाए प्रदान की गईं। सभी कल्याणकारी कार्यों को राज्य के नियन्त्रण में ले लिया गया और जनहित के अनेक कार्य किये गये।

चीन का दड-विधान विशेष कठोर नहीं था। अमानुषिक सजा नहीं दी जाती प्रशासन में योग्य व्यक्ति ही स्थान पाते थे। सरकारी पदों के लिए कोई आरक्षण

नहीं था। चरित्रवान व प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही प्रशासन में उत्तरदायी स्थान प्राप्त कर पाते थे। योग्य अधिकारियों के चयन के लिए चीन में 'प्रतियागिता परीक्षा' (Competitive Examination) भी प्रारभ की गई थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि चीन का प्रशासन उस समय उत्तम तथा आदर्श रूप था।

चीन-सभ्यता की विशेषताए-जिस प्रकार आज क युग में चीन एक महत्वपूण देश माना जाता है, उसी प्रकार प्राचीन काल में भी एक सभ्य एव सुसस्कृत देश था। परन्तु जब हम इसकी सस्कृति व सभ्यता का अध्ययन करत है तो हम स्पष्ट विदित होता है कि इसकी सभ्यता शनै शनै विकसित हुई है। इस सभ्यता के विकास मे उनका भौतिक शक्तियों पर विजय पाना तथा आध्यात्मिक प्रवृति को अपनाना बड़ा सहयोगी सिद्ध हुआ है। उनमें लोक-कल्याण की भावना थी। अत उन्होंने अहभाव को विश्व बन्धुत्व के समक्ष प्रधान स्थान नहीं दिया। दूसरी विशेषता यह है कि चीन की सभ्यता शाति का पोषण करने वाली थी। सैनिक वर्ग हेय समझा जाता था। विद्या और गुण से सम्पन्न व्यक्तियों का आदर किया जाता था। वैज्ञानिकों के आविष्कारों को भी सृजनात्मक कार्यों में ही प्रयुक्त किया गया। चीन वासियों के हृदय में मानव-कल्याण की भावना तथा शाति की सुन्दर धारणा ही प्रधान रही। चीनियों का जीवन अधिक निर्मल, अधिक नैतिक था और वे प्रत्येक स्थान पर समझदार व्यक्ति व अच्छे नागरिकों के समान प्रस्तुत होते थे। चीन के लोग विद्वानो का आदर करते थे। धार्मिक क्षेत्र में वे सहिष्णु बने रहे। वे लाग धार्मिक भेद-भाव मे विश्वास नहीं करते थे। चीन-सभ्यता के इन गुणों के आधार पर एच जी वेल्स ने लिखा है **''यही कारण है कि आक्रमणकारी और राजवश आये और चले गये लेकिन चीनी सभ्यता के जीवन का क्रम अब भी अपरिवर्तित रूप से विद्यमान है।''**

विश्व-सभ्यता की प्रगति में चीन की देन- पिछल पृष्ठों के वर्णन वे यह स्पष्ट होता है कि चीन सभ्यता का विश्व इतिहास मे गौरवमय स्थान है। चीनवासियों ने मानव-सभ्यता के विकास में अपूर्व सहयोग दिया। यहाँ हम केवल उन्हीं महत्वपूर्ण देनों का ही वर्णन करेंगे जिन्होंने चीन सभ्यता को समस्त विश्व में विख्यात बनाया है। यह हमें भलिभाति विदित है कि कुतुबनुमा, बारूद, मुद्रण-यन्त्र, रेशम, चाय, चीनी के बर्तन आदि चीन से ही विश्व के विभिन्न देशों में पहुच हैं। चाऊ-वश के शासन काल में विकसित व्यापार ने यह आवश्यक कर दिया कि वस्तुआ की अदला-बदली के स्थान पर मुद्रा का प्रचलन होना चाहिए। 221 ई० पूर्व चीन में वस्तुओ के अदला-बदली समाप्त कर दी गई। गोल आकृति की मुद्राओं का प्रचलन किया गया। नकली मुद्रा के प्रचलन पर कठोर प्रतिबन्ध था। 5 वीं शती पूर्व चीन में बैंक प्रणाली अधिक विस्तार के साथ प्रयोग में आई।[1]

---

1 एस आर शर्मा मानव इतिहास की रूप रेखा' पृ 71

चीन-सभ्यता के उपरोक्त विवरण के आधार पर हमें स्वीकार करना पड़ता है कि चीन वासियों ने जिस सभ्यता का विकास अपने देश में किया वह उनकी मौलिक देन नहीं थी; परन्तु जिस नवीन कलेवर में वह चीन में प्रकट हुई वह चीन की स्थानीय सस्कृति के रूप में न बधकर विश्व-व्यापी हो गई। भारतीय सभ्यता से तो इसका सम्पर्क अति प्राचीन काल से ही था। बौद्ध-धर्म ने दोनों देशों के मध्य अच्छा सास्कृतिक सम्पर्क स्थापित कर दिया। भारत के अलावा कोरिया, जापान व हिन्द-चीन भी चीनी सभ्यता के अति प्रभावित हुए हैं। जापान की सभ्यता के विकास में चीनी सभ्यता का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है। सुदूर पूर्व की कला, दर्शन व साहित्य पर भी चीनी प्रभाव दृष्टव्य है। इसीलिए बी एफ रेनफ ने लिखा है ''कला, साहित्य और दर्शन में सुदूरपूर्व के पास जो कुछ भी है, लगभग वह सम्पूर्णत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चीनी प्रतिभा की ही उपज है। जे ई स्वेन (J E Swain) के मतानुसार चीनी सभ्यता इतनी पुरातन है और इसमें इतने उत्थान-पतन आये हैं तथापि यह अपने विकास में अपरिवर्तित रही है।[1] यह भी इसकी परम-विशेषता है। वाल्तायर (Voltair) ने भी इसकी इस अपरिवर्तनशीलता की अति प्रशसा की है

प्रश्न

1 हान-वश के समय में हुए शासन सुधारों का वर्णन कीजिए।
Describe the reforms introduced during the Han Dynasty

2 ताग-वश के शासनकाल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Enumerate some of the salient features of the Tang Dynasty

3 चेन सुग ने अपनी जनता को सुखी बनाने के लिए कौन से सुधार किये ?
What reforms were introduced by Chen Tsung for the benefit of his people ?

4 कन्फ्यूशियस कौन था ? उसके सामाजिक विचारों की विवेचना कीजिए।
Who was Confucius ? Comment on his religious and social principles

5 चीन की प्राचीन सभ्यता को सक्षेप में लिखिए।
Give a brief sketch of the early Chinese Civilization

---

1 Chinese civilization represents the longest unbroken chain of development known.
J E. Swain

6 तांग और सुंग वंश के शासकों की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
Describe the achievements of Tung and Sang Dynasties

7 कन्फ्यूशियस के उपदेशों का वर्णन कीजिए। उनके उपदेश बुद्ध के उपदेशों से कहा तक भिन्न थे ?
Describe the teachings of Confucius How far were his teachings different from those of Buddha ?

5

यूनान की सभ्यता

''मशीनों के अतिरिक्त हमारी सस्कृति का कदाचित ही कोई ऐसा लोकिक तत्व हो जिसका उद्‌भव यूनान में न हुआ हो। हमारी सस्कृति में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसकी प्रेरणा यूनान से न मिली हो।''

-विल ड्यूरेन्ट

प्रस्तावना-प्रत्येक देश की सभ्यता व उसके इतिहास पर वहा की भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। पिछले अध्यावओं में वर्णित सभ्यताओं के विकास पर वहा नदियों का असर पड़ा है। इसी कारण मिस्र, मैसोपोटामिया व चीन की प्राचीन सभ्यताए वहा की नदियों की घाटी में विकसित हुईं। परन्तु यूनान को नदियों का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। यूनान भी भारत की भाति एक प्रायदीप है जो बालकन प्रायद्वीप के दक्षिण में स्थित है। इसके तीन तरफ समुद्र है और वह समुद्री किनारा भी भारत के समुद्री किनारे से अधिक कटा-टूटा है। देश के मध्य में पर्वत श्रेणिया हैं। अत देश का भीतरी भाग समतल व कृषि योग्य नहीं है। इन भौगोलिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप यूनान सभ्यता में निम्न विशेषताओं का समावेश हो गया -

(1) *यूनान सभ्यता का विकास नदियों की घाटी में न होकर पर्वतीय प्रदेश में हुआ है।* पर्वतीय भाग होने के कारण यहा यत्र- तत्र नगर आबाद हुए और सभ्यता का विकास ग्रामीण सभ्यता में न होकर नगरों की सभ्यता के रूप में हुआ।

(2) *समुद्र तट पर आबाद होने के कारण वे यूनान के लोग अच्छे नाविक बने।* कृषि योग्य भूमि उपलब्ध न होने के कारण वे व्यापार करने लगे और उनके लिए पतवार उतनी ही आवश्यक हो गई जितनी कि मिश्र, मैसोपोटामिया व चीन के किसानों के लिए हल *आवश्यक था।*

(3) यूनानवासी जो उपनिवेशवादी बने वह अपने भौगोलिक कारणों से ही बने।

(4) पर्वत - शृखलाओं व पठारों के कारण ही यहा नगर-राज्य (City States) आबाद हुए और उनमें राजनीतिक एकता कभी स्थापित न हो सकी। इस कारण वहा की सभ्यता राजतन्त्र (Monarchy) की छत्र-छाया में न पनप कर प्रजातन्त्र (Democracy) की छाया में विकसित हुई।

(6) पर्वतों की शृखलाओं ने यहा भवन-निर्माण के लिए प्रस्तर तो प्रस्तुत किये ही पर साथ में स्थापत्य कला व मूर्ति-कला के विकास में भी परम- सहयोग प्रदान किया। यूनानवासी इन दोनों कलाओं के क्षेत्र में अन्य देशों से बाजी इन पर्वत-शृखलाओं के कारण ही मार सके। एथेन्स (Athens) के उत्तर में स्थित पन्टेलीक्स (Mt ' पर्वत इस दिशा में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस पर्वत से विशुद्ध श्वेत

सगमरमर उपलब्ध होता है। इतिहासकार स्वेन का कहना है कि इस सगमरमर के न मिलने पर यूनानवासी अपनी इन उपलब्धियों (स्थापत्य कला व मूर्ति कला) से वचित ही रह जाते ।[1]

सभ्यता का विकास-यूनान की सभ्यता यूरोपीय सभ्यता का विकास म अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। इसे यूराप-सभ्यता का उद्गम स्थान माना गया है।[2] यूरोप में अनेक पुरातत्ववेत्ता पैदा हो चुके है जिन्हाने मिश्र, मैसोपोटामिया व भारत मे अनक उत्खनन कार्य करक वहा की प्राचीन सभ्यताओं के सन्दर्भ में अनेक सनसनी जनक तथ्य खोज निकाले है। यूनान भी उन पुरातत्ववेत्ताओं की दृष्टि से नहीं बच सका। अमेरिका मे जन्मे जर्मन पसारी हेनरिच श्लीमेन (Heinrich Schliemann) तथा इगलैण्ड निवासी सर आर्थर इवान्स (Sir Arthur Evans) ने यूनान सभ्यता की प्राचीनतम खोज निकालने हेतु यहा उत्खनन कार्य आरभ किया। हनरिच श्लीमेन होमर (Homer) की कविता का बड़ा शौकीन था पर उसे इलियड (Iliad) क कथानक में विश्वास नहीं था। अत 1875 म उसने ट्राय (Troy) माइसन (Mycenae) तथा तिरिन्स (Tiryns) नगरों के प्राचीन स्थाना पर खुदाइ कराई तथा उनके अवशष प्राप्त किये। इसी प्रकार आर्थर इवान्स ने 1894 में क्रीट (Crete) में खुदाई का कार्य कराया और उसने क्रीट की राजधानी नासौस (Knossos) के भग्नावशेष प्राप्त किये। क्रीट की खुदाई से आर्थर इवान्स ने वह कार्य कर दिखाया जो जॉन मार्शल (John Marshall) ने मोहिनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से कर दिखाया। मोहिनजोदड़ो व हडप्पा की खुदाई के उपरान्त भारत की सभ्यता ऋग्वेदिक सभ्यता से प्रारभ न होकर अब सैन्धव-सभ्यता स होती है। उसी प्रकार हेनरिच श्लीमेन तथा आर्थर इवान्स के उत्खनन कार्यों के उपरान्त यूनान सभ्यता का प्रारभ अब 1600 ई० पू० से न मान कर 3600 ई० पू० से माना जाने लगा है।

यूनान सभ्यता का ऐतिहासिक वर्गीकरण-सर आर्थर इवान्स ने नासौस नगर की खुदाई के उपरान्त यूनान के इतिहास को निम्न तीन उपकाला में विभक्त किया है-

(1) प्रारभिक मिनोअन (Minoan) सभ्यता (3600 2100 ई० पू०) - यूनान एक प्रायद्वीप है जो यूरोप के दक्षिण म स्थित है। एजियन सागर (Aegean Sea) उसे एशिया माइनर (टर्की) से अलग करता है। इस प्रायद्वीप के तीनों तरफ अनेक द्वीप समूह विद्यमान है। उन द्वीपों म क्रीट (Crete) द्वीप महानतम है। नासौस इसकी राजधानी था। यूनानियों के पूर्वजों ने अपनी सभ्यता का सर्वप्रथम विकास यहीं किया। इसी सभ्यता को एजियन सभ्यता (Aegean Civilization) या मिनोअन सभ्यता (Minoan Civilization) कहते है। इस सभ्यता का मुख्य केन्द्र नासौस ही रहा। इस नगर में सभ्यता 2500 ई० पू० से 1400 ई० पू० के काल में तो चरमोत्कर्ष पर थी। यह सभ्यता यूनान, एजियन सागर के आरपार पूर्वोत्तर में ट्राय तक विस्तृत थी। नासौस के उत्खनन में प्राप्त उपकरण इस सभ्यता को मिश्र, बेबीलोन व सैन्धव-सभ्यता के समकालीन ठहराते हैं।

1 J.E. Swain A History of World Civilization. p 118

2 'This was the home of first strictly European Civilization.

J C.

क्रीट की खुदाई में सबसे महत्वपूर्ण राजा मिनोआ का विशाल प्रासाद है जो 6 एकड़ भूमि पर विस्तृत था। दुहरे आधार वाला' विशाल भवन विशेष रूप से उल्लेखनीय था। इस प्रासाद में भी मोहिनजोदडो के भवनों की भाति गन्दा पानी निकालने की सुन्दर व्यवस्था थी। इस सभ्यता का विनाश सभवत थेरा (Thera) द्वीप के ज्वालामुखी पर्वत के विस्फोटक से हुई।

(2) मध्य-कालीन मिनोअन सभ्यता (2100 1600 ई० पू०)-मध्यकालीन मिनाअन सभ्यता का विकास माइसेन तथा तिरिन्स में हुआ। इस कारण इसे माइसीनी सभ्यता कहते हैं। इस सभ्यता का विकाश एशिया माइनर के कुछ नगरों में भी हुआ। ज्वालामुखी पर्वत के विस्फोट के कुछ वर्षों के उपरान्त माइसेनियन लोगों ने क्रीट को जीत लिया और उन्होंने मिनोअन्स से सत्ता छीन ली। सभवत माइसेनियन यूनानी भाषा बोलते थे।

(3) उत्तर कालीन सभ्यता (1600 1200 ई० पू०)-प्राकृतिक विपदाओं और दीर्घकालीन अशान्ति के उपरान्त क्रीट में पुन सास्कृतिक जागरण का युग आता है। राजनीतिक दृष्टि से क्रीट पुन सगठित हुआ। इसका प्रभाव पड़ौसी देशों ने भी स्वीकार किया। नौसौस, फैलस्टस, ट्रियाडा तथा गूर्निया में भव्य भवनों का निर्माण आरभ हुआ। इस जागरण काल में भवन पहले से भी विशाल बनाये गये। कुछ प्रासाद तो पाच मजिल के थे। उनकी दीवारों पर मानव व पशुओं के सुन्दर चित्र प्राप्त हुए है। इन भित्ति-चित्रों में क्रीटवासियों द्वारा निर्मित छोटी-छोटी मूर्तियों में मानव शरीर की शक्ति और सौन्दर्य की गरिमा प्रदर्शित की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में स्त्रियों को बहुत स्वतन्त्रता थी क्योंकि इन भित्ति-चित्रों में लड़कों के साथ लड़कियों को भी व्यायाम करते दिखाया गया है। स्त्रियों को खिलाडियों के साथ मुक्केबाजी करते हुए या साडों के ऊपर कला-बाजिया करते दिखाया गया है। उन चित्रों मे स्त्रियों की तत्कालीन वेश-भूषा भी देखी जा सकती है। धातु निर्मित शस्त्रों के साथ-साथ स्वर्ण कास्य और हाथी दात से बनी कलापूर्ण सुन्दरतम वस्तुए भी मिली है। नौसौस क भव्य प्रासाद में एक पुस्तकालय भी था। उसमें हजारों मिट्टी की पटियायें भी मिली है जिन पर लिखाई चित्र-लिपि में न होकर ध्वनि पर आधारित लिपि में है। अब तक यह लिपि नहीं पढ़ी गई थी, पर 1957 में अमेरिका के एक प्राध्यापक गौर्डन (Gordon) ने दावा किया है कि उसने इस लिखाई को पढ़ने की कुजी खोज निकाली है।

परन्तु 15 वीं सदी ई० पू० के उत्तरार्द्ध में क्रीट-निवासियों को किसी भारी विपत्ति का सामना करना पडा। सभवत वह एकियनों का आक्रमण था। माइसीन नगर पर एकियनों (Achaeans) ने अधिकार कर लिया तथा अन्य मुख्य नगरों को नष्ट कर दिया। सभवत एकियनों ने इन नगरों को अग्नि देव के भेंट चढ़ा दिया था। परन्तु इस विपदा के फलस्वरूप भी एजियन सभ्यता सर्वथा नष्ट नहीं हुई। कुछ समय उपरान्त यह पुन पनपी, परन्तु वह अपने पुरातन गौरव को प्राप्त नहीं कर सकी। 1200 ई० पू० के लगभग सभ्यता का पतन हो गया और इस पतन का कारण डोरियन (Dorians) जाति का माना जाता है। डोरियन लोग बर्बर एव लडाकू थे जो बालकन प्रायद्वीप के

उत्तरी भाग से आये थे। स्थानीय आबादी के एक भाग ने डोरियनों की अधीनता स्वीकार करली। शनै शनै डोरियन जाति के लोग भी विवाह आदि करके स्थानीय लोगों में घुलमिल गये और यूनान में नवीन सभ्यता को विकसित करने लगे जो एजियन सभ्यता से बहुत-अश तक प्रभावित थी। कुछ इतिहासकारों ने तो यूनानी सभ्यता को एजियन सभ्यता की पुत्री बताया है।

प्राचीन यूनानी कौन थे ?-जे ई स्वेन (J E Swain) की धारणा है कि एजियन सभ्यता पर आघात करने वाले वर्तमान यूनानी नहीं थे वरन् कई विदेशी जातिया थीं। इसके परिणामस्वरूप यूनान सभ्यता भी मौलिक रूप में विकसित न होकर विभिन्न आक्रमणकारी जातियों के विभिन्न विचारों को लेकर ही विकसित हुई। इस सभ्यता के विकास में क्रीट, एशिया माइनर तथा अन्य साधन सहयोगी सिद्ध हुए-पर एजियन (क्रीट) सभ्यता प्रमुख सिद्ध हुई। इसीलिए इसे प्राचीन सभ्यताओं से लाभ उठाने वाला देश कहा गया है। रामन लोग इसे 'ग्रेसी' कहते थे, इसी से इसका नाम ग्रीस (Greece) अथवा यूनान पड़ा। डा बी सी पाण्डेय ने यूनानियों को चार उपशाखाओं में विभक्त किया है। वे हैं-एकीयन, आयोसिअन, आयोनियन तथा डोरियन। वास्तव में यूनान में इन्हीं चार शाखाओं की प्रभुत्ता रही है। इनमें अन्तिम दो शाखायें अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं। इसीलिए यूनान के प्रथम कवि होमर (Homer) ने भी इस देश को एकियन तथा आरगिवस नाम स पुकारा है, ग्रीकों (Greeks) के नाम से नहीं। होमर ने इलियड (Iliad) तथा ओडिसी (Odyssey) की रचना की। यूनान में आकर बसने वाले लोगों ने इन ग्रन्थों को बाइबिल की तरह 1000 वर्षों तक पूज्य समझा। डैन्यूब नदी की घाटी से, काले सागर तथा कास्पियन सागर के क्षेत्रों से यूनानी प्रायद्वीप में एक के बाद एक आक्रमणकारी लोग आते रहे। आनेवालों में भारोपीय (भारत-यूरोपीय) भी थे जो 1500 ई० पू० के लगभग घोड़ों से खींची जाने वाली गाड़ियों में बैठ कर पहाड़ी दर्रों को पार करते यहा चले आये थे। इनमें से कुछ यूनान की मुख्य भूमि पर बस गये जबकि कुछ एजियन द्वीपों में जा बसे। कुछ लोग एशिया माइनर चले गये और उन्होंने इफैसस और मिलैटस जैसे नगरों की स्थापना की। इनमें अर्द्ध-सभ्य लोग भी थे जो हैलनी (Hellenes) कहलाये। हेसीयड ने सर्वप्रथम इन्हें 'हैलन्स' कह कर पुकारा और उन्हें विदेशियों से विलग किया। इन हैलनी लोगो में एकियन तथा डोरियन लोग भी थे। आरभ में इन्होंने क्रीट तथा माइसीनी सभ्यताओ को नष्ट करने का प्रयास किया। स्थायी लोगों में से बहुतसों को मौत के घाट उतार दिया। परन्तु कालान्तर में इन हैलनी आक्रमणकारियों ने एजियन लोगों के साथ शादी-ब्याह करना आरभ कर दिया। एकियन जाति एटिका (Attica) में रहती थी। इस जाति के लोगों ने एथेन्स सभ्यता को विकसित किया। डेरियन जाति ने पेलोपोनिसस (Peloponnesus) में अपनी सस्कृति का विकास कर स्पार्टा (Sparta) को अपना केन्द्र बनाया। इस प्रकार स्पष्ट है कि यूनान सभ्यता को विकसित करने वाले एकियन्स तथा डोरियन्स न एजियन जगत से प्राप्त सभ्यता को ही उन्नत किया। इसीलिए एच जी वेल्स (H G Wells) ने लिखा है- "यूनानियों ने अपनी कोई सभ्यता उत्पन्न नहीं की। उन्होंने एक को नष्ट किया और उसके भग्नावशेषों पर दूसरी को स्थापित किया।"

यूनान के आक्रमणकारियों की भारतीय आर्यों से समता-नि सन्देह एकियन और डारियन लोगों ने यूनान में अपनी कोई मौलिक सभ्यता विकसित नहीं की परन्तु उनकी मौलिकता इसी म है कि उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति को सुधारा और इसमें इतना परिवर्तन किया कि उसके स्वरूप को पहिचानना भी कठिन हो गया। इसके पीछे उनके मूल स्थान से ले गये विचार थे। वे भारतीय आर्यों की भाति पशु-पालन करते थ तथा, प्रकृति की पूजा करते थे। उन्होंने अपने अधीनस्थ लोगो के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि भारतीय आर्यों ने भारत के मूल निवासियो के साथ किया था। प्राम्भ में एकियन व डोरियन लोगा की सस्थाए भी भारतीय आर्यों की सस्थाओं के अनुरूप ही थीं। परन्तु परिवर्तनशील समय के साथ-साथ उनकी सभ्यताओं मे महान अन्तर आ गया। यूनानी बुद्धिवादी व्यवहार कुशल व वैज्ञानिक विचारों स ओतप्रोत हो गय जबकि भारतीय आर्य भावुक धार्मिक व दार्शनिक बन गये।

ट्राय का घेरा (Seige of Trog)

भारत की भाति यूनान में भी प्राचीन काल में चारण-भाट हुआ करते थे। होमर को हम एक चारण की श्रेणी में ले सकते है। जिस प्रकार ऋषि व्यास ने 'महाभारत' महाकाव्य की रचना की उसी प्रकार होमर ने इलियड' और ओडिसी' महाकाव्यों की रचना की। इलियड होमर द्वारा रचित है या नही इस पर भी सन्देह किया जाता है परन्तु 'ट्राय' के अस्तित्व के सन्दर्भ म तो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक सन्देह किया जाता था। इस सन्दह ने ही जर्मनी के पुरातत्ववत्ता हनरिच श्लीमैन को 1870 मे उत्खनन कार्य के लिए प्ररित किया। इस उत्खनन कार्य मे हिसारलिक' के टीले की खुदाई अत्यधिक महत्व की सिद्ध हुई। इस टीले मे होमर द्वारा वर्णित ट्राय' नगर के अवशेष प्राप्त हुए है। काला-सागर (Black Sea) तथा भूमध्यसागर के मध्यवर्ती पुल पर स्थित हाने के कारण तथा दूसरी ओर एशिया से यूरोप को जाने वाले स्थल मार्ग पर बसे हाने के कारण ट्राय का यूरोपीय इतिहास मे वही स्थान था जो पानीपत का भारतीय इतिहास में है।[1] एजियन सागर (Aegean Sea) क उस पार एशिया माइनर में ट्राय का नगर आबाद था। होमर द्वारा वर्णित ट्राय नगर व उसके घेरे का वर्णन निम्न प्रकार स है

ट्राय को प्राचीन यूनानी में इलियोस' या इलियोन' और लैटिन में 'इलियम' भी कहा जाता था। वह एशियाई काचक (टर्की) के समुद्र तट पर बसा नगर था। स्पार्टा का राजा मैन्यूलस (Menelaus) था। उसके हेलन (Helen) नाम की एक सुन्दर रानी थी। ट्राय के राजकुमार पसि (Paris) तथा स्पार्टा के राजा मैन्यूलस में मित्रता थी। एक बार ट्राय का राजकुमार अपन मित्र मैन्यूलस से मिलने स्पार्टा आया। मैन्यूलस ने उसका अच्छा आतिथ्य-सत्कार किया। परन्तु ट्राय का राजकुमार इतना कृतघ्न निकला कि वह मैन्यूलस की रानी हेलन को उड़ा कर ट्राय ले गया। स्पार्टा व ट्राय के बीच यह झगड़े का कारण बन गया। मैन्यूलस ने अपन भ्राता एगेमैमनान (Agamemnon) की सहायता से एकियन शासकों की एक लीग बनाई और उसकी सयुक्त सना के साथ उसने ट्राय पर धावा बाल दिया।

---

1. एस आर शर्मा मानव इतिहास की रूपरेखा' पृ 125

ट्राय नगर एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित था और वह चारों ओर पाषाण -प्राचीर से घिरा हुआ था । यूनानियों ने अपनी लकड़ी के पोत तट पर खींचकर एक छावनी बना ली और दस वर्ष तक ट्राय के घेरा डाले पड़े रहे, परन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। लबे समय तक घेरा डालने और सफलता न मिलने के कारण यूनानियों का मनोबल टूटना स्वाभाविक था। योद्धाओं का हौसला बढ़ाने हेतु सेनानायकों की एक सभा आमन्त्रित की गई, परन्तु उस सभा में टेर्सीटीज ने सेनानायको पर लूट का माल हड़प लेने का आरोप लगाया और सैनिकों को यूनान लौटने को प्रोत्साहित किया। इस पर सेनानायक ओडिसियस ने टेर्सीटीज को मार-पीट कर चुप किया और यूनानी सेनानायकों को युद्ध जारी रखने को सहमत कर लिया।

यूनानी सेनानायकों में सर्वश्रेष्ठ योद्धा एकीलीज (Achilles) माना जाता था जब कि ट्रायवासियो में सबसे शूरवीर हैक्टर (Hector) था । इलियड में इन दो वीरों की लड़ाई का वर्णन विस्तार से किया गया है। परन्तु यूनानी अपने कबीलो और गोत्रों के अनुसार दस्ते बनाकर सामान्यत पैदल ही युद्ध करते थे। सेनानायक अश्व जुते रथों पर युद्ध करते थे। शस्त्रों में भाले व कासे की तलवार उनके पास थीं।

ट्राय का पतन-दस वर्ष तक युद्ध चलने पर भी जब यूनानियों को सफलता नहीं मिली और जब हैक्टर के साथ युद्ध करते एकीलीज वीर गति को प्राप्त हो गया था तो यूनानिया ने छल-कपट का सहारा लेने का इरादा किया। चतुर ओडिसियस की मन्त्रणा पर काष्ठ का एक विशाल घोडा बनाया गया। कुछ चुने वीर उसमें छुपा दिए गय और शेष यूनानी सैनिक यूनान लौटने का दिखावा करते हुए समीप के एक द्वीप मे चले गये। यूनानिया की कपट-योजना से अनभिज्ञ ट्रायवासी नगर के परकोटे को तोडकर काष्ठ अश्व को अपने नगर के भीतर ले गये। रात्रि मे जब ट्रायवासी सो रहे थे तो काष्ठ-अश्व में छुपे यूनानी सैनिको ने ट्रायवासियों पर धावा बोल दिया। उधर दूसरे द्वीप में छुप यूनानी सैनिक भी आक्रमण में आ मिले। इस प्रकार यूनानियों ने ट्राय पर विजय प्राप्त की। यूनानी सैनिको ने ट्राय के पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया तथा स्त्री-बच्चो को बन्दी बना लिया। इस कार्यवाही के उपरान्त यूनानिया ने ट्राय को अग्नि देव के भेंट चढा दिया और लूट के माल के साथ वे स्वदेश लौट आये।

होमर युग (Homer Age) 1200to800 BC

होमर यूनान का एक महान कवि माना जाता है। वह एक अन्धा कवि था। आज यूनान के सात नगर होमर की जन्मस्थली होने का दावा करते है। हमारे महाकवि सूरदास की भाति हामर ने भी अन्ध अवस्था में इलियड और ओडिसी दो महाकाव्य रच डाले। इन दोनों महाकाव्यो की सहायता से हम होमर-काल (1200 - 800 ई० पू०) की कई बातों का ज्ञान होता है। इस काल में कृषि व पशु-पालन यूनानियों के मुख्य धन्धे थे। कृषको को पथरीली भूमि मे कृषि करने हेतु अधिक परिश्रम करना पडता था। कृषक लाग अनाज के अलावा अपनी अन्य आवश्यक वस्तुए स्वय बनाते थे। 1000 ई० पू० में लोहे का प्रयोग होने लगा। यूनानी अच्छे नाविक तो आरभ से ही थ। अत वे अपन पड़ौसी देशों के साथ व्यापार भी करते थे। यूनानी उस काल म कबीले

बनाकर रहते थे। कबीले कई गोत्रों से मिलकर बनते थ। भूमि गोत्रों की सम्पत्ति स्वरूप होती थी। परन्तु गोत्रों में एकता थी। आवश्यकता पड़ने पर व एक दूसरे की सहायता करते थे। समाज में गरीब व अमीरों के दो वर्ग बन गये थे। गरीब लाग भीख मागकर जीवन यापन करते थे। ओडिसियस जब एक गरीब के भेष में इताका लौटा ता किसी को उसकी गरीबी पर हैरानी नहीं हुई क्योकि उस समय तक यूनान में गरीबों की सख्या काफी बढ़ चुकी थी। सभ्रान्त लाग नदिया के किनारे विशाल भूखण्डों के स्वामी बा गये थे और दासों से कृषि कराते थे। सभ्रान्त लोग धनी बनने के लिए युद्धों का भी सहारा लेते थे तथा लूट के माल से वे अपनी सम्पत्ति बढाते थे। उच्च पद उस समय पैतृक बन गये थे। दास-प्रथा भी जोर पकड़ रही थी। यूनानी प्रकृति की उपासना करत थे तथा प्राकृतिक परिघटनाआ से भयभित रहत थे। वे देवी-देवताओं का निवास प्रकृति मे ही मानते थे। वन-दवो को यूनानी 'सटीरोस' कहत थे। शराब उत्पादन का देवता डायोनिसस (Dionysus) माना जाता था। अगूर की खेती करना तथा मदिरा बनाना उसी ने सिखाया था। हर्मीज (Hermes) का व्यापार का दवता माना जाता था। अपालो (Appollo) को वे कलाओं का अधिष्ठाता समझते थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि एकियन व डोरियन जाति के लागों ने यूनान की सभ्यता को उन्नत काने का काई प्रयास नहीं किया। यूनानी अन्ध-विश्वासी बने रहे। रूसी इतिहासकार फ्योदोर कोरोकिन का तो यहा तक कहना है कि डारियन जाति के यूनान में आने से तो यूनानी सभ्यता का हास नही हुआ।[1] इसीलिए उनके आगमन पर यूनान की प्राचीन सभ्यता यूनानवासियों की दृष्टि से औझल होने लगी। इन्हीं कारणों से कुछ इतिहासकारो ने होमर-युग को अधकार-युग (Dark Age) की भी सज्ञा दी है। डा० वी सी पाण्डेय की धारणा है कि यह वह काल था जब राजनीतिक व्यवस्था मृत प्राय हो चुकी थी, युद्ध दैनिक जीवन की आवश्यकता बन गये थे, कृषि कर्म, उद्योग-धन्धे तथा व्यापार चौपट हो चुके थ । पराजित सैनिको के साथ नृशसतम व्यवहार किया जाता था।[2]

होमर के दो महाकाव्य

हामर काल को वीरगाथा (Epic Age) भी कहा जाता है। प्राचीन यूनानी चारण भी भारतीय चारणो की भाति अपने वीर पुरषा की प्रशस्ति गाया करते थे। ट्राय का घेरा दस वर्ष तक चलता रहा। उसमें यूनानिया को बहुतसी कठिनाइया उठानी पडीं तथा उन्हे अपनी वीरता-प्रदर्शन का अवसर भी मिला। ओडिसियस सेनानायक के कारण यूनानिया को सफलता मिली। इस घटना से होमर इतना द्रवीभूत हुआ कि अन्धा होते हुए भी उसने दा महाकाव्य (इलियड और आडिसी) रच डाले। कहते है वह एक दीन भिखारी था जो भिक्षा मागकर अपना पेट पालता था।[3] दोनों महाकाव्य सरल एव प्रभावोत्पादक भाषा में लिखे गये है। उनमें उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किये गये है। यही कारण है कि

1 फ्योदर कोरोकिन प्राचीन विश्व इतिहास का परिचय पृ 122
2 डॉ वी सी पाण्डेय प्राचीन विश्व का इतिहास पृ 194
3 नैथैनियल प्रैम विश्व का इतिहास पृ 104

सदिया तक दोनों महाकाव्य बाइबिल के समकक्ष जनसाधारण में सम्मान पाते रहे।

इलियड (Iliad)-इलियड महाकाव्य में यूनानिया तथा ट्रायवासियों के बीच लड़े गये दस वर्षीय युद्ध का वर्णन है। ट्राय को प्राचीन यूनानी लैटिन भाषा में इलियम (Ilium) कहा करते थे। इतिहासकार जे एच हेज (J H Hayes) के मतानुसार 'इलियड' नाम 'इलियम' से ही लिया गया है।[1] जबकि कुछ इतिहासकार कहते है कि 'इलियड' नाम 'इलियोन' से लिया गया है। युद्ध का वर्णन हम 'ट्राय के घेरे' में कर चुके हैं। इलियड के अनुसार इस दस वर्षीय युद्ध स देवता भी नहीं बच सके। अत कुछ देवताओ ने यूनानियों की सहायता की तो कुछ देवताओं ने ट्रायवालों की मदद की। एकीलीज (Achilles) का शिरस्त्राण तथा कवच धातु शिल्पों के देवता 'हेफेस्टोस' (Hephaestus) ने ही तैयार किया था। अत इलियड मे यूनानियों के साहसिक कार्यों के साथ उनके देवताओं के सक्रिय सहयोग का भी वर्णन किया है। इलियड महाकाव्य जन-साधारण में इतना लोकप्रिय हुआ कि सदिया तक लोग तारवाले बाजों पर इसके पदों को गलियों मे गाते फिरते थे। आज भी यह महाकाव्य प्राचीन यूनान के साहित्य में अपना उच्च स्थान बनाये हुए है।

ओडिसी (Odyssey) यह होमर कवि का दूसरा महाकाव्य है। हालांकि इसकी कथावस्तु भी 'ट्राय के घेरे' से ही सम्बन्धित है परन्तु इस महाकाव्य का नायक ओडिसियस (Odysseus) है।ओडिसियस यूनानी सैनिकों का सेनानायक था। दस वर्ष के युद्ध के अन्त में यूनानियों ने विजय इस सेनानायक के कारण ही प्राप्त की थी। काष्ठ का महान घोड़ा बनाने की योजना इसी ने बनाई थी। इसकी बताई गई योजना से ही यूनानी विजयी हुए। इस कारण ट्राय की विजय का श्रेय इसी का जाता है।

ओडिसी में ओडिसियस के इस वीरता के कार्य के अलावा उसके स्वदेश लौटने का वर्णन है। वह ट्राय से इताका लौटता है। इताका यूनान के पश्चिम मे एक छोटा से टापू है। इताका (Attica) लौटते समय भी ओडिसियस को अनेक साहसिक कार्य करने पड़े।

ट्राय को जलता छोड़कर इताका के योद्धा बारह पोतो में बैठकर स्वदेश रवाना हो गये। मार्ग में हवा के देवता ने तेज आधी चलादी। इस आधी में यूनानी भटक गये। ओडिसियस अपने साथियो के साथ दो बार ऐसे द्वीपों पर जा पहुचा, जहा दैत्यो का निवास था। दैत्यों ने बड़ी-बड़ी चट्टानों का प्रहार कर यूनानियो के पोतो को नष्ट कर दिया तथा यूनानी सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। केवल ओडिसियस का पोत बचा और वह राक्षसों से बच निकला। फिर किसी कारणवश वर्षा और बिजली का देवता जीयस ओडिसियस से नाराज हो गया। उसने बिजली गिराकर उसका पोत नष्ट कर दिया। एक मस्तूल के सहारे तैरते-तैरते वह समुद्री किनारे जा लगा।

इस घटना के उपरान्त ओडिसियस पुन दस साल तक भटकता रहा। इसके उपरान्त वह किसी प्रकार इताका पहुचा तो उसे सूअर चराता एक दास मिला। घर जाने पर ज्ञात हुआ कि उसके मकान पर सम्भ्रान्त लोगो ने अधिकार कर लिया है। उसने उन

1 J H Hayes World History p 72

बिन-बुलाये मेहमानों को मार भगाया और फिर इताका पर राज्य करने लगा।

ओडिसियस का दूसरा नाम उलीसस (Ulysses) भी बताया गया है।[1] होमर ने बताया है कि ट्राय से लौटने पर वह अपनी स्त्री पेनीलोप (Penelope) की प्राप्ति के लिए किस प्रकार भटकता रहा। उसके प्रेमी उसे किस प्रकार अपने जाल में फसाने का प्रयास करते रहे परन्तु वह अपने पति के प्रति ही स्वामि-भक्त बनी रही और अन्त में उलीसस (ओडिसियस) के लौटने पर वह कितनी प्रसन्न हुई। भूमध्यसागर मे उलीसस के भटकने की कहानी भी यूरोप की कई भाषाओं में वर्णित है।

प्राचीन यूनान का राजनीतिक विकास

कुलीन राजतन्त्र की स्थापना–होमर काल में राजनीतिक सगठन की इकाई समूह था। यूनान की हर घाटी मे या प्रत्येक द्वीप कर कोई एक कबीला रहता था। कबीला कई गोत्रो के मेल से बनता था और गोत्र परिवारो से मिल कर बनता था। भूमि सारे गोत्र की सम्पत्ति होती थी। प्रत्येक कबीले का एक सरदार होता था। वह उनका सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसके अधिकार असीमित होत थे। इस कारण उसने राजा का स्वरूप धारण कर लिया था। सर्वोच्च सेनापति व पुरोहित भी वह राजा ही होता था। उसका पद भी वशानुगत हो गया था। नवीं सदी के ई० पू० के अन्त तक यह राजतन्त्र भी शिथिल पड़ने लगा और सम्भ्रान्त (कुलीन वर्ग) लोग सत्ता में आने लग। समाज में अब समानता नहीं रही थी। गरीब लोग दयनीय जीवन व्यतीत करते थे। यहा तक कि उन्हे अपने जीवन यापन के लिए भीख भी मागनी पड़ती थी। सम्भ्रान्त लोग नदियो के किनारे विशाल भू-भाग रखते थे तथा अच्छी कृषि से अच्छा धन कमाते थे। कबीलों मे गठित राज्यो का शासन आर्कन्स (Archens) द्वारा सचालित होता था। आर्कन्स सम्भ्रान्त लोगो में से ही 10 वर्ष के लिए निर्वाचित होते थे। सभायें यदा-कदा आमन्त्रित की जाती थी। कुलीन लोग अपने उच्च-पदों पर अपना स्थायित्व बनाये रखने के लिए शक्ति का भी प्रयोग करते थे। कुलीन लोगों ने अपने कार्य सम्पन्न कराने हेतु दासों को भी रखना आरभ कर दिया था। वस्त्र और भोजन के बदले उनसे दिन-रात कठोर कार्य लिया जाता था। एथेन्स (Athens) व स्पार्टा (Sparta) में भी 600 ई० पू० तक इसी प्रकार का कुलीन राजतन्त्र था।

प्रजापीड़कों (Tyrants 600 500 ई पू) का शासन कुलीनतन्त्र के लोग अच्छे सैनिक नहीं होते थे। अत उनकी शासन-व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। व्यापारी-वर्ग व कृषक-वर्ग भी इस शासन के विरुद्ध थे। अत प्रजापीड़कों ने सुगमता से शासन-सत्ता कुलीन वर्ग के लोगों से हथिया ली। नि सन्देह प्रजापीड़क शासन में कठोर होते थ और उनकी तुलना आज के तानाशाहों से की जा सकती है। परन्तु फिर भी हम उनका शासन बुरा नहीं बता सकते। प्रजापीड़कों में फिसीस ट्रेट्स (Fisis Tratus) व हिप्पियस (Hippias) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रजापीड़क निरकुश शासक अवश्य होते थे परन्तु वे जनता की भलाई का ध्यान अवश्य रखते थे। उनके शासन-काल

---

1 नेहरू—विश्व का इतिहास पृ 104

में यूनान ने व्यापार, कला व धर्म के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की । क्रेन ब्रिटन लिखता है कि टायरेन्ट आधुनिक अर्थ में निष्ठुर नहीं थे । कई नगर-राज्यों में उन्होंने निरकुश शासन की बुराइयों व निर्बलताओं को दूर करने के लिए कई सुधार किये और इसके परिणाम स्वरूप उन्होंने असतुष्ट लोगों का तत्परता से सहयोग प्राप्त कर लिया। वीच (Weech) इसका समर्थन इस प्रकार करते है-वे योग्य एव उत्साही व्यक्ति थे, जिन्होंने व्यापार को प्रोत्साहन दिया और नगरों के सौन्दर्य व धन को बढ़ाया था। उन्होंने प्रजा के कार्यों पर खर्च कर गरीबों को रोजी दी । इससे स्पष्ट है कि यूनान के प्रजा-पीड़क आज के से प्रजापीड़क नहीं होते थे । उनकी तुलना हम 18 वी सदी के प्रबुद्ध स्वेच्छाचारी शासकों (Enlightened Despots) से कर सकते है, तथापि यूनानी उन प्रजापीड़को से सन्तुष्ट नहीं थे । अवसर पड़ने पर वे उनकी हत्या कर देने में अपना गौरव समझते थे ।

नगर-राज्यों (City States) का उदय तथा विकास

उदय-यूनान के इतिहास में 750 ई० पू० से लेकर 479 ई० पू० तक का काल अति महत्व का है । इस युग में नगर-राज्यों (City States) का उदय हुआ । वैसे तो एजियन सभ्यता क पतन तथा यूनान में विभिन्न आक्रमणकारी जातिया के आते ही नगर-राज्यों का उदय आरभ हो गया था और एथेन्स और स्पार्टा क नगर राज्य भी होमर-युग में ही गठित हो गये थे । परन्तु उस समय वहा का शासन निरकुश था । सामान्य जनता को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था । प्रशासन सचालन हेतु कोई लिखित कानून नहीं थे । कुलीन लोगों का प्रत्येक क्षेत्र में प्रभुत्व था । लेकिन सातवीं सदी ई० पू० में इन नगर राज्यों के प्रशासनिक ढाचे में परिवर्तन आने लगा । उनमें कुलीन-तन्त्र (Oligarchy) का स्थान प्रजातन्त्र (Democracy) लेने लगा । इन नगर-राज्यों में प्रमुख थे-एथेन्स, थिब्ज, मेगारा, स्पार्टा, कोरिन्थ तथा मिलिटस ।

विकास-नगर-राज्यों के विकास में यूनान की भौगोलिक परिस्थितियो ने विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया जैसा हम इससे पूर्व भी व्यक्त कर चुके है । इसके अलावा यहा विभिन्न जातियों का आकर विभिन्न स्थानों पर बस जाना भी इसका एक कारण था। ये जातिया कबीलों के रूप में नदियों के किनारे व पहाड़ियों की घाटियों में आबाद हो गईं । यहीं उन्होंने अपने निवास के लिए भवन तथा सुरक्षा के लिए दुर्ग बनाना आरभ कर दिया । ये कबीले के लोग केवल अपने कबीले के प्रति ही निष्ठावान होने थे-देश के लिए नहीं । इसीलिए यूनान में कभी एक राष्ट्र की स्थापना नहीं हो सकी । प्रत्येक कबीला अपनी सरकार रखता था । उनके अलग-अलग देवता होते थे । प्रत्येक कबीले के धार्मिक उत्सव विभिन होते थे। पाचवी सदी ई० पू० से यूनानियों के जीवन के मापदण्ड में परिवर्तन आने लगा । कृषि के स्थान पर उनका व्यापार की ओर अधिक झुकाव होने लगा । व्यापार-विस्तार के लिए उपनिवेशो की स्थापना होने लगी । इससे मध्यम-वर्ग का जन्म हुआ । मध्यम-वर्ग के लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुए । वे धन, यश की अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता के अधिक इच्छुक हो गये । इस प्रकार यूनानी लोग अब अपने राज्यों के लिए 'पोलिस' (Polis) शब्द का प्रयोग करने लगे । स्वेन (J E

का कहना है कि यूनानियों ने प्रथम 'पोलिस' शब्द का प्रयोग केवल दुर्ग में रक्षित स्थानों के लिए ही किया था परन्तु कालान्तर में यह शब्द व्यापक रूप में प्रयोग किया जाने लगा। सप्रभु-राज्य (Sovereign State) के लिए भी 'पोलिस' शब्द का प्रयोग होने लगा। इसके अन्तर्गत् लोकमत, सरकार, राजनीतिक व सामाजिक समस्यायें समाविष्ट हो गईं। इस प्रकार की सरकारों का निर्माण छठी व पाचवीं सदी ई० पू० में हुआ जब ट्रिरिन्स (Teryns) ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

नगर राज्यों की विशेषताएँ-

1 नगर-राज्य क्षेत्रफल में छोटे थे।

2 एक नगर-राज्य के नागरिक केवल अपने ही नगर-राज्य का हित चाहते थे।

3 उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव था।

4 जनतन्त्र प्रणाली में विशेष रूचि थी।

5 वे स्वाभिमानी भावना से प्रेरित थे।

6 व्यक्तिवादी भावना के वे शिकार थे।

हम यहा केवल दो नगर राज्यों (एथेन्स व स्पार्टा) का ही विशद वर्णन करेगे जिससे आपको दो नगर-राज्यों की विभिन्न प्रकार की शासन प्रणालियों की जानकारी हो सकेगी।

एथेन्स का नगर राज्य-एथेन्स (Athens) एट्टिका (Attica) प्रदेश का ही नहीं वरन् समस्त यूनान का एक प्रमुख नगर था। यहा आयोनियन शाखा का प्रभुत्व था। प्रारभ में यहा भी राजतन्त्रात्मक व्यवस्था थी। कोडस यहा का अन्तिम राजा था। इसके उपरान्त सम्भ्रान्त लोगों की प्रभुता स्थापित हो गइ थी। इस परिवर्तन के फलस्वरूप एथेन्स का प्रशासन दो सभाओ द्वारा सचालित होने लगा था। प्रथम सभा के 9 सदस्य होते थे जो आर्कन (Archens) कहलाते थे। इनका निर्वाचन सामन्तो (सम्भ्रान्त) द्वारा ही होता था। दूसरी सभा को 'काउन्सिल आफ एरियोपेगस' कहा जाता था। इसके सदस्य पूर्व आर्कन होते थे। यह एक शक्तिशाली सभा होती थी और आर्कन के कार्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती थी। फौजदारी, हत्या और विद्रोह के गभीर अभियोग भी यही सभा सुनती थी तथा अपराधियों को दण्ड भी देती थी। परन्तु निर्णय अधिकाश अभिजात (सम्भ्रान्त) वर्ग के पक्ष म ही जाते थे। उस काल के एक सम्भ्रान्त वर्ग के कवि ने कहा था - ''जनता की छाती पर दृढ़ता से पैर जमाये रखना और उसे कासे के बरछे से कूटते रहना आवश्यक है क्योंकि वह मालिकों के दृढ़ अकुश को स्वेच्छा से कभी स्वीकार नहीं करेगी। परन्तु अभिजात वर्ग के उस प्रशासन म लिखित कानून नहीं थे। अत लिखित कानूनों के आधार पर अपने शासन को सुदृढ़ करने हेतु 621 ई० पू० में ड्रेका (Draco) को यह काम सौंपा गया।

ड्रेको (Draco) स्वय एक आर्कन था। अत उसने जो कानून बनाय वे अभिजात वर्ग के हित में अधिक थे। उस समय एथेन्स में तीन वर्ग बन चुके थे-सामन्त वर्ग, कृषक-वर्ग तथा व्यापारी व व्यवसायी-वर्ग। इनमें किसान-वर्ग की अवस्था अत्यन्त दयनीय थी। वे सामन्तों के अत्याचारों से परेशान थे। ऋण के नियम अति कठोर थे। ऋण न चुकाने पर कर्ज लेने वाले की सारी सम्पत्ति जब्त करली जाती थी। अत ड्रेको ने प्रथम निम्न

वर्ग के अधिकारों को अभिजात वर्ग से कानून बना कर सुरक्षित करना चाहा ।[1] परन्तु उसके विचारों से अभिजात वर्ग के लोग नाराज हो गये और अन्त में उनके हितों को ध्यान में रखते हुए कानून अत्यन्त कठोर बनाने पड़े । ड्रेकोनी का यूरोपीय भाषा में अर्थ 'कठोर' ही होता है । अत उसके कानून निम्न वर्ग के अस्तित्व को अत्यन्त कठोर सिद्ध हुए ।

सोलन (Solan) के सुधार–सोलन 594 ई पू में आर्कन चुना गया था । वह उच्चकोटि का विद्वान तथा एक अच्छा कवि था । साथ में ही वह एक व्यापारी भी था। उसने एथेन्स के समाज मे बढ़ते असन्तोष को देखा । हृदय से कोमल होने के कारण उसने दीन व्यक्तियो के हित में निम्नलिखित कानून बनाये -

(i) उसने आर्थिक आधार पर समाज को चार श्रेणियों में विभक्त किया ।

(ii) उसने ब्यूल (Boule) नामक एक समिति का गठन किया तथा उसमें 400 सदस्य रखे गये । उनका कार्य असेम्बली का कार्य-क्रम निर्धारित करना था ।

(iii) सोलन ने समाज की असन्तुलित व्यवस्था तथा अर्जित आर्थिक नीति पर कुठाराघात किया । उसने अनेक दासो को मुक्त करा दिया तथा जनता को पुराने ऋणों से मुक्त करा दिया ।

(iv) सोलन ने बौद्धिक विकास के साथ-साथ शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान दिया । शारीरिक विकास हेतु शारीरिक व्यायाम का आयोजन राज्य की ओर से किया।

(v) उसने वेश्या-वृत्ति को वैध घोषित कर दिया ।

(vi) युद्ध में वीर गति प्राप्त सैनिकों के बच्चों की व्यवस्था राज्य की ओर से की जाने की उसने व्यवस्था की ।

(vii) यूनान के नगर-राज्यों की मुद्राओं में एकरूपता लाने का उसने प्रयास किया।

सुधारों का महत्व–सोलन का नाम यूनान के महान् सुधारकों में लिया जाता है। राज्य की सुदृढ़ता के लिए वह जनता, शासक और सविधान की एकरूपता में विश्वास करता था । उसने समाज के प्रत्येक वर्ग को अपने सुधारों से सन्तुष्ट कर यूनान में प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली को सुदृढ़ करने का प्रयास किया । उसने मताधिकार को विस्तृत किया तथा सविधान को मान्यता प्रदान की । वह मध्यममार्गी था । अत देश को गृहयुद्ध से बचाने हेतु उसने भूमि का भी उचित बटवारा किया । उसने निर्धन व्यक्तियों को भी सभासद बनने का अधिकार दिया । न्याय की दृष्टि से सबको समान समझा गया । इन कारणों से वह सामान्य वर्ग में लोकप्रिय बन गया । इसके विपरीत सामन्त लोग उससे भी नाराज हो गये और उसे देश छोड़ने को विवश कर दिया ।

यूनान में प्रजातन्त्र की स्थापना–स्पष्ट है कि सोलन ने अपने सशोधन में जनहित का ध्यान रखा था । इसका परिणाम यह निकला कि प्रजापीड़क फिसिस ट्रेटस ने उसके

1 Draco s Code (621 B C.) sought the security and the protection of privel iges through written law

सुधारों को समाप्त कर दिया। परन्तु 527 ई० पू० में वह इस लोक से विदा हो गया और उसकी मृत्यु पर उसके दोनों पुत्र हिप्पियस (Hippias) व हिपर्कस में गद्दी के लिए संघर्ष आरंभ हो गया। हिप्पियस को यूनान छोड़ने को बाध्य होना पड़ा और वह ट्राय चला गया। हिप्पियस को पहले ही मौत के घाट उतार दिया गया। अतः अब सोलन के भतीजे क्लाइस्थेनिस (Cleisthense) को 510 ई० पू० में शासन-संचालन का अवसर प्राप्त हुआ।

क्लाइस्थेनिस भी कुलीन वंश का था। परन्तु शासन-संचालन में उसने कुलीन वर्ग की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उसने प्रजातन्त्र को विकसित करने के लिए कई सुधार किये। उनमें प्रमुख ये है-(i) उसने यूनान के समाज को जो उस समय चार वर्गों में विभक्त था, दस वर्गों में विभक्त कर दिया। (ii) सीनेट की सदस्य संख्या बढ़ाकर 500 कर दी और प्रत्येक वर्ग को अपने 50 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया। (iii) एटीका के दास वर्ग को उसने मुक्त कर दिया। (iv) सदस्यों की नियुक्तियाँ निर्वाचन विधि से होने लगीं। (v) उसके समय में साधारण सभा का अधिवेशन दस दिन में एक बार होने लगा। (vi) अगर 6 हजार नागरिक एक अधिकारी के विरुद्ध वोट दे दें तो उसे पदमुक्त कर दिया जाता था। (vii) असेम्बली के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई। काउन्सिल द्वारा प्रस्तुत किसी भी विधेयक में यह संशोधन कर सकती थी। युद्ध की घोषणा करना असेम्बली के ही अधिकार में रखा गया। (viii) प्रत्येक जाति को अपना सेनापति नियुक्त करने का अधिकार था। ये सेनापति क्रम से नियुक्त किये जाते थे।

उपरोक्त सुधारों से स्पष्ट है कि क्लाइस्थेनिस प्रजातन्त्र समर्थक था। इससे यूनान में प्रजातन्त्र और विकसित हुआ। अब राजतन्त्र का भय कम हो गया। परन्तु इन सुधारों के उपरान्त भी कुलीनतन्त्र का भय बना रहा। उसका निराकरण पेरीक्लीज के शासन-काल में हुआ।

स्पार्टा (Sparta) नगर-राज्य

पेलोपोनेसस (Peloponnesius) के दक्षिण पूर्व में लकोनिया प्रदेश था। इस प्रदेश को जीत कर डोरियन जाति के लोगों ने एक नगर बसाया जो कि बाद में स्पार्टा के नाम से विख्यात हुआ। विजेता अपने को स्पार्टन या स्पार्टावासी कहने लगे। स्पार्टा में बसने के उपरान्त उन्होंने मेसेनिया (Mycenae) पर भी अधिकार कर लिया। युद्ध में विजित लोगों को दास बनाना स्पार्टावासियों की आदत बन गई थी। वे अपने दासों का 'हलट' या 'हीलोटीज़' कहते थे जिसका अर्थ था बंदी बनाये हुए।

स्पार्टावासी दासों के स्वामी होते थे। अपनी विशाल कृषि भूमि पर वे दासों से ही काम लेते थे। दासों को अपनी मेहनत का आधा भाग अपने मालिकों को देना पड़ता था। इस शोषण के कारण वे अपने मालिकों को घृणा करते थे। इस कारण स्पार्टावासियों को अपने दासों के उत्पात की सदा आशंका रहती थी। इसीलिए वे शक्तिशाली दासों ` मौत के घाट उतार दिया करते थे। सातवीं सदी ई० पू० में हेलटों ने स्पार्टन्स के ~िद्रोह किया। विद्रोह कई वर्ष चला। अन्त में पराजय हेलटों की ही मिली।

परास्त होकर वे एक दुर्गम पहाड़ी की चोटी पर जा चढ़े। स्पार्टन लोगों ने वहा भी उनका पीछा किया। भयकर वर्षा में चमकती बिजली की रोशनी में स्पार्टन्स ने उन पर आक्रमण किया। चार दिन-रात सघर्ष चला। इस सघर्ष में दासो की स्त्रियों ने भी शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इसके परिणामस्वरूप बहुत से स्पार्टन मारे गये। उन्होंने दासों को मेसेनिया सदा के लिए छोड़ने की शर्त पर चला जाने दिया।

इस सघर्ष में दासों से कड़ा मुकाबला होने के कारण स्पार्टन इस निष्कर्ष पर पहुच गये कि उन्हें अपनी सेना को बलवती बनाना चाहिए। अत स्पार्टा की सरकार ने सैनिक सेवा अनिवार्य करदी। शान्ति के समय भी नवयुवकों का समय सैन्य-शिविरों में ही व्यतीत होता था। सेना को नियन्त्रित करने के लिए दो शासक होते थे। स्पार्टा की सारी सत्ता स्पार्टन्स के हाथों में ही निहित थी। वे अपनी एक सभा निर्वाचित करते थे। उस सभा में उस वयोवृद्ध व्यक्ति को नेता चुनते थे जो गेरुसिया या गेरोंटिया कहलाता था। स्पार्टा में बलिष्ठ बच्चे ही जीवित रह सकते थे। निर्बल बच्चों को वृद्ध पुरुष पहाड़ से फेंक कर मार दिया करते थे। उनका अधिकाश समय शारीरिक व्यायाम करने में ही व्यतीत होता था। परेड, मल्लयुद्ध, दौड़ व भाला फेंकना उनके मनोरजन के साधन थे। युवकों को कठोर एव सादगी का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इस सब के पीछे स्पार्टा का एक ही लक्ष्य था कि उसे अनुशासित व आख मूद कर आज्ञापालन करने वाले सैनिक प्राप्त हो जावें। इस नीति के परिणामस्वरूप स्पार्टा एक सैनिक-राज्य बन गया और वहा एथेन्स (Athens) की भाति कला का विकास नहीं हो सका।

स्पार्टा में समाज तीन वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग सैनिकों का था। समाज में सर्वाधिक सम्मान इसी वर्ग को प्राप्त था। दूसरा वर्ग स्वतन्त्र मनुष्यों (Free Men) का था। इस वर्ग को भी नागरिकता का अधिकार प्राप्त नहीं था। तीसरा वर्ग गुलामों का था। इनका जीवन अत्यन्त दयनीय था।

625 ई० पू० में यहा भी एथेन्स की भाति लिखित सविधान बनाने की प्रक्रिया आरभ हुई। यह कार्य लाइकर्गस नामक विद्वान को सौंपा गया। इसका उद्देश्य स्पार्टा को एक शक्तिशाली और सैनिक दृष्टिकोण वाला राज्य बनाना था। इसके द्वारा निर्मित विधान के चार प्रमुख अग थे-

1 राजा–स्पार्टा में दो राजाओं की व्यवस्था की गई थी। इनके पद वशानुगत होते थे। ये दोनों ही सेना के सर्वोच्च होते थे। धर्माधीश भी ये ही होते थे।

2 सीनेट–यह अभिजात वर्ग की एक सभा होती थी। इसे जेरुसिया (Gerusia) कहा जाता था। इसके सदस्य आजीवन के लिए होते थे। न्यायपालिका व व्यवस्थापिका के कार्य इस सभा के पास ही होते थे।

3 असेम्बली–यह स्पार्टा में जनसाधारण की सभा होती थी। इसे अपेला (Apella) कहा जाता था। 30 वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर स्पार्टन इसका सदस्य समझा जाता था। इनकी सदस्य सख्या 8000 के लगभग थी।

4 डायरेक्टरी–इसके पाच सदस्य होते थे। वे 'एफर' कहलाते थे। इनका चुनाव प्रतिवर्ष असेम्बली द्वारा होता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि लाइकर्गस के सविधान में सरकार रूपरेखा में राजतन्त्र, सिद्धान्तों में गणतन्त्र और वास्तविकता में कुलीनतन्त्र थी।[1]

सविधान की समीक्षा–स्पार्टा नगर-राज्य ने आरभ से ही अपना स्वरूप सैनिक राज्य का रखा। अत सविधान भी उसी प्रकार का निर्मित हुआ। इस सविधान ने मानव की कोमल भावनाओं को सुखा कर उसे यन्त्रवत बना दिया। स्पार्टन्स का राज्य ही सर्वस्व था। उनको व्यक्ति का कोई महत्व नहीं था। व्यक्ति को राज्य के लिए बलि कर दिया गया था। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कोई व्यवसाय भी नहीं कर सकता था। वे अन्धविश्वासी थी पर स्पार्टा के लिए उनमें अपूर्व श्रद्धा थी। उनकी इस मनोवृत्ति को देख कर यदि उनकी तुलना जर्मनों से की जावे तो उचित रहेगी। जर्मनी की भाति ही स्पार्टा में सैनिकवाद को प्रबल बनाया गया था।

उपरोक्त दोषों को देखते हुए भी हम स्पार्टा के उस सविधान को सर्वथा निन्दनीय नहीं कह सकते। इस सविधान के कारण ही स्पार्टा यूनान का एक शक्तिशाली एव गौरवशाली नगर-राज्य बन सका था।

स्पार्टा नगर-राज्य का अन्त–मसनिया से लबे समय (743 724 ई०पू०) तक युद्ध करके स्पार्टा ने यूनान मे अपने को एक शक्तिशाली नगर-राज्य सिद्ध किया। छठी सदी ई० पू० में आर्गोज और आर्केडिया स्पार्टन साम्राज्यवादी क्षुधा के ग्रास बने। हालाकि इस आक्रमण में उन्हें उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली तथापि उसके सैनिक गौरव में कोई कमी नहीं आई। फारस के विरुद्ध एथेन्स को सैनिक सहायता देकर उसने यूनान में अपना महत्व स्पष्ट कर दिया और वह अपनी शक्ति की चरम-सीमा पर पहुच गया। परन्तु इस शक्तिशाली राज्य को 317 ई० पू० में थिब्ज (Thebes) ने परास्त कर दिया। इस पराजय के अपयश से मुक्त हुआ ही था कि सिकन्दर महान ने अपनी विश्व-विजेता बनने की कामना से इस नगर-राज्य को समाप्त कर दिया।

यूनान का फारस के साथ युद्ध (492 479 ई० पू०)
(War between the Greeks and the Persians)

521 ई पू में फारस का शासक दरियस प्रथम (Darius I) गद्दी पर बैठा। वह फारस का महान शासक सिद्ध हुआ। आरभ में अनेक कठिनाइयों का सामना करने पर भी उसने साम्राज्यवादी नीति अपनाई। उधर एथेन्स जो कि एक लोकतन्त्रीय नगर-राज्य हो गया था, भी विस्तारवादी नीति पर आचरण कर रहा था। अत एक साथ पड़ौस में दो साम्राज्यवादी शक्तिया विकसित नहीं हो सकतीं। इनमें से एक को परास्त होकर समाप्त होना ही पड़ता है। अत एथेन्स और फारस में प्रतिद्वन्दिता आरभ हो गई। युद्ध की पहल फारस ने की। इसका परिणाम देरियस को घातक रहा। यूनान के साथ फारस का युद्ध उसकी मृत्यु के उपरान्त भी चलता रहा। उनमें कई युद्ध लड़े गये। उनमें प्रथम युद्ध मराथान का था।

---

[1]Spartan Government was in form a monarchy in theory a republic and in reality

B C. Pandey

माराथान (Marathon) युद्ध के कारण

1 **फारस के सम्राट साइरस और देरियस प्रथम की साम्राज्यवादी नीति**–फारस को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाले सम्राट साइरस और देरियस प्रथम थे। वे दोनों सम्राट साम्राज्यवादी थे। उन्होंने फारस के साम्राज्य को विस्तीर्ण करना अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। यही कारण था कि फारस का साम्राज्य उनके शासन-काल में मकदूनिया से लेकर भारत देश तक फैल गया था। परन्तु फारस के इस तीव्र गति से बढ़ते साम्राज्य को देख यूनान वाले भयभीत हो गये। देरियस प्रथम ने यूनान पर आक्रमण कर उनके भय को सच्चा बना दिया। अत हम देखते हैं कि फारस के सम्राट सायरस और देरियस प्रथम की साम्राज्यवादी क्षुधा ने माराथान के युद्ध को प्रेरित किया था।

2 **499 ई० पू० के लगभग एशिया माइनर के यूनानियों द्वारा विद्रोह करना**–देरियस प्रथम ने अपने साम्राज्य विस्तार का क्षेत्र पश्चिम पाया। देरियस (दारा) ने एशिया माइनर में स्थित यूनानी उपनिवेशों से कर चुकाने के लिए कहा। उपनिवेशों ने कर देने से इन्कार कर दिया और इसके विपरीत उन्होंने विद्रोह और कर दिया। विद्रोह को दबाने को बहाने देरियस प्रथम ने अपनी सेनाए भेज दीं। यूनानी उपनिवेशों की सहायता के लिए एथेन्स ने भी सैनिक सहायता भेज दी। देरियस ने लीडिया पर अधिकार कर एशिया माइनर पर आक्रमण कर दिया। वहा के यूनानियों का उसने शक्ति से दमन किया। परन्तु एशिया माइनर के यूनानी भी स्वतन्त्रता प्रिय थे। वे एथेन्स की सहायता से निरन्तर विद्रोह करते रहे। उस विद्रोह को दबाने के लिए देरियस प्रथम ने एक जहाजी बेड़ा भेजा जिसके कारण यह माराथान का संघर्ष हुआ।

3 **एथेन्स द्वारा सैनिक सहायता देना**–एशिया माइनर के यूनानी उपनिवेशों को जब एथेन्स बराबर सैनिक सहायता भेजता रहा तो देरियस नाराज हो गया और वह यूनान की भूमि पर ही अपने उपनिवेश स्थापित करने का इरादा करने लगा।

4 **एथेन्स में लोकतन्त्र का होना**–एथेन्स तथा अन्य यूनानी नगर-राज्यों में प्रचलित प्रजातन्त्र प्रणाली से देरियस को चिन्ता हो रही थी। उसे भय था कि यह लोकतन्त्र-भावना कहीं फारस में न फैल जावे। अत वह यूनान के नगर-राज्यों को समाप्त करने पर तुल गया।

5 **हिप्पियस का फारस के दरबार में जाना**–यह यूनान का अन्तिम प्रजापीड़क था और फिसिस ट्रेट्स का पुत्र था। जब उसे गद्दी छोड़ने को बाध्य कर दिया गया तो वह फारस चला गया और वहा जाकर देरियस को उसे यूनान का पुन शासक बनाने हेतु युद्ध के लिए उकसाने लगा।

6 **लीडिया में स्वर्ण का प्रचुर मात्रा में मिलना**–फारस की निरन्तर युद्ध करने से आर्थिक अवस्था दयनीय हो गई थी। उसे धन की आवश्यकता थी। लीडिया में स्वर्ण उपलब्ध था। इस कारण भी फारस उस पर अधिकार करना चाहता था।

7 **रानी प्रेरणा**–एक जनश्रुति यह भी कहती है कि देरियस प्रथम ने अपनी रानी के कहने से यूनान पर आक्रमण करने की पहल की थी।

घटना-एशिया माइनर में विद्रोह को दबाने के लिए फारस के सम्राट देरियस प्रथम ने 490 ई० पू० में एक विशाल सेना भेजी। इस सेना का नायक मारडोनियस (Mardonius) था। फारस की सेना वीरता से संघर्ष करती आगे बढ़ती रही और यूनान के कई द्वीपों पर उसने अधिकार कर लिया। अन्त में एटिका राज्य के माराथान के मैदान में फारस की सेना ने अपना डेरा डाल दिया। फारस की विशाल सेना देखकर एथेन्स काप उठा। उसने सर्वोत्तम धावक फेइलिप्पीडीज (Philippides) को स्पार्टा सैनिक सहायता के लिए भेजा। परन्तु स्पार्टन्स ने समय पर पहुचने से इन्कार कर दिया। एथेन्स की सेना माराथान पहुची। अपने 10,000 सैनिकों से फारस के एक लाख सैनिकों से मुकाबला करना यूनानियों ने उचित नहीं समझा। अभाग्यवश उन्हें खबर मिली कि इरीट्रिया (Eretria) भी फारस के आगे परास्त हो चुका है। अत वहा से भी फारसी सेना अब माराथान आ सकती थी। इसीलिए यूनानी सेनानायक मिल्टयाडीज (Miltiades) ने विलब करना उचित नहीं समझा। उसने अपने निराश सैनिकों में नवीन उत्साह का सचार किया और उन्हें युद्ध करने को प्रेरित किया। लाखों फारसी अपने बाणों की सहायता से कवचधारी यूनानियों को परास्त नहीं कर सके। फारस की सेना को मुह की खानी पड़ी। हड़बड़ा कर पारसीक (फारसी) सैनिक अपने जहाजों की तरफ दौड़े-परन्तु यूनानियों ने उनके सात जहाजों को भी अपने अधिकार में कर लिया। शेष जहाजों की शरण ले कर फारसी सैनिक अपने देश लौट सके। एथेन्स सैनिक खुशिया मनाने लगे। इसी समय वही तेज धावक फेइलिप्पीडीज दौड़ता हुआ एथेन्स पहुचा और चिल्लाया कि एथेन्स बचा लिया गया है। इतना कहते ही वह इस लोक से विदा हो गया।

युद्ध के परिणाम-माराथान का युद्ध विश्व में एक प्रमुख स्थान रखता है। इस युद्ध की विजय ने यूनान वालों को अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने में समर्थ बना दिया। इसके अतिरिक्त यह युद्ध की विजय ही थी जिसके कारण यूनान वाले अपनी सभ्यता का विकास स्वतन्त्रतापूर्वक कर सके। अगर एथेन्स अपनी स्वतन्त्रता को खो बैठता तो यह सम्भव था कि एथेन्स प्राचीन यूनानी सभ्यता का वैभवशाली केन्द्र नहीं बन पाता। इस युद्ध के पश्चात् यूनान वालों को एक सुदृढ़ जहाजी बेड़े के रखने का महत्व भी ज्ञात हो गया। इस युद्ध की समाप्ति पर यूनान में डेलियन सघ (Dalian League) की स्थापना हुई और इस सघ के गठन में एथेन्स वालों का प्रमुख हाथ था। इस लीग की स्थापना से यूनान के नगर-राज्यों की सुरक्षा कायम रही। इस विजय से यूनान का समीप के देशों पर प्रभाव कायम हो गया और उसकी सभ्यता और भी सुगमता से विकसित होने लगी। इन्हीं परिणामों के आधार पर इतिहासकार हेज (Hayes) ने इसे इतिहास की एक महान निर्णायक लड़ाई बताई है।[1] दोनों देशों के लिए ही यह लड़ाई महत्वपूर्ण रही। फारस की बढ़ती शक्ति के लिए घातक रही तथा एथेन्स के लिए यह फलदायक सिद्ध हुई।

---

1 'Marathon, 490 B C. was one of the decisive battles of history

J H. Hayes

थर्मापोली (Thermopyle) की लड़ाई

जैसा कि बताया जा चुका है कि मराथान का युद्ध फारस के लिए घातक सिद्ध हुआ। फारस का साम्राज्यवादी एव महत्वाकाक्षी सम्राट देरियस प्रथम इस पराजय के अपमान को सहन नहीं कर सका और 485 ई० पू० में इस लोक से विदा हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र जरक्सीज (क्षयार्श) फारस का शासक बना। सौन्दर्य तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से वह फारस का सबसे सुन्दर एव भव्य व्यक्तित्व वाला शासक माना जाता है। वह भी अपने पिता की भाति वीर तथा महत्वाकाक्षी शासक था। वह समस्त विश्व को मुट्ठी में बाध कर रखना चाहता था। परन्तु जब उसका पिता देरियस प्रथम मराथान के युद्ध में जूझ रहा था तब वह भोग-विलास में जीवन की सार्थकता ढूढ रहा था। अत उससे फारसवालों को विशेष आशा नहीं थी। परन्तु फारस के पुरातन गौरव तथा देरियस प्रथम की विजय-यात्राओं ने उसमें नवीन उत्साह का सचार किया और वह पिता की पराजय का यूनान से प्रतिकार लेने का इरादा करने लगा। अत वह 480 ई० पू० में एक विशाल सेना के साथ यूनान के विरुद्ध रवाना हो गया। उसकी विशाल सेना में पारसीकों के अलावा असीरिया, मिस्र, बेबीलोन के भी सैनिक थे। जरक्सीज (Xerxes) ने फिनीशियनों को अपने युद्ध-पोत बनाने को बाध्य किया। अत स्पष्ट है कि उसकी विशाल सेना में गैर-पारसिक सैनिक भी बहुत थे जो अनिच्छा से इस सैनिक अभियान में भर्ती कर लिए गये थे।

लड़ाई के कारण-

1 **जरकसीक्सीज का साम्राज्यवादी होना**-यह सम्राट भी अपने पिता की भाति साम्राज्यवादी था। वह अपने विशाल साम्राज्य को और विस्तृत करना चाहता था। अब यूनान ही ऐसा राज्य बचा था जो फारस-साम्राज्य का अग नहीं बना था और उसके समीप था।

2 **जरकसीज अपने पिता की पराजय का बदला लेना चाहता था**-नि सन्देह जरकसीज अपने प्रारभिक जीवन में विलासी था। इसी कारण वह मराथान के युद्ध में भाग लेने भी नहीं आया था। परन्तु पिता की मृत्यु के उपरान्त देश के गौरव व परिस्थितियों ने उसके हृदय में पराजय का बदला लेने की भावना को प्रबल बना दिया। इस बदले की भावना से प्रेरित होकर ही उसने यूनान पर धावा बोला था।

3 **एथेन्स की प्रजातन्त्र प्रणाली**-एथेन्स में उस समय प्रजातन्त्र प्रणाली विद्यमान थी और वह दिनोंदिन प्रबल एव विकसित होती जा रही थी। मराथान युद्ध में विजय प्राप्त हो जाने से एथेन्सवासियों की प्रजातन्त्र प्रणाली में आस्था और सुदृढ़ हो गई थी। पिता की भाति जरकसीज भी इस प्रजातन्त्र समर्थक यूनान से परेशान था। अत वह यूनान को परास्त कर वहा भी सुदृढ़ राजतन्त्र की स्थापना करना चाहता था।

4 **यूनान द्वारा हिप्पियस (Hippias) की माग करना**-मराथान सघर्ष का एक कारण हिप्पियस भी था। वह अपना राज्य पुन प्राप्त करने की दृष्टि फारस के सम्राट को यूनान पर आक्रमण करने के लिए उकसा रहा था। इसी कारण एथेन्स में एक दल ऐसा बन गया था जो कि हिप्पियस को वापिस यूनान में देखना चाहता था ताकि उसे दण्डित किया जा सके।

घटनाएं-जैसा कि बताया जा चुका है कि 480 ई० पू० में महत्वाकांक्षी जरकसीज अपने पिता की पराजय का प्रतिकार लेने रवाना हो गया। भाग्यवश उत्तरी यूनान में उसे आसानी से सफलता मिल गई। बिना युद्ध किये ही उसका उत्तरी यूनान पर अधिकार हो गया। परन्तु मध्य यूनान व दक्षिणी यूनान में उसकी दाल नहीं गली।

जरकसीज के इस आक्रमण से यूनानी भयभीत नहीं थे, क्योंकि मराथान की विजय ने उनमें नवीन प्रेरणा उत्पन्न करदी थी। इसके अलावा एथेन्सवासी जरकसीज के इरादों की जानकारी प्राप्त कर पहले से ही अपनी सुरक्षा की तैयारी कर रहे थे। भाग्यवश इस समय एथेन्स को थेमीस्टोक्लीज (Themistocles) जैसा योग्य नेता मिल गया था। उसने प्रारंभ से ही एक सुदृढ़ जहाजी बेड़े की आवश्यकता पर जोर देना आरंभ कर दिया था। अत इस समय एथेन्स के पास एक सुदृढ़ जहाजी बेड़ा भी गठित हो चुका था। भाग्यवश यूनान के अन्य नगर-राज्य भी एथेन्स की सहायता करन के लिए उद्यत हो गये। स्पार्टा के सैनिक भी अपने शासक लियोनिडास (Leonidas) के नेतृत्व में थर्मापोली की तंग घाटी में आ डटे।

थर्मापोली के समीप पहुंच कर फारस के सम्राट जरकसीज ने लियोनिडोस को आत्म-समर्पण के लिए कहलाया और कहा कि यूनानी सैनिक अपने हथियार पारसीक सैनिकों को सौंप दें। लियोनिडास ने निर्भिकता से कहलाया 'आओ और ले जाओ'' यह उत्तर पाकर जरकसीज ने अपने अन्य दूत के माध्यम से अपनी विशाल सेना का हौवा दिखाने का प्रयास किया। दूत ने यूनानी सेनाध्यक्ष से कहा-''हमारे तीर और बल्लम सूर्य को ढक देंगे।'' लियोनिडास ने उत्तर में कहा, 'कोई बात नहीं, हम अन्धेरे में लड़ने को तैयार हैं।'' इस पर युद्ध आरंभ हो गया। दो दिन तक युद्ध चलता रहा। युद्ध करने को उद्यत न होने वाले पारसीक सैनिकों को कोड़े मार-मारकर युद्ध-भूमि में ढकेला। यूनानियों ने पारसीक सैनिकों के आक्रमण विफल कर दिया। परन्तु एक देशद्रोही यूनानी ने रात्रि को पारसीक सैनिकों को पगडंडियों से पहाड़ पार करवा दिया। लियोनिडास ने देख लिया कि यूनानी सैनिक घिरने वाले हैं। उसने स्पार्टन्स के अलावा सब सैनिकों को पीछे हट जाने को कहा। इस पर वहां कुल 300 स्पार्टा के सैनिक रह गये। उन तीन सौ सैनिकों की सहायता से लियोनिडास पारसीक सैनिकों को तब तक रोके रहा जब तक अन्य यूनानी सैनिक सकुशल पीछे नहीं हट गये और सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुंच गये।

नि सन्देह इस संघर्ष में लियोनिडास अपने समस्त (300) सैनिकों के साथ शहीद हो गया और विश्व-इतिहास में अपना नाम सदा के लिए कर गया। इसीलिए इतिहासकार हेज ने लिखा है कि भाग्य ने विजय नहीं मिलने दी पर उन्हें अमर कीर्ति के ताज से अवश्य अलंकृत कर दिया।[1] युद्ध स्थल पर इनके सम्मान में एक स्मारक खड़ा किया गया, जिस पर लिखा था- ''ऐ पथिक जाओ स्पार्टन्स को जाकर बताना कि अपने कर्तव्य का पालन करते हुए हमने यहां मृत्यु का वरण किया था।''

---

1 J.H. Hayes 'World History p 92
"... denied them victory but crowned them with glorious immortality"

एथेन्स का विनाश–थर्मापोली पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त जरकसीज गौरव के साथ आगे बढ़ा और उसने मध्य-यूनान पर अधिकार कर लिया। थीब्ज (Thebes) और अन्य यूनान राज्य बियोशिया (Beotia) में पारसीक सेना से आ मिले। जब यह समाचार एथेन्स में पहुचा तो एथेन्सवासी घबरा गये। डेल्फी पर ऐपोलो ने भविष्यवाणी की कि अपने लकड़ी की दीवारों पर विश्वास (Trust your wooden walls) करो। थेमीस्टोक्लीज (Themistocles) ने इसका अर्थ लिया कि तीन-तीन कतारों की डाडों से चलनी वाली ट्रिएरीस (Triremes) नावों पर विश्वास करो। उसने एथेन्सवासियों को एथेन्स व एट्रिका खाली करने को कहा और जहाजी बेड़े पर चलने को कहा। सभी-बच्चों व वृद्ध पुरुषों को पास के द्वीपों में भेज दिया गया और सैनिकों को युद्ध-पोत सभालने को कहा। फारस के शासक ने एथेन्स पर अधिकार कर लिया। अपने देवालयों की रक्षार्थ जो चन्द एथेन्सवासी वहा रह गये थे उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। देवालय व सारा एथेन्स अग्नि-देवता के भेंट चढ़ा दिया गया। एथेन्स कई दिनों तक धू-धू जलता रहा।

सालमिस (Salamis) की लड़ाई–एथेन्सवासी अपने जहाजी बेड़े के साथ सालमिस पहुच गये। सालमिस एव एट्रिका के बीच खाड़ी में खड़े यूनानी बेड़े को देख कर जरकसीज अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे अपनी विजय की पूर्ण आशा थी। उसने यूनान के जहाजी बेड़े को एक छोटा से बेड़ा समझा था। उसी वक्त थेमीस्टोक्लीज अपने युद्ध पोतों के साथ वहा आ धमका और उसने फारस के जहाजी बेड़े पर धावा बोल दिया। यूनानी बेड़ा फारस के बेड़े के अग्र भाग को छेदता हुआ बीच में प्रवेश कर गया। पारसीक बेड़े में खलबली मच गई। फारस के बहुत से जहाज समीप की चट्टानों से टकरा कर नष्ट हो गये। जरकसीज अपने बेड़े का विनाश समीप की पहाड़ी पर से देख रहा था। जब 200 पोत जलमग्न हो गये तो शेष जहाज वहा से भाग छूटे। इस प्रकार 23 सितबर 480 ई० पू० को सालमिस की लड़ाई में फारस की पराजय स्पष्ट हो गई।

प्लेटीय (Platea) की लड़ाई में यूनानियों की पूर्ण विजय–सालमिस की समुद्री लड़ाई में परास्त होकर जरकसीज तो अपने देश लौट गया क्योंकि उसे भय था कि कहीं यूनानी सैनिक उसके लौटने का मार्ग अवरूद्ध न कर दें। परन्तु पीछे वह अपने सेनापति मारडोनियस (Mardonius) को सेना के साथ छोड़ गया। सेनापति ने कूटनीति से यूनानियों में फूट डाल कर उन्हें अपने आधीन करना चाहा। परन्तु यूनानी उसकी चाल में नहीं फँसे और प्लेटीय की लड़ाई में उन्होंने पारसीक सैनिकों को पूर्णत परास्त कर खदेड़ दिया। हालाकि सघर्ष दोनों शक्तियों में इसके बाद भी 30 साल तक चलता रहा, परन्तु अन्त में फारस को यूनान की स्वतत्रता स्वीकार करनी पड़ी।

युद्ध के परिणाम–1 फारस के सम्राट की साम्राज्यवादी नीति पर तुषारापात हुआ। 2 इसके विपरीत यूनानी स्वय साम्राज्यवादी हो गये। यूनान के नगर-राज्यों में कला व व्यापार का पर्याप्त विकास हुआ। 3 एथेन्स यूनान के नगर-राज्यों में प्रमुख हो गया। 4 एथेन्स का वैभव स्पार्टा और एथेन्स के बीच शत्रुता का कारण बन गया। 5 एथेन्स में लोकतन्त्र की रक्षा हो गई। 6 फारस को विजय मिल जाने पर सभवत समस्त यूरोप में भी राजतन्त्र

के प्रति आस्था सुदृढ़ हो जाती और वहा लोकतन्त्र पनपने की सभावना नहीं रहती। 7 फारस को परास्त करने के उपरान्त एथेन्स-वासियों में स्वाभिमान तथा आत्म-विश्वास की भावनाए और प्रबल हो गई।

यूनान की विजय के कारण–1 यूनानी सत्य पर थे और उनमें स्वतत्रता के प्रति प्रेम था। 2 फारस के सैनिकों में राष्ट्रीय भावना का अभाव था। 3 फारस के सैनिक अत्याचारी थे। 4 फारस के सैनिकों को दूर आकर युद्ध करना पड़ा। 5 फारस की सेना में कई देशों के सैनिक सम्मिलित थे। वे इच्छा के विरुद्ध थर्मापोली के युद्ध में सम्मिलित होने को बाध्य किये गये थे। अत उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव था। 6 थेमीस्टोक्लीज का नेतृत्व प्राप्त होना। यूनान के जहाजी बेड़े को शक्तिशाली बनाने वाला थेमीस्टोक्लीज ही था। एपेलो की भविष्यवाणी का सही अर्थ उसी ने समझाया। जहाजी बेड़े के महत्त्व को समझते हुए उसीने 'ट्रिएरीस' नावों का निर्माण करवाया जिनके फलस्वरूप यूनान का विजय प्राप्त हुई। 7 यूनान का जहाजी बेड़ा फारस के जहाजी बेड़े से विशाल तथा अधिक द्रुतगामी था। इसीलिए यूनानी फारस के जहाजी बेड़े को नष्ट करने में सफल रहे।

युद्ध के पश्चात यूनान-फारस की सेनाओं से मुकाबला करने में यूनानियों को काफी कठिनाइया हुई थीं। यूनान को आर्थिक सकट का मुकाबला भी करना पड़ा। परन्तु युद्ध के पश्चात जो परिणाम निकले वे यूनान की समृद्धि में वृद्धिकारक सिद्ध हुए। प्लेटीय के युद्ध में फारस की सेना को हराने के बाद यूनानी सेना ने एशियाई कोचक पर धावा बोल दिया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। एथेन्स यूनान का पथ-प्रदर्शक बन गया और थेमिस्टोक्लीज यूनान का नेता बन गया। वह साम्राज्यवादी था। अत अपने साम्राज्य-विस्तार के लिए वह स्पार्टा से युद्ध करने का पक्ष पाती बन गया। डेलियन सघ (Delian Confederacy) की स्थापना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन था। उस सघ से एथेन्स की रक्षा तथा यूनान साम्राज्य को विस्तीर्ण करना थेमिस्टोक्लीज का एकमात्र उद्देश्य था।

डेलियन सघ (Delian Confederacy) फारस को परास्त करने के उपरान्त भी एथेन्स व स्पार्टा को अपनी सुरक्षा की चिन्ता बनी रही। इस कारण दोनों राज्यों ने यूनान के नगर-राज्यों का एक सघ बनाया। इसके 200 से भी अधिक नगर-राज्य सदस्य थे। अध्यक्ष एथेन्स नगर-राज्य बना। सघ की नौसेना (Navy) व थल सेना (Army)सयुक्त थी। प्रत्येक सदस्य नगर-राज्य को नौसेना के लिए कुछ निश्चित धन देना पड़ता था।

सघ का सैन्य सचालन एथेन्स के रणनीतिज्ञों के हाथों में था। कालान्तर में सघ का सामूहिक कोष भी एथेन्स में ले आया गया और एथेन्स में ही उसका प्रबन्ध होने लगा। एथेन्सवासी ही यह तय करने लगे कि कौन सा सदस्य कितना धन या कितने पोत देगा? परन्तु पोत बहुधा शक्तिशाली नगर-राज्यों से ही लिए जाते थे और निर्बल राज्य निर्धारित धन ही देते थे। इस सघ का प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्य राज्य का फारस से बचाना तो था ही पर साथ में ही इसका उद्देश्य समुद्री डाकुओं का सफाया था। इसके अलावा यह सघ अपने सदस्य राज्यों के झगड़ो को भी तय करता

था। इस प्रकार 'डेलियन-संघ' की स्थापना उस काल में इतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी कि आज के युग में संयुक्त राष्ट्र-संघ (U N O) की विश्व-शांति के लिए महत्वपूर्ण है।

डेलियन संघ यूनान के पतन का कारण बना–डेलियन संघ को भी प्रारंभ में कुछ सफलतायें मिलीं। फारस का साहस यूनान पर आक्रमण करने का नहीं हुआ। इस कारण यूनान-प्रजातन्त्र दिनोंदिन विकसित होता गया। समुद्री डाकुओं का भी सफाया हो गया। इस कारण यूनान का व्यापार विकसित हुआ। परन्तु ज्यों-ज्यों एथेन्स का प्रभाव संघ पर बढ़ता गया यह संघ विवाद का कारण बनता गया। संघ का नाम डेलियन (Delian) इसलिए पड़ा था कि इसका कार्यालय प्रथम डेलौस (Delos) द्वीप में रखा गया था, परन्तु एथेन्स ने इसका प्रधान कार्यालय अपने यहां स्थापित कर लिया। सारा प्रबन्ध एथेन्स ने अपने हाथ ले लिया। फलस्वरूप संघ एथेनी नौसैनिक संघ (Athenian Naval Confederacy) कहलाने लगा। संघ की सदस्यता तथा सदस्यों की आर्थिक सहायता प्रारंभ में स्वेच्छानुसार थी, किन्तु एथेन्स ने इसे अनिवार्य करदी। संघ का कोष भी एथेन्स के अधिकार में आ गया था। अतः सदस्य राज्यों से जबरन धन लेकर इसका कोष बढ़ाना आरंभ किया और उस धन को एथेन्स के विकास तथा अपने उपनिवेशों की स्थापना में खर्च करना आरंभ किया। इससे सदस्य राज्यों में असन्तोष फैल गया। वे संघ की सदस्यता से विलग होने का प्रयास करने लगे। उधर एथेन्स के राजमर्मज्ञ और व्यापारी इस संघ को एथेन्स के साम्राज्य-विस्तार का माध्यम बनाने के लिए कटिबद्ध थे। इसके कोष को थेमीस्टोक्लीज (Themistocles) तथा पेरीक्लीज (Pericles) ने एथेन्स के साम्राज्य विस्तार में लगाना आरंभ कर दिया। इस कोष से थेमीस्टोक्लीज ने अपनी नौसैना का विस्तार किया तथा उसे सुदृढ़ किया। कोष को बनाये रखने के लिए इसके सदस्य राज्यों को शक्ति के सहारे संघ का सदस्य बनाये रखा और उनसे जबरन धन वसूल किया जाता रहा। अन्य नगर-राज्यों में होने वाले विद्रोहों को दबाने के लिए एथेन्स ने अपने सैनिक तैनात कर दिए। इस प्रकार इस संघ के माध्यम से एथेन्स ने यूनान के अन्य नगर-राज्यों पर अपनी पकड़ मजबूत करली। प्रजातन्त्र के प्रबल समर्थक एथेन्स ने अपने नगर-राज्यों के साथ अलोकतन्त्रीय बर्ताव करना आरंभ कर दिया। एथेन्स के इन कार्यों से स्पार्टा (Sparta) तो नाराज था ही पर एथेन्स की साम्राज्यवादी नीति से वह खासकर नाराज हो गया। इस मनमुटाव के कारण दोनों नगर-राज्यों में पैलोपोनेशियन (Peloponnesian) युद्ध आरंभ हो गये। तीसरे पैलोपोनेशियन युद्ध में एथेन्स के नेता एलसीबियेडस (Alcibiades) ने अपने देश को धोखा दिया। हालांकि इस तीसरे युद्ध के लिए एथेन्सवासियों को उसी ने तैयार किया था। परन्तु अन्त समय में अपने को देशद्रोही सिद्ध करके एथेन्स को स्पार्टा से परास्त करा दिया। इस युद्ध में फारस ने भी स्पार्टा का साथ दिया था। इस प्रकार एथेन्स और स्पार्टा जो एक दिन कन्धे से कन्धा लगा कर फारस के विरुद्ध लड़े थे वे अब एक दूसरे के कट्टर शत्रु हो गये। स्पार्टा ने 405 ई० पू० में एथेन्स को 'एगोसपोटामी' (Aegospotami) के युद्ध में हरा कर उसे विनाश के गर्त में ढकेल दिया।

पैरीक्लीज का काल स्वर्ण-काल के रूप में

प्रत्येक देश के इतिहास में कुछ ऐसे व्यक्ति आविर्भूत होते रहे हैं जो अपने देश को अपनी नीति व दूरदर्शिता स नवीन दिशाबोध देते हैं तथा जनसाधारण को नव-जीवन प्रदान करते हैं। वे अपने कार्यों से देश व समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। वे अपने उल्लेखनीय कार्यों से देश व समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं और उनका काल उनके नाम पर ही जाना जाता है। पैरीक्लीज (Pericles) भी उन महान् व्यक्तियों में से एक था जिसने एक निश्चित समय तक यूनान के कार्यकलापों पर अपना प्रभाव डाला। इसका व्यक्तित्व दीर्घकाल तक यूनानी विचारधारा को प्रभावित करता रहा और वह अपनी उपलब्धियों से देश की आर्थिक सम्पन्नता तथा कला को प्रत्येक क्षेत्र में सवर्धित करता रहा। यही कारण है कि जिस प्रकार हमारे देश में गुप्त शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने स्वर्ण-युग का समावेश किया, उसी प्रकार पैरीक्लीज ने यूनान के इतिहास में स्वर्ण-युग का समागम किया।

पैरीक्लीज का प्रारम्भिक जीवन-पाचवी सदी ई० पू० में एथेन्स की सत्ता पैरीक्लीज के सुदृढ हाथों में आई। उसका जन्म एक सभ्रान्त एव सम्पन्न परिवार में हुआ था। वह क्लाइस्थेनिस (Cleisthenes) का पौत्र तथा जैन्थिपस (Xanthipus) का पुत्र था। इस प्रकार पैरीक्लीज ने अपनी वश-परम्परा में अनुशासन, सुधार करने की प्रतिभा एव वीरता के गुण एक वसीयत के रूप में पाये थे। फारस के विरुद्ध वह सलेमिस (Salamis) और मैकेल (Mycale) के युद्धों में अपनी वीरता का प्रदर्शन कर चुका था। इसके अतिरिक्त वह स्वय प्रतिभाशाली एव सुशिक्षित व्यक्ति था। पाइथोक्लीडीज और डैमन उसके गुरू थे जिनसे उसने साहित्य और सगीत की शिक्षा पाई थी। एनैक्जागोरस उसका दार्शनिक मित्र था जिससे उसे अपने जीवन में सत्य का बोध हुआ था। वह अपने समय का एक अच्छा आजस्वी वक्ता था। इस पर भी वह सदा शान्त रहता था तथा बोलने में सयम बरतता था। परन्तु जब वह आवेश व क्रोध में आकर बोलता था तो यूनानियों का कहना है कि अपने गर्जन और तड़ित प्रहार से वह शत्रुओं को भूमिसात कर देने वाले देव जीयस जैसा बन जाता था।[1] इस प्रकार पैरीक्लीज का प्रारभिक जीवन उस होनहार पौधे के समान था जिसे उपजाऊ भूमि में बड़ी सावधानी से रोपा गया हो।

पैरीक्लीज का राजनीतिक जीवन-राजनीति मे पैरीक्लीज आदर्शवाद का उपासक नहीं था। उसकी धारणा थी कि राजनीति साधु-सन्तों की पवित्र कन्दरा नहीं वरन् यह तो वह रगमच है जिस पर एक राजनीतिज्ञ को जनहित के लिए सत्य-असत्य, छल-कपट आदि का बिना विचार किए अभिनय करना पड़ता है। उसकी इस धारणा से उसका राजनीतिक जीवन पूर्णरूपेण प्रभावित रहा और उसकी विदेश नीति में तो यह धारणा और भी स्पष्ट झलकती है। परन्तु अपने व्यक्तिगत् जीवन में वह भ्रष्टाचार से परे था।

443 ई० पू० में जन-सभा द्वारा राज्य के सर्वोच्च पद (प्रथम सेनानायक) पर वह निर्वाचित किया गया। इस समय से वह एथेन्स के प्रशासन तथा नौसेना के सचालन

---

[1] गेर कोरोविन प्राचीन विश्व का इतिहास का परिचय' पृ 172

में प्रमुख बन गया। उसके राजनीतिक जीवन में उसके उद्देश्य निम्नलिखित थे-

(i) पेरीक्लीज समस्त यूनान को एकजुट बनाकर उस पर एथेन्स का प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।

(ii) वह एथेन्स की नौसेना को सुदृढ़ बनाना चाहता था।

(iii) डेलियन संघ का वह प्रमुख रह कर उसे भी सुदृढ़ रखना चाहता था।

(iv) एथेन्स का वह सर्वोन्मुखी विकास करना चाहता था।

(v) साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का होने के कारण वह एथेन्स का साम्राज्य भी बढ़ाना चाहता था।

उसकी विदेश नीति-पेरीक्लीज ने अपने पाचवें उद्देश्य को अपनी विदेश नीति का आधार बनाया। साम्राज्यवाद के अन्तर्गत् वह विदेशों में अपनी बस्तिया भी अधिकाधिक स्थापित करना चाहता था। इसके पीछे उसके दो उद्देश्य थे-(i) समय पड़ने पर उन बस्तियों से वह सहायता प्राप्त कर सके तथा(ii) अपने एथेन्स की बढ़ती आबादी को वहा भेज कर वह यूनानी सभ्यता का प्रचार कर सके। इसीलिए सर्वप्रथम उसने एथेन्स का राजनीतिक क्षेत्र विस्तीर्ण करने का इरादा किया। वह चाहता था यूनानी नगर राज्यों में एथेन्स क्वीन ऑफ हेलास (Queen of Hellas) बन जावे। परन्तु उसे इस उद्देश्य की पूर्ति में स्पार्टा (Sparta) राज्य प्रमुख बाधा के रूप में दृष्टिगत होता था। अत उसने सर्वप्रथम स्पार्टा को यूनान में एकाकी राज्य बनाने का प्रयास उसी प्रकार किया जिस प्रकार उन्नीसवीं सदी में बिस्मार्क (Bismarck) ने फ्रांस को यूरोप में एकाकी बनाने का प्रयास किया था। इसके लिए उसने निम्न लिखित कार्य किये-

(i) उसने स्पार्टा के विरोधी थेसली तथा अर्गोस से सन्धि कर मित्रता के सम्बन्ध स्थापित कर लिए।

(ii) 460 ई० पू० में कोरिन्थ के आक्रमण के समय उसने मेगारा राज्य की सहायता कर उसे अपने पक्ष में कर लिया।

(iii) मध्य-यूनान को अपने प्रभाव में लाने के लिए उसने शक्ति का प्रयोग कर ईजिना, ट्रायजेन तथा एकिया राज्यों का अपना पक्ष-धर बना लिया।

(iv) अपने प्रबल शत्रु फारस को भी उसने 449 ई० पू० में सन्धि करने को बाध्य कर दिया। इस सन्धि के अन्तर्गत् फारस ने वचन दिया कि वह एथेन्स पर आक्रमण नहीं करेगा।

एथेन्स और स्पार्टा- प्रबल शत्रु फारस को परास्त करने में एथेन्स और स्पार्टा ने कन्धा से कन्धा लगाकर एक दूसरे का सहयोग किया था। परन्तु फारस पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त ही दोनों नगर-राज्यों के सम्बन्ध बिगड़ने लगे और उस कटुता के कारण निम्नलिखित थे -

(i) **पेरीक्लीज की औपनिवेशिक नीति**-जैसा कि बताया जा चुका है कि पेरीक्लीज साम्राज्यवादी था। वह आस-पास में अपने उपनिवेश स्थापित करना चाहता था। उसकी यह साम्राज्यवादी क्षुधा इतनी प्रबल हो गई कि उसकी तृप्ति के लिए वह कोरिन्थ तथा कोरसिरा को भी अपने उपनिवेश बनाने से नहीं चूका। ये दोनों नगर-राज्य स्पा

प्रभाव में थे। अत पैरीक्लीज की इस नीति के विरुद्ध स्पार्टा का होना स्वाभाविक था। इस पर जब पैरीक्लीज ने स्पार्टा के राज्य सिराक्यूज को प्रभाव में कर लिया तो स्पार्टा अत्यन्त नाराज हो गया।

(ii) व्यापारिक प्रतिद्वन्दता–दोनों ही नगर-राज्य अपना-अपना व्यापार विकसित करना चाहत थे। अत दोनो में टकराव होन लगा।

(iii) शासन-प्रणाली में भिन्नता–स्पार्टा में कुलीन राजतन्त्र था जबकि एथेन्स मे प्रजातन्त्र। अत दोनों नगर-राज्यों के विचारों व राजनीतिक कार्य-कलापों में भिन्नता होना स्वाभाविक था।

(iv) एथेन्स का बढ़ता हुआ गौरव–पेरीक्लीज ने एथेन्स का सर्वतोमुखी विकास कर स्पार्टा नगर-राज्य में द्वेष की भावना उत्पन्न कर दी। स्पार्टा को भय हो गया कि एथेन्स मुझे प्रत्येक क्षेत्र में न पछाड़ दे। अत वह उसके बढ़ते हुए गौरव म बाधक बनने लगा।

(v) डेलियन सघ–डेलियन सघ पर ज्योंही एथेन्स का प्रभाव स्थापित हुआ कि यह सघ दोनो नगर-राज्यों के बीच शत्रुता का कारण बन गया। एथेन्स ने डेलियन सघ के कोष पर अपना अधिकार कर लिया और उस धन को वह एथेन्स के विकास में लगाने लगा। इससे स्पार्टा नाराज हो गया।

(vi) पैलोपोनैसी लीग व डेलियन लीग में प्रतिस्पर्धा–जब डेलियन लीग पूर्णत एथेन्स के प्रभुत्व में आ गई तो पैलोपोनैसी लीग का नेता स्पार्टा बन गया। अत दोनों लीग में झगड़ा आरभ हो गया। इस कारण भी दोनों नगर-राज्यों के सम्बन्ध बिगड़ गये।

(vii) फारस पर विजय प्राप्त करना–फ़ारस पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त एथेन्सवासियों को गर्व हो गया। जब पैरीक्लीज के प्रताप से एथेन्स प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने लगा तो एथेन्सवासी स्पार्टा को हेय दृष्टि से देखने लगे और उसक अस्तित्व को समाप्त कर वे समस्त यूनान पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास करने लगे।

पैलोपोनेशियन युद्ध (404 ई० पू०) सास्कृतिक विकास में इस प्रकार एथेन्स ने तो उन्नीसवीं सदी के फ्रास का रूप धारण कर लिया और स्पार्टा ने प्रशा का। दोनों में मत-भेद 50 वर्ष तक बढ़ते रहे और यदा-कदा दोनों में झड़पें भी होती रहीं। प्रारभ में स्पार्टा एथेन्स से भय खाता रहा परन्तु प्रकृति ने स्पार्टा का साथ दिया। युद्ध के आरभ होते ही एथेन्स में महामारी फैल गई। इस बीमारी के प्रकोप से एथेन्स की आबादी एक तिहाई रह गई। स्वय पैरीक्लीज महामारी का शिकार बन गया। 415 ई० पू० में एथेन्स ने सिसली द्वीप के सीराक्यूज नगर-राज्य पर आक्रमण करक भारी भूल की। इस सैनिक अभियान में एथेन्स के कई जहाज नष्ट हो गय तथा कई सैनिक मारे गये। एथेन्स को इस क्षति के कारण 404 ई पू में स्पार्टा से करारी मात खानी पड़ी। इसके विपरीत स्पार्टा को फारस के राजा से सहायता मिल गई। परिणामस्वरूप एथेन्स को स्पार्टा के साथ एक कठोर सन्धि करनी पड़ी।

के परिणाम–

(i) एथेन्स परास्त हुआ। उस पर 30 वर्ष तक स्पार्टा का प्रभुत्व रहा।

(ii) एथेन्स के लोकतन्त्र को महान आघात लगा।
(iii) भूमध्यसागर पर एथेन्स का प्रभाव समाप्त हो गया।
(iv) दोनों नगर-राज्य आपसी लड़ाई में निर्बल हो गये और अन्त में सिकन्दर महान के शिकार हो गये।
(v) मैसोडोनिया राज्य का उत्कर्ष आरभ हो गया। इधर जब स्पार्टा और एथेन्स झगड़ने लगे तो यूनान की एकता नष्ट हो गई और फिलिप ने मैसोडोनिया को एक शक्तिशाली राज्य बना लिया।

युद्ध में एथेन्स के पराजय के कारण-
(i) एथेन्स में महामारी का फैलना तथा एथेन्स की सैनिक शक्ति में कमी आना।
(ii) पेरीक्लीज की मृत्यु।
(iii) एथेन्स द्वारा सीराक्यूज द्वीप पर आक्रमण करना।
(iv) स्पार्टा को फारस से सैनिक सहायता मिलना।
(v) यूनान के अन्य नगर-राज्यों से एथेन्स को सैनिक सहायता न मिलना।

पैरीक्लीज की गृह-नीति

पैरीक्लीज जिस समय सत्ता में आया था उस समय एथेन्स की राजनीति में दो विचारधाराए प्रमुख रूप से प्रचलित थीं। प्रथम रूढिवादी तथा दूसरी प्रगतिवादी। रूढ़िवादी के अन्तर्गत सामन्त तथा उच्च कुल के व्यक्ति आते थे। वे अल्प सख्या में होते हुए भी जन-साधारण पर हावी थे। प्रगतिवादी श्रेणी में वे व्यक्ति थे जो आर्थिक दृष्टि से तो सम्पन्न नहीं थे परन्तु राजनीतिक चेतना उनमें अवश्य आ गई थी। अत दोनों विचारधाराओं में विरोध चल रहा था। पेरीक्लीज प्रगतिवादी था। अत उसने अपने कार्यों से एथेन्स में जनतन्त्र को पूर्ण रूप में विकसित करने का प्रयास किया।[1] अपने प्रगतिवादी विचारों को क्रियान्वित करने हेतु उसने निम्न कार्य किये -

1 प्रशासनिक सुधार-पेरीक्लीज ने सामाजिक असमानता दूर करने की दृष्टि से असेम्बली की सदस्यता सबके लिए खोल दी। इसे विधेयक प्रस्तुत करने तथा उन्हें पारित करने का भी अधिकार दे दिया गया। उच्च अधिकारी भी इसके द्वारा नियुक्त होने लगे। ब्यूल की सदस्य-सख्या इसने बढ़ाकर 500 करदी। प्रत्येक जाति के 50 प्रतिनिधि इसके सदस्य बनने लगे। हालाकि इसे किसी विधेयक को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं था तथापि विधेयक इसमें पेश अवश्य होता था। एरिओपेगस को सर्वोच्च न्यायालय का रूप दिया गया था परन्तु पेरीक्लीज ने उसके ये अधिकार 'हलीलाय' (Heleaea) नामक न्यायालय को सौंप दिए। इसमें 6000 जूर होते थे और इस पद पर बारी-बारी से प्रत्येक नागरिक को नियुक्त किया जाता था। इनमें दस समितिया होती थीं और प्रत्येक समिति में 600 सदस्य होते थे। पैरीक्लीज ने 447 ई० पू० आर्कन पद भी सबके लिए खोल दिए। अब तक ये पद सामन्तों को ही प्राप्त होते थे।

---

1 'The Athenian democracy attained its full perfection in the age of Pericles

प्रत्यक्ष में पेरीक्लीज के सुधार प्रजातान्त्रिक एव प्रगतिवादी दृष्टिगत होते हैं-परन्तु इनके पीछे कुछ दोष भी छिपे हुए थे। प्रथम उसने भी केवल 1/7 लोगों को ही नागरिकता प्रदान की थी। दासों को नागरिकता का अधिकार नहीं दिया गया था। पेरीक्लीज ने प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में बहुमत के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की परन्तु न्याय के क्षेत्र में यह सिद्धान्त हितकर सिद्ध नहीं हुआ। परन्तु पेरीक्लीज ने य सवैधानिक सुधार प्रशासन में सुधार करने के लिए नहीं किये थे वरन् प्रजातन्त्र रूप देने के लिए ही किय थे।[1]

कला का विकास–पेरीक्लीज के हाथों में एथेन्स का नियन्त्रण तीस वर्ष रहा। इन तीस वर्षों के काल में उसने एथेन्सवासियों का विश्वास जीत लिया। देशभक्त एथेन्सवासी पेरीक्लीज का समर्थन इसलिए करते थे क्योंकि उसने एथेन्स को एक बहुत ही सुन्दर नगर बना दिया था। पेरीक्लीज ने देवालयों के निर्माण में विशेष रुचि दिखाई। देवालयों में आयताकार आधार, स्तभों की बहुलता, महराब तथा वाल्ट का प्रभाव प्राय सभी में एक साथ मिलता है। फारस के साथ युद्ध करने में एथन्स नगर नष्ट हो गया था क्योंकि पारसिक सैनिकों ने इसे अग्नि के भेंट चढ़ा दिया था। परन्तु पेरीक्लीज ने उसके पुनर्निर्माण का कार्य अपने हाथ मे लिया। नव-निर्मित नगर में प्रमुख आकर्षण एक्रोपोलिस पहाड़ी पर निर्मित पार्थेनन (Parthenon) का देवालय था। यह देवालय वास्तुकला का अनुपम नमूना है। इसमें एथेना देवी की विशाल कास्य मूर्ति है। इस मूर्ति का निर्माता फीडियस (Phidias) था। एथीना का स्वर्णिम शिरस्त्राण एव भाला दूर से भी देखा जा सकता है। यह प्रतिमा मैराथान की लड़ाई में प्राप्त लूट के माल से बनाई गई थी। यह पार्थेनन का मन्दिर श्वेत सगमरमर से निर्मित था। सगमरमर पर सुनहरा लेप था। मन्दिर चारों ओर मडपों से घिरा हुआ था। मन्दिर की लबाई 228 फीट, चौडाई 101 फीट तथा ऊचाई 65 फीट है। पाषाण खड सुन्दरता से जोड़े गये हैं। चूना व दरार दृष्टिगत नहीं होते। इस देवालय में यूनान के वास्तुकारों ने तीन शैलियों का सम्मिश्रण किया है-डोरिक (Doric) इयोनियन (Ionian) तथा कोरिन्थियन (Corinthian)। इन तीनों को विशेषकर देवालय के स्तभों में देखा जा सकता है। देवालय का निर्माण एथेन्स के तत्कालीन विख्यात वास्तुकार इक्टिनस (Ictinus) ने किया था। इतिहासकार बी वी राव का कहना है कि पार्थेनन का देवालय रगीन सगमरमर में निर्मित सर्वाधिक सुन्दर था।[2] देवालय की दीवारों पर उदभृत भित्ति चित्र बने हुये थे जिनमें एथेन्सवासियो को उत्सवों के अवसर पर नगर-मार्गों पर खुशिया मनाते दिखाया गया है।

एक्रोपोलिस (Acropolis) नगर में सबसे उच्च स्थान पर स्थित था। यहा से पूरा एथेन्स नगर देखा जा सकता था। फारस के आक्रमणों से भयभीत तथा भावी आक्रमणों से इसे सुरक्षित रखने की दृष्टि स एक दुर्ग के स्वरूप बनाया था। इसीलिए पेरीक्लीज ने

---

1 In a word their ideal was not efficiency in government but democracy

Burns

2 B V Rao World History p 86

'The Parthenon was the most beautiful temple ever built out of coloured stones

इसे पाषाणों के सुदृढ़ प्राचीर से आवृत्त किया। एक्रोपोलिस में प्रवेश से पहले सीढ़ियों के दायीं ओर विजय की देवी नीके का देवालय था और बायीं ओर चित्रशाला की इमारत थी। एक्रोपोलिस का प्रवेश द्वार एक भव्य मडप जैसा था जिसमें स्तभों की कई कतारें थीं। इन देवालयों ने एथेना देवी को ही अलकृत नहीं किया वरन एथेन्स को अनुपम सौन्दर्य भी प्रदान किया।[1]

यूनानी एथेन्स को अपने देश का सुन्दरतम नगर मानते थे। एक प्राचीन लेखक ने कहा था, "यदि तुमने एथेन्स नहीं देखा, तो तुम मूर्ख हो। यदि देख कर उस पर मोहित नहीं हुए, तो गधे हो और यदि स्वेच्छा से वहा से चले आये तो निरे ऊँट हो।" हालाकि आज एक्रोपोलिस पहले जैसा नहीं रहा है तथापि वह आज भी दर्शकों पर अपनी अमिट छाप डालता है।

मूर्ति कला-इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है कि यूनानी कलाकारों ने अपनी प्रतिभा का जितना व्यापक परिचय मूर्ति-कला में दिया है, उतना सभवत अन्य कला के किसी भी रूप में मुखरित नहीं हुआ। पेरीक्लीज के युग की अनेक मूर्तिया प्राप्त हुई है जिन्होंने तत्कालीन देवालयों, भव्य-भवनों व मकबरों को अलकृत किया था। इन मूर्तियों के निर्माण में पाषाण, सगमरमर व हाथी दात का प्रचुरता से प्रयोग किया गया था। उस काल की प्राप्त मूर्तियों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते है - देव-मूर्तिया, मानव-आकृतिया तथा पशु-पक्षियों की मूर्तिया। इन तीनों शैलियों में ही यूनान की राष्ट्रीय भावना का आदर्श झलकता है। वीर पुरुषों व देवी-देवताओं की मूर्तिया देखते ही एथेन्स का गौरव तथा राष्ट्र-प्रेम स्पष्ट झलकता है। इसीलिए डिकिन्सन महोदय ने यूनान की मूर्ति-कला के सन्दर्भ में लिखा है, "यूनानी मूर्ति-कला प्रमुखतया राष्ट्रीय धर्म की अभिव्यक्ति थी और इसलिए राष्ट्रीय जीवन की भी।"

यूनानी मूर्तिया नग्न अवस्था में अवश्य निर्मित हुई हैं, परन्तु उनमें अनैतिकता की झलक न होकर शारीरिक-सौष्ठव की झलक मिलती है। मूर्तिकारों ने मूर्तियों की सुडौलता पर अधिक ध्यान दिया है। मूर्तियों के देखने से प्रतीत होता है कि यूनानी मूर्तिकला सुडौलता की उपासना है।[2] फिडियस पेरीक्लीज युग का सबसे महान मूर्तिकार था। एथेना देवी की 38 फुट ऊची मूर्ति हाथी दात से उसने ही बनाई थी। मूर्ति को देखते ही शक्ति एव सौन्दर्य का सुन्दर आभास होता है। फिडियस ने ही कास्य की दो मूर्तिया और बनाई थीं जो अपने सौन्दर्य के साथ-साथ अपनी विशालता के लिए भी उल्लेखनीय हैं। उसकी सबसे सुन्दर मूर्ति ओलम्पिया की जियस (Zeus) की मूर्ति है। यह मूर्ति भी हाथी दात से निर्मित है और इसकी ऊचाई 60 फीट है। क्रिसोस्टस ने उसे विश्व की सर्वोत्कृष्ट मूर्ति बताया है।

1 J C. Appel A History of the World p 90
'These magnificent shrines not only honoured the Goddess Athena whom the Greeks credited with saving the city from the Persians but gave city a beauty unknown any where in the Greek world.

2. 'Greek sculpture is a worship of symmetry

प्राक्सिटिलीज (Praxiteles) पेरेक्लीज युग का दूसरा विख्यात मूर्तिकार था। उसकी उल्लेखनीय कृति शिशु डिआनिसस के साथ हर्मीज (Hermes) प्रतिमा है। यह मूर्ति भी अपने शारीरिक-सौष्ठव के लिए तथा शान्त मुद्रा के लिए विख्यात है। माइरन (Myron) उस युग का तीसरा शिल्पी था। इसने अपनी मूर्तियों में गतिशीलता प्रदान की थी। इसकी कृतियों मे डिस्क (Disc) फैंकनेवाले की मूर्ति उल्लेखनीय है।

चित्र-कला–पेरेक्लीज के युग में यूनान चित्र-कला में भी पिछड़ा नहीं रहा। यूनानी चित्रकारों ने अपने चित्र बनाने में तीन विधियों का प्रयोग किया-फ्रेस्को, एन्कास्टिक, तथा टेम्पेरा। प्रथम विधि के अन्तर्गत् गीले प्लास्टर पर विविध रंगों में चित्र बनाये जाते हैं। एन्कास्टिक शैली म मोम और रंगों के सहयोग से चित्र बनाये जाते है। टेम्पेरा शैली में रंगों में अडे की सफेदी मिला कर चित्र बनाये जाते है।

यह तथ्य है कि एथेन्स मे चित्र-कला का विकास स्वतन्त्र रूप में न होकर मूर्ति-कला के सहयोगी के रूप में हुआ है। अधिकाश चित्र तीसरी विधि (टेम्पेरा) से बनाये गये है। उस युग का सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्रकार पालिग्नोटस (Polygnotus) था। 'ट्राय का विनाश' चित्र इसी ने बनाया था। डेल्फी के मन्दिर मे भी उसने सुन्दर चित्र बनाये थे। ज्यूक्सिज और पेरेसियस उस युग के अन्य विख्यात चित्रकार थे। ज्यूक्सिज ने धावक का बड़ा ही सजीव चित्र बनाया था। ऐसा आभास होता है कि पसीना उसके मस्तक से चू रहा है। इसने पाच रमणियों के नग्न चित्र भी बनाये थे। उनके पीछे उसका उद्देश्य उनका सौष्ठव-अध्ययन करना था।

पेरेक्लीज युग में दर्शन–पेरेक्लीज का युग एक तर्क का युग कहा जाता है।[1] और प्रगति साधारणतया तभी होती है जब लोग विचार करने के लिए, विचारों के के लिए और परीक्षण करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार का वातावरण ने अपने शासन-काल में प्रस्तुत किया। उसके काल मे श्रद्धा अन्ध-विश्वासों की नहीं रही थी वरन् वह तर्क की चेरी बन गई थी। कोई भी आम धारणा बनाने से उसे तर्क की कसौटी पर कसा जाता था। पैरीक्लीज ने इस प्रकार के बौद्धिक के लिए अवसर प्रदान किया। इतिहासकार विलडचूरेंट का कहना है कि यूरोप की के पूर्व किसी भी काल में इतने उत्साह का परिचय नहीं दिया।[2]

पेरेक्लीज के काल में कई महान दार्शनिक हुए जो मानव तथा विश्व के में सही ज्ञान उपार्जित करना चाहते थे। पारमेनिडिज ने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक अनश्वर है। नश्वरता अथवा परिवर्तन केवल भ्रम एव माया है। परन्तु ने इसके विपरीत अपना मत व्यक्त किया। उसने नश्वरता के सिद्धान्त को स्वीकार उसने वृक्षों के दृष्टान्त प्रस्तुत करते कहा कि जो आज है यह कल नहीं रहेगा। होना अवश्यभावी है।

---

1 'The age of Pericles was also the age of reason B V Rao

2. No age until the Renaissance would know such enthusiasm Will

डेमाक्रिट्स नामक दार्शनिक ने नित्य-अनित्य के प्रश्न को हल करने के लिए 'अणुवाद' का हल प्रस्तुत किया। इस दार्शनिक ने सिद्ध किया कि विश्व का निर्माण असख्य अणुओं से हुआ है जो अजर और अमर हैं, गतिशील हैं तथा इनके विलय के कारण ही किसी वस्तु का उदय और विघटन होता है।

सोफिस्ट विचार धारा का उदय-यूनान के स्वतन्त्र चिन्तन एव बौद्धिक चेतना के फलस्वरूप वहाँ पाँचवीं शती ई० पू० एक नवीन वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ। इस वर्ग के व्यक्ति सोफिस्ट कहलाये तथा उनके विचार सोफिस्ट विचार के नाम से जाने गये। सोफिस्ट का अर्थ है- बुद्धिमान। परन्तु इस विचारधारा के विचारक तर्कवादी के नाम से जाने गये। इस नवीन वर्ग में भी यूनान में कई विख्यात विचारक एव दार्शनिक उत्पन्न हुए। उनके विचार प्रगतिवादी थे। उन्होंने दास-प्रथा को अमानुषिक बताते हुए जनसाधारण को समान सुविधाए देने की वकालत की। उनके तर्कवाद ने यूनान के तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक जीवन में महान् उथल-पुथल मचा दी। इससे समाज की पुरातन परम्पराएँ विचलित हो उठीं। समाज के विचलित होते स्वरूप को पुन स्थायी बनाने में यूनान के कई दार्शनिकों ने सहयोग प्रदान किया-उनमें उल्लेखनीय ये लोग हैं-

सुकरात (Socrates 469 399 B C)-सुकरात का जन्म 469 ई० पू० में एथेन्स के एक साधारण परिवार में हुआ था। उसने अपना जीवन एक सैनिक के रूप में प्रारम्भ किया और दार्शनिक के रूप में उसे व्यतीत किया तथा एक शहीद के रूप में समाप्त किया। अपने सैनिक जीवन में वह तीन बार मोर्चे पर गया तथा अच्छी वीरता का प्रदर्शन किया। परन्तु युद्ध की विभीषिका तथा भयकर रक्तपात ने उसके हृदय को झकझोर दिया। उससे उसके हृदय में महान् परिवर्तन हुए और वह एक दार्शनिक हो गया। वह स्वय को सोफिस्ट न कहला कर दार्शनिक कहलाना पसन्द करता था। दार्शनिक के रूप मे उसने निम्न विचारों का प्रतिपादन किया-

1 आत्मा अमर है।

2 सत्य शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील है।

3 स्वतन्त्र चिन्तन् मानव विकास का द्योतक है।

4 ज्ञान ही मानव का सर्वोच्च गुण है। परन्तु उसकी प्राप्ति सदाचार से ही हो सकती है। सुकरात का कहना था कि ज्ञान ही चरित्र की कुजी है और आत्मज्ञान महानतम ज्ञान है।

5 वह प्रजातन्त्र का विरोध करत हुए राजतन्त्र का समर्थन करता है। उसका कहना था कि शासन सचालन हर किसी व्यक्ति का कार्य नहीं है।

उसके विचार नि सन्देह प्रगतिशील थे। परन्तु यूनान के शासक वर्ग को वे अव्यावहारिक तथा घातक प्रतीत हुए। सोफिस्ट विचारकों को भी सुकरात के विचार पसन्द नहीं आये। यहाँ तक कि सुकरात के शिष्य प्लेटो ने भी अपने गुरु का विरोध किया। सुकरात का एक शिष्य जेनोफन भी था। वह अपनी कृति 'एनाबेसिस' के लिए विख्यात है। गुरु व शिष्य में ही विचारों की भिन्नता उत्पन्न हो गई। इस पर उसे एथेन्स के युवकों को पथ भ्रष्ट करने के आरोप में विष-पान कर अपनी जीवन-लीला समाप्त करनी पड़ी। इस

प्रकार 399 ई० पू० में वह एक शहीद के रूप में इस लोक से चल बसा। इतिहासकार केर्डो ने उसे अपने समय का सर्वोत्तम बुद्धिमान तथा सर्वाधिक न्यायप्रिय कहा है। वह अपने समय का एक अच्छा शिक्षक था। परन्तु आज के अर्थ में वह एक शिक्षक नहीं कहलाया जा सकता क्योंकि वह किसी कक्षा में बैठकर युवकों को शिक्षित नहीं करता था। एथेन्स नगर की प्रत्येक गली ही उसकी कक्षा होती थी और उन गलियों में फिरने वाले आम लोग उसके शिष्य होते थे। वह केवल उनसे प्रश्न पूछ कर ही उन्हें सत्य-असत्य का ज्ञान कराता था। वह अपने को सत्य का अन्वेषक समझता था। इसीलिए शहीद होते समय उसने कहा था-"अपने ही ढग से किसी बात को कह कर मृत्यु का आलिंगन अधिक श्रेष्ठ है इसकी अपेक्षा कि मैं तुम्हारी कही बात को कह कर जीवित रहू।" सुकरात ने कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। अत उसके विषय में हमें जानकारी प्लेटो की रचनाओं से ही मिलती है।

प्लेटो (Plato, 427 347 B C)-सुकरात के शिष्यों में अधिक उल्लेखनीय प्लेटो है। उसने सुकरात के निर्देशन में सात साल तक शिक्षा ग्रहण की। उसका जन्म 427 ई० पू० में हुआ था। सुकरात से शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त उसने एथेन्स नगर के बाहर एक शिक्षण केन्द्र स्थापित किया। वह एक उत्साही शिक्षक था और अपने विचारों को काव्यात्मक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता था। परन्तु वह केवल एक दार्शनिक ही नहीं वरन् एक अच्छा लेखक भी था। उसने राजनीतिशास्त्र पर कई उच्च ग्रन्थ लिखे। उनमें रिपब्लिक (Republic) व लाज (Laws) सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। रिपब्लिक पुस्तक उसने सुकरात की शैली सवाद (Dialogues) में ही लिखी है। इन सवादों में उसने शासन, सगीत, विज्ञान, साहित्य, न्याय और पुण्य (अच्छे कर्म) आदि विषयों पर लिखा है। ये विषय सुकरात को भी अति प्रिय थे। इन ग्रन्थों में उसने राजनीतिक विचारों के अलावा एक आदर्श समाज का स्वरूप भी प्रस्तुत किया है। उसने राज्य तथा समाज में एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि से मानव को वैज्ञानिक दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। उसने अपने दर्शन में दो जगत् की कल्पना की है। प्रथम है आध्यात्मिक जगत्। इस जगत् को उसने विचारों का जगत् बताया है और उसे समझने के लिए बुद्धि को आवश्यक बताया है। इस जगत् का ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से होता है। उसका कहना था कि स्वतन्त्र व्यक्ति को ज्ञान-अर्जन में भी स्वतन्त्र ही रहना चाहिये। किसी के दबाव में अर्जित ज्ञान मस्तिष्क पर प्रभाव नहीं जमाता।[1] उसने शासन-सत्ता दार्शनिक राजा (Philosopher King) को सौंपने की वकालत की थी। उसकी मान्यता थी कि सामाजिक कुरीतियों की मूल जड़ व्यक्तिगत सम्पत्ति होती है। अत जब तक व्यक्तिगत पूजी की समाप्ति नहीं हो जाती समाज बुराइयों से मुक्त नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि समाजवादी विचारधारा का वह प्रथम प्रणेता था। उसकी इस प्रकार की मौलिक राजनीतिक विचारधाराओं के कारण ही वह 'राजनीति का जनक' तथा नवीन विचारधारा का प्रणेता कहा जाता

1 A freeman ought to be a freeman in the acquisition of knowledge Knowledge which is acquired under compulsion has no hold on the mind

Plato

है। 347 ई० पू० में जब वह अपना ग्रन्थ लाज (Laws) लिख रहा था तब-इस लोक से विदा हो गया।

अरस्तू (Aristotle, 384 322 B C)-अरस्तू का जन्म 384 ई०पू० में हुआ था और उसने शिक्षा प्लेटो के निर्देशन में पाई थी। उस पर अपने गुरु का महान् प्रभाव पड़ा था। अत उसने अपने विचारों में अपने पूर्वजों के विचारों को पर्याप्त स्थान दिया है। हालाकि अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो के आदर्शवादी विद्यालय (Academy) में शिक्षा पाई थी तथापि वह अपने गुरु की भाति आदर्शवादी न रह सका। उसने अपने विचारों को प्लेटो के विचारों तक ही सीमित नहीं रखा। वह प्लेटो का मेधावी शिष्य था। अत उसने अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप दिया और वह यथार्थवादी बन गया। प्लेटो की दृष्टि में जीवन का उद्देश्य सत्य की खोज था तो अरस्तू की दृष्टि में यह बहुत लोगों का सुख था। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिक्स' (Politics) में उस समय विद्यमान नगर-राज्यो की सरकारों का अध्ययन किया और उनमें प्रत्येक की अच्छाइया और बुराइया बतलाई। अरस्तू राज्य को आवश्यक समझता था। उसने मानव को एक वह मछली माना है जो राज्य रूपी जल के बाहर जीवित नहीं रह सकता। अरस्तू ने राजतन्त्र, लोकतन्त्र और अभिजाततन्त्र में निन्दा किसी की नहीं की, परन्तु प्रजातन्त्र व कुलीनतन्त्र के मध्य आदर्श राज्य की कल्पना अवश्य की है।

अत स्पष्ट है कि अरस्तू राज्य को आवश्यक अवश्य समझता था पर वह विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अथक खोज करने वाला और तथ्यों का सग्रह करने वाला विद्वान था। हो सकता है कि आज के युग में उसके विचार अनुकरणीय न हों पर उनका प्रभाव व्यापक अवश्य पड़ा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी अरस्तू के ग्रन्थ महत्वपूर्ण माने जाते हैं। उसके द्वारा प्रतिपादित विचारों के कारण ही यूनान यूरोप में राजनीतिक सिद्धान्तों की जन्म-भूमि माना जाता है। उसके राजनीतिक विचार सदियों तक राजनीतिक विचारकों के लिए आधार बने रहे। इसीलिए लिविंगस्टन (Livingston) ने कहा है-''अरस्तू का क्षेत्र आधुनिक लेखकों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। उसे मानव-बुद्धि की उस दुर्लभ तथा सर्वोत्तम श्रेणी में रखा जा सकता है जहा मानववाद व तर्कशास्त्र दोनों मिलते हैं।''

अरस्तू का ज्ञान राजनीति शास्त्र तक ही सीमित नहीं था। उसने राजनीतिशास्त्र के अलावा दर्शन, तर्कशास्त्र व अर्थशास्त्र ग्रन्थ भी लिखे थे। तर्कशास्त्र का भी वह अच्छा पण्डित माना जाता है। उसका लाइसियम (Lyceum) मनुष्य के लिए तो ज्ञान-अर्जन का उत्तम स्थान बन ही गया था पर वह पशुओं और पौधों का भी एक प्रकार का सग्रहालय और प्रयोगशाला बन गया था। प्लेटो की भाति अरस्तू ने भी एक शिक्षण केन्द्र (Lyceum) स्थापित किया था। उसमें दूर-दूर से छात्र ज्ञान अर्जन के लिए आते थे। सिकन्दर महान भी अरस्तू का शिष्य था। 322 ई० पू० में वह इस लोक से विदा हो गया। मेधावी दार्शनिक होते हुए उसने भी कुछ गलत धारणाओं का प्रतिपादन किया। वह यह मानता था कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है।

विज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पेरीक्लीज ने कई वैज्ञानिक सृजित किए। उसके युग में यूनानियों ने विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। हिपोक्रेटीज (Hippocrates) तथा एनैक्जागोरस (Anaxagoras) पेरीक्लीज युग के प्रमुख वैज्ञानिक थे। एनैक्जागोरस ने निम्न तथ्यों का पता लगाया था :—

(i) चन्द्रमा स्वय प्रकाशमान है। इसमें नदिया व पहाड़ विद्यमान है।

(ii) चन्द्रमा अन्य ग्रहों के अपेक्षा पृथ्वी के अधिक समीप है।

(iii) उसने सूर्य-ग्रहण व चन्द्र-ग्रहण के कारणों का भी पता लगाया।

(iv) उसकी धारणा थी कि पृथ्वी की भाति अन्य ग्रहों में भी आदमी निवास करते हैं।

(v) मानव का विकास पशुओं से हुआ है।

हिपोक्रेटीज उस युग का महान चिकित्सक था। उसने सिद्ध किया कि प्रत्येक बीमारी शारीरिक कारणों से होती है। वह भूत-प्रेत में विश्वास नहीं करता था। एलिया के हिप्पियास और अब्देरा के डेमाक्रेटीज ने रेखा-गणित में शोध-कार्य को बढ़ाया। डेमोक्रेटीज ने प्रकृति से सम्बन्धित ज्ञान के विकास में भी महान सहयोग दिया। उसने बताया कि समस्त विश्व अणुओं (Atoms) से निर्मित है।

पेरीक्लीज युग से पूर्व चिकित्सा-शास्त्र पर भी तन्त्र-मन्त्र अपना प्रभाव जमाये हुए थे। परन्तु अल्कमेयन ने On Nature नामक पुस्तक लिखी, जिसमें बताया गया कि तन्त्र-मन्त्र कुछ नहीं है। बीमारी शारीरिक कारणों से होती है। हालाकि अल्कमेयन का जन्म इटली में हुआ था पर वह यूनानी चिकित्सा-शास्त्र का जन्म-दाता माना जाता है।

इस प्रकार पेरीक्लीज के युग में एथेन्स विज्ञान का केन्द्र अवश्य बन गया। परन्तु वहा के लोग वैज्ञानिकों के कट्टर विरोधी हो गये। जब वैज्ञानिकों ने तर्क के सहारे देवी-देवताओं के अस्तित्व में सन्देह उत्पन्न करना आरभ किया तो एथेन्स के आम लोग उनके विरोधी हो गये। एनैक्जागोरस को तो इसी कारण मृत्यु-दण्ड मिला था पर वह किसी प्रकार यूनान से भाग निकला था।

साहित्य-यह तथ्य सर्व विदित है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। यही तथ्य पेरीक्लीज युग के साथ है। तत्कालीन साहित्य इस बात को स्पष्ट करता है कि पेरीक्लीज-युग यूनान के इतिहास में महत्वपूर्ण क्यों माना जाता है। उस काल में गीत-काव्य खूब विकसित हुआ। देवी-देवताओं की आराधना में प्रार्थनायें रची जाती थीं और वे प्रार्थनाए गीत-काव्य में होती थीं। इसके अलावा प्रणय की पीड़ा, सौन्दर्य अनुभूति और प्रकृति के व्यापार भी गीत-काव्य के माध्यम से मुखरित किये जाते थे। पेरीक्लीज युग में लोकतन्त्र अपने पाव मजबूती से जमा चुका था। अत देवी-देवताओं और वीर योद्धाओं के साथ-साथ सामान्य व्यक्ति भी यूनानी काव्यों में स्थान पाने लगे। चूकि यूनानी इन कविताओं को वीणा (लायर) के साथ गाते थे-इसीलिए इन्हें अंग्रेजी में (Lyrical) गीत-काव्य कहा जाने लगा। इस गीत-काव्य को जन्म देने वाली सेफो (Sappho) थी। उसका विषय था। पेरीक्लीज के युग में पिण्डार (Pindar, 520 440 ई० पू०) इस शैली का हुआ। वह थीब्ज में जन्मा था। वह यूनान के अनेक राज्यों में राजकवि

के रूप में सम्मानित किया गया। वह एक कुशल गायक तथा वीणा वादक था। उसकी कविताओं मे राष्ट्रीय प्रेम झलकता था।

नाटकों के क्षेत्र में यूनान सर्वत्र प्रसिद्ध रहा है। रगमच (Stage) का अविर्भाव भी सर्वप्रथम यूनान में ही हुआ। डायोनिसस (Dionysius) उत्सव के दिनों में यूनानी किसान गावों और नगरों की सड़कों पर जुलूस निकालते थे। सामूहिक रूप से गाते हुए डायोनिसस की कथाए सुनाते थे। एथेन्स में एक्रोपोलिस के नीचे ढलवा टीले पर बैठ जाते थे। नीचे मैदान में तबू खड़ा किया जाता था। वह स्क्रीन का काम करता था। इस प्रकार एथेन्स में यूनान की पहली रगशाला का निर्माण हुआ। आरभ में नाटक में अभिनय पुरुष ही करते थे। यूनान में नाटक दो प्रकार के होते थे - सुखान्त (Comedy) व दुखान्त (Tragedy)। *सुखान्त नाटक लिखने वालों में एरिस्टोफोनीज (Aristophanes)* का नाम उल्लेखनीय है। उसने अपने जीवन-काल में 42 नाटक लिखे बताये। उसने अपने नाटकों में तत्कालीन समाज का चित्रण किया है। वह एथेन्सवासी था। उसके नाटको में सवाद पैने तथा व्यगपूर्ण होते थे। कभी-कभी देवी-देवताओं को भी सुखान्त नाटको में पात्र बना दिया जाता था। होमर (Homer) के महाकाव्य के गीत भी नाटकों के प्रेरक माने जाते थे।

दुखान्त नाटकों के अभिनय व लेखन में यूनानी सुखान्त नाटकों से अधिक सफल रहे। दुखान्त नाटकों का जन्म पौराणिक गाथाओं के आधार पर हुआ। यूनान भाषा में उन्हें 'ट्रागोइडिया' कहते थे। ट्रेजेडी (Tragedy) शब्द इसी से निकला है। दुखान्त नाटकों के पात्र आम तौर पर देवी-देवता और पौराणिक कथाओं के नायक होते थे। उनमे पात्रों के आपसी कटु सघर्ष, शौर्य, कष्टों और दुखद अन्त का चित्रण होता था।

दुखान्त नाटक लिखने वालों मे प्रथम व्यक्ति एस्काइल्स (Eschylus, 525 456 ई०पू०) माना जाता है। उसने 80 नाटक लिखे थे। उनमें अति उल्लेखनीय 'बदी प्रोमेथियस' नाटक था। वह एथेन्स में जन्मा था तथा उसने अपना जीवन एक सैनिक के रूप में आरम्भ किया था। दूसरा दुखान्त नाटककार सोफोक्लीज (Sophocles) था। उसने अपने जीवन-काल में 113 नाटक लिखे थे। उनमें 'एटीगोने' अति विख्यात नाटक सिद्ध हुआ। इसका अभिनय सर्वप्रथम एथेन्स में ही किया गया था। यूरीपिडीज (Euripides) इस श्रेणी का तीसरा नाटककार था। इसने लगभग 75 नाटक लिखे थे। उनमें 'मेडिया', हिपोलिटस' तथा 'दि ट्रोजन वीमेन' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन नाटककारों ने ही एथेन्स को नाटकों का घर (Home of theaters) बना दिया था।

इतिहास-पेरीक्लीज के युग में इतिहासकारों का भी अभाव नहीं रहा। हीरोडोटस (Herodotus 484 425 ई पू) उस युग का महान इतिहासकार था। उसे इतिहास का जन्मदाता (Father of History) व विश्व का प्रथम इतिहासकार (First Historian of the World) माना जाता है। यूनान का फारस के साथ भयकर युद्ध हुआ था। हीरोडोटस ने उसका 'यूनानी-पारसीक युद्धों का इतिहास' पुस्तक में वर्णन किया है। इस ग्रन्थ को तथ्यपूर्ण बनाने के लिए उसे मिस्र, बेबीलोन, फिनीशिया व बाल्कन देशों की यात्रा करनी पड़ी थी। उसने जो कुछ देखा तथा जो कुछ स्थानीय लोगों से सुना-वही अपने

ग्रन्थ में लिख दिया। उसकी ऐतिहासिक रचनाओं की विश्व में सराहना की गई है। वह मौलिक रूप में इतिहासकार माना गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो कुछ उसने देख कर लिखा वह वर्णन सही बना है परन्तु जो कुछ उसने अन्य लोगों से प्राप्त जानकारी के आधार पर लिखा वह वर्णन वैज्ञानिक ढ़ग से नहीं लिखा गया है। उसने अधिकाश घटनाओं का कारण देवताओं की इच्छा को बताया है।

उस काल का दूसरा इतिहासकार थ्यूसीडिडीज (Thucydides, 471 399 ई० पू०) था। उसने 'पैलोपोनैसी' युद्ध (Peloponnesian War) का इतिहास लिखा है। उसका इतिहास लेखन हीरोडोटस से अधिक तथ्यपूर्ण तथा वैज्ञानिक सिद्ध हुआ है। उसने कार्य-कारण का सम्बन्ध बताने का प्रयास किया है। वह अपने वर्णन में निष्पक्ष रहा है। इन्हीं कारणों से उसे पहला वैज्ञानिक इतिहासकार कहा जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यूनान का साहित्य एक उस ताजे झरने के समान था जिसमें से अनेक शाखाओं वाली एक विशाल नदी निकली थी। यूनान का प्राचीन साहित्य सच्चे अर्थ में आधुनिक साहित्य कहा जा सकता है। आजकल के नाटक प्राचीन यूनानी नाटकों के ही समरूप हैं। केवल अभिनय-कर्त्ता आधुनिक वेश-भूषा धारण कर नाटक को आधुनिकता का बाना पहिनाने का प्रयास करते हैं। आधुनिक कविताओं में भी पैरीक्लीज युग की कविताओं का अनुसरण किया जाता है। यही तथ्य इतिहास लेखन के साथ भी है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पैरीक्लीज ने पारसीक सैनिकों द्वारा नष्ट किये गये एथेन्स का नवनिर्माण किया। एथेन्स को भव्य देवालयों, सुन्दर नाटकघरों व सुन्दर भवनों से सुशोभित कर दिया। देवालयों को इतनी सुन्दर मूर्तियों से अलकृत किया कि एथेन्स विश्व का एक सुन्दर नगर माना जाने लगा। इन उपलब्धियों से पैरीक्लीज ने अपनी जनता का विश्वास जीत लिया और उसने अपने प्रशासनिक सुधारों से एथेन्स में लोकतन्त्र को सुदृढ़ कर दिया। अपनी कला-कृतियों से एथेन्स को केवल सुन्दर नगर ही नहीं बनाया वरन् उसे साहित्यकारों व दार्शनिकों का केन्द्र भी बना दिया। इसीलिए उसे विचारकों का मित्र बताया गया है।[1] प्रजातन्त्र की स्थापना करके एथेन्स को उसने राजनीति का भी केन्द्र बना दिया। यहा तक एथेन्स के बाजार (Agora) में बाहर से आनेवाले व्यापारी भी अपना सामान बेचने के उपरान्त सायकाल कुछ समय राजनीतिक विषयों पर विचार-विनिमय करने के लिए रुकते थे। इस प्रकार पैरीक्लीज के समय एथेन्स प्रत्येक क्षेत्र में विकास की चरम-सीमा पर था। यूनान प्रायद्वीप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यही नगर-राज्य माना जाता था। इसीलिए विल ड्यूरेन्ट ने लिखा है, "इतिहास में शायद ही ऐसा कोई युग हो जिसमें इतनी अधिक मात्रा में सास्कृतिक एव आर्थिक विकास हुआ हो।[2]

1 "He (Pericles) was a friend of the thinkers of his day

J C. Appel

2. 'History affords no parallel to the wealth and variety of creative genius that athens this century produced to herself from all quarters of Greece "

Will Durant.

एथेन्स का पतन–उत्थान के उपरान्त पतन की ओर उन्मुख होना एक प्राकृतिक नियम है। नि सन्देह पेरीक्लीज ने अपनी विदेश नीति से एथेन्स को एक शक्तिशाली राज्य बनाया। अनेक उपनिवेश स्थापित किए। अपनी घरेलू-नीति के अन्तर्गत् एथेन्स को कला के क्षेत्र में सुन्दरतम नगर बना दिया। अन्य सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण भी पेरीक्लीज का नाम यूनान में चिरस्मरणीय रहेगा, परन्तु इसके साथ ही यह भी कहना उचित ही है कि अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण व एथेन्स के निर्माण में अधिक मोह रखने के कारण उसने एथेन्स को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया।

एथेन्स के पतन के कारण–

1 एथेन्स का स्पार्टा से सघर्ष।
2 एथेन्सवासियों में राष्ट्रीय भावना का अभाव।
3 पेरीक्लीज द्वारा 'डेलियन सघ' को दुरुपयोग किया जाना।
4 447 ई० पू० में बोथोटिया का एथेन्स के विरुद्ध विद्रोह करना और खेरोनिया के युद्ध में एथेन्स का परास्त होना।
5 फोसिस, लोक्रिस तथा मेगारा नगर राज्यों का एथेन्स विरोधी होना।

यूनान का पतन

431 से 404 ई० पू० तक एथेन्स व स्पार्टा के बीच युद्ध चलता रहा। इस युद्ध में लगभग यूनान के सभी नगर-राज्यों ने भाग लिया। कुछ नगर-राज्यों ने एथेन्स का साथ दिया तो कुछ नगर-राज्यों ने स्पार्टा का साथ दिया। इसके परिणामस्वरूप एथेन्स तो परास्त हुआ ही पर साथ में अन्य नगर-राज्य भी निर्बल पड़ गये। एथेन्स की नौ-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। 'पेलोपोनिसियन' युद्ध समाप्त हो जाने पर भी यूनान के अन्य नगर-राज्य चौथी सदी ई० पू० तक आपस में झगड़ते रहे।

मकदूनिया का उत्थान–जब यूनान में इस प्रकार का वातावरण बन रहा था तब मकदूनिया (Macedonia) में राजा फिलिप (Philip) अपनी शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ था। उसने भी यूनान के नगर-राज्यों को आपस में झगड़ने को प्रोत्साहित किया। एथेन्स के वक्ता डिमौस्थनीज (Demosthenes) ने एथेन्सवासियों को भावी सकट से सावधान करने का प्रयास किया। उसने अपने ओजस्वी भाषणों में फिलिप की भारी निंदा की। एथेन्स की इस निर्बलता से लाभ उठाने की दृष्टि से फिलिप ने यूनान पर आक्रमण कर दिया। उसने एक के बाद एक यूनानी नगरों पर अधिकार करना आरभ कर दिया। एथेन्स वासियों ने डिमौस्थनीज के नेतृत्व में खेरोनिया नगर के समीप मकदूनी सेना का डट कर मुकाबला किया, परन्तु अन्त में उन्हें असफलता ही मिली। इस प्रकार 338 ई० पू० तक स्पार्टा (Sparta) को छोड़कर सारा यूनान मकदूनिया के अधिकार में चला गया।

सिकन्दर का उत्कर्ष तथा स्पार्टा का पतन–फिलिप की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र सिकन्दर (Alexander, 336 ई० पू० में मकदूनिया का शासक बना। वह अपने पिता से भी अधिक साम्राज्यवादी था। भाग्यवश फिलिप अपने पुत्र सिकन्दर के लिए एक विशाल एव सुअनुशासित सेना छोड़ गया था। अत उसने गद्दी पर बैठते ही पड़ौसी राज्यों को जीतना आरभ कर दिया और स्पार्टा राज्य को भी उसने अपने साम्राज्य में

मिला लिया। इस प्रकार सिकन्दर समस्त यूनान का स्वामी बन गया और यूनान साम्राज्य विनाश के गर्त में समा गया।

यूनान के विनाश के कारण

1 यूनानी नगर-राज्यों के बीच युद्ध।
2 कृषक वर्ग व शिल्पियों की तबाही।
3 यूनान की सेना में भाड़े के सैनिकों की भर्ती।
4 यूनान में सम्भ्रान्त व गरीब मनुष्यों के बीच वर्ग-संघर्ष।
5 पड़ौस में मकदूनिया का उत्कर्ष।
6 फिलिप की शक्तिशाली एव अनुशासित सेना।
7 यूनानी सैनिकों को मातृ-भूमि व स्वतन्त्रता से अधिक प्यार सम्पत्ति से होना।
8 सिकन्दर की शक्ति का सही अकन न करना।
9 यूनानी सैनिकों का फारस के विरुद्ध सिकन्दर का साथ देना।

यूनानी सस्कृति की देन
(Contribution of Greek Culture)

नि सन्देह मकदूनिया के साम्राज्यवादी शासकों के आक्रमणों से यूनान का राजनीतिक अस्तित्व नष्ट हो गया, परन्तु सास्कृतिक दृष्टि से वह आज भी विश्व में जीवित है। यूरोपीय देशों में आज जो सभ्यता व सस्कृति हमें दृष्टिगत होती है-वह यूनान व रोम सस्कृतियों का ही सम्मिश्रण है। अत स्पष्ट है कि यूनान सस्कृति को सर्व प्रथम रोम ने अपनाया और उसके उपरान्त यूरोप के अन्य देशों ने। यही कारण है कि आज भी यूरोप के अधिकाश देश यूनानी सस्कृति से प्रभावित हैं।[1] हेनरीमेन की धारणा है कि प्रकृति की शक्तियों को छोड़कर इस विश्व में कोई भी चेतन पदार्थ ऐसा नहीं है जिसका उद्भव यूनान में न हुआ हो।

उपरोक्त कथनों को ध्यान में रखते हुए हम निम्न अवतरणों से यह बताने का प्रयास करते है कि यूनान सभ्यता की देन हमें किन-किन क्षेत्रों में दृष्टिगत होती है-

1 राजनीति-वर्तमान युग में फलीभूत होने वाली प्रजातन्त्र प्रणाली के दर्शन हमें सर्वप्रथम यूनान में होते हैं। राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त व सविधान के विषय में हमें सर्व प्रथम प्लेटो व अरस्तू के ग्रन्थों से ही ज्ञात होता है। प्लेटो व अरस्तू के राजनीतिक विचार आज भी राजनीति के आधार बने हुए है।

2 साहित्य-यूनान का प्राचीन साहित्य आज भी आधुनिक बना हुआ। नाटक लेखन का जन्म तथा विकास सर्वप्रथम यूनान मे ही हुआ है। इसके अलावा उनके अभिनय के लिए नाट्यशालाओं का निर्माण भी यहीं हुआ। महाकाव्यो का लेखन होमर के 'इलियड' व 'आडेसी' महाकाव्यों से ही आरभ होता है। ऐसकाइलस के दुखान्त नाटक आज भी

---

1 For the Greeks were the founders of nearly all those ideals which were commonly Thought as peculiar of the West

Burns

विश्व की अन्यतम निधिया है। परवर्ती यूरोपीय लोकभाषाओं का साहित्य यूनानी महाकाव्यों से पूर्ण प्रभावित है। रूसी इतिहासकार फ्योदर कारोकिन की मान्यता है कि **प्राचीन यूनानी वर्णमाला के आधार पर आगे चल कर अनेक अन्य वर्णमालाओं का जन्म हुआ।** प्राचीन यूनानी भाषा ने आधुनिक भाषाओ को अनगनित वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्द दिए हैं। होमर के महाकाव्यों का अनुवाद लगभग विश्व की समस्त भाषाओं में हो चुका है। इतिहास के क्षेत्र में हीरोडोटस भी यूनान की ही देन है। वह विश्व का प्रथम इतिहासकार माना जाता है।

3 **विज्ञान**-विज्ञान के क्षेत्र में यूनानियों की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। विज्ञान के क्षेत्र में विकास जो आज हम देख रहे हैं उसका श्रेय यूनानियों को ही जाता है। यूनान के वैज्ञानिक ने मानव का मस्तिष्क वैज्ञानिकों बनाया। जन-साधारण में तर्क-शक्ति उत्पन्न की। पहले यूनानी अन्धविश्वासी होते थे। वे रोग का कारण भूत-प्रेत का प्रकोप मानते थे। परन्तु चिकित्सा-शास्त्र के जन्म-दाता हिप्पोक्रेटीज ने इन अन्धविश्वासों का खण्डन कर रोगों का कारण शारीरिक बुराइयों को बताया। आजकल के चिकित्सा विद्यालयों के स्नातक हिप्पोक्रेटीज की शपथ ग्रहण करते हैं। मिलैटस के निवासी थेलीज ने खगोल विद्या का अध्ययन करके बताया कि जलवायु में परिवर्तन व नक्षत्रों मे जो गतिविधिया होती हैं वे देवताओं के कारण नहीं वरन् प्रकृति के कारण होती है। वह यूनानी विज्ञान का जन्म-दाता माना जाता है। यूनानी विज्ञान का प्रभाव अति व्यापक पड़ा है। इसकी पुष्टि के लिए हम कह सकते हैं आधुनिक विज्ञान की समस्त शाखाओं के नाम यूनानी हैं और उनकी नींव अति प्राचीन है। पाइथोगोरस (Pythagoras) तथा अर्किमिडीज (Archimedes) के सिद्धान्तों का आज भी विश्व में आदर है। आज भी विद्यालयों के छात्र रेखागणित (Geometry) में पाइथोगोरस के सिद्धान्त पढ़ते हैं।

4 **दर्शन**-यूनान के सोफिस्ट वर्ग ने यूनान के लोगों में तर्क शक्ति उत्पन्न की। उन्होंने भी जन-साधारण के अन्धविश्वास को दूर कर सुकरात, प्रेटो व अरस्तू जैसे दार्शनिकों के लिए अपने विचारों के प्रचारार्थ यूनान को एक उपजाऊ प्रदेश बनाया। सुकरात ने धन व अन्धविश्वास के प्रति घृणा उत्पन्न की। सुकरात की धारणा थी कि यदि सब लोग स्पष्ट चिन्तन करें तो उससे शासन सबल चलेगा। वह कहा करता था, ''अपने आप को पहिचानो'' प्रेटो का कथन था-''सच्चा दार्शनिक विस्मय की भावना से प्रेरित होता है। यही दर्शन का आधार है।'' अरस्तू का कहना है-''निम्न जगत की बातों पर विचार करने की अपेक्षा स्वर्गीय तत्वों के सम्बन्ध में विचार करना अधिक प्रसन्नता सूचक है।'' इन तीनों दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव विश्व-व्यापक सिद्ध हुआ। बारनेट का कहना है कि यूनानी दर्शन के इतिहास को हमारे आध्यात्मिक अतीत का इतिहास मानना चाहिए। यूनानियों ने ही पाश्चात्य दर्शन की विभिन्न शाखाओं को जन्म दिया और उनका नामकरण किया। मेटाफिजिक्स, एथिक्स, लौजिक तथा एपिस्टेमालोजी को जन्म देने वाले यूनानी दार्शनिक ही थे। आधुनिक दर्शन के विभिन सम्प्रदाय यूनानी दर्शन से ही निकले हैं। भाववाद, विकासवाद, परिवर्तनवाद तथा अणुसिद्धान्त का प्रचलन यूनान से ही आरभ हुआ। अरस्तू के विचार तो आज भी एक [illegible]

के तुल्य विद्यमान है। उसने मानव के ज्ञान-भण्डार को बढ़ाने में महान सहयोग प्रदान किया है।

5 कला-यूनानी कला के सन्दर्भ में सर रेग्नाल्ड ब्लमफील्ड का कहना है, "यूनानियों ने एक सगीतमय वास्तुकला को जन्म दिया।" परिणामत तत्कालीन भव्य देवालयों के भग्नावशेष भी दर्शकों पर उत्तम तथा गहरा प्रभाव डालते हैं। डॉ एस आर शर्मा की धारणा है कि वास्तुकला में यह एक लिखित महाकाव्य है। ऐक्रोपालिस में निर्मित देवालयों व भवनों को देखने आज भी हजारों विदेशी यात्री आते है तथा यहा की सादगीपूर्ण एव सुन्दरतम कला को देख कर अपने को आनन्दित करते हैं। इसी प्रकार यूनान की प्राचीन चित्रकला भी दर्शनीय है। यूनानी शिल्पियों की मूर्तिया आज भी यूरोप के विभिन्न सग्रहालयों की बहुमूल्य निधिया बनी हुई हैं। प्रो गार्डनर का कहना है, "यूनानी कला ने अपनी उन्नति के सर्वोत्कृष्ट काल में उन देवी-देवताओं को जन्म दिया जो मानव-जाति को सर्वोत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं। इसमें मस्तिष्क की सर्वोच्चता है। इनका प्रभाव एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक दिखाई पड़ता है। कला में यूनानियों का यथार्थवाद तथा आदर्शवाद दोनों देखने को मिलता है। श्री फ्रेन्क टटर का कथन है कि यूनानी कलाकारों के आदर्शवाद का अभिप्राय यह था कि प्रकृति से सर्वोत्तम तत्व ग्रहण किये जायें और इन्हें सर्वोत्तम रूप दिया जाय।"

6 राष्ट्रीय भावना-आज के युग में भी राष्ट्रीय भावना का महान महत्व है। जिस देश के लोगों में राष्ट्रीय भावना का अभाव होता है वह देश कभी एक उन्नत राष्ट्र नहीं बन सकता। यूनान भी हमारे भारत की भाति अनेक छोटे-छोटे नगर-राज्यों मे विभक्त था। एक नगर-राज्य के निवासी केवल अपने कबीले व राज्य के प्रति ही निष्ठावान होते थे। परन्तु यूनान पर ज्योही फारस के शासक ने आक्रमण करना आरभ किया कि यूनानवासियों ने अपनी राष्ट्रीय भावना का अपूर्व प्रदर्शन किया। फारस के विरुद्ध युद्ध आरभ करने के समय उन्होंने नारा दिया "यूनान के पुत्रों स्वतन्त्रता के लिए, अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए, बच्चों और पत्नियों की स्वाधीनता के लिए अपनी जान की बाजी लगादो।"

7 खेलों में धर्म व देश-भक्ति का समन्वय-आज भी किसी खिलाड़ी को ओलिम्पिक के खेलों में सम्मिलित होने पर कितना गौरव का आभास होता है। ओलिम्पिक के नाम पर खिलाडियों को ही नहीं उनके आयोजन में राष्ट्रों को भी गर्व होता है। 1996 की ओलिम्पिक की मेजबानी का फैसला जब अध्यक्ष जान एन्टोनियो ने ओलिम्पिया (Olympia) के पक्ष में न करके एटलाटा (Atlanta) के पक्ष में कर दिया तो अमेरिका (U S A) को कितना गौरव महसूस हुआ तथा यूनानवालों को कितना गम। अत प्राचीन काल में जब यूनान के नगर-राज्यों के खिलाड़ी ओलिम्पिक खेलों में भाग लेते थे तो उनमें अपने देश के प्रति भक्ति तथा जियस (Zeas) के प्रति धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न होती थी। यूनान के ओलिम्पिया नगर में उस काल में खेले जाने वाले खेल आज भी लोकप्रिय बने हुए है तथा वे बड़े चाव व उत्साह से खेले जाते हैं। इन खेलों से विश्व के नवयुवकों में सहयोग व अनुशासन की भावना आज भी अनुप्राणित होती है।

उपरोक्त यूनान की देन से स्पष्ट है कि प्राचीन यूनान की सभ्यता विश्व की अमूल्य निधि है। मानव-समाज सदा इसका आभारी रहेगा। इसका प्रभाव पाश्चात्य देशों में व्यापक है और व्यापक रहेगा। इस सभ्यता के सन्दर्भ में इगलैण्ड के विख्यात कवि शैले (Shelley) ने लिखा है-"हम सभी यूनानी हैं। हमारे नियम, हमारा साहित्य, हमारी कला, सबका मूल यूनान है।" सच पूछा जाय तो यूरोपवासियों के जीवन में यह सभ्यता आज भी पथ-प्रदर्शक बनी हुई है। यूरोप की वर्तमान सभ्यता पूर्णतः इसी सभ्यता पर आधारित है। आज के महान इतिहासकार टायनबी (Toynbee) ने इस सभ्यता के महत्व के सन्दर्भ में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं-संक्षेप में यूनानी सभ्यता का आधार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, आशावादिता, धर्म-निरपेक्षता एव मानवता के आदर्शों में निहित है।

प्रश्न

1 होमर युग से आप क्या समझते हैं ? उस युग की कुछ विशेषताए बताइये।
What do you mean by Homer Age' ? Narrate some of its characteristics
2 'ट्राय के घेरे' के विषय में आप क्या जानते हैं ? इसका एतिहासिक महत्व बताइये।
What do you know about 'Seige of Troy' ? Describe its historical importance
3 यूनान के नगर-राज्यों के विकास पर कुछ प्रकाश डालिए। स्पार्टा और एथेन्स के नगर-राज्य आपस में किन बातों से भिन्न थे ?
Throw some light on the evolution of city states in Greece In what respects did Sparta and Athens differ from each other ?
4 फारस और यूनान के बीच सघर्ष के क्या कारण थे ? अन्त में उस युद्ध के क्या परिणाम हुए ?
What were the causes of the struggle between Persia and Greece ? What were its final results ?
5 "पेरीक्लीज का शासन-काल यूनान के इतिहास में स्वर्ण काल था।" इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।
' The reign of Pericles was the Golden Age in the Greek History " Comment on the statement ?
6 पेरीक्लीज का काल यूनान के इतिहास में सर्वाधिक देदीप्यमान युग क्यों समझा जाता है ?
Why is the Pericles' Age considered the brightest epoch in the history of ancient Greece ?

7 स्पार्टा और एथेन्स निवासियों में मतभेद के क्या कारण थे ? उसके क्या परिणाम हुए ?
What were the causes of the differences between the Spartans and the Athenians ? What were its results ?

8 "यूनान ने मानव को बड़ी शिक्षाएं दी हैं ? इस कथन की विवेचना कीजिए।
"Greek has taught many lessons to the mankind " Elucidate

9 "यूनानियों ने भूतकाल से बहुत कुछ सीखा और विश्व सभ्यता को अपनी भी देन दी।" इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
"Greeks learnt much from the past and made their own contribution to the world civilization " Comment

6
रोम की सभ्यता

"यह यूनान की प्रतिभा थी उसने अपने पश्चातकालीन युग में मानव जाति की भावना को जन्म दिया। यह रोम की प्रतिभा थी कि उसने इन कल्पनाओं को जीवन का एक संगठित रूप प्रदान किया।"

—अरनेस्ट बार्कर

रोम का प्रारम्भिक इतिहास–यूरोप महाद्वीप में भी एशिया महाद्वीप की भांति तीन प्रायद्वीप हैं। इटली हमारे भारत देश की भांति मध्य का प्रायद्वीप है। यह बाल्कन प्रायद्वीप के पश्चिम में स्थित है तथा इसका दक्षिणी भाग भूमध्यसागर (Mediterranean) में बहुत दूर तक प्रवेश कर गया है। इसके दक्षिणी भाग को पूर्वी व पश्चिमी भागों में बांटने वाला अपेनाइन (Apennine) पर्वत है। यह पर्वत माला यूनान के चट्टानी पहाड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक ढलवा तथा उपजाऊ है। इसकी उच्च ढलानों पर घास के चरागाह हैं। इन चरागाहों के सहारे यहां विविध प्रकार के पशु व पक्षी दृष्टव्य हैं। प्रथम इटली का दक्षिणी भाग ही इटालिया (इटली) कहलाता था। इटालिया का अर्थ है 'बछड़ों का देश'। इसका उत्तरी भाग 'अपेनाइन प्रायद्वीप' के नाम से ही जाना जाता था। रोम के आबाद हो जाने के उपरान्त यह सम्पूर्ण प्रायद्वीप इटली प्रायद्वीप के नाम से जाना जाने लगा।

रोम (Rome) नगर का जन्म–अपेनाइन प्रायद्वीप के मध्य में टाइबर (Tiber) नदी बहती है। वह पहाड़ों से निकलकर मैदानी भाग में बहती हुई भूमध्यसागर में जा मिलती है। मैदानों में पहाड़ियां हैं। संख्या में वे सात हैं। 2000 ई० पू० यहां इतालवी कबीले रहते थे। लैटिन भी उनमें से एक कबीला था। उस समय टाइबर नदी के मुहाने से 25 किलोमिटर ऊपर नदी के बांये तट पर रोम (Rome) नाम का एक छोटा सा नगर था। रोम के प्राचीनतम निवासियों के वंशज पेट्रीशियन (Patricians) कहलाते थे। वे समुदाय बना कर रहते थे तथा जीविका उपार्जन के लिए वे खेती करते थे और चरागाहों में चराकर अपने पशु पालते थे। रोम के उत्तरी भाग में एट्रुस्कन (Etruscans) लोग रहते थे। इस जाति के लोग सभ्य तो थे पर वे बहुधा अपने दक्षिणी मैदानों पर आक्रमण करते रहते थे। इनके आक्रमणों से बचने के लिए ही लैटिन लोग अपने ग्रामों की प्राचीर बनाकर सुरक्षित रखने का प्रयास करते थे। इस प्रकार उन्होंने टाइबर नदी की ओर झांकती हुई सात पहाड़ियों पर सात ग्राम बसा लिए। शनै शनै वे ग्राम व्यापार के केन्द्र हो गये और इन सातों बस्तियों के संयुक्त हो जाने से रोम नगर आबाद हुआ। इसीलिए इसे सात पहाड़ियों (City of Seven Hills) का नगर भी कहा जाता है।

वर्तमान रोम नगर की स्थापना आठवीं सदी ई० पू० के मध्य में हुई थी। एक

किंवदती के अनुसार 753 ई० पू० से कुछ वर्ष पहले एक पालने में दो असहाय बच्चे टाइबर नदी में बहते आ रहे थे। उनका करुण क्रन्दन एक मादा भेड़िये ने सुना। उसने उन दोनों बच्चों को बचाया तथा अपने दूध से उसने उनका पालन-पोषण किया। अन्त में एक किसान ने उन्हें गोद ले लिया। बड़े होने पर इन यमज (जुड़वा) बालकों को रोमूलस (Romulus) तथा रीमस (Remus) के नामों से जाना गया। इन दोनों भ्राताओं ने ही रोम नगर की नींव डाली थी। इसी आख्यान के अनुसार इन यमज बालकों के पूर्वजा म प्रेम की देवी (Venus) और युद्ध का देवता मार्स (Mars) भी थे। लैटिन कबीलों के राजा के पुत्र होने के कारण वे राजगद्दी के उत्तराधिकारी समझे गये। उनके चाचा ने ही गद्दी हथियाने की नियत से उन्हें नदी में बहा दिया था। अपनी असलियत ज्ञात होने पर दोनों भाइयों ने अपने क्रूर चाचा को मौत के घाट उतार दिया। कुछ समय उपरान्त दोनों भाइयों में भी सघर्ष छिड़ गया। रोमूलस ने रीमस को मौत के घाट उतार दिया और स्वय रोम का स्वामी बन बैठा। कहते हैं कि उसी के नाम पर इस नगर का नाम रोम पड़ा। यह घटना 753 ई० पू० की मानी जाती है। इस आख्यान में कितनी सचाई है यह नहीं कहा जा सकता।

रोम का राजनीतिक विकास

राजतन्त्र–रामूलस ने रोम नगर को सात पहाड़ियों में सर्वोन्नत पहाड़ी कैपीटोलिया पर बसाया। उसे सुदृढ दुर्ग से रक्षित किया। रोमन लोगों ने पहाड़ी के बीच के दल-दल को सुखा कर मैदानी भाग को सुखा लिया और उसे चौक (फोरम) के रूप में परिणित कर लिया। रोमूलस रोम का प्रथम सम्राट बना और उसने राजतन्त्र प्रणाली को जन्म दिया। जनश्रुतियों के अनुसार रोमूलस के उपरान्त 6 शासकों ने और राज्य किया। अन्तिम सम्राट तारकिन (Tarquin) था।

आठवीं सदी ई० पू० ही एट्रुस्कन (Etruscans) लोग भी उत्तर से उतर कर टाइबर नदी के समीप आ बसे थे। एट्रुस्कन लोग सभ्य एव शिक्षित थे। वे भवन-निर्माण कला से परिचित थे। उनकी स्त्रियों की दशा भी अच्छी थी। उन्हें स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। वे सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणों में रुचि रखती थीं। धर्म के क्षेत्र में वे लोग बहुदेववादी थे। मूर्ति की उपासना भी वे करते थे। रोम के पश्चिम में होने के कारण उसकी स्थिति अच्छी थी। रोम उस काल में भी एक अच्छा बन्दरगाह था। अत एट्रुस्कन अच्छे व्यापारी भी थे। इस जाति का रोम के विकास में बड़ा योगदान रहा और राजतन्त्र भी सफलता से चलता रहा। मांटेस्क्यू (Montesque) तो यहा तक लिखता है कि महान ऐश्वर्यशाली रोम के निर्माण का प्रारंभ एट्रुस्कन जाति ने ही किया था।[1] अत इनके रहते हुए रोम में राजतन्त्र सफलता से चलता रहा।

जे ई स्वेन (J.E Swain) का कहना है कि रोम के सम्राट के अधिकार असीमित थे। युद्ध के समय सेना का नेतृत्व वही करता था। वह अपने को जनता व परमात्मा

---

1 'The Beginning of splendour of Rome was done by the early Etruscans

Montesque

के बीच एक मध्यस्थ समझता था। परन्तु गद्दी पर बैठने का अधिकार उसका पैतृक नहीं था। वह सीनेट के सदस्यों द्वारा निर्वाचित होता था। सीनेट की सदस्य सख्या 300 थी और वे सदस्य राजा द्वारा मनोनीत किए जाते थे। सम्राट् प्रत्येक कबीले के अध्यक्ष की सलाह लेता था तथा प्रशासनिक कार्यों में सीनेट भी सहयोग प्रदान करती थी। सीनेट के अतिरिक्त एक एसेम्बली भी (Comitia Curiata) होती थी। इसका स्वरूप प्रजातान्त्रिक था। इसे कानून बनाने का अधिकार था और इसका अधिवेशन सम्राट् ही बुलाता था। इस प्रकार रोम में राजतन्त्र-व्यवस्था भी व्यवस्थित रूप से सचालित होती रही।

रोम में गणतन्त्र की स्थापना–रोम में राजतन्त्र को पल्लवित करने में एट्रुस्कन जाति का बड़ा सहयोग था। परन्तु 509 ई० पू० में लैटिन जाति के लोगों ने एट्रुस्कन जाति को रोम से खदड़ दिया। उनके जाने के उपरान्त सम्राट् की शक्ति सामन्तो द्वारा अपहृत कर ली गई। अन्तिम सम्राट् का शासन लैटिन लोगो को कठोर प्रतीत हुआ। अत उन्होंने 509 ई० में अन्तिम सम्राट् तारकिन के विरुद्ध विद्रोह किया और उसे रोम से भगा दिया। इस प्रकार रोम में राजतन्त्र का स्थान प्रजातन्त्र ने लिया। स्वेन का कहना है कि इसके उपरान्त रोम में लगभग 500 वर्षों तक गणतन्त्र ही बना रहा।[1] प्रजातन्त्र की स्थापना के उपरान्त ही रोम ने प्रगति के क्षेत्र में कदम रखा। एम आर रे की मान्यता है कि इसी समय से रोम का वास्तविक इतिहास आरम्भ होता है और यह बिना किसी अनुच्छेद के अपने स्वाभाविक मार्ग पर सदियों तक चलता रहा।

गणतन्त्र रोम की शासन-व्यवस्था

कौन्सल (Consul) रोम के नागरिको म अब एट्रुस्कन का स्थान पेट्रीशियन (Patricians) ने ले लिया था। इन्हे रोम के प्राचीनतम निवासियों का वशज माना जाता है। हालाकि उन्होंने एट्रुस्कन जाति के लोगो को रोम से खदेड़ दिया था तथापि उन्हें उनसे अपनी स्वतन्त्रता के लिए सकट बना हुआ था। अत अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु रोमवासियो ने दो न्यायाधीश नियुक्त करना आरभ किया। पहले उन्हे प्रेटर्स (नेता) कहा जाता था पर अब उन्हे कोन्सल (Consul) कहा जाने लगा। दो की नियुक्ति इसलिए की जाती थी कि कहीं कौन्सल स्वेच्छाचारी एव निरकुश न बन जावे। इनकी नियुक्ति असेम्बली द्वारा होती थी। उनका कार्यकाल एक वर्ष होता था और वे कुलीन वर्ग के ही होते थे। उनके अधिकार समान होते थे और वे एक दूसरे पर नियत्रण रखते थे। वे ही देश के सर्वोच्च सेनापति होते थे। इस पर भी यदि किसी परिस्थिति में रोम की सुरक्षा के लिए किसी सकट की आशका होती तो एक अधिनायक की नियुक्ति होती थी। उसके अधिकारों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता था। परन्तु उसका कार्य-काल केवल 6 मास ही होता था।

---

1 Rome was under a republican form of government almost half of the thousand years of its political esistence

J E. Swain

सीनेट (Senate)-प्रो० ब्रेस्टर्ड के शब्दों में सीनेट रोमन शासकों की सबसे बड़ी सभा होती थी जो सम्भवतः प्राचीन काल अथवा अन्य किसी काल में उत्पन्न हुई। इसकी सदस्य संख्या 300 थी। परन्तु ये सब सदस्य धनी-वर्ग के ही होते थे। वे गरीब वर्ग (Plebians) के सदस्यों की ओर ध्यान नहीं देते थे। इस कारण दोनों वर्गों (Patricians and Plebians) में बहुधा संघर्ष चलता रहता था। इस गृह-कलह का अन्त 450 ई० पू० में हुआ जबकि एक अधिनियम पारित कर दोनों वर्गों में समानता स्थापित करदी गई। देश की शासन-सत्ता सच्चे अर्थ में इसी सभा के हाथ में निहित थी। इसकी बिना स्वीकृति के कोई भी कानून पास नहीं हो सकता था। उच्चाधिकारियों की नियुक्ति में भी इसी का हाथ होता था तथा विदेशों के साथ सन्धि करना या उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना भी इसी सीनेट के अधिकार में था।

एसेम्बली-(Assembly)इस सभा की सदस्यता प्रेबियन्स व पेट्रीशियन्स दोनों के लिए खुली थी। दोनों कौन्सल की नियुक्ति इसी सभा के द्वारा होती थी और वे इसी के प्रति उत्तरदायी होते थे। यह सभा सर्वोच्चन्यायालय के रूप में भी कार्य करती थी।

इस प्रजातन्त्री संविधान व अधिनियमों का मूल उद्देश्य रोम के दोनों वर्गों में समानता स्थापित करना था। इसी उद्देश्य से 450 ई० पू० के कानून के उपरान्त भी कई कानून बने। 367 ई० पू० में एक कानून बना कर एक कृषक के पुत्र को भी देश का सर्वोच्च पद पाने का अधिकारी बना दिया। इस प्रकार के कानून बन जाने से प्रेबियन्स और पेट्रीशियन्स का वर्ग-संघर्ष (Class-War) बहुत कुछ समाप्त हो गया। इससे रोम के गणतन्त्र में नवीन रक्त का संचार हुआ और उसने अपने साम्राज्य वृद्धि की ओर कदम बढ़ाये जिसके फलस्वरूप रोम पश्चिमी जगत् में सर्वोपरि हो गया।

रोम-गणतन्त्र का साम्राज्य विस्तार-रोमवासियों ने अपनी विजय यात्रा चौथी सदी ई० पू० में न करके तीसरी सदी ई० पू० में की। इसका कारण गाल (Gaul) जाति का रोम पर आक्रमण था। 390 ई० पू० में इस जाति ने रोम पर आक्रमण किया और रोम को अग्नि देव के भेंट चढ़ा दिया। परन्तु रोमन्स ने अपने को शीघ्र ही पुनः संगठित कर लिया और उन्होंने अपने रोम नगर को भी बहाल कर लिया। इसके उपरान्त रोमन्स ने एक्वीअन व एट्रुस्कन जातियों को परास्त किया और टाइबर नदी के दोनों तरफ के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। *इसके उपरान्त उन्होंने लैटिन जाति को परास्त कर लैटिन* प्रदेश पर अधिकार किया। सैम्नाइट जाति को परास्त कर रोमन्स ने मध्य तथा दक्षिणी इटली पर अधिकार कर लिया। इन विजयों के परिणामस्वरूप रोम तीसरी सदी ई० पू० तक पश्चिमी भू-मध्यसागर में सर्व शक्तिशाली बन गया।

रोम का कार्थेज का साथ युद्ध-तीसरी सदी ई० पू० में जब पश्चिमी भूमध्यसागर पर रोम अपना प्रभाव स्थापित कर रहा था उन्हीं दिनों पूर्वी मध्यसागर पर कार्थेज के लोग अपना प्रभाव स्थापित कर रहे थे। कार्थेज (Carthage) अफ्रीका के उत्तरी पूर्वी किनारे पर स्थित था। कार्थेज एक व्यापारिक नगर था। विद्वानों का कहना है फिलीस्तीन जाति के कानआनी वंश के लोग वहाँ जाकर बसे थे और उन्होंने ही कार्थेज ..न्नत एवं विकसित बनाया था। जब कार्थेज वालों ने देखा कि रोमवासी दक्षिण

में सिसली की ओर बढ़ रहे हैं तब उन्हे अपने साम्राज्य की चिन्ता हुई। अन्त में दोनों जातिया 264 ई० पू० में आपस में भिड़ गईं और उनके इस सघर्ष ने 'प्यूनिक युद्ध' को जन्म दिया।

प्यूनिक युद्ध (Punic Wars) के कारण-सिकन्दर का सम्बन्धी पिरस (Pyrrhus) रोम और कार्थेज निवासियों द्वारा परास्त किया गया था। अपनी पराजय से खीजकर पिरस ने भविष्यवाणी की थी कि शीघ्र ही रोम और कार्थेज परस्पर झगड़ेंगे। उसकी यह भविष्यवाणी उसके लौटने के 11 वर्ष बाद ही सत्य प्रमाणित हुई। रोम और कार्थेज में ऐसा मनमुटाव उत्पन्न हुआ कि वे 120 वर्ष तक आपस में झगड़ते रहे। उनमें तीन प्रमुख युद्ध हुए। उनके कारण निम्नलिखित हैं-

1 रोमवासियों द्वारा साम्राज्य विस्तार करना।

2 कार्थेज के निवासियों द्वारा रोम के व्यापार में बाधा डालना।

3 रोम का सिसली पर अधिकार करना।

4 कार्थेज की बढ़ती हुई शक्ति से रोमन लोगों का आशकित होना।

5 रोम की भाषा, धर्म व सामाजिक जीवन कार्थेज से भिन्न थे। रोमवासी उन्हें प्यून (Pun) कहते थे तथा उन्हें ही‾ दृष्टि से देखते थे।

6 रोम कार्थेज के भय से मुक्त हो समस्त भूमध्यसागर में अपना विकास स्वतन्त्र रूप से करना चाहता था।

7 कार्थेज निवासियों ने भी यूनानवासियों की भाति एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा गठित कर लिया था। यह भी रोम के लिए ईर्ष्या का कारण बन गया था।

प्रथम प्यूनिक युद्ध (264 241 ई० पू०)-जब रोम की सेना से सिसली (Sicily) पर अधिकार कर लिया तो दोनों जातियों म भयकर युद्ध आरम्भ हो गया। यह युद्ध 20 वर्ष तक चलता रहा। 260 ई० पू० में कार्थेज वाले मायली नामक स्थान पर बुरी तरह हारे। इस विजय के पश्चात् रोम सेना कार्थेज नगर के सामने जा पहुची। कार्थेजवासी घबरा गए और अन्त में 241 ई० पू० में उन्होंने रोम से सन्धि करली। इस सन्धि के परिणामस्वरूप कार्थेज वालों को रोम सेना को अपार धनराशि देनी पड़ी और सिसली से भी उन्हें हाथ धोना पड़ा। सिसिली के अलावा सार्डिनिया (Sardinia) तथा कोर्सिका (Corsica) पर भी रोम का अधिकार हो गया। इसके अलावा कार्थेज का विशाल जहाजी बेड़ा भी नष्ट हो गया। इससे रोम अब भूमध्यसागर में निडर होकर व्यापार करने लगा। इन सब बातों के अलावा कार्थेज को रोम से यह भी वायदा करना पड़ा कि वह बिना रोम की अनुमति के अब कोई युद्ध नहीं करेगा। सिसली पर अधिकार हो जाने से रोम के इतिहास में महान् परिवर्तन आया। जेकोंइस पिरेनी का कहना है इससे रोम की आर्थिक अवस्था दिनोंदिन सुधरती गई और यूनान के नगर-राज्यों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अगुआ होने लगा। इसके अलावा रोम वालों को अपनी शक्ति पर आत्म-विश्वास तथा जल-सेना पर अभिमान बढ गया।

द्वितीय प्यूनिक युद्ध (218 201 ई० पू०)-प्रथम प्यूनिक युद्ध की समाप्ति एक सन्धि द्वारा हो गई थी, पर दोनों ही देशों को एक दूसरे पर संदेह बना रहा। कार्थेज

परास्त अवश्य हो गया था पर उसकी शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हुई थी। अत वह भूमध्यसागर पर अपना प्रभाव पुन स्थापित करने का प्रयास करने लगा। उधर प्रथम प्यूनिक युद्ध की विजय ने रोमवासियों की साम्राज्यवादी क्षुधा को और जागृत कर दिया था। अत सन्धि हो जाने के बाद रोम ने सार्डीनिया और एलीरिया का कुछ भाग जीत लिया। कार्थेजियन्स के नेता हैनीबाल (Hannibal) ने स्पेन के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि 218 ई० पू० में दोनों शक्तियों में पुन सघर्ष आरम्भ हो गया। इस सघर्ष को इतिहास में द्वितीय प्यूनिक युद्ध कहते है। इस युद्ध में पहले तो रोमवासी हैनीबाल के कारण परास्त होते रहे। हेनीबाल एक वीर सेनाघ्यक्ष था। उसमें राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह रोम से कार्थेज की प्रथम पराजय का बदला लेना चाहता था। उसने अपने सैनिकों के साथ बर्फीली आल्पस पर्वत श्रेणियों को पार करते हुए इटली में घुसने की ठानी। उसके इस अभियान में उसके आधे सैनिक तो आल्पस पर्वत को पार करने में ही अपने प्राण गवा बैठे। शेष सैनिकों के साथ वह पो (Po) नदी की घाटी में जा पहुचा। इसी अवसर पर रोमन्स से पूर्व परास्त गाल जाति के सैनिक भी हेनीबाल से आ मिले। हैनीबाल ने इटली के सनानायक सीपियो को केनी स्थान पर परास्त किया। 202 ई० पू० में रोमन्स ने हेनीबाल को जमा (Zama) के युद्ध में हरा दिया। इस पराजय ने युद्ध का पासा पलट दिया। इस पराजय का मुख्य कारण हैनीबाल के कनिष्ठ भ्राता हैस्ड्राबल (Hasdruble) की मृत्यु तथा उसकी पराजय थी। इस हार से कार्थेजियन्स के छक्के छूट गये और अपनी हीनता के कारण वे रोम से एक अपमान-जनक सन्धि करने को उद्यत हो गये।

सन्धि की शर्तें-

1 कार्थेज को अपना नौसैनिक बेड़ा रोम को देना स्वीकार किया।
2 युद्ध का हर्जाना देना भी उन्होंने स्वीकार किया।
3 कार्थेज को सभी विजित प्रदेश लौटाने पड़े।
4 कार्थेज ने रोम को भूमध्यसागर का स्वामी स्वीकार किया।

युद्ध के परिणाम -

1 रोम की साम्राज्यवादी क्षुधा का और प्रबल हो गई।
2 हेनीबाल ने विष खाकर आत्म-हत्या करली।
3 रोम में किसानों का महत्व बढ़ गया क्योंकि इस युद्ध की विजय में उनका महान योगदान था।
4 स्पेन पर से भी कार्थेज का प्रभाव समाप्त हो गया।

हैनीबाल
(Hannibal)

हैनीबाल का कार्थेज के एक सैनिक परिवार म जन्म हुआ था। उसका पिता हैमिलकार बार्कस (Hamilcar Barcas) कार्थेज का योग्य सेनानायक था। वह प्रथम प्यूनिक युद्ध में यश प्राप्त कर चुका था। जब हैनीबाल केवल 9 वर्ष का ही था, उसने एक मन्दिर ली थी कि मैं आजन्म रोम से युद्ध करता रहूँगा। यह सही भी है कि जब

तक वह जीवित रहा, निरन्तर रोम के अस्तित्व को मिटाने का प्रयास करता रहा। वह 18 वर्ष की आयु में कार्थेज का सेनानायक नियुक्त हुआ। इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद को सम्भालते ही उसने स्पेन पर चढ़ाई कर उसके एक भाग पर अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात् वीर नैपोलियन की भांति उसने भी आल्प्स पर्वत के शिखरों को पार करके इटली पर हमला बोल दिया। 216 ई० पू० में कैनी (Cannae) नामक स्थान पर उसने रोम की सेना को बुरी तरह परास्त किया। इसमें सत्तर हजार रोमन सैनिक युद्ध में खेत रहे। तत्पश्चात् वह रोम नगर के सामने जा प्रस्तुत हुआ। 15 वर्ष तक लगातार वह रोम वालों को परास्त करता रहा और एक स्थान पर भी उसने मात नहीं खाई। रोम का घेरा डालना उसके साहस का अनुपम उदाहरण है। रोमन्स के विरुद्ध दो बार विजय प्राप्त कर उसने समस्त यूरोप को स्तंभित कर दिया। उसने अपनी कूटनीति से इटली की कई जातियों को अपना सहयोगी बना रोमन्स को आतंकित कर दिया।

सकट की भयकरता को समझ रामवासी पुन सगठित हो गय और २०२ ई० पू० उन्होंने हैनीबाल को जमा (Zama) नामक स्थान पर हरा दिया। इससे तग आकर और भावी अपमान से बचने के लिए हैनीबाल ने 180 ई० पू० विष पीकर आत्म-हत्या करली, क्योंकि रोम की सीनेट ने उसे रोम को सौंपने की माग की थी। हैनीबाल ने शत्रु के हाथों में पड़ने की बजाय विष खाकर मरना अधिक श्रेयकर समझा। कार्थेज के एक वीर सेनानी एवं योग्य सेनानायक का इस प्रकार यह दुखद अन्त हुआ। फिर भी हैनीबाल अपने समय का सबसे कुशल राजनीतिज्ञ एवं सेनानायक था। उसकी गणना विश्व के महान् व्यक्तियों में की जाती है।[1]

हैनीबाल की पराजय के कारण-

1 रोमन्स की चारित्रिक विशेषताएं।
2 रोम की अश्वारोही सेना।
3 राम के किसानों का सेना में भर्ती होना।
4 रोम के पास शक्तिशाली जहाजी बेड़ा होना।
5 हैनीबाल की सेना में विभिन्न जातियों के सैनिक होना।

तीसरा प्यूनिक युद्ध (149 146 ई० पू०)–दूसरे प्यूनिक युद्ध की विजय ने रोम की साम्राज्यवादी आग में घी डालने का कार्य किया। दूसरे महायुद्ध की पराजय से कार्थेज शक्तिहीन हो गया था। परन्तु रोम अब भी उससे सावधान था। 149 ई० पू० में कार्थेज ने किसी पड़ौसी देश (न्यूमीडिया) को दण्डित करने के लिए शस्त्र उठाये थे। रोमवासियों ने इसे ही बहाना बनाकर कार्थेज पर आक्रमण कर दिया, क्योंकि रोम की जनता तो अब पूर्णत कार्थेज राज्य को समाप्त करने पर तुली हुई थी।

रोमन सैनिकों ने कार्थेज घेर लिया। तीन वर्ष तक युद्ध चलता रहा। कार्थेज सैनिक हथियार गढ़ते रहे तथा अपने नगर के ध्वस्त प्राचीर की निरन्तर मरम्मत करते रहे। स्त्रियां भी सहयोग देने में पीछे नहीं रहीं। परन्तु जब नगर में रसद नहीं पहुच सकी तो भूखे

1 Measured by any standard he was the greatest man o his time and one of the greatest men of the ancient world.

Van Sickle

मरते कार्थेज ने हथियार डाल दिए। रोमन्स ने कार्थेज के आग लगादी और वहा एक भी मकान नहीं रहने दिया। 50 हजार कार्थेजियन बन्दी बना लिए गये। इस प्रकार कार्थेज का वैभव रोम के चरणों पर लौटने लगा। कार्थेज पर रोम-पताका लहराने लगी।

प्यूनिक युद्धों के परिणाम-

इन युद्धों का रोम के इतिहास मे बड़ा महत्व है और उनसे निम्नलिखित प्रभाव पड़े थे-

(1) कार्थेज का वैभव विश्व में सदा के लिये लुप्त हो गया।

(2) रोम एक शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। प० जवाहरलाल नेहरू का कहना है कि कार्थेज की अन्तिम पराजय व उसके विनाश के उपरात रोम पश्चिमी दुनिया में बिना किसी प्रतिद्वन्द्वी के सर्वोच्च हो गया।

(3) रोम का साम्राज्य विस्तीर्ण हुआ और वह एक साम्राज्यवादी राज्य बन गया।

(4) रोम की बढ़ती हुई सम्पन्नता ने वहा के नागरिको में वैमनस्य व द्वेष की भावना उत्पन्न कर दी।

(5) रोम कार्थेज के विनाश के बाद यूनानी सभ्यता के सम्पर्क में आया।

(6) रोमवासी इस विजय में प्राप्त धनराशि से यूनानियों की भाति विलासी जीवन की ओर अग्रसर होने लगे।

युद्ध में कार्थेजियन्स की पराजय के कारण-

(1) कार्थेज के सैनिक वेतन भोगी थे।

(2) कार्थेज की सरकार केवल धन की लाभी थी और उसके सैनिक आक्रमण के समय धन लूटना ही अपना परम धर्म समझते थे।

(3) कार्थेज की सरकार ने अपने विजित प्रदेश में सुशासन-स्थापन की ओर ध्यान नहीं दिया।

(4) कार्थेज की सरकार अपने सेनानायकों को उनकी सफलता पर पारितोषिक देकर उत्साहित नहीं करती थी और इसके विपरीत असफलता प्राप्त होने पर उन्हीं नायकों को मृत्यु के घाट उतार दिया करती थी।

(5) शनै शनै जन साधारण में राष्ट्रीय भावना का लोप हो रहा था।

(6) व्यापारी वर्ग अपने सेनानायकों को किसी प्रकार का सहयोग न देकर उनसे द्वेष भाव रखते थे।

(7) कार्थेज के उपनिवेशों ने युद्ध में कार्थेज के प्रति सच्ची स्वामि-भक्ति नहीं दिखाई।

सामाजिक-युद्ध

जैसा कि हम प्यूनिक युद्धों के प्रभाव में देख चुके हैं कि रोम की वैभवता ने रोमवासियों में असमानता पुन उत्पन्न कर दी थी। प्रजातंत्रीय शासन वहा लुप्त हो रहा था। इसके अतिरिक्त रोमवासियों का शिष्ट जीवन अत्यन्त निराशा के साथ अध पतन की ओर जा रहा था। अत रोम के साधारण लोग इस असमानता व समाज के भेदभाव को अधिक सहन नहीं कर सके। रोमन्स ने अपनी विजय यात्रा के दौरान भारी संख्या में दास बना थे। उनके साथ पैट्रीशियन लोग दयनीय व्यवहार करते थे। उनके बेचने के लिए

कई मडिया स्थापित हो गई थीं। दासों को उन्होंने अपने मनोरंजन का साधन भी बना लिया था। शक्तिशाली दासों (Gladiators) को वे एम्फीथियेटर में भूखे शेरों से लड़ाया जाता था। उनके रक्त-पात पर रोमन्स को प्रसन्नता होती थी। एक रूसी इतिहासकार का कहना है कि **प्राचीन विश्व के और किसी देश के पास इतने दास नहीं थे, जितने कि रोम के पास थे। इसी तरह और कहीं दासों का इतना शोषण नहीं किया जाता था, जितना कि रोम में। दासप्रथात्मक व्यवस्था का सर्वाधिक विकास रोम में ही हुआ था।** इस प्रकार के वातावरण में 74 ई० पू० में दासों व ग्लेडियेटरों ने स्पार्टक्स के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। इसी प्रकार प्रेबियन्स ने पेट्रीशियन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। हालांकि इस क्रान्ति से दासों को तो नागरिकता का अधिकार नहीं मिला परन्तु प्रेबियन्स को समानता का अधिकार पुन प्राप्त हो गया। इस विद्रोह को रोम के इतिहास में सामाजिक-युद्ध की सज्ञा दी गई है।

युद्ध के परिणाम-

1 प्रेबियन्स के ऋण माफ कर दिये गये।
2 ऋणी प्रेबियन्स को स्वतन्त्र कर दिया गया।
3 एडाइल नामक दो विधि विशारद प्रेबियन वर्ग से चुने जाने लगे।
4 ट्रिब्यून के रूप में भी दो प्रेबियन नियुक्त किये जाने लगे।
5 मृत्यु दण्ड के क्षेत्र में भी प्रेबियन को कुछ रियायत दी गई।

ग्रेको बन्धुओं के सुधार
(Reforms of Gracchus Brothers)

उपरोक्त **'सामाजिक युद्ध'** (91 89 ई० पू०) से इटली की समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने का प्रयास अवश्य किया गया। परन्तु अभिजात वर्ग, सेनापति, उच्च पदाधिकारियों व पूंजीपतियों का प्रभुत्व समाज में अब भी व्याप्त रहा। इसका कारण यह था कि रोम में गणतन्त्र अवश्य था किन्तु सरकार में जनमत का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता था। इसका परिणाम यह रहा कि समाज में असमानता बनी रही। शक्ति चन्द धनी पुरुषों के हाथों में ही केन्द्रित रही। इस कारण अधिकाश जनता असन्तुष्ट बनी रही। ऐसी स्थिति में सुधार करने की नितान्त आवश्यकता थी, परन्तु अभिजात वर्ग इस दिशा में उदासीन ही बना रहा। दूसरी सदी ई० पू० में इस दिशा में ग्रेक्स बन्धु आगे आये। हालाकि वे भी अभिजात वर्ग के थे तथापि उन्होंने श्रमिक वर्ग के हित के लिए कुछ सुधार किये।

टाइबेरियस ग्रेक्स (Tiberius Gracchus) के सुधार-टाइबेरियस एक सुशिक्षित नवयुवक था। उसके पितामाह का नाम शिपियो अफ्रीकन्स (Scipio Africans) तथा पिता का नाम सेम्प्रोनियस था। वह 133 ई० पू० में ट्रिब्यून (Tribune) चुना गया। किसानों की दशा में सुधार करने हेतु उसने निम्नलिखित सुधार प्रस्तावित किये-

उसने भूमि वितरण में सुधार लाने हेतु प्रस्तावित किया कि किसी भी व्यक्ति के पास 500 जोगेरा (666 एकड़) से अधिक भूमि नहीं रहनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति के पास है तो मुआवजा देकर उसकी अधिक भूमि ले लेनी चाहिए। अधिग्रहण की गई भूमि उन किसानों में बाट दी जावे जो कि भूमि हीन हैं। इसे एसेम्बली की अवश्य मिल गई परन्तु सीनेट की नहीं मिली।

वह इस दिशा में और सुधार करना चाहता था परन्तु सविधान के अन्तर्गत् वह दूसरी बार 'ट्रिब्यून' नहीं चुना गया। इसके विपरीत भूमिपतियों में भारी असन्तोष फैल गया और 130 ई० पू० में वह मौत के घाट उतार दिया गया।

केअस ग्रेक्स (Caius Gracchus) के सुधार-अपने ज्येष्ठ भ्राता के वध के दस वर्ष उपरान्त वह ट्रिब्यून निर्वाचित हुआ। वह भी अपने भ्राता की भांति सुधारवादी था। उसमें प्रतिभा का अभाव अवश्य था तथापि उसने कुछ सुधार किये-

1 सीनेट के अधिकार कम करने की दृष्टि से उसने प्रान्तीय गवर्नरों के अभियोग सुनने का अधिकार उनसे छीन लिया।

2 लगान वसूली का ठेका सीनेट से ले कर इक्वीटी (Equites) को दे दिया गया।

3 कौंसलों की निष्पक्ष नियुक्ति के लिए उसने सुझाया कि ये नियुक्तिया सीनेट अपने निर्वाचन से पूर्व करे।

4 गरीब लोगों को सस्ता अनाज दिलाने का उसने प्रबन्ध किया तथा उन्हें अनुदान (Grants) दिलाने की भी उसने व्यवस्था की।

5 उसने भूमिहीन किसानों को उपनिवेशों में भेजने का भी प्रस्ताव रखा।

6 सैनिकों की सुविधा के लिए उसने सरकार से अनुरोध किया कि सैनिकों की आवश्यक वस्तुए सरकार खरीद कर उन्हें दे।

7 किसानों को अपनी पैदावार सुविधा से भिजवाने हेतु उसने यातायात के साधन भी विकसित किये।

सुधारों के परिणाम-केअस ग्रेक्स कृषक-वर्ग का प्रिय नेता बन गया। वह दूसरी ट्रिब्यून का निर्वाचित होने में सफल रहा। सीनेट अधिक शक्तिशाली नहीं रही। परन्तु उसने भी अपने ज्येष्ठ भ्राता की भांति सम्भ्रान्त व पूंजीपतियों को अपना शत्रु बना लिया और 121 ई० पू० में वह सीनेट के सदस्यों कर शत्रुता के कारण मौत के घाट उतार दिया गया। हालांकि दोनों भाइयों का अन्त दुखान्त रहा, परन्तु मजदूर व कृषक वर्ग के हितों में उन्होंने उपरोक्त सुधार करके अपना नाम सदैव के लिए अमर कर लिया।

रोम में अधिनायकवाद (Dictatorship) का उदय-ग्रेक्स बन्धुओं की हत्या के उपरान्त रोम की आन्तरिक अवस्था और खराब हो गई। सीनेट नहीं चाहती थी कि उसके अधिकारों में कमी की जावे। इसी प्रकार अभिजातवर्ग व सेनापति भी नहीं चाहते थे कि प्लेबियन्स को प्रशासनिक सुविधाए प्रदान की जावे। इस प्रकार रोम में पुन दो दल निर्मित हो गये- (अ) जनसाधारण दल (Populares) व (ब) अभिजात वर्ग (Nobles)। विजय-यात्राओं में की गई लूट से रोम के पास धन बहुत आ गया था। उस धन का विशेष लाभ अभिजात वर्ग व सेनापतियों (Nobles) को ही मिला था। जब जनसाधारण (Populares or People s Party) ने जनसाधारण के हित में कानून बनवाना आरभ किया तो सेनानायकों ने अपने धन से निजी सेनाओं का गठन आरभ

किया। सेनानायकों की इस कार्यवाही से रोम का गणतन्त्र नष्ट हो गया तथा वहा अधिनायकवाद का उदय आरभ हो गया।[1]

निजी सेना का गठन करने वाले सेनानायकों में उल्लेखनीय निम्नलिखित थे-

1 मेरियस (Marius)-यह जनता पार्टी (People s Party) का नेता था। परन्तु वह धनवान था। उसने एक ठेकेदार की हैसियत से पर्याप्त धन एकत्रित कर लिया था और अपने पैसे के बल पर ही वह रोम का राजनीतिक नेता तथा 107 ई० पू० मे कौन्सल निर्वाचित हुआ था। वह पहला व्यक्ति था जिसने समझ लिया था कि बिना सेना के कोई भी व्यक्ति रोम में शक्तिशाली नहीं बन सकता। अत उसने एक विशाल सेना का गठन किया। न्यू-मीडिया (Numidia) में जब रोमन सेना युद्ध कर रही थी उसी समय रोम की दयनीय आन्तरिक अवस्था का लाभ उठाते हुए ट्यूटन व गाल जातियों ने विद्रोह कर दिया। परन्तु मेरियस ने अपने सैनिक बल से न्यूमीडिया के राजा जगुर्थ (Jugurtha) को परास्त कर दिया और आन्तरिक विद्रोहो को भी दबा दिया। अपनी इन सैनिक कार्यवाहियों से वह रोम जनता का प्रिय बन गया और सविधान का उल्घन कर वह 6 बार कौन्सल पद पर निर्वाचित हुआ।

2 सुला (Sulla)-यह अभिजात वर्ग का था। अत सीनेट में उसे अभिजातवर्ग का अच्छा समर्थन प्राप्त था। उसने युद्ध-विद्या मेरियस के नेतृत्व में ही सीखी थी। उसने भी अपनी निजी सेना का गठन किया। अपनी उस सेना से उसने रोम के मित्र राज्यो का दमन कर प्रेबियन्स की शक्ति को आघात पहुचाया। उसकी इस कार्यवाही से एसेम्बली की शक्ति कम हो गई और सीनेट शक्तिशाली बन गई। इस प्रकार वह भी अपने धन-बल तथा सैनिक बल से रोम का एक सैनिक राष्ट्रनायक बन गया।

मेरियस व सुला के बीच सघर्ष-इस प्रकार मेरियस व सुला दोनो ही अपने धन व सैनिक बल से रोम के सैनिक राष्ट्रनायक बन गये। मेरियस को असेम्बली का समर्थन प्राप्त था जब कि सुला को सीनेट का। इसी समय एशिया माइनर में एक विद्रोह हो गया। उस विद्रोह को दबाने के लिए सीनेट सुला (Sulla) को भेजना चाहती थी जबकि एसेम्बली मेरियस (Marius) को भेजने के पक्ष में थी। इसी प्रश्न पर मेरियस व सुला में सघर्ष छिड़ गया। सुला मेरियस को परास्त कर एशिया माइनर चला गया।

सुला का अधिनायक बनना(82 79 ई० पू०)-सुला को एशिया माइनर के विद्रोह को दबाने में चार (८७-८३ ई० पू०) साल लग गये। सुला के रोम से अनुपस्थित रहने पर इन चार वर्षों में मेरियस ने उसके समर्थक कई अभिजातों को मौत के घाट उतार दिया। उसने उनकी सम्पत्ति जब्त करली। चार साल बाद जब सुला स्वदेश लौटा तो उसे अपने समर्थकों की दुर्दशा की जानकारी मिली। वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने बदला लेने की ठान ली। उसने मेरियस के समर्थकों से भयकर क्रूरता से बदला लिया। सुला

1 'Thus the Roman Republic lost much of its original vigour and vitality and finally paved the way for dictatorship

B V Rao

वध कराने से पूर्व उनके नामों की सूचिया जगह-जगह चिपकाता (Proscription) देता था और फिर अपने समर्थकों से उनका वध करवा देता था। वध करने वालों को वह भारी पुरस्कार देता था। उसने अपनी नीति से अपने हजारों शत्रु व मरियस के समर्थकों को मौत के घाट उतरवा दिया और उनकी सम्पत्ति जब्त करली। उसके इन निर्दयी कार्यों से रोम में उसकी धाक जम गई। किसी में उसका विरोध करने की क्षमता नहीं रही। इस प्रकार वह अपने अभिजात समर्थकों व अपने सैन्य बल से 82 79 ई० पू० तक रोम का तानाशाह बना रहा।[1] वह चाहता तो उस समय वह रोम का शासक बन सकता था पर उसका उद्देश्य केवल अभिजात वर्ग का प्रभुत्व स्थापित करना ही था।

पोम्पी (Pompey)-यह रोम का तीसरा सेनानायक था। वह एसेम्बली का समर्थक था। अत उसने सीनेट की शक्ति घटा कर एसम्बली को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। उसने स्पेन, पूर्वी भूमध्यसागर और एशिया माइनर में सैनिक विजय प्राप्त कर रोम में अपना अच्छा प्रभाव जमा लिया था। उसने सुला के नेतृत्व में ही एशिया माइनर में अपनी अपूर्व वीरता का प्रदर्शन किया था।

पोम्पी व क्रेसस (Crassus)में मन मुटाव-प्रथम पोम्पी व क्रेसस दोनों परस्पर सहयोगी थे और दोनों ने ही पूर्वी भूमध्यसागर में सुला के सेनापतित्व में युद्ध किया था। दोनों ही महत्वाकांक्षी थे। सुला की मृत्यु के दस वर्ष उपरान्त ये दोनों ही और भी महत्वाकांक्षी हो गये और 70 ई० पू० में दोनों ही कौन्सल निर्वाचित हो गये। कौन्सल पद से हटने के उपरान्त पोम्पी ने भूमध्यसागर में समुद्री डाकुओं (Pirates) को समाप्त कर तथा सीरिया के शासक को परास्त कर व सीरिया (Syria) को रोम में मिला कर अपने सैनिक जीवन के चार चाद लगा लिए थ। इसके विपरीत क्रेसस ने गुलामों के व्यापार (Slave Trade) व चादी की खानों से पर्याप्त धन अर्जित कर लिया था। इस प्रकार दोनों ही नवयुवकों में महत्वाकांक्षा की प्रचण्ड अग्नि धधक उठी और अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति का वे प्रयास करने लगे।

जूलियस सीजर (Julius Caesar)

जूलियस सीजर मेरियस का भतीजा था। वह एक धनी कुल में उत्पन्न हुआ था। वह एक अच्छा योद्धा व महत्वाकांक्षी था। वह पोम्पी की भांति एक अच्छा सेनानायक था। उसके पास क्रेसस के समान धन तो नहीं था किन्तु वह मूर्ख बनाने में चतुर था। वह एक अच्छा वक्ता भी नहीं था परन्तु जनता से निवेदन कर सकता था। वह रिश्वत देना व जन साधारण का मनोरंजन करना आदि भलीभांति जानता था। अत वह चाहता था कि अपने दोनों साथियों से वह ऊंचा उठे। इसके लिए उसने सोचा कि मुझे किसी प्रकार सेना का नेतृत्व मिल जाना चाहिए। इसलिए उसने अपने साथियों के सहयोग से अपने को गाल (Gaul) और इलीरिया (Illyria) का प्रशासक नियुक्त करा लिया। 58 ई० पू० से 50 ई० पू० तक उसने पश्चिम में कई गौरवपूर्ण विजय प्राप्त की। इन विजयों

1 With army and aristocrates behind him Sulla was dictator from 82 to 79 B C.
P T Moon

क कारण वह रोम में और भी विख्यात हो गया। सैनिक ख्याति प्राप्त करने के साथ-साथ वह जनसाधारण में लोक-प्रिय भी होना चाहता था। इसके लिए उसने धन आवश्यक समझा। धन की प्राप्ति वह क्रेसस से करता रहा। उस धन से वह जन-साधारण में लोक-प्रिय हो गया। इस प्रकार वह रोम के लोगों में अच्छी ख्याति अर्जित करने में सफल रहा। 59 ई० पू० में 'प्रथम ट्रियमविरेट' (The Firs Triumvirate) बना। यह तीनों (सीजर, क्रेसस और पोम्पी) के लिए ही लाभ-प्रद रहा। सीजर कौन्सल बन गया, पोम्पी को अपने पुराने युद्ध के साथियों में बाटने के लिए भूमि मिल गई और क्रेसस को करों के सन्दर्भ में कई सुविधाए प्राप्त हो गईं। इसी समय भाग्यवश क्रेसस पारथियन से युद्ध करता हुआ युद्ध में काम आ गया। इससे प्रथम ट्रियमविरेट समाप्त हो गया और पोम्पी ही सीजर का एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी रह गया।।

गाल प्रदेश पर सीजर की विजय 58 ई० पू० में जूलियस सीजर गाल (Gaul) का गवर्नर बना और आठ वर्ष तक वहा युद्ध करके समस्त गाल प्रदेश को उसने रोम के आधीन कर दिया। गाल विजय से उसे गाल-सैनिक तथा काफी धन भी मिला। उसकी इस विजय से रोमवासी तो अति प्रसन्न हुए पर सीनेट और पोम्पी भयभीत हो गये। सीनेट ने सीजर को आदेश दिया कि वह अपनी विशाल सेना को भग करके स्वदेश लौट आवे।

रोम की सत्ता के लिए सघर्ष-गाल की विजय से जूलियस की महत्त्वाकाक्षा और प्रबल हो गई और वह सिकन्दर की भाति एक महान् सम्राट् व विजेता बनने की सोचने लगा। अत उसने सेना भग न करके उल्टे रोम पर आक्रमण कर दिया। 48 ई० पू० में उसका फारसेलस (Pharsalus) पर पोम्पी से मुकाबला हुआ। पाम्पी परास्त हुआ और मिस्र की ओर भाग गया। वहा उसने रानी क्लीयोपेट्रा (Cleopatra) से शादी करली। परन्तु जूलियस सीजर क समर्थकों ने उसका वध कर दिया। पोम्पी की मृत्यु से जूलियस बिल्कुल निश्चिन्त हो गया। अत एक वर्ष उसने मिस्र में बिताया। किन्तु जब एशिया माइनर के विद्रोह की सुनी तो वह वहा से लौटा और उसको बिना किसी कठिनाई के दबा दिया। इसके उपरान्त उसने सीनेट को अपनी रिपोर्ट भेजी, जिसका आशय था कि मैं आया, मैंने देखा और मैं जीत गया। इसके पश्चात् वह शीघ्रता से स्पेन गया और उसे परास्त कर एक विजेता के रूप में वह रोम लौटा।

***जूलियस सीजर का अधिनायक बनना*-19 जुलाई 46 ई० पू० को वह रोम** का अधिनायक बन गया और रोम की सारी सत्ता उसके हाथों में केन्द्रीभूत हो गई तथा वह अपनी मृत्यु तक इच्छानुसार शासन करता रहा। सीजर द्वारा इस प्रकार सत्ता प्राप्त करने पर बाउल लिखता है, " **जूलियस सीजर की सादगी अन्य सेनानायकों को युद्ध करके राजनीतिक सत्ता हथियाने का आदर्श बन गई।"**

जूलियस सीजर के उद्देश्य-शान्ति स्थापन के पश्चात् सीजर न सुधार और सगठ का कार्य अपने हाथ में लिया। उसने जीवन के चार उद्देश्य निर्धारित किये वे इस प्रकार हैं-

1 विशाल रोम साम्राज्य को सुरक्षित बनाना।

2 रोम की बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण रखना।
3 साम्राज्य की दयनीय आर्थिक अवस्था में सुधार करना।
4 सेना को तुष्ट करना।

जूलियस सीजर के शासन का स्वरूप-जूलियस सीजर महान् दूरदर्शी व्यक्ति था। हालांकि उसने रोम के समस्त शासन को अपने हाथों में केन्द्रित कर लिया था तथापि उसने गणतन्त्र के स्वरूप को नष्ट नहीं किया। उसने गणतन्त्र के समस्त प्रशासनिक अंगों को ज्यों का त्यों रखा। पर ये सब विभाग उसके इशारे पर काम करते थे। इस प्रकार वह रोम का सर्वसत्ताधारी अवश्य बन गया परन्तु उसने सम्राट् की उपाधि से अपने को अलंकृत नहीं किया।

शासन प्रबन्ध-जब सत्ता जूलियस के हाथ में आ गई तो सीनेट व अन्य प्रजातन्त्र में विश्वास रखने वाले सोचने लगे कि वह किस प्रकार का शासन करेगा ? यद्यपि सीनेट ने इसका विरोध अवश्य किया था, किन्तु फिर भी सीजर ने सीनेट को समाप्त नहीं किया। सीनेट की सदस्य संख्या उसने 600 से 900 कर दी। सीनेट में अपने समर्थकों को भर कर उसने उसे शक्तिहीन अवश्य बना दिया। सीनेट पर उसका पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। परन्तु उसने कोई ऐसा कानून पास नहीं किया, जिससे यह पता चलता हो कि वह सीनेट को समाप्त करना चाहता था।

रोम की जनसंख्या उस समय पांच लाख हो गई थी। इससे जनसाधारण के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। नगर में भवनों का अभाव हो गया। सरकारी कार्यालयों के लिए ही भवन उपलब्ध नहीं होते थे। सीजर ने नदी टाइबर की धारा बदल दी। इससे रोमवासियों को बसने के लिए भूमि उपलब्ध हो गई। नगर के मध्य भाग को साफ कर वहां कई भवन बनाये।

जूलियस सीजर के प्रशासन की समीक्षा- वह शासन की बुराइयों से भलीभांति परिचित था। अतः उनके निवारण का उसने भरसक प्रयास किया। सीजर का शासन यूनान के प्रजापीड़कों व पूर्वीय निरंकुश शासन प्रणाली पर आधारित था। उसने रोम के आधीन प्रान्तों को भी नागरिकता के अधिकार प्रदान किये तथा उनको सीधे रोम के आधीन कर लिया। इसके अलावा उसने विशाल प्रान्तों को रोम प्रान्त की भांति विशेषाधिकार भी दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि बड़े प्रान्त रोम से वैमनस्य नहीं रखने लगे। प्रान्तीय शासन के अलावा उसने स्थानीय शासन की ओर भी ध्यान दिया। परन्तु उसने नगर-पालिकाओं से कर वसूल करने का अधिकार छीन लिया। न्यायाधीशों का निर्वाचन समाप्त कर उसने उनकी नियुक्ति करना आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त उसने कुछ आर्थिक सुधार भी किये। प्रथम उसने कर वसूली की प्रथा में परिवर्तन किया। देश की बेकारी दूर करने व मध्यम वर्ग को रोजगार दिलाने की दृष्टि से उसने गुलामों की संख्या निर्धारित कर दी। इसके अलावा उसने और कई आर्थिक सुधार किये। सरकारी कोष में वृद्धि करने की दृष्टि से उसने पराधीन राजाओं से भेंट लेना स्वीकार किया। सरकार द्वारा ऋण ली जाने वाली राशि पर उसने ब्याज की दर घटा दी। विदेशों से आने वाले माल पर आयात कर लगाया। देश के व्यापार बढ़ाने के लिए भी उसने कई प्रयास किये। रोम

में उसने एक नवीन बन्दरगाह और बनवाया। राज्य की जनगणना करवाई तथा रोम के आसपास कई बस्तियां बसाईं। रोम को सुन्दर बनाने की योजना उसने तैयार करवाई तथा गन्दे पानी की नाली निकलवाई। उसने सेना में इटली के बाहर के आदमियों को भी स्थान दिया तथा सेनानायकों को सीधे अपने प्रति उत्तरदायी बना लिया। इससे स्पष्ट होता है कि जूलियस एक अच्छा प्रबन्धक था। वह विद्वान् मनुष्य था, एक अच्छा प्रशासक व एक अच्छा लेखक भी था।

जूलियस सीजर की मृत्यु–नि:सन्देह जूलियस सीजर अल्प-काल में ही शक्तिशाली व प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। परन्तु उसकी यह ख्याति ही उसके लिए अनेक शत्रु उत्पन्न करने का कारण बन गई। गणतन्त्रवादी उसके एकतन्त्रीय शासन से अप्रसन्न थे तथा सीनेट भी अभिजाततन्त्रीय गणतन्त्र रखना चाहती थी। इस कारण सीनेटरों ने एक षड्यन्त्र रचा। उसका नेता ब्रूटस (Brutus) था। वह एक धनी तथा सम्भ्रान्त दासस्वामी था। इसके साथ ही वह जूलियस सीजर का मित्र भी माना जाता था। उसने 15 मार्च, 44 ई० पू० को सीनेट हाल में ही छुरा घोंप कर सीजर की हत्या कर दी।[1]

जूलियस सीजर का मूल्यांकन–जूलियस सीजर का शासन पांच साल ही रहा। किन्तु फिर भी उसने रोम में शान्ति व व्यवस्था कायम करने के लिए सराहनीय कार्य किया। वह प्रजातन्त्र का प्रबल समर्थक था और उसे अधिक शक्तिशाली बनाना चाहता था। किन्तु इंग्लैण्ड के आलिवर क्रॉमवेल की भांति वह भी परिस्थितिवश प्रजातन्त्र का विरोधी बन गया। रोम के प्रशासन में सुधार करने की उसके मस्तिष्क में योजना थी, किन्तु वह अपनी आकस्मिक मृत्यु के कारण उसे पूरा नहीं कर सका। फिर भी यह जूलियस सीजर ही था, जिसने रोम में दोषों से रहित एक स्थायी सरकार की स्थापना की। भूमध्य सागर के देशों के दु:खी मनुष्यों को ईमानदार व योग्य सरकार प्रदान करने वाला वही प्रथम व्यक्ति था। इसके अतिरिक्त जूलियस सीजर तत्कालीन अन्य विजेताओं की भांति क्रूर नहीं था। नि:सन्देह वह एक महान् विजेता था, परन्तु वह अकारण खून नहीं बहाता था। वह परास्त एवं शरणागत शत्रुओं के साथ भी उदारता का व्यवहार करता था। उसके विरोधी सीनेटरों ने उस पर प्रजातन्त्र को नष्ट करने का दोषारोपण किया। परन्तु उसने प्रशासन में प्रजातन्त्र के स्वरूप को बनाये रखा। कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि सिकन्दर व हेनीबाल को छोड़कर अन्य सेनापतियों में जूलियस सीजर जैसी सैनिक प्रतिभा न थी।[2] उसने विजित राज्यों में भी व्यवस्था स्थापित करने में सहयोग दिया। वह लूटने या नष्ट करने में ही सन्तोष नहीं लेता था। वह स्वयं एक विद्वान् था और सिकन्दरिया के पुस्तकालय के समकक्ष रोम में भी एक पुस्तकालय स्थापित करना चाहता था, परन्तु निष्ठुर मृत्यु ने उसकी योजनाओं को कार्यान्वित नहीं होने दिया।

---

1 As Caesar loved me I weep for for him as he was fortunate I rejoice at it as he was valiant I honour him but as he was ambitious I slew him

Brutus

2 With the possible exception of Alexander the great and Hannibal Caesar was the most military genius,the world has so far produced

सीजर वास्तव में एक सुप्रशासक था। उसने समय को पहिचाना। अभिजात वंश में जन्म लेकर भी वह जन साधारण का वक्ता बन गया। उसने अपने शासन-सुधारों से देश की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों में सुधार करना चाहा। उसमें तो एक यही कमी थी कि वह महत्वाकांक्षी महान् था। इसीलिए वह कुछ ऐसे कार्य कर बैठा जिनसे रोमवासियों को यह शंका होने लगी कि यह रोम के प्रजातन्त्र को विनिष्ट कर एक तानाशाह बन जावेगा।

जूलियस सीजर यथार्थवादी था। तर्क की वह सदा चिन्ता करता था। वह बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। इसी कारण वह साहित्यकारों द्वारा भी आदर की दृष्टि से देखा जाता था। उसके सैनिक अभियान कम उल्लेखनीय नहीं थे। इसीलिए द्वेष के कारण सीनेट के सदस्यों ने उसका वध अवश्य करवा दिया, परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। नि सन्देह सीजर की आकस्मिक मृत्यु ने रोम को अन्धकार में ढकेल दिया।[1]

जूलियस की मृत्यु के उपरान्त–जूलियस सीजर के वध ने उसके समर्थक तथा विरोधियों मे नवीन संघर्ष उत्पन्न कर दिया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि रोम दो परस्पर विरोधी सेनापतियों के संघर्ष का युद्ध-क्षेत्र बन जावेगा। गणतन्त्र के समर्थक जो रोम साम्राज्य का पुनरुत्थान करना चाहते थे, वे षड्यन्त्रकारी अपने उद्देश्यों में असफल रहे। रोम की जनता ने क्रैसस तथा ब्रूटस का साथ नहीं दिया। गणतन्त्र की रक्षा शायद ही कोई करना चाहता था, क्योंकि उसमें सत्ता कुछ ही दर्जन अभिजात परिवारों के हाथों में केन्द्रित थी। सीजर के सैनिकों ने षड्यन्त्रकारियों को सजा देनी चाही, किन्तु वे इसके पूर्व ही भाग गये। मकदूनिया जाकर उन्होंने अपनी सेना को संगठित करना आरंभ किया।

जूलियस सीजर का भूतपूर्व सहायक एण्टोनी (Antony) रोम का एक शक्तिशाली सेनापति था। वह जूलियस का प्रबल समर्थक भी था। वह सीजर के हत्यारों को दण्डित करना चाहता था। उसने आक्टेवियन (Octavian) तथा लेपीडस (Lepidus) के साथ मित्रता की। आक्टेवियन जुलियस का दत्तक पुत्र था। अपने चाचा के वध के समय वह 18 वर्ष का था तथा इलीरिया मे शिक्षा पा रहा था। अपने चाचा की मृत्यु के समाचार सुनते ही वह रोम लौट आया। लेपीडस एक सरकारी कर्मचारी था। एंटानी और ओक्टेवियन में कोई स्नेह नहीं था किन्तु गणतन्त्रवादियों से संघर्ष करने हेतु वे आपस में एक हो गये थे।

उत्तराधिकार का युद्ध–एण्टोनी विशालकाय, शक्तिशाली और अनुभवी योद्धा था। योद्धा होने के साथ वह कूटनीतिज्ञ भी था। अत सन्देह होने पर सर्वप्रथम उसने गणतन्त्र के प्रबल प्रवक्ता सिसरो (Cicero) की हत्या करदी। इसके उपरान्त तीनों (आक्टवियन, लेपीडस तथा एण्टानी) ने संयुक्त रूप से क्रेसस और ब्रूटस पर मकदूनिया जाकर धावा बोला। फिलिप्पी (Philippi) नगर के समीप उन्हें परास्त कर दिया। ब्रूटस युद्ध में

1 His murder was world tragedy and plunged the empire again into desolating war
Robinson

मारा गया और क्रैसस ने अपनी आत्म-रक्षा का कोई उपाय न देख कर अपनी तलवार से ही आत्म-हत्या करली।

प्रथम ओक्टेवियन तथा एण्टोनी ने रोमन साम्राज्य को आपस में बांट लिया। एण्टोनी ने अपने पूर्वी प्रान्त की राजधानी सिकन्दरिया (Alexandria) को बनाया और वहां क्लिओपेट्रा के साथ वह विलासिता का जीवन व्यतीत करने लगा। ओक्टेवियन रोम में रहता हुआ अपने पश्चिमी प्रान्त का शासन चलाने लगा। दोनों ही महत्वाकांक्षी थे। वे सम्पूर्ण रोम साम्राज्य पर राज्य करना चाहते थे। अतः दोनों में कटुता होना स्वाभाविक था। 31 ई० पू० में दोनों की टक्कर यूनान में एक्टियम अन्तरीप के समीप हुई। ओक्टेवियन विजयी रहा। एण्टोनी क्लिओपेट्रा के पास सिकन्दरिया भाग गया। ओक्टेवियन ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। 30 ई० पूर्व में उसने सिकन्दरिया पर आक्रमण कर दिया। एण्टोनी ने आत्महत्या करली और मिस्र को रोम साम्राज्य में मिला लिया गया।

रोम साम्राज्य की स्थापना
ओक्टेवियन (आगस्टस का शासन)

मिस्र में एण्टोनी को परास्त कर ओक्टेवियन 30 ई० पूर्व में रोम का शासक बना। इतिहास में वह आगस्टस के नाम से विख्यात है। वह 13 वर्ष के गृह-युद्ध (उत्तराधिकार के युद्ध) के उपरान्त रोम का शासक बना और 14 ई० तक राज्य करता रहा। उसने सीजर की उपाधि तो धारण की ही, इसके अलावा उसने अपनी उपाधियों में 'प्रिन्सेप' तथा 'इम्परेटर' और जोड़ लिए। सीनेट ने उसे 'आगस्टस' की उपाधि से अलकृत किया था जिसका अर्थ था 'सौभाग्यशाली'। भविष्य में वह आगस्टस सीजर (Augustus Caesar) के नाम से विख्यात हुआ। यहीं से रोमन साम्राज्य (Roman Empire) का इतिहास प्रारंभ होता है। उसका शासन काल विश्व के इतिहास में पेरीक्लीज के शासन की भांति अति उल्लेखनीय रहा है और रोम के इतिहास में उसे 'स्वर्ण-काल' (Golden Age) की संज्ञा दी गई है।

रोमन साम्राज्य का विकास–आगस्टस सीजर ने रोम को एक साम्राज्यवादी देश का स्वरूप प्रदान किया और इसका विस्तार दिनोंदिन होता ही चला गया। अन्त में इसके विस्तार पर आघात 476 ई० में असभ्य जातियों के आक्रमणों से लगा। इस प्रकार रोम साम्राज्य लगभग 500 वर्षों तक यूरोप के भूतल पर अस्तित्व में रहा। इसके अस्तित्व को बनाये रखने में ट्राजन, हैड्रियान, ऐन्टोनियस पायस, मार्कस आरेलियस, डायोक्लेशियन तथा कान्सटेन्टाइन सम्राटों का महान् योगदान था। हालांकि 180 ई० से ही मार्कस ओरेलियस (Marcus Aurelius) की मृत्यु हो जाने के कारण इसके गौरव में कमी आने लग गई थी और 364 ई० में यह पूर्वी तथा पश्चिमी दो साम्राज्यों में विभक्त हो गया था। पूर्वी रोम साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया रही तथा पश्चिमी रोम साम्राज्य की राजधानी रोम ही रहा।

आगस्टस की उपलब्धियां (Achievements of Augustus)

प्रशासन–आगस्टस हृदय से एकतन्त्रवादी था। अतः उसने अपने

मे सत्ता को अपने हाथों में ही केन्द्रित रखा। परन्तु वह यह भलीभाति जानता था कि रोम की जनता प्राचीन गणतन्त्र का विनाश सहन नहीं करेगी। अत वह प्रशासन मे सीनेट और जनता दोनों का सहयोग लेता रहा। परन्तु उसका प्रशासन प्रच्छन्न रूप से एकतन्त्रवादी ही बना रहा। इसके साथ ही वह क्रान्तिकारी भी नहीं था। अत उसने रोम की पुरातन रूढ़ियों को जीवित रखा। कुलीनवाद को उसने बनाये रखा। इस कारण शासन-काल में सीनेट कुलीन-वर्ग की ही संस्था बनी रही।

साम्राज्य-विस्तार में अधिक रुचि न रखने के कारण उसने साम्राज्य में शान्ति व व्यवस्था बनाये रखने की ओर विशेष ध्यान दिया। अत उसने सैनिकों में कमी करदी और जनता को प्रान्तीय शासकों के शोषण से बचाया। हालाकि स्वय जीवन में अधिक नैतिक नहीं था तथापि साम्राज्य मे व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने की दृष्टि से उसने नैतिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। प्रशासन में व्याप्त अनुशासन-हीनता के उन्मूलन का भी उसने प्रयास किया। व्यक्तिगत जीवन में वह सादगी से रहना पसन्द करता था,परन्तु बन्नवन की भाति वह सम्राट के पद के गौरव को बनाये रखना चाहता था। इसीलिए उसने स्वय को महान उपाधियों से अलकृत किया तथा राजसभा को हर प्रकार सुसज्जित रखने का प्रयास किया।

अपनी उपरोक्त नीति से उसने जनता व सीनेट दोनों को सन्तुष्ट तथा अपने प्रभाव में रखा। सुप्रशासक होने के साथ-साथ वह दूरदर्शी भी था। उसने सोचा कि यदि मैं बार-बार कोन्सल पद पर निर्वाचित होता रहूगा तो गणतन्त्रवादी मुझ अपना शत्रु समझेंगे। अत उसने कोन्सल को पद समाप्त कर दिया और उसके स्थान कर 'प्रो-कोन्सल' का पद सृजित कर लिया। वह प्रो-कोन्सल पद पर आसीन हो गया और सेना व विदेश नीति को उसने पूर्णरूपेण अपने नियन्त्रण में रखा। सीनेट में से अयोग्य सदस्यों को हटाने की दृष्टि से उसन उसकी सदस्य सख्या 900 से घटा कर 600 करदी।

उसकी उपरोक्त प्रशासनिक व्यवस्था से उसका न तो सीनेट से ही विरोध हुआ और न जनता से ही। एकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था में रुचि रखते हुए भी वह गणतन्त्रवादियों का कोप-भाजन नहीं बना। इसके अलावा वह भ्रष्टाचार का उन्मूलन कर साम्राज्य में शान्ति व व्यवस्था बनाये रखने में पूर्ण सफल रहा। इन्हीं कारणों से वह सुप्रशासक की हैसियत से जनता में लोक-प्रिय बन गया। इसीलिए आगस्टस को प्रगति के इस नवीन युग की आत्मा माना जाता है।[1]

आगस्टस के समय रोम का साहित्य– आगस्टस ने अपनी राजसभा का अलकरण साहित्य को भी बनाया। उसने अपने समय में अनेक उच्च साहित्यकारों का आदर किया। इसीलिए उसके शासन काल में रोम के साहित्य ने पर्याप्त प्रगति की। यह सच है कि उस समय भी मनुष्यों की साहित्य के विषय में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियां थीं, पर इसके काल में तो होरेस (Horace) तथा वर्जिल (Virgil) ने साहित्य के क्षेत्र

1 "The soul of the new era was Augustus

Robinson.

को सम्पन्न बना दिया। इन कवियों ने यूनान की शैली पर लेटिन भाषा में कविताए रचीं। इन कवियों ने अपनी सुन्दरता एव ओजपूर्ण रचनाओं द्वारा तत्कालीन मानव-समाज को प्रभावित कर उसका जीवन सरस बनाया। वर्जिल तो उसके काल का सबसे महान कवि था।[1] उसका जन्म मण्टुआ ग्राम में हुआ था। इसीलिए उसके काव्यों में ग्राम्य-जीवन की सरलता झलकती है। वह भी आगस्टस की भाति शान्तिवादी था तथा युद्ध से घृणा करता था तथापि वह यूनान के थियोक्रिट्स कवि से प्रभावित था। उसके तीन ग्रन्थ ससार में उल्लेखनीय माने जाते हैं -एक्लोग्ज, जिआर्जिक्स तथा एनीड (Aeneid) इनमें एनीड उसका सुन्दरतम ग्रन्थ माना जाता है। इसकी रचना उसने होमर के इलियड तथा ओडिसी महाकाव्यों के अनुकरण पर की है। परन्तु इसकी भाषा में कृत्रिमता है। होमर के काव्य की भाति इसमें सरलता व कल्पना दृष्टव्य नहीं है। होरेस ने तो एथेन्स में ही शिक्षा प्राप्त की थी। यह उस युग का मुक्तक काव्य का सम्राट था। उसके काव्य के सन्दर्भ में क्विटोलियन लिखता है कि **हमारे मुक्तक कवियों में एकमात्र होरेस ही पढ़ने योग्य है।** उसने विनोद-प्रिय, सुखवादी एव जातीयता के अनुरागपूर्ण गीत लिखे है। उसके काव्यों में ओडस (Odes) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसके अन्य काव्य Satires & Epodes अधिक विख्यात हैं। आगस्टस रोम को सिकन्दरिया की भाति शिक्षा का केन्द्र बनाना चाहता था। परन्तु उसकी आकस्मिक मृत्यु न उसे ऐसा न करने दिया। यूनान के बहुत से विद्वान् आकर रोम में बस गये और उन्होंने वहा साहित्य का सृजन किया। आगस्टस के काल में प्रणयगीतों (Love Elegy) का भी अच्छा प्रचलन था। ओविड (Ovid) अपने प्रणय गीता के लिए विख्यात था। उसकी रचनाओं में मेरामःफोंसिस अधिक उल्लेखनीय है। इसमें प्राचीन इतिहास, परम्पराओं और जनश्रुतियों का अपारकोष है। इतिहास व दर्शनशास्त्र में भी उस समय कई अच्छे ग्रन्थ लिखे गये। सिसली निवासी डिडोरस (Diodorus) और हेलीकारनस के दियोनीसिस (Dionysius) ने इतिहास के विषय की अच्छी पुस्तकें लिखीं। पोन्टस निवासी स्ट्रेबो (Strabo) ने अपने समय के ऐतिहासिक व भौगोलिक तत्वों का अच्छा विश्लेषण किया। लीवी (Livy) भी उस समय का अच्छा इतिहासकार था। उसने पर्याप्त अध्ययन के उपरान्त रोम का इतिहास लिखा था। यद्यपि यह ग्रन्थ तो ऐतिहासिक है, परन्तु इसके पढ़ने मे काव्य का आनन्द आता है। इसीलिए इसे (Aeneid in Prose) कहते है। टेसीटस इस काल का दूसरा इतिहासकार था। उसके दो ग्रन्थ विख्यात हैं- 1 जर्मेनिया तथा 2 एनल्स। ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों ग्रन्थ खरे नहीं उतरते परन्तु गद्य साहित्य की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण है।

कला

वास्तु-कला-जब आगस्टस रोम का सम्राट बना उस समय रोम ईंटों का बना हुआ था, पर आगस्टस ने उसे सगमरमर के भवनो से सुशोभित किया। उसने भवनो को

---

1 The greatest poet of this period one of the greatest who has ever lived was Vergil
Robinson

उद्यानो से सुसज्जित किया। जो देव-स्थान गृह-युद्ध की भेंट चढ़ गये थे, आगस्ट्स ने उन्हें पुन बनाया। कहने का तात्पर्य यह है कि आगस्ट्स के समय में राम भव्य-भवन, जलाशय और सुन्दर स्नान-गृहों से चमक उठा। जन-साधारण के मनोरजन के लिए उसके समय में बड़े-बड़े एम्फीथियेटरों का निर्माण हुआ। उसने पालेटाइन (Palatine) पहाड़ी पर एक सुन्दर मन्दिर बनवाया। देव ऐपोलो (Appolo) का देवालय बनाने वाला भी यह आगस्ट्स ही था। इतिहासकार लेवी ने उसके इन कार्यों की बड़ी प्रशसा की है और उसे रोम के समस्त देवालयों का सस्थापक तथा उद्धारकर्त्ता बताया है।[1] रोम के देवालयों में पैन्थियन मन्दिर सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसकी विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी गुम्बद का व्यास 104 फीट था। आगस्ट्स का प्रासाद भी तत्कालीन वास्तु-कला का अच्छा नमूना है। इसकी सुन्दरता को देखकर ओविड ने इसे ईश्वर के योग्य बताया है। उसन साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बडी सड़कें व पुल बनाने की ओर भी ध्यान दिया था। अपने पूर्वज जूलीयस सीजर की स्मृति में उसने एक नया सीनट भवन बनाया। इसके समय के जलाशय व उद्यान भी अति रमणीय थे। यही कारण था कि आगस्ट्स के समय का रोम सैलानिया का केन्द्र बन गया था। इससे स्पष्ट है कि उस समय स्थापत्य-कला अति उन्नत थी। परन्तु उस कला पर यूनानी कला का प्रभाव था।

मूर्तिकला भी उस समय पर्याप्त विकसित हा गई थी। जॉन बाउल का कहना है कि घुड़सवारों की मूर्तियों के धड़ जो राम के अजायबघर में विद्यमान हैं, व जानवरों की मूर्तिया उस समय की मूर्तिकला की अनुपम कृतियाँ हैं। उनके अवलोकन से भी रोम की उस समय की सभ्यता का आभास हो सकता है। आगस्ट्स की सैनिक वेश-भूषा में एक मूर्ति प्राप्त है। उसमें शरीर की सुडौलता दर्शनीय है। आगस्ट्स की शान्ति वेदी (Ara of Paris of Augustai) भी तत्कालीन स्थापत्य कला की अच्छी कृति है।

सभवत आगस्टस के काल म चित्र-कला का भी विकास हुआ होगा परन्तु उस काल के अधिकाश चित्र नष्ट हो गये है। पाम्पी के ध्वसावशेषों में जो चित्र मिले हैं उनसे ज्ञात होता है कि रोम के चित्रकार प्रकृति चित्रण में अधिक रुचि रखते थे।

आर्थिक सुधार–आगस्ट्स ने जब सत्ता सम्भाली तो रोम की कर प्रणाली अति दयनीय थी और रोम दिवालिया हो चुका था। रोम के सैनिकों की पेंशन वह निजी कोष से देता था। परन्तु उसने शनै शनै रोम की दयनीय आर्थिक अवस्था में सुधार करना चाहा। उसने कर प्रणाली में सुधार किया और कर वसूली में अपने अधिकारी नियुक्त किये। उन्हें आदेश था कि वे कृषकों को परेशान न करें। साधारण कृषकों को उपज का दस प्रतिशत देना पड़ता था। कर वसूल करने का कार्य अब सरकार का हो गया। श्रम उस समय सस्ता एव सुलभ था। अत आगस्ट्स ने उनको काम में लगाकर भूमि

---

1 Augustus was the founder and restorer of all the temples of Rome

Livy

को उपजाऊ बनाया। सिचाई के लिए नहरों और कुओं का निर्माण करवाया। बजर भूमि को कृषि योग्य बनाया। अनाजा में गेहू, जौ, बाजरा, मटर आदि पैदा किये जाते थे तथा फलों में सेब, अजीर व अगूर खूब उत्पन्न किये जाते थे। आगस्ट्स ने सत्ता सम्भालते ही रोम के शक्तिशाली पूजीपतियों को समाप्त करने का प्रयास किया। उसने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया तथा प्राइवेट कम्पनी व अन्य व्यापारियों द्वारा कर वसूल करने की प्रथा को समाप्त कर दिया। परन्तु पूजीपति सर्वथा समाप्त न हो सके। इसके लिए उसने खानों का राष्ट्रीयकरण किया। खानो के राष्ट्रीकरण से पूजीपतियों को बड़ा धक्का लगा। परन्तु रोम उस समय व्यापार का केन्द्र न था। इस कारण भी आगस्ट्स के ये सुधार अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हुए। इसके अलावा उसने रोम शहर में पानी की व्यवस्था के लिए नहर बनवाई। इस प्रकार के नाना प्रकार के आर्थिक सुधार कर आगस्ट्स ने जन साधारण का बड़ा हित किया तथा बेरोजगार को रोजगार दिया व दीन मनुष्यों के लिए सस्ते अनाज की व्यवस्था की।

व्यापार–गृह-युद्ध की समाप्ति पर रोम का व्यापार भी वृद्धि पाने लगा। आगस्ट्स के शासन में भूमध्यसागर रोम के लिए एक सुरक्षित व्यापारिक मार्ग बन गया था। दस्युओं को समाप्त किया जा चुका था। इस काल में रोम पूर्वीय देशो से तैयार माल मगाता था और पश्चिमी देशों से कच्चा माल। मिस्र से रोम पेपीरस (Papyrus) मगाता था। एशिया के देशों से वहाँ शराब, तेल व हीरे जवाहरात लाये जाते थे। उस समय रोम में बाहर से खाद्य-सामग्री सबसे अधिक आती थी। कहा जाता है कि उस समय केवल सिकन्दरिया से रोम को बीस लाख बुशल खाद्य-सामग्री प्रति वर्ष आती थी। इस प्रकार से आगस्ट्स के समय में रोम का व्यापार खूब बढ़ा और मनुष्य गरीबी के क्लेश से परेशान नहीं रहे। इस व्यापार को उन्नत करने के लिए आगस्ट्स ने अनेक नवीन बन्दरगाह बनवाये तथा पुराने बन्दरगाहों का जीर्णोद्धार करवाया। व्यापार को सुरक्षित बनाने के लिए उसने पुलिस चौकियों का भी निर्माण करवाया। आगस्ट्स भारत से भी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। उसने भारत के समुद्री मार्ग की खोज के लिए जहाजी बेड़ा भेजा था। इस प्रकार व्यापार के तथा कृषि के विकास से रोम की अभूतपूर्व भौतिक उन्नति हुई। इस आर्थिक विकास के कारण भी आगस्ट्स का शासन-काल स्वर्ण-काल कहलाता है।

सामाजिक जीवन– उसके समय समाज कई वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग सीनेट के सदस्य व उनके परिवार जनों का था। प्रांतपति इसी वर्ग से नियुक्त होते थे। दूसरा वर्ग सामन्तों का था। इसमें वे लोग थे जिनकी पूजी 4,00 000 सिसटरसेस (Sesterces) थी। उनको सेना में उच्च स्थान प्राप्त होता था। तीसरा वर्ग प्लेबीयन्स का था। इस वर्ग की इसके समय में सबसे बुरी दशा थी। उन्हें किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। कानून उनके साथ कठोरता से लागू किये जाते थे। उनका जीवन सबसे ज्यादा था। सम्राटों के प्रासादों के इर्द-गिर्द अभिजातीयवर्गीय लोगों की उद्यानों से हवेलिया होती थीं। उनकी दीवारों पर भित्तिचित्र होते थे तथा उनकी मोजाइक-पच्चीकारी की सजावट होती थी। सम्पन्न रोमवासी अपने घरों

रखते थे। उन दासा में संगीतज्ञ, चिकित्सक व चित्रकार भी होते थे। परन्तु दयनीय आर्थिक अवस्था के कारण उन्हे दास का कार्य करना पड़ता था। दीन लोग भीक्षा माग कर भी अपना जीवन निर्वाह करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि आगस्ट्स के शासन-काल मे भी समाज म भारी विषमता विद्यमान थी। सम्पत्ति का उचित बँटवारा नहीं होता था। धनी लोगों की प्रवृत्ति भौतिकवादी एव क्रूर हो गई थी। जीवन में नैतिकता का हनन हो रहा था। रोमनिवासियों के जीवन का आदर्श 'मृत्युपर्यन्त जीवन का भोग करो' बन गया था।

आगस्ट्स कवल रोम को ही उन्नत नहीं देखना चाहता था। उसकी दृष्टि मे समस्त इटली समान था। वह शहरी और ग्रामीणों में कोई अन्तर नहीं समझता था। यद्यपि गावों में शहरों की भाति मनोविनोद के तो साधन नहीं थे, पर फिर भी गाव वालो के जीवन के विकास की ओर भी आगस्ट्स पर्याप्त ध्यान देता था। वह रोम के उच्च पदों पर इटली के समस्त भागा से योग्य मनुष्यों को नियुक्त करता था। नगरपालिकाओं की स्थापना हो रही थी। वैरोना और लियोन्स उस समय के प्रसिद्ध कस्बे थे। गावो में रोमन्स की पुरानन सभ्यता अब भी वैसी ही थी, पर ग्रामीण जीवन के अन्य क्षेत्रों मे नगर में रहन वालो की भाति उन्नति कर रहे थे। शिक्षा प्रचार को भी उसके समय म सर्वव्यापी किये जाने का प्रयास किया जा रहा था।

रोम का दर्शन- रोम म स्टाइकदर्शन (Stoicism) की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। परन्तु आगस्ट्स के शासन-काल में म्यास्टिसिज्म की भी स्थापना हो गई। यह दर्शन पूर्वी दर्शों से आया था। हालांकि आगस्ट्स के शासन में तो यह दर्शन अधिक फलीभूत नहीं हुआ परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त यह खूब फैला। इस दर्शन का आधार सत्य की खोज करना था। इसका विश्वास था कि सत्य की खोज कवल तर्क क आधार पर ही नहीं होती वरन् इसक लिए विशष क्रियायें व अनुष्ठान भी करने होते हैं।

राज्य की सुरक्षा-आगस्ट्स का सबसे अधिक सराहनीय कार्य साम्राज्य की सुरक्षा थी। उसने अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा शक्ति के सहारे रोम को चारों ओर स प्राकृतिक सीमाओ द्वारा सुरक्षित कर दिया था। पूव दिशा में यहूदियों के सघर्ष स राम को कुछ सकट रहता था, पर इस सम्राट ने उनको भी अपनी कूटनीति से अपना मित्र बना लिया। पश्चिम म कुछ समय तक जर्मनी इटली को सकटदायक सिद्ध हुआ पर आगस्ट्स ने जर्मन्स को अपनी सेना में भर्ती कर उन्हें भी अपना मित्र बना लिया और रोम साम्राज्य की सीमा राइन नदी बना दी गई। इसी प्रकार दक्षिण में सहारा का विस्तृत रेगिस्तान था। इसके अतिरिक्त जिन राज्यों में क्रातिकारी व उपद्रवी तत्व थे, उन सबको आगस्ट्स न कुचल दिया। इस प्रकार उसके साम्राज्य में पूर्ण शान्ति थी। शान्ति के समय म ही राज्य का व्यापार वृद्धि पाता है और व्यापार की वृद्धि से ही राज्य की सम्पन्नता बढती है। जब राज्य में सम्पन्नता होती है तो जनता दरिद्रनारायण के प्रकोप से परे रह कर सुख व शान्ति का अनुभव करती है। यह सब बातें आगस्ट्स के शासनकाल में रोम में विद्यमान थीं। इसके अलावा राज्य की सुरक्षा के लिए स्थायी सेना की व्यवस्था उसने ही की थी। के सीमावर्ती भागों पर उसने सैनिक चौकिया कायम कर दीं तथा सेना का अध्यक्ष

युद्धों में रोम की शक्ति नष्ट होती रही और पड़ौसी देशों की आक्रमण करने की हिम्मत बढ़ती रही।

14 जीवन में अनैतिकता का प्रवेश–रोम साम्राज्य का ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया रोम सम्राट विलासी एव भौतिकवादी होते गये। उनके जीवन में दिनोंदिन गिरावट आने लगी। यही हालत सेनापति व अभिजात वर्ग की हो गई। वे प्रशासन की ओर ध्यान न दे कर एम्फीथियेटरों मे बैठे अपना मनोरजन करते रहते थे। उनके क्रूर मनोरजन के साधनो ने जनसाधारण को उनका विरोधी बना दिया। इसीलिए एच जी वेल्स लिखते है कि रोमन समाज में अनैतिकता के प्रचार ने रोम साम्राज्य के पतन को द्रुतकर कर दिया। दौलत ने रोम के सभ्रान्त लोगों के दिमाग आसमान में कर दिए। रोमन्स के जीवन में कर्मण्यता तथा अनुशासन की भावना क्षीण हो गई। इसीलिए विल ड्यूरेंट ने लिखा है कि नैतिक पतन ने भी रोम साम्राज्य के पतन में सहयोग प्रदान किया।[1]

15 बौद्धिक ह्रास–रोम की सम्पन्नता ने वहा के निवासियों की बौद्धिक शक्ति का भी ह्रास कर दिया। प्रथम तो रोमवासियों की कोई वस्तु मौलिक नहीं थी। धर्म व कला भी यूनान से प्रभावित थी। परन्तु लक्ष्मी की चकाचौंध ने उनके धार्मिक विचारो म शिथिलता और उत्पन्न करदी। मूर्ति-कला व साहित्य सृजन भी इस प्रकार का होने लगा जो उनकी विलासिता का ही परिचायक होता था। उनकी कला-कृतिया आदर्शहीन होने लगीं। इन कारणो से भी विशाल रोम साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

रोम साम्राज्य में ईसाई धर्म
(Christianity in the Roman Empire)

आगस्टस के स्वर्ण-काल की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना 4 ई० पूर्व में इसामसी का जन्म भी था। अत रोम मे ईसाई धर्म का प्रचार भी स्वर्ण-काल के उपरान्त ही आरभ हो गया। परन्तु इस धर्म का रोम में प्रवाह आसानी व शीघ्रता से नहीं हुआ। यातायात के साधनो का विकास आगस्टस के शासन-काल में ही हो गया था। इस कारण रोमनिवासी पड़ौसी देशों में आने-जाने लग गये थे और दूसरे देशों के लोग रोम साम्राज्य के नगरों में आकर बसने लग गये थे। उन्होंने आकर दीन किसानों व दासों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करना आरभ कर दिया। रोम के दासों को ईसाई धर्म के प्रचारको स नवीन आश्वासन मिले। समाज में उन्हें आदर व समानता का स्थान मिला। निरन्तर युद्धों के होने से बुद्धिजीवी कम रह गये थे। अत अशिक्षित एव अन्धविश्वासी लोग ही रोम में अधिक रह गये थे। उनमे तर्क-शक्ति का अभाव था। ऐसी परिस्थिति में रोम साम्राज्य में यह नवीन विश्वास प्रसारित होने लगा कि एक दयालु और सर्वशक्तिमान ईश्वर है जो उन्हें उनके कष्टों व उत्पीड़न से छुटकारा दिलायेगा। बड़ी उत्कठा से वे इस 'दयालु ईश्वर' की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने बहुदेववाद तथा अपने सम्राटों की

---

1 Moral decay contributed to the dissolution.

उपासना का परित्याग कर उस दयालु ईश्वर की आराधना की ओर ध्यान देना आरंभ किया। सम्पन्न लोगों ने ईसाई धर्म को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि यह धर्म कष्ट सहिष्णुता और विनय की शिक्षा देता था। अत इस धर्म को जब उनके दास अंगीकार करने लगे तो उन्होंने भी स्वीकार करना आरंभ कर दिया। उनके दास विनयपूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करने लगे और स्वामी व दासों के बीच का संघर्ष समाप्त होने लगा। इसके अलावा धर्म प्रचारक जगह-जगह जाकर शताब्दी के अन्त तक रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म के प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने लगे।

ईसाई धर्मावलम्बियों पर अत्याचार-रोमन सम्राटों को अपने यहा ईसाई धर्म का प्रचार रुचिकर नहीं लगा। यह धर्म अहिंसावादी था जब कि रोम-सम्राट क्रूर व हिंसावादी थे। अत रोमन साम्राज्य में हिंसावादी और अहिंसावादियों के बीच संघर्ष आरंभ हो गया। रोमन सम्राटों के नाराज होने का दूसरा कारण ईसाई धर्मावलबियों द्वारा उनकी उपासना मे आस्था व्यक्त नहीं करना था। इस प्रकार ईसाई रोमन सम्राटों द्वारा क्रान्तिकारी समझे जाने लगे।[1] इसके अलावा ईसाई धर्मावलबियों ने सेना में भर्ती होने से इन्कार कर दिया। यहूदियो को रोमन्स पहले ही घृणा करते थे और रोम के ईसाइयों को भी वे यहूदियों के समकक्ष ही समझने लगे।इस कारण भी रोमन्स व ईसाइयों में नहीं पटी। रोम के सम्राटों ने ईसाइयों को तग व दंडित करना आरभ किया। सम्राट ट्राजन (Trajan) ने सम्राट की उपासना न करना एक महान् अपराध घोषित कर दिया और इसके अपराधियो को मृत्यु दण्ड दिया जानलगा। सम्राट मारकस ओरेलियस (Marcus Aurelieus) ने ईसाइयों को दण्डित करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। 248 ई० में जब रोम का स्थापन दिवस मनाया गया तो उसमें ईसाइयों ने भाग लेने से इन्कार कर दिया। इस पर रोमन सम्राट ने आदेश दिया कि प्रत्येक रोमन को मेजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होकर रोमन देवताओं को बलि चढानी है। जब ईसाइयों ने इस आदेश का पालन करने से इन्कार कर दिया तो हजारों ईसाइयों को मौत के घाट उतार दिया गया। तीसरी सदी के प्रारभ तक रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्मावलबियों पर निर्मम अत्याचार होते रहे।

ईसाई धर्म का रोम में राजकीय धर्म बनना -रोम सम्राटों के अत्याचारों से ईसाई भयभीत नहीं हुए। उनकी सहिष्णुता ने उन्हें और भी लोकप्रिय बना दिया। उधर कॉस्टेन्टाइन (Constantine) समझ गया कि केवल कोड़ों की मार व मृत्यु-दण्ड से लोगों को नियन्त्रण में नहीं रखा जा सकता है। उसने भी सभ्रान्त लोगों की भांति समझ लिया कि शोषितों पर नियन्त्रण बनाये रखने में ईसाई धर्म अन्य धर्मों से अधिक सहायक है। इसाई धर्म गरीब कृषकों व दासों पर अपना प्रभाव जमा चुका था। अत उसने 313 ई० में ईसाइयों को खुले मिलने और अपने प्रार्थना-गृह गिरजे बनाने की अनुमति दे दी। गिरजाघरों के निर्माण हेतु उसने स्वय भूमि व धन ईसाइयों को प्रदान किया। उसकी इस उदारता के कारण ही ईसाई चर्च ने उसे 'संत घोषित' किया जबकि वह एक क्रूर एव

---

1 'They refused to bow before the emperor as a God and thus became revolutionaries

J E. Swain

निरंकुश शासक था। इसके उपरान्त ईसाई धर्म रोम साम्राज्य में फलीभूत होता रहा और थियोडोसियस (Theodosius, 379 395) के शासन काल में यह रोम का एक मात्र राजकीय धर्म बन गया।[1]

रोम सभ्यता का विवरण

सामाजिक अवस्था–रोम का मानव-समाज तीन वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग धनिक पुरुषों का तथा दूसरा वर्ग साधारण लोगों का व तीसरा वर्ग गुलामों का था। इससे स्पष्ट है कि उस समय रोम में गुलाम प्रथा थी। समाज में आदर धनी पुरुष का ही था। धनी पुरुष ही राज्य के समस्त ऊंचे पदों को सुशोभित करते थे। साधारण पुरुषों को भी समस्त अधिकार प्राप्त थे। गुलाम जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, उन दोनों वर्गों की सेवा किया करते थे। दास वर्ग की दयनीय अवस्था का वर्णन करता हुआ एच जी वेल्स लिखता है-''यदि कोई दास अपने स्वामी का वध कर डालता तो केवल घातक ही नहीं वरन् उसके घर के सब दास शूली पर चढ़ा दिये जाते थे। स्वामी अपने दासों पर बलात्कार कर सकते थे। उनका अङ्ग भंग कर सकते थे।'' धनी पुरुषों का जीवन विलासी होता था। इस कारण समाज में भ्रष्टाचार भी प्रचलित था। मनोरंजन के साधन तत्कालीन रोमवासियों की हिंसात्मक मनोवृत्ति के द्योतक थे। प्रत्येक नगर में एम्फीथियेटर निर्मित थे। जहाँ हिंसक पशु और मानव का मल्ल-युद्ध हुआ करता था। इसके अतिरिक्त शासन व सामन्त वर्ग त्यौहार और सर्कस में मनोरंजन करते थे। रथ-दौड़ व पैदल-दौड़ भी उस समय मनोरंजन के अच्छे साधन थे। किसानों को कर बहुत अधिक देना पड़ता था। साधारणतया गुलामों के साथ समाज का व्यवहार अच्छा न था। परन्तु यत्र-तत्र दासों को शिक्षित भी किया जाता था। शिक्षित दासों के साथ कुछ अच्छा व्यवहार होता था। कारीगरों का समाज में आदर था। कारीगर-वर्ग को मुफ्त दवाएं दी जाती थीं और गरीबों को तो मुफ्त भोजन भी दिया जाता था।

निर्बल बच्चों का होना समाज में कलंक समझा जाता था। अत दुर्बल बच्चों को स्पार्टा की भांति बाल्यावस्था में ही मौत के घाट उतार दिया जाता था। उस समय रोम में पुरुष समाज में बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी। बहुधा धनिक पुरुष छ या सात शादियाँ करते थ। तलाक प्रथा उस समय वर्जित थी। कौटुम्बिक वातावरण के फलस्वरूप रोमनों में कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता का आदर, अनुशासन का सम्मान, व्यवहारकुशलता आदि के गुण रोम वालों में प्रस्फुटित हो गये थे। रोम वाले भौतिकवादी भी अधिक हो गये थे। उन्हें पैसा प्यारा था। परन्तु वे दान-दक्षिणा से बचते थे। उनकी पोशाक यूनान के लोगों के समान होती थी। स्त्री व पुरुष दोनों चादर ओढ़ते थे।

व्यवसाय–आरम्भ में रोम निवासी खेती करते थे। भूमि पर धनी पुरुषों का ही अधिकार होता था। किंतु ज्यों-ज्यों साम्राज्य विस्तीर्ण होता गया, कृषि का विकास कुण्ठित

1 Under Theodosius I (379 395) Christianity became the only religion recognised by the state

हो गया। साम्राज्य के महान् होने से राज्य का व्यापार बढ़ा। अत रोमवासी चतुर व्यापारी बन गये। साम्राज्य में सैनिक कार्यवाहियों के लिए सड़कों का निर्माण हो गया था। वे सड़कें व्यापारी-वर्ग के लिए भी खुली थीं। उन सड़कों ने भी रोम के व्यापार को पर्याप्त विकसित किया। रोम के कारीगर वस्त्र, बर्तन, काच का सामान व सोनेचादी के आभूषण बनाते थे। इसके अतिरिक्त कारीगर लोग अपना स्वतन्त्र व्यसाय करते थे। धनी पुरुष गावों में पशुशालायें भी स्थापित करते थे। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय रोम में पशु-पालन को भी प्रोत्साहन मिला हुआ था।

धर्म और दर्शन-रोम निवासी मूर्ति पूजक थे। वे भी देवी-देवताओं में विश्वास रखते थे। यूनानियों की भांति उनके देवताओं का स्वरूप भी मानव स्वरूप से मिलता हुआ होता था। देवताओं की उपासना के लिए बड़े-बड़े सुन्दर देवालय बने हुए थे। रोमनिवासी भी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि चढ़ाया करते थे। यहा तक कि कठिनाई के समय वे मानव बलि भी दिया करते थे। रोमवासी रोम की सम्पन्नता का श्रेय उनके देवताओं को ही देते थे। अत उनकी श्रद्धा से उपासना करना वे अपना परम धर्म समझते थे। देवालयों के निर्माण में वे महान् उदारता का परिचय देते थे। ज्युपीटर तथा मार्स रोमवासियों के आराध्य देव थे। उनमें अधविश्वास भी विद्यमान था। राजा की पूजा करना भी लोग अपना धर्म समझते थे। राज्य और धर्म का क्षेत्र मिश्रित था। राज्य-कार्यों के सचालन में धार्मिक प्रश्न बाधा डाला करते थ। धार्मिक कार्यों का प्रबन्ध पुरोहितों की ही एल' समिति के अधिकार में होता था। उस समिति का कर्य यह भी था कि धार्मिक जुलूस के समय मार्ग में आने वाले पुलों की मरम्मत भी करायें। धार्मिक कार्यों को वे इतना महत्त्व देते थे कि कभी-कभी तो धार्मिक उत्सव के निमित्त सीनेट की बैठक भी स्थगित हो जाती थी, परन्तु फिर भी रोमवासियों में धार्मिक सहिष्णुता थी।

दर्शन-शास्त्र में रामवासियों ने अपनी मौलिकता का परिचय नहीं दिया। रोम का प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री ल्यूक्रीटस (Lucretius) था। वह यूनान के दर्शनशास्त्री इपीकर्स (Epicurs) का शिष्य था। चिन्ता को दूर करने की नियत से ल्यूक्रीटस ने बताया कि मनुष्य को मौत से नहीं डरना चाहिए। मृत्यु को उसने एक स्वप्न रहित व असीमित निद्रा बताया है। उसके अलावा सिनेका तथा एपिक्टेस भी रोम के अच्छे दार्शनिक थे। इन पर यूनानी दार्शनिक जेनों का प्रभाव था। जेनों ने वैराग्यवाद को जन्म दिया। उनके विचार से समस्त ब्रह्माण्ड एक ही तत्त्व से बना है और वह तत्त्व तर्क है।

साहित्य और शिक्षा-जिस प्रकार रोम के कलाकारों ने अपनी कला का सृजन यूनानी कलाकारों के आदर्शों पर किया उसी प्रकार रोम के साहित्यकारों ने यूनानी साहित्य को अपना आदर्श बनाया। पर इतना होते हुए भी रोम साहित्य में कुछ विशेषताएँ हैं जिनके कारण कि रोम के साहित्य को इतनी सफलता मिली।

रोम के साहित्यकार जनता के प्रिय'कथानक पर अपनी रचनाएं करते थ। इसका परिणाम यह होता था कि वे सुगमता से काफी संख्या में श्रोतागण एकत्रित कर लिया करते थे। रोम का प्रारंभिक अच्छा नाटककार प्लौटस (Plautus) था। उसने यूनानियों

भी अब एक ही होने लगा। इसके परिणामस्वरूप सेना मे अनुशासन व देशभक्ति सुगमता व शीघ्रता से उत्पन्न की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त समुद्री किनारे की रक्षा के लिए उसने एक जहाजी बेड़े की भी व्यवस्था की।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आगस्ट्स के शासन काल में रोम की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। जनता हर तरह से सुखी थी। साम्राज्य विशाल एव सुरक्षित था। परन्तु फिर भी आगस्ट्स के शासन-काल में अनेक कमिया थीं। उनमें निम्नलिखित प्रमुख थीं -

1 सामाजिक जीवन दिनोदिन भौतिकवादी होता जा रहा था तथा जीवन में नैतिकता का कुछ मूल्य नहीं रहा था।

2 आगस्ट्स स्वय रूढ़िवादी एव परम्परावादी था। इस कारण दर्शन-शास्त्र में रोम अधिक प्रगति नहीं कर सका।

3 रोमवासियों के धार्मिक विचारों में मौलिकता नहीं थी।

4 कला भी मौलिक न होकर केवल अनुकरण करने वाली रह गई थी।

5 स्वर्णकालीन साहित्य जन-साधारण का साहित्य नहीं बन सका क्योंकि वह कठिन भाषा में रचित था।

इतिहास में स्थान-आगस्ट्स एक धनी वश का होते हुए भी सादगी पसन्द व्यक्ति था। उसका मकान रोम में सबसे महान् व सर्वोत्तम था। वह स्वय रोम का सबसे बड़ा धनी व्यक्ति था, परन्तु यह सब होते हुए भी उसे ढोंग पसन्द नहीं था। वह अपने पुत्रो से सारे घरेलू कार्य करवाता था तथा स्वय पार्टियों में सादा भोजन करता था। वह सदैव जनता का अधिकाधिक हित करना चाहता था। धनी वर्ग का होते हुए भी उसने पूजीपतियों को समाप्त करने का प्रयास किया। ये उसके आर्थिक सुधार ही थे जिनसे उसकी जनता का जीवन सुखी एव सुविधाजनक बना। उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसकी सफलता के कारण इस प्रकार बताये जाते हैं -1 उसने सेना को उपहार देकर अपना बना लिया, 2 जनता को सस्ते अनाज से जीत लिया, 3 विश्व को शान्ति के प्रलोभन से जीता और फिर धीरे-धीरे सुप्रशासन द्वारा उसने अपने रोमवासियों को सयुक्त कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने कुछ प्राचीन रीति-रिवाज समाप्त कर कानून की स्थापना की।[1] इसीलिए कहा जाता है कि आगस्ट्स ने एक ऐसे शान्ति युग का आरम्भ किया जो दो शताब्दियों तक जारी रहा। उसका काल रोमन इतिहास में साहित्य व कला का भी स्वर्ण युग है।

जूलियस सीजर के वश के अन्य राजा-आगस्ट्स के पश्चात् इस वश के चार सम्राटों ने 68 ई० तक शासन किया। उनमें अन्तिम सम्राट नीरो (Nero) था। वह कविता, चित्रकला तथा सगीत म विशेष रुचि रखता था। आरम्भ में उसका शासन भी लोकप्रिय था, पर कालान्तर में वह जनता द्वारा घृणा किया जाने लगा। ऐसा अनुमान

---

1 Alike in literature in art and philosophy and in religion Augustus built the bridge over which many of the best thoughts and the finest models of antiquity * way in to the medieval and thence into the modern world.

H. H.

किया जाता है कि रोम में होलिका-दहन उसकी अनुमति से किया गया। परन्तु उसन इसका दोषारोपण ईसाइयों पर किया था। वह प्रकृति से बड़ा क्रूर था। उसने अपने शासन काल में बहुतासों को मौत के घाट उतार दिया। यहा तक कि उसने अपनी पत्नी तथा माता को भी नहीं बख्शा। यह उसकी हिंसात्मक वृत्ति का द्योतक था। यह भी उसकी बदनामी का कारण था।

प्लेवियन वश (69 96 ई०)-नीरो की मृत्यु के पश्चात् सेना के अधिकारियों ने चार सम्राटों को राज-सिहासन कर आरूढ़ किया। इसके बाद इस वश का अन्तिम सम्राट टाइटास (Titus) गद्दी पर बैठा। वह यहूदियों का कट्टर विरोधी था। अत उसने जेरूसलम नगर को नष्ट कर दिया। पर इसके शासन-काल में ही विसूवियस (Vesuvius) ज्वालामुखी पर्वत का विस्फोट हुआ था और इटली का प्रसिद्ध पाम्पायी नगर उस विस्फोट से नष्ट हो गया।

पाच सद्व्यवहारी सम्राट-(96 180 ई)-इस प्लेवियन वश के नष्ट हो जाने पर पाँच सद्व्यवहारी सम्राटो ने रोम के शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। उन्होंने जनहित के बहुत कार्य किये। जनता की आर्थिक दशा सुधारने के लिए करों की दर कम कर दी गई। रोम के निर्वासित मनुष्यों को पुन इटली में आने की आज्ञा दे दी गई। इन सम्राटो में से एक का नाम ट्रेजन था। उसने पारथियन जाति का परास्त कर पश्चिमी फारस पर अधिकार कर लिया था। जब इसकी सेना फारस विजय से वापिस रोम आई तो अपने साथ प्लेग के कीटाणु भी ले लाई। इस प्लेग के प्रकोप से सुन्दर रोम वीरान हो गया। उचित अवसर देख कर अन्तिम सम्राट के समय जर्मनों ने इटली पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार रोम में राज्य सत्ता शिथिल पड़ गई।

रोम का पतन-रोम साम्राज्य लगभग 500 वर्ष तक कायम रहा। 180 ई० के उपरान्त इसका पतन आरम्भ हो गया। यह पतन ओरेलियन (Auralian) सम्राट की मृत्यु के बाद हुआ। चौथी शताब्दी में कान्सटेन्टाइन (Constantine) सम्राट ने रोम साम्राज्य की राजधानी रोम के स्थान पर कुस्तुनतुनिया को बनाया। सन् 364 ई० में कासटेन्टाइन के उत्तराधिकारी ने समस्त रोम साम्राज्य को पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में विभक्त कर दिया। इस विभाजन ने इटली को और भी शक्तिहीन बना दिया। रोम का वैभव दिन पर दिन लुप्त होने लगा। विदेशियों के आक्रमण शुरू हो गये। पाचवीं शताब्दी में एशिया की हूण जाति ने इटली के साम्राज्य को समाप्त करने का प्रयास किया। 455 ई० में रोम साम्राज्य का पश्चिमी भाग समाप्त हो गया।

रोम साम्राज्य के पतन के कारण-इतिहास बताता है कि अब तक विश्व में अनेक महान् साम्राज्य स्थापित हुए है और वे समाप्त हुए हैं। विश्व का क्रम इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि विश्व में कोई वस्तु चिरस्थायी नहीं रहती। रोम साम्राज्य का विनाश भी इस किंवदन्ती की सत्यता का परिचायक है। प्रत्येक साम्राज्य के पतन के कुछ न कुछ तो कारण होते ही हैं। इतिहासकारा ने रोम साम्राज्य के पतन के कारण निम्नलिखित बताये हैं -

1 रोम की प्रजातन्त्र प्रणाली में एक महान् साम्राज्य के शासन भार को सम्भालने की

क्षमता नहीं थी। वह शासन व्यवस्था साधारण छोटे नगरों के लिए बनाई गई थी। अत यह स्वाभाविक था कि रोम जैसे महान् साम्राज्य का उस शासन-विधि से पतन हो।

2 रोम में सामाजिक असमानता थी। वहा के धनी और दीन मनुष्यों के जीवन में महान् विषमता थी। अत वे परस्पर झगड़ते थे। इस परस्पर के वैमनस्य ने गृह-कलह को जन्म दिया। इससे भी रोम का पतन हुआ।

3 रोम की दयनीय कृषि अवस्था भी रोम के पतन का कारण बनी। कार्थेज के युद्धो के उपरान्त रोम की खाद्य अवस्था शोचनीय हो गई। इसके बाद विदेशों से सस्ते दामों पर अनाज आने लग गया। इससे रोम के कृषक दरिद्र एव बेरोजगार हो गये। इसके अलावा दासों की बाहुल्यता के कारण स्वतन्त्र किसान उनसे पुराने हल व हसिए से ही खेती कराते रहे। इस कारण नवीन तकनीक नहीं अपनाई जा सकी और कृषि की अवस्था दयनीय होती चली गई।

4 रोम की बढ़ती हुई बेरोजगारी ने रोम की सरकार के सामने एक यह समस्या पैदा करदी कि उन बेरोजगार मनुष्यों का व्यय स्वय सरकार वहन करे। आगस्टस ने अपने शासन-काल में गरीबों को मुफ्त भोजन बटवाने की व्यवस्था की थी। अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। इस कारण सरकार की आर्थिक अवस्था और भी शोचनीय हो गई।

5 **सीमा पर बर्बरों के आक्रमण**- एल्बा नदी के पूर्व में स्लाव-कबीले रहते थे और एल्बा व राइन नदियों के मध्यवर्ती मैदान में जर्मन कबीले रहते थे। तीसरी सदी के आरभ से ही रोमन साम्राज्य के उर्वर मैदानों पर प्रथम बर्बर जातियो के आक्रमण आरभ हुए और उनके बाद जर्मन कबीलों के। इन कबीलों के आगे सशस्त्र सैनिक चलते और उनके पीछे उनके परिवारों के सदस्य। जब तक रोम साम्राज्य शक्तिशाली रहा-उन्हें रोकता रहा। दुर्बल हो जाने पर इन कबीलों ने इटली के उत्तरी मैदानों पर अधिकार कर लिया।

6 प्राचीन रोम के प्रान्तों में कर वसूल करने की व्यवस्था दोषपूर्ण थी। कर वसूल करने का अधिकार केवल धनी पुरुषों को ही प्राप्त होता था और वह अधिकार इनको ठेके की प्रणाली पर दिया जाता था। इस कारण कृषकों का धनी पुरुषो द्वारा आर्थिक शोषण होता था। रेस्टोजेव ने लिखा है कि "राज्य और करदाताओं का सम्बन्ध बहुत डाकेजनी पर आधारित था।" यही कारण था कि रोम की साधारण जनता सदा धनी पुरुषो का विरोध किया करती थी और एक समय तो उन दीन मनुष्यों को वहा के धनी पुरुषों के विरुद्ध सघर्ष भी करना पड़ा था।

7 ट्रेवर ने रोम साम्राज्य के पतन का कारण अत्यधिक साम्राज्य विस्तार बताया है। कालान्तर में रोम साम्राज्य वहा के सम्राटों द्वारा ही दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। इससे रोम की एकता नष्ट हुई और इस फूट के परिणामस्वरूप ही पाचवीं शताब्दी में पश्चिमी रोमन साम्राज्य पर जर्मन लोगों ने आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया।

8 विल ड्यूरेन्ट के मतानुसार रोमन साम्राज्य के पतन का एक कारण परिवार-नियन्त्रण भी था। इस दूषित प्रणाली से रोम की जनसख्या कम होती गई और अन्त में ऐसा आया कि जब रोम साम्राज्य को विदेशी सैनिकों पर निर्भर होना पड़ा।

9 रोमन सम्राटों का दुर्बल होना– तीसरी सदी मे रोमन सम्राट दुर्बल हो गये। उनके सेनापति व उच्चाधिकारी उनसे अधिक बलशाली हो गये। वे चाहते जिसे सम्राट बनाते थे और चाहे जिसे गद्दी से उतार दिया करते। इससे जन साधारण में सम्राटों का महत्व कम हो गया। जनता का सहयोग न मिलने के कारण सम्राट अपने बागी सेनापतियों को दण्डित करने में असफल रहे।

10 ईसाई धर्म का प्रचार भी रोम साम्राज्य के पतन का कारण बना। रोम में दासों की सख्या अत्यधिक थी। उनकी आर्थिक अवस्था दयनीय थी। सामाजिक जीवन भी उनका निम्नस्तर का था। इससे वे आसानी से ईसाई धर्म के अनुयायी बन गये। आरभ में रोम के सम्राटों ने उन पर बहुत जुल्म किये। नीरो ने ही रोम के जलने का अभियोग उन पर लगा कर सहस्रों ईसाइयो को मौत के घाट उतार दिया। इन कारणों से धर्म परिवर्तित (Converts) रोमन लोग अपने सम्राट विरोधी हो गये। धर्म प्रचारक पॉल (Paul) ने रोम साम्राज्य मे ईसाई धर्म की जड़ें मजबूत कर रोम साम्राज्य को निर्बल बना दिया।

11 रोम के अयोग्य सम्राट– आगस्टस की मृत्यु के उपरान्त रोम में कई सम्राट हुए। वे दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते है – (अ) शक्तिशाली एव याग्य, (ब) निर्बल तथा अयोग्य। कमाडियस और मैक्सिमस की गिनती अयोग्य सम्राटों में होती है। उन्होंने अपने निरकुश शासन व विलासी जीवन से राम साम्राज्य को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया। उनके उपरान्त कान्सटेन्टाइन शक्तिशाली सम्राट अवश्य हुआ। उसने पतनोन्मुख रोम साम्राज्य को सभालने का प्रयास किया। परन्तु सत्ता म बने रहने के लिए वह भी क्रूर एव निरकुश बन गया। यहा तक कि सन्देह होने पर उसने अपने पुत्र को ही मरवा दिया था। मेहनतकशों के प्रति वह और भी निष्ठुर सिद्ध हुआ। इस कारण वे लोग भी सम्राट-विरोधी हो गये।

12 प्रान्तों में विद्रोह–दुर्बल शासकों के काल में प्रान्तों के प्रान्तपति शक्तिशाली हो गये। उन्होंने स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। टिबेरियस (Tiberius) के शासन काल में सीरिया रोम साम्राज्य से विलग हो गया। स्पेन में विद्रोह हो गया। इसी प्रकार हेड्रियन (Hadrian) के शासन-काल में आर्मेनिया तथा पार्थेनिया स्वतन्त्र हो गये। एण्टोनियस (Antonius) के काल में डेन्यूब-प्रदेश तथा अफ्रीका ने विद्रोह का झडा खड़ा कर दिया। सम्राट डायोक्लीशियन (Diocletian) ने साम्राज्य की रक्षा के लिए उसे चार भागों में विभक्त किया, परन्तु वह विभाजन भी रोम साम्राज्य के लिए घातक ही सिद्ध हुआ। इन प्रान्तीय विद्रोहों ने रोम साम्राज्य को खोखला बना दिया।

13 उत्तराधिकार का कोई निर्धारित नियम न होना–हमारे दिल्ली सल्तनत तथा मुगल-काल में जिस प्रकार उत्तराधिकार के लिए कोई नियम निश्चित नहीं थे, उसी प्रकार रोम साम्राज्य में उत्तराधिकार के लिए कोई नियम निर्धारित नहीं थे। तलवार की शक्ति ही इसका निर्णय करती थी। अत एक सम्राट के मरते ही गद्दी के लिए सघर्ष छिड़ जाता था, जिस प्रकार जूलियस सीजर की मृत्यु के बाद छिड़ गया था। प्रतिद्वन्द्वियों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त ही आगस्टस रोम का सम्राट् बन सका था। जूलियस सीजर का दत्तक पुत्र होना भी इसमें उसे सहायक सिद्ध नहीं हुआ। इन उत्तराधिकार के

कानून में इस सिद्धान्त पर जोर दिया गया है कि राज्य का अस्तित्व अपने नागरिकों के कल्याण की अभिवृद्धि के लिए ही होता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास, जो न्याय, अनुभव और विभिन्न राष्ट्रों के कानूनों पर आधारित था, भी रोमन साम्राज्य से ही हुआ। इससे भी स्पष्ट है कि रोमन लोगों का दृष्टिकोण व्यापक था तथा वह लोक-कल्याण की भावना पर आधारित था।

(4) साम्राज्य-स्थापना का विचार-रोमन लोगो ने भूतल पर सबसे विशाल साम्राज्य की स्थापना करके विश्व के अन्य देशो के समक्ष साम्राज्य-स्थापना का विचार प्रस्तुत किया। रोम निवासियों ने विशाल साम्राज्य ही स्थापित नहीं किया वरन् उसमे शान्ति (Pax Romana) भी स्थापित की। प्रान्तीय व स्थानीय शासन की व्यवस्था इस प्रकार की कि वहा के लोगों में एकता व शान्ति बनी रहे। समुद्री डाकुओं (Pirates) को समाप्त कर अपने व्यापारियों को व्यापार के क्षेत्र मे निर्भीक भी रोम ने बनाया।

5 कला का क्षेत्र-रोमन लोगो ने जितनी रुचि सार्वजनिक निर्माण-कार्यों में ली उतनी सभवत अन्य कार्यों में नहीं ली। इसीलिए वे विश्व में महान् निर्माता कहे जाते हैं। आगस्ट्स ने अनेक भव्य देवालया का निर्माण करा कर रोम को सुन्दर नगर बना दिया। उस समय रोम में इतने विशाल एम्फीथियेटर बनाये गय कि उनमें 50 000 दर्शक आसानी से बैठ सकते थे। रोमन कलाविदों (विट्रुविअस व फान्टिनस) ने वास्तु कला पर अनेक ग्रन्थ लिखे। उन ग्रन्थों से अन्य देशों के गृह-शिल्पियों (Architectures) ने बहुत कुछ सीखा। नि सन्देह स्तभो का प्रयोग व मेहराबों (Arches) के निर्माण मे उन्होंने यूनानियों का अनुसरण किया परन्तु गुम्बजों (Domes) का निर्माण उनका स्वय का आविष्कार था। उनके पैन्थियोन (Pantheon) देवालय की गुम्बज का व्यास 142 फीट है। भारत के राजकीय भवनों, लन्दन व अमेरिका के नवीनतम भवनों के निर्माण में रोम की वास्तु-कला का प्रभाव पड़ा है। भारत में राष्ट्रपति भवन व कलकत्ते में विक्टोरिया स्मारक के गुम्बज रोम की वास्तु-कला के ही प्रतीक हैं। लन्दन का काउन्टीन हाल व लन्दन बन्दरगाह के कार्यालय रोम की वास्तुकला से प्रभावित है। रोम की सुन्दर वास्तु-कला पर टिप्पणी करते हुए मि० रशफोर्थ लिखता है-''इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि रोम विश्व में प्रथम नगर था जिसकी अपनी महान लौकिक वास्तुकला थी।'' इस वास्तुकला में सभी जातियों की देन है और इसी से हमारे घरेलू सार्वजनिक भवन बने हैं। कहा जाता है कि सीधी, समकोण पर मिलनेवाली सड़कों का निर्माण भी सर्वप्रथम रोम में ही हुआ था।[1] सड़कों के निर्माण में बाधा उत्पन्न करने वाली नदियों पर कांक्रीट (Concrete) के पुल सर्वप्रथम रोम में ही बनाये गये थे जो आज सर्वत्र बन रहे हैं।

चित्र-कला के क्षेत्र में भित्ति-चित्र भी रोम के अनुपम सिद्ध हुए। पुनर्जागरण (Renaissance) काल में चित्र-कला का जो विकास हुआ वह रोम शैली पर ही आधारित

---

1 Cirel Baily Legacy of Rome

Roman roads are at once the greatest material legacy that Rome has left

था। चित्र-कला का अलकरण भी रोमन प्रणाली से ही होन लगा। पशु-पक्षियों और पुष्प-पौधों से किसी वस्तु का अलकरण करना रोमन शैली का ही अग था जिसको आज विश्व के चित्रकारों ने अपना लिया है। इसके अलावा 'समूह-चित्रण' भी रोम चित्र-कला की ही एक शैली थी जिसका प्रभाव आज भी विश्व के भीत्ति-चित्रों में देखा जा सकता है।

6 साहित्य का क्षेत्र–रोमन लोगों की भाति रोमन साहित्य भी व्यावहारिक साहित्य है जिसका सम्बन्ध दैनिक जीवन की समस्याओं से है। रोम का साहित्य लैटिन भाषा में सृजित है। फ्रान्सीसी, इतालवी, स्पेनी और रूमानियन ये सभी भाषाए लैटिन भाषा की सन्तान हैं। रोम साम्राज्य में लैटिन भाषा को ही प्रतिष्ठित किया गया था। अत रोमन लोगों के आरक्षण में यह भाषा सार्वभौम व अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गई। आज विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी है, वह भी लैटिन भाषा से ही निकली है। यह लैटिन भाषा के शब्दो से भरपूर है। रोमन कानून लेटिन भाषा में ही लिखे गये। यही भाषा यूरोप में बोल-चाल की भाषा बनी। पुनर्जागरण-काल में भी यही भाषा प्रभाव में रही। बाइबिल का अनुवाद इसी में किया गया। अत समस्त ईसाई समाज लैटिन भाषा का ज्ञाता हो गया। आज भी 20 करोड़ व्यक्ति लैटिन भाषी है। विज्ञान में भी लैटिन भाषा के शब्दों की भरमार है। इसीलिए लैटिन साहित्य विश्व के साहित्यो में प्रमुख माना जाता है। वेबस्टर का कहना है कि रोम की भाषा तथा कानून ने मानव जाति के बौद्धिक जीवन को अधिक धनी बनाया है।[1]

रोम के साहित्यिक ग्रन्थों का भी विश्व-व्यापक प्रभाव पड़ा है। यूनान में जो स्थान डिमौस्थनीज (Demosthenes) का था वही स्थान रोम में सिसेरो (106 43 ई०पू०) का था। उसके ग्रन्थ सभी काल में विद्यालय के छात्रों द्वारा पढ़े जाते रहे हैं। सिसेरो के वृद्धावस्था (Old Age) व मित्रता (Friendship) पर लिखे गये निबन्धों ने करोड़ो पाठकों को सान्त्वना प्रदान की है। महाकाव्यों, नाटकों व गीतों की रचना यूनानियों ने रोमवासियों को दी और रोमवासियों ने यह साहित्य सृजन विश्व को दिया। महाकवि वर्जिल, हौरेस और ओविड रोम के ही महाकवि न माने जाकर विश्व के महाकवि माने जाते हैं। वर्जिल का 'एनीड' महाकाव्य विश्व का महान् काव्य माना गया। वाल्टेयर (Voltaire) ने इसे विश्व का सर्वोत्तम ग्रन्थ बताया है। कीटस ने इसका अंग्रेजी मे अनुवाद किया। टेनिसन (Tennyson) ने होरेस को कोमलतम कवि बताया है। ओविड की पौराणिक रचनाओं के आधार पर आज के कवि अपनी रचनाए रचते है। दाते (Dante) ने उसे विश्व का महान् कवि माना है। ऐलीज़ाबेथ प्रथम के शासन-काल में इगलैण्ड में जो दुखान्त नाटक लिखे गये वे सेनिका (Seneca) के दु खान्त नाटकों से प्रभावित हैं। यूरोप का आधुनिक गद्य सिसरो की रचनाओं से प्रभावित है।[2] हेरोडोटस

1 Webester History of Mankind p 163 164

2. 'European prose as an instrumental thought is Cecero s creation.

Dr Mackail

के समकक्ष रोम में भी कई इतिहासकार आर्विभूत हुए। उनके ग्रन्थों ने विश्व को प्रभावित किया। उनमें विख्यात हैं- लिवी (Livy), प्लीनी (Pliny) तथा स्ट्रेबो (Strabo)। टेसीटस (Tacitus) को उच्चकोटि के इतिहासकारों में अन्तिम इतिहासकार माना जाता है। परवर्ती इतिहासकारों ने उसकी शैली का अनुकरण करने का प्रयास किया है। जूलियस सीजर द्वारा रचित उसकी टीकाए (Commentaries) भी यूरोपीय साहित्य में अनुपम देन मानी जाती हैं।

7 दर्शन-रोम के महान् दार्शनिकों में सेनेका, एपिक्टेटस तथा सम्राट मार्कस आरेलियस माने जाते हैं। ये तीनों दार्शनिक यूनान के दार्शनिक जेनो से प्रभावित थे। इससे स्पष्ट है कि रोम ने दर्शन के क्षेत्र में कोई मौलिकता का प्रदर्शन नहीं किया, परन्तु उन्होंने व्यावहारिक दृष्टिकोण को विकसित किया। राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में रोम के राजनीति-विचारकों ने चिन्तन एव मनन शैली को जन्म दिया। इसी कारण प्लेटो व अरस्तू को रोमवासियो ने इतना महत्व नहीं दिया जितना कि एपीक्यूरियन (Epicurean) और स्टोइक (Stoic Philosophy) विचारधारा को दिया। समस्त यूरोप में स्टोइक विचारधारा का प्रचार करने वाला रोम का दार्शनिक सिसरो ही था। दार्शनिक सेनेका (Seneca) के एकेश्वरवाद व आचार-शास्त्र ने ईसाई धर्म को प्रभावित किया। इगलैण्ड के दार्शनिक मिल्टन व वर्ड्सवर्थ इसके विचारों से ही प्रभावित थे।

8 विज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी रोमन्स ने अपनी मौलिकता की अपेक्षा ग्रहण करने तथा उसे अपने अनुकूल बनाने में अपनी योग्यता का अधिक परिचय दिया है। परन्तु फिर भी विज्ञान के क्षेत्र में रोमन्स की अपूर्व देन रही है। इस क्षेत्र में भी उन्होंने अन्य क्षेत्रों की भाति उपयोगितावाद तथा व्यावहारिकता का अधिक परिचय दिया है। वे बुद्धिवादी व सौन्दर्य के उपासक अधिक नहीं रहे हैं। परन्तु वे प्रकृति के प्रेमी अवश्य थे। प्लीनी एक इतिहासकार था पर उसने 'प्रकृति का इतिहास' (Natural is Historia) की रचना की। वह विदित विज्ञानों का एक सक्षिप्त सग्रह (Compendium of all known Sciences) मात्र ही था। गिबन ने उस पर टिप्पणी करते लिखा है कि यह केवल मानव-जाति की खोजों, कलाओं तथा भूलों का वृत्तान्त है। परन्तु रोमन सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति अति जागरूक रहे। व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इसका परिचय उनके स्नानागार तथा गन्दे पानी को निकालने वाली नालियों से पता चलता है। रोमवासी चिकित्सा-शास्त्र में काफी प्रगति कर चुके थे। जूलियस सीजर चिकित्सकों को रोम की नागरिकता का अधिकार देने को सदा तैयार रहता था। गैलन (Galen) हालाकि यूनान में जन्मा था, परन्तु वह रोम का एक महान् चिकित्सक था। उसने मानव शरीर तथा पशु व वनस्पति विज्ञान (Physiology) पर 500 ग्रन्थ लिखे जिनसे विश्व के देश लाभान्वित हुए। एन्टोनीनस (Antoninus) ने आदेश देकर ग्रामों में 5 वैद्यों का तथा नगरों में 10 वैद्यों का रहना आवश्यक कर दिया था। जूलियन क्लैण्डर रोम के ज्योतिष शास्त्र का स्पष्ट प्रमाण है जिससे आज भी समस्त विश्व प्रभावित है।

9 धर्म-विश्व का आज सबसे महान् धर्म ईसाई धर्म है। इस धर्म का विकास रोम साम्राज्य में ही हुआ है। इस धर्म का प्रभाव इतना व्यापक एव

कि रोम-साम्राज्य चाहे विनाश के गर्त मे समा गया पर ईसाई धर्म की आध्यात्मिकता आज भी भूतल पर व्याप्त है। कैथोलिक धर्म का सर्वोच्चाधिकारी पोप रोम में ही रहता है। ईसाई धर्म के गिरजाघर सर्व प्रथम रोम साम्राज्य मे ही निर्मित हुए और आज भी उस शैली के गिरजाघर निर्मित हो रहे है। परन्तु यह ईसाई धर्म भी रोम के परम्परागत धर्म से प्रभावित हुआ है। गिरजाघरो का निर्माण रोम के देवालयो के आधार पर ही हुआ है। ईसाई-धर्म म प्रचलित कर्म-काण्ड भी रोमन कर्म-काण्डा की ही देन मानी जाती है। इसीलिए इतिहासकार बी वी रॉव ने कहा है कि **ईसाई धर्म अपनी महानता को रोमन साम्राज्य में ही प्राप्त हुआ था।**[1]

निष्कर्ष-उपरोक्त विवरण ने स्पष्ट है कि रोम सस्कृति का इटली ही नहीं वरन् सारे रोमन साम्राज्य में व्यापक प्रसार हुआ है। रोमन जहा भी गये, उन्होंने मेहराबदार तोरणों, पानी की नालिया, एम्फीथियेटरों और सड़को का निर्माण किया। रोम से दूरवर्ती देशों में भी लैटिन भाषा बोली व पढ़ी जाने लगी। बहुत से यूनानी और पूर्वी ग्रन्थो का लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। सदियों तक पश्चिमी यूरोप के शिक्षित लोग लैटिन ही बोलते एव लिखते रहे। आज भी खनिजों, वनस्पतियों और प्राणिया को लैटिन भाषा मे ही नाम दिए जाते हैं जिन्हें विश्व के सभी देशों के विद्वान् समझ सकते हैं। चिकित्सक अपनी दवाओ के नुस्खे भी लैटिन में ही लिखते हैं। रोम में निर्मित पचाग का प्रचलन आज सारे ससार में है। इसके महीनों के लैटिन नाम आज भी सुरक्षित है। वर्जिल व अन्य रोमन साहित्यकारों की रचनाओं ने यूरोपीय साहित्य के विकास पर महान् प्रभाव डाला है। ये रचनाए आज भी प्रकाशित हो रही हैं। रोमनों द्वारा आविष्कृत मेहराब और गुम्बद विश्व-वास्तु कला के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान माने जाते हैं। इसीलिए इतिहासकार जे ई स्वेन का मानना है कि **रोमन सभ्यता जो विश्व-सभ्यता के विकास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है, वह मध्यकालीन राजनीति, कानून, धर्म और आर्थिक जीवन में आधारभूत बन गई।**[2]

---

1 It was in the Roman Empire that Christianity grew into a great religion.

B V Rao

2 'Roman civilization which had filled a very important place in the development of world culture passed into the Middle Ages practical fundamentals in politics law religion and economic life

J E. Swain

के प्रथम कोलाहल उत्पन्न करने वाले नाटक लिखे। इनमें दो जुड़वा भाइयों के जीवन पर आधारित कथानक है। इनका कथानक इतना जनप्रिय बना कि स्वय शेक्सपीयर ने इसे अपने नाटक "कॉमेडी ऑफ एरर्स" में ग्रहण किया। उसके उपरान्त आगस्टस के समय म साहित्य का स्वर्ण-काल आया जिसमें वर्जिल, होरेस तथा ओविड (Ovid) जैसे कवि उत्पन्न हुए।

वर्जिल आगस्टस का दरबारी कवि था और वह आगस्टस के मन्त्री के अति सम्पर्क मे था। अत वर्जिल की प्रारम्भिक रचनाएँ शासक और उस के मन्त्री तक ही रहीं। लेकिन बाद में उसका क्षेत्र दरबार तक ही सीमित नहीं रहा। यूनानी कवि होमर की भांति वह भी अपने राष्ट्र के वातावरण से परिचित था। अत वह भी अपनी रचनाओ द्वारा रोम के गौरव व सभ्यता को गौरवान्वित करना चाहता था। उसने अपनी रचनाओ मे कृषकों के जीवन को भी पर्याप्त महत्व दिया। इसकी अपूर्व रचना एनीड (Aeneid) है। होरेस वर्जिल का मित्र था। वह एक अच्छा लेखक था। उसने भी अपनी रचनाओं मे जो कथानक लिए वे आगस्टस के प्रिय थे और ग्रामीण-जीवन पर आधारित थे।

इस स्वर्ण-युग के उपरान्त रोम साहित्य में रजत-युग का समागम होता है। क्रेन ब्रिन्टन का कहना है कि आगस्टस की मृत्यु पर रोम साहित्य का ह्रास अवश्य हुआ, परन्तु कुछ साहित्यकारा ने उसे अधिक हीन न बनने दिया। उनमें सिनेका (Seneca), टिसीटस (Tacitus), प्लिनी (Pliny) आदि थे। लिवि, टिसटस व प्लिनी उस समय के अच्छे इतिहासकार थे। हालाकि इनमे पूर्व पोलिबियस इतिहासकार हो चुका था। परन्तु अधिक उल्लेखनीय ये ही हैं। लिवी आगस्टस (27 ई० पू०-14 ई० पू०) का समकालीन था तथा टिसीटस डामीटियन (81 96 ई०) का। लिवी महान् इतिहासकार के साथ-साथ एक महान् साहित्यकार भी था। उसने अपनी रचना 'Historiae ab Vrbe Condita' म रोम का एक प्रजानन्त्र नगर के रूप में अच्छा वर्णन किया है। सिसरो (Cicero) आगस्टस के पूर्व का एक अच्छा गद्य लेखक तथा सुवक्ता था। उसने रोमन साहित्य के विषय में इस प्रकार लिखा है - "ऐसा अध्ययन युवकों को लाभदायक तथा वृद्धावस्था में प्रसन्नता प्रदान करता है। ऐसे अध्ययन से सौभाग्यशाली अवस्था में हमारी प्रसन्नता बढ़ती है और आपत्तकाल में ये सान्त्वना तथा रक्षा प्रदान करते हैं। रात्रिकाल में ये हमारे समीप रहते हैं और ग्रामीण जगह की भी सैर करते हैं।"

रोम शासकों ने शिक्षा का भी प्रबन्ध किया था। दीन छात्रों को मुफ्त शिक्षा दी जाती थी और रोम साम्राज्य के प्रमुख शहरों में उस समय स्कूल थे और उनमें प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। उसके पश्चात् माध्यमिक शिक्षा की भी व्यवस्था थी। परन्तु वह उन्ही के लिए थी जो कि उसके पाने के योग्य थे। शिक्षा के क्षेत्र में क्विन्टीलियन की रचना इस्टीटयूट औरेटोरिया (Institute Oratoria) एक महत्त्वपूर्ण रचना समझी जावेगी। मेकल का कथन है कि 15 वीं शती में इस पुस्तक के फिर से ज्ञात होने के पश्चात् पुनरुद्धार कालीन महान् शिक्षा आन्दोलन का जन्म हुआ। क्विन्टीलियन का इस बात का श्रेय है कि उसने आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों तथा अध्यापकों का पथ-प्रदर्शन किया। बेन फिंगर की मान्यता है कि रोम आधुनिक सामान्य शिक्षा का निर्देशक था।

कला-रोम की स्थापत्य कला पर यूनान की स्थापत्य कला का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इस क्षेत्र में रोम वाले नि सन्देह यूनानियों से आगे थे। रोमन स्थापत्य कला का परिचय सासारिक भवनों के निर्माण ने भी दिया और यह स्थापत्य कला आगस्ट्स के शासनकाल से निरन्तर विकसित होती ही चली गई। रोम स्थापत्य कला की परम विशेषता मेहराब और गुबजों का निर्माण करना था। यूनानियों की भाति उन्होंने स्तम्भों का भी प्रयोग किया है, परन्तु वह प्रयोग भवन के बाहरी आकार को सजाने मात्र के लिए किया। भवनों को सुन्दर बनाने के लिए रोमवासी रगबिरंगे सगमरमर के पत्थरों का भी प्रयोग करते थे। पेन्थियोन (Pantheon) का गुम्बज आज भी दर्शनीय है। यह भूमि से 142 फुट ऊचा है तथा इसका व्यास भी 142 फुट ही है। मेहराब के निर्माण में तो वे इतने निपुण हो गये थे कि बड़े-बड़े भवनों की छतें इन मेहराबों के ऊपर ही डाल देते थे। इसके अलावा रोमवासियों ने पुल, स्नानागार, नहरें तथा एम्फीथियेटर बनाये। रोम नगर में सम्राट केरकला (Caracalla) द्वारा निर्मित स्नानागार आधुनिकता का परिचय देता है और रोम का एम्फीथियेटर परिधि में चौथाई मील था। उसमें 45,000 दर्शक बैठ सकते थे। भवन-निर्माण में इनको इतनी सफलता काकरीट के कारण मिली। दो-तीन मजिल के विशाल एम्फीथियेटर के निर्माण में उन्हें सीमेंट तथा काकरीट से बड़ी सहायता मिली।

मूर्ति कला के क्षेत्र में वे यूनानी कला से प्रभावित थे। उनके अनुसरण पर उन्होंने यथार्थवाद को तो मूर्ति कला में स्थान दिया ही है पर साथ में मानववाद को भी नहीं भूले। सम्राट् व सामन्तों की मूर्तिया अधिकाश बनाई जाती थीं। इसी कारण कभी उनमें अतिशयोक्ति की झलक पड़ती थी। परन्तु फिर भी वे यथार्थवाद से परे नहीं होते थे। रोम सम्राट वेसपासियन (Vespasian) के धड़ व जूलियस सीजर, एण्टोनी की मूर्तिया उस समय की कलापूर्ण कृतिया हैं। परन्तु रोमन प्लास्टर के काम में अधिक निपुण थे।

उस समय की चित्रकला पोम्पाई नगरों के भग्नावशेषों में देखी जा सकती हैं। इस कला को भी उन्होंने यूनानियों से ही सीखा था। परन्तु सभी इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि चित्रकला में भी रोमवासियों ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया था। रोम की चित्रकला में यूनानी चित्रकला का केवल विस्तार मात्र ही नहीं था। रोम की चित्रकला से हमें यह भी स्पष्ट होता है कि वे रगों के सम्मिश्रण में पटु थे और अपने सुन्दर रगों से वे विश्लेषणात्मक कृतियाँ चित्रित कर सकते थे।

विज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी रोमवासियों ने अपनी मौलिकता की अपेक्षा ग्रहण करने तथा उसे अपने अनुकूल बनाने की योग्यता का परिचय अधिक दिया। फिर भी इस क्षेत्र में उनकी देन नगण्य थी। अन्य क्षेत्रों की भाति इस क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी व्यावहारिकता तथा उपयोगितावाद का अधिक परिचय दिया। उन्होंने सौन्दर्यात्मक भावना पर बल कम दिया। वे प्रकृति के महान् प्रेमी थे। इस तथ्य पर प्रकाश उनके विज्ञान से भी पड़ता है। चिकित्सा शास्त्र में भी उन्होंने यूनानियों के अनुभवों का लाभ उठाया। शरीर विज्ञान तथा स्वच्छता पर भी वे ध्यान देते थे। उदाहरण के लिए उनके कानून
e Law of the Twelve Tables) को ले सकते हैं। रोमन्स में मुर्दों को नगर में दफनाना था।

शासन प्रबन्ध-शासन और विधान के क्षेत्र में रोमवासियों की विश्व को एक अपूर्व देन है। वर्तमान प्रजातन्त्रीय राष्ट्र ने शासन-सत्ता सचालित करने के अधिकाश सिद्धान्त रोम से ही लिए है। मताधिकार द्वारा बहुमत निर्धारण करने तथा निर्वाचन के द्वारा धारा-सभाओं और अधिकारियों को नियुक्त करने की प्रचलित प्रणाली पुरातन रोम की देन है। सीनेट द्वारा शासकों का चयन भी रोम सभ्यता की एक अपूर्ण देन है। उसका चयन आजीवन होता था, पर उनका अधिकार पैतृक नहीं होता था। रोम के सबसे प्राचीन विधान का निर्माण नगर-राज्यो के समय में हुआ था। तदनन्तर जूलियस सीजर ने विभिन्न प्रगतिशिल देशों के सविधानों के अध्ययन के पश्चात् रोम के एक अच्छे सविधान की व्यवस्था का प्रयास किया था, परन्तु वह असफल रहा। उसके 600 वर्ष उपरान्त जस्टिनियन ने अपने अथक प्रयत्न के पश्चात् रोमवासियों के सम्मुख एक विधान-ग्रन्थ प्रस्तुत किया जिसका नाम जस्टिनियन कोड (Justinian Code) था। यूरोप के अधिकाश देशो ने अपने सविधानों की रचना मे इसी ग्रन्थ की सहायता ली है। रोम के अतिरिक्त अन्य नगरों को सुन्दर बनाने हेतु उनमे नगरपालिकाओं की व्यवस्था थी। नगरपालिका के अधिकारियों को वेतन नहीं दिया जाता था। नगरपालिका के अतिरिक्त नगरों मे परिषदें भी होती थीं। आर्थिक विषयों में नगर स्वावलम्बी होते थे।

रोम-सभ्यता की विश्व को देन
(Legacy of Rome)

जैसा कि हम इससे पूर्व ही व्यक्त कर आये है कि रोम सभ्यता अपने में मौलिक नहीं थी। वह अधिकाशत यूनान सभ्यता से प्रभावित थी। इसीलिए कहा भी जाता है कि यदि रोमन लोग नहीं होते तो यूनान सभ्यता पश्चिम म प्रसारित ही नहीं होती। परन्तु यह स्वीकार कर लेना भी उचित नहीं होगा कि रोमन लोगा ने प्रत्येक क्षेत्र में ही यूनानियों का अनुसरण किया है। सिरिल बेली द्वारा सम्पादित रोम की देन (Legacy of Rome) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रोमवासियों ने भी कई प्रतिभापूर्ण एव मौलिक कार्य किये थे जिनका प्रभाव उस काल में तो पड़ा ही था परन्तु वे प्रभाव आज भी विश्व के देशों को प्रभावित कर रहे है। रोम की सस्कृति ने यूरोप की पुरातन सस्कृति को तो सर्वाधिक प्रभावित किया ही था और वर्तमान यूरोप-सभ्यता भी कोई मौलिक नहीं वरन् रोम सभ्यता के गर्भ से ही उत्पन्न हुई है।[1] इसके अलावा यह भी एक तथ्य है कि रोम प्रथम विश्व-राज्य था। अत इसकी सस्कृति व सभ्यता का प्रभाव यूरोप तक ही सीमित न रह कर विश्व-व्यापक सिद्ध हुआ है। अब हम निम्न अवतरणों में यह बताने का प्रयास करेंगे कि रोम-सभ्यता ने विश्व-सभ्यता को किन-किन क्षेत्रों में प्रभावित किया है।

---

1 Western civilization was born out the very matrix of the Roman Empire

Trever

राजनीतिक क्षेत्र-

(1) कानून-इतिहासकार नैथिनियल प्रैट का कहना है कि "सम्भवत कानून ही एक ऐसा विषय है जिसमें रोमनों ने सबसे महान् योगदान किया है। आजकल ससार में प्रचलित विधान-पद्धतियों में से अधिकाश का आधार रोमन कानून ही है।" लार्ड ब्राइस (Bryce) की भी इसी प्रकार की धारणा है। वह लिखता है कि यदि रोमन कानून नहीं होते तो लोग रोमन साम्राज्य को भी भूल जाते। राम एक विशाल साम्राज्य ही नहीं वरन् विश्व-साम्राज्य था। इसमें विश्व क अनेक देश थे। उन देशों को स्थायी रूप से रोम-साम्राज्य का अग बनाय रखने हेतु रोमनों ने अनेक कानून बनाये जिनमे प्राकृतिक कानून (Natural Law), सार्वजनिक कानून (Law of the People) और दीवानी कानून प्रमुख हैं। आज अधिकाश देशों की कानून व्यवस्था पर रोम की कानून व्यवस्था का प्रभाव है। इसीलिए बी वी राव भी लिखते है कि इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि उनके (रोमन्स) कानूनों ने विश्व के लगभग समस्त सभ्य देशों पर गहरा प्रभाव डाला है।[1]

(2)शासन-तन्त्र- शासन-तन्त्र की दृष्टि से भी रोम-साम्राज्य विश्व म अद्वितीय ही रहा है। रोमन विधि-वत्ताओं ने अपन शासन-तत्र में राजतत्र (Monarchy) और कुलीनतत्र (Oligarchy) मे समन्वय करते हुए प्रजातन्त्र (Democracy) का स्वरूप तैयार किया। सीनेट के सदस्य, कुलीन वश के होते थे तो एसेम्बली की सदस्यता जनसाधारण के लिए खुली थी। कान्सल व मजिस्ट्रेट सम्राट की भाति शासन सचालित करत थे। यदि हम आज सयुक्त-राज्य-अमेरिका (U S A) का सविधान देखत है तो उस पर रोम क सविधान का प्रभाव स्पष्ट पाते हैं। अमेरिका की सीनेट व प्रतिनिधि-सभा रोम की पुरातन सीनेट तथा एसेम्बली के समकक्ष ही है। जर्मनी के सम्राट कैसर व रूस के सम्राट जार की उपाधिया आगस्टस सीजर की उपाधियो के अनुरूप ही थीं। रोमन लोगा ने राज्य को सर्वाधिक महत्त्व दिया था। आज के राजनीति-विचारकों की धारणा है कि फासिस्टवाद ने यह सिद्धान्त रोमवासियों से ही ग्रहण किया है। रोमन लोगों ने प्रशासन को व्यवस्थित ढग से सचालित करने हेतु कार्यपालिका (Executive) और व्यवस्थापिका (Legislature) को अलग रखा था। आज के प्रजातत्रीय देश इसी सिद्धान्त का पालन कर रहे है।

(3) लोक-कल्याणकारी (Welfare State) राज्य की धारणा-राम साम्राज्य एक विशाल साम्राज्य था। उसमें अनेक राज्यों के होने के कारण विविधता का होना अवश्यभावी था। परन्तु विशाल साम्राज्य में राजनीतिक एकता बनाये रखने की दृष्टि स रोमवासियों ने व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। रोम की सरकार ने अपने सभी मनुष्यो को नागरिकता प्रदान की। उनके भले का ध्यान रखा गया। विभिन्न देशों के विभिन्न लोगों की परपराओं व रीतिरिवाजों को बनाये रखा। सम्भवत इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु रोमन

1 "There is no exaggeration to say that their laws had made profound impact on almost all the civilized nations of the world to day

B V Rao

प्रश्न

1. हेनीबाल कौन था ? उसकी गणना विश्व के विख्यात सेनापतियों में क्यों की जाती है ?
   Who was Hannibal ? Why is he regarded as one of the famous generals of the world ?
2. आगस्टस के शासन-काल तक रोमन-साम्राज्य के विकास को बताइये।
   Trace the growth of the Roman Empire till the days of Augustus Caesar
3. प्यूनिक युद्धों के क्या कारण थे ? उनके परिणामों का उल्लेख कीजिए।
   What were the causes of the Punic Wars ? Narrate their results
4. ग्रेको बन्धु कौन थे ? उनके सुधारों का महत्त्व समझाइये।
   Who were Gracchus brothers ? Explain the importance of their reforms
5. अधिनायकवाद से आप क्या समझते हैं ? रोमन साम्राज्य में इसने किस प्रकार अपने को सुदृढ़ किया ?
   What do you mean by dictatorship ? How did it consolidate itself in Roman Empire ?
6. "आगस्टस का शासन-काल एक गौरव-युग था।" इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
   The Age of Augustus was a 'Glorious Age' in Roman History Discuss the statement
7. रोम सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
   Enumerate the chief features of the Roman Civilization
8. रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।
   Discuss the causes of the downfall of the Roman Empire
9. रोम सभ्यता की विश्व-सभ्यता को क्या देन रही ?
   What legacy was left behind by the Roman Civilization to the World Civilization. ?

7
ईसाई धर्म

''अपने शत्रुओं को प्यार करो, जो तुम्हें शाप देते हैं, उनकी तुम मगलकामना करो, जो तुम्हें घृणा करते हैं, उनके प्रति नेक रहो, जो द्वेष के साथ तुम्हारा प्रयोग करते हैं और जो पीड़ा देते हैं उनके लिए तुम प्रार्थना करो ताकि उस पिता के बच्चे बन सको जो कि स्वर्ग में है।''

-क्राइस्ट

ईसाई धर्म के प्रादुर्भाव से पूर्व धार्मिक दशा-धर्म का सम्बन्ध मानव के अन्त करण से होता है। आत्मा, जिसको कि हम परमात्मा का स्वरूप मानते हैं- अन्त करण का ही स्वरूप है। जब तक मनुष्य की आत्मा शुद्ध न हो, मनुष्य वास्तव में परमात्मा को नहीं पा सकता है। ईसा से पूर्व प्रसारित पाश्चात्य देशों के विभिन्न धर्म मानव को आध्यात्मिकता से परे हटाकर उसे विलासिता व भौतिकवाद के गर्त में ढकेलने वाले हो गये थे। यूनान अपनी कला के वैभव से ससार को चकाचौंध कर रहा था, परन्तु साथ में ही वहा का वर्ग-सघर्ष वहा की सामाजिक असमानता को छिपाने में असमर्थ था। पाश्चात्य देशों में उस समय एक ओर तो अमीरी मानवों को मदान्ध किये अपनी अमरता की धौंस जमा रही थी तो दूसरी ओर दरिद्रता दरिद्रों के करुण क्रन्दन से सहृदय मनुष्यों के हृदयों को द्रवीभूत बना रही थी। धनी मनुष्यों के पास निर्धनों के परिश्रम से तथा उनक शोषण से धन इतनी प्रचुर मात्रा में सग्रहीत हो गया था कि वे उसके व्यय करने में भी अपने आपको असमर्थ पा रहे थे। तत्कालीन धर्म ऐसे ही मनुष्यों का था। यूनान में स्थानीय महत्त्व और प्रेम का बोलबाला था जबकि रोम में साम्राज्य विस्तार को अधिक महत्व दिया जा रहा था। बहुत दिनों तक इन भावनाओं ने दोनों देशों में राजनीतिक एकता बनाये रखी परन्तु, धीरे-धीरे मानव की स्वाभाविक सकीर्णता की मनोवृत्ति अपना प्रभाव जमाने लगी। रोम के सैनिक कार्य-कलापों ने अन्तत जीवन में जड़ता उत्पन्न करदी। इसी प्रकार की राजनीतिक अशान्ति, धार्मिक आडबरों एव आध्यात्मिक हीनता के वातावण में ईसाई धर्म का अविर्भाव हुआ।

ईसाई धर्म के प्रचलन से पूर्व फिलीस्तीन में यहूदियों का प्रभाव था। ये अनेक देवी व देवताओं की उपासना करते थे। वे अपने देवों को पशुओं की बलि देकर प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। भारत के ब्राह्मणों की भाति वहा भी ये धार्मिक कार्य पुरोहित-वर्ग द्वारा ही सम्पन्न कराये जाते थे। पुरोहित देवता के प्रतिनिधि समझे जाते थे। लोग देववाणी में भी विश्वास करते थे। आराध्य देवताओं के भव्य देवालय होते थे जहा कि लोग भारी सख्या में दर्शन करने जाते थे। वे अपने को परमात्मा की सन्तान समझते थ और अपने से उच्च किसी अन्य जाति को नहीं समझते थे। भाग्यवश अच्छे व्यापारी होने

के कारण वे धनी होते थे और इसे वे परमात्मा की विशेष अनुकपा का परिणाम समझते थे। धनी होने ने कारण उनका जीवन दिनों-दिन भौतिकवादी बनता जा रहा था और वे दीन व गुलाम मनुष्यों के दु ख दर्द की चिन्ता नहीं करते थे। उन्होंने येन-केन-प्रकारेण धन कमाना ही अपने जीवन का परम उद्देश्य बना लिया था। इस कारण गरीब मनुष्यों की परेशानिया और भी बढ़ गई थीं।

ईसा का जन्म व उसका बाल्यकाल-ईसा (Christ) ईसाई धर्म का प्रवर्तक था। उसने अपने धार्मिक विचारों को इसी नवीन धर्म के माध्यम से जनसाधारण में प्रसारित किया। उसका जन्म जूडिया के पर्वतीय भाग बैथलहम में हुआ था। जूडिया फिलीस्तीन का ही एक अङ्ग था। ईसा की जन्म तिथि के विषय में अभी मतभेद है, पर अधिकाश इतिहासकार इससे सहमत हैं कि उसका जन्म 4 ई० पू० में 25 दिसम्बर को हुआ था। उसके पिता का नाम यूसुफ और माता का नाम मरियम था। एफ० जी० पियर्स लिखता है- **''उसके माता पिता गरीब स्थिति के थे; हालांकि उसका पिता यहूदियों के राजा डेविड का वशज था।''** ऐसा उल्लेख मिलता है कि ईसा के जन्म से पूर्व यूसुफ को जनगणना के कार्य पर बैथलहम (Bethlehem) जाना पड़ा था। उसी काल में वहीं ईसा का जन्म हुआ था। उस समय जूडिया (Judea) का शासक हेरोड (Herod) था। वह क्रूर एव निरंकुश था। अत उसके भय से भयभीत हो यूसुफ 'नजारेथ' (Nazareth) नगर में चला आया था। यहा उसने बढ़ई का कार्य प्रारभ किया। सभवत ईसा ने अपने जीवन के तीस वर्ष अपने पिता के व्यवसाय में ही सहयोग देते हुए व्यतीत किये। ईसा का बचपन तो यो ही व्यतीत हुआ। उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया और न वह उच्च शिक्षा ही प्राप्त कर सका। भाग्यवश 30 वर्ष की आयु में उसे जान द बैप्टिस्ट (John the Baptist) से मुलाकात हो गई। ईसा इसके साथ घूम-घूम कर लोगों को उपदेश देने लगा। जान जन-साधारण में यह प्रचार कर रहा था कि निकट भविष्य में मानव-जाति के उद्धार के लिए एक महान् पुरुष अवतार लेने वाला है। उसके इस प्रचार से दुष्ट हेरोड क्रुद्ध हो गया और उसे मृत्यु दण्ड दे दिया। इस पर ईसा गेलीली (Galille) को लौटा और जॉन के विचारों को फैलाने लगा। आरम्भ में यहूदियों ने ईसा के वचनों पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु उनका ऐसा विश्वास अवश्य था कि एक दिन मसीह उनकी जाति में ही जन्म अवश्य लेगा। यहूदियों के धार्मिक विचार अन्धविश्वास पर आधारित तथा बड़े कट्टरवादी थे। अत उस समय फिलीस्तीन का वातावरण बड़ा अशान्त था। उस अशान्त वातावरण का निवारण ईसा ने किया।

धर्म का प्रचार-ईसा प्रारम्भ में अपने विचारों का प्रचार जूडिया तथा उसके आस-पास के इलाकों में करते रहा। उसके आकर्षक व्यक्तित्व तथा मधुर वाणी के कारण श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे। इस कारण उसके श्रोताओं की सख्या भी दिन पर दिन बढ़ती गई। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि ईसा को अलौकिक शक्तिया प्राप्त थीं जिनके कारण अन्धे, कोढ़ी तथा अन्य रोगों से पीड़ित रोगी उनके स्पर्श मात्र से अच्छे हो जाते थे। इसके विपरीत यहूदियों के धर्माधिकारी उसे अपना शत्रु समझते थे। जब ईसा ने तत्कालीन प्रचलित अन्धविश्वास को दूर करने का प्रयास किया तो ये धर्माधिकारी उससे और क्रुद्ध

हो गये, क्योंकि ऐसा करने से समाज में उनका महत्त्व घटने लगा। परन्तु ईसा ने उनके विरोध की चिन्ता नहीं की और अपना प्रचार जारी रखा। शासक हिरोड (Herod) तथा यहूदियों ने उसे झूठा मसीह बताना आरम्भ किया। रोमन उसकी बढ़ती हुई कीर्ति से परेशान थे। अत उसके शत्रुओं ने रोमन राज्यपाल पोन्टियस पाइलेट (Pontius Pilate) के पास जाकर ईसा पर यह आरोप लगाया तथा प्रमाणित किया कि वह यहूदियों का राजा बनना चाहता है। चूंकि उस समय फिलीस्तीन पर रोमनों का शासन था, इसलिए यह बात एक राजद्रोह के समान थी।

अपने विचारों का इस प्रकार प्रतिपादन करता हुआ ईसा जेरूसलम पहुँचा। वहा उसने यहूदियों के वार्षिक उत्सव 'फीस्ट आफ पासमोर' को देखा। उस उत्सव की हिंसात्मक वृत्तियों का ईसा पर बड़ा गहरा असर पड़ा। वहा उसने बलि के निमित लाये गये पशुओं को मुक्त कर दिया और अपने सह जाति वालों को अपने विचारों से अवगत कराने का प्रयास किया, परन्तु सारा यहूदी समाज ईसा से चिढ़ गया था। उन लोगों ने उसको दण्ड देना चाहा। जेरूसलम से वह ओलिव नामक पहाड़ी को चला गया। इस समय उसके साथ 12 शिष्य थे। शुक्रवार का दिन था। ईसा ने अपने 12 शिष्यों के साथ विधिपूर्वक भोजन (Jewish Passover) किया। भोजन करते समय उसके मुख से अचानक शब्द निकले कि इन 12 शिष्यों में से एक शिष्य मुझे धोखा देगा। यह सुन कर शिष्य स्तब्ध हो गये और वे एक दूसरे के मुह की ओर देखने लगे। अन्त में ईसा ने उस शिष्य को स्पष्ट कह दिया जिस पर उसे सन्देह था। वह सन्देह उसी दिन सत्य प्रमाणित हुआ। उसी शिष्य (Judas Iscariot) ने केवल 30 चादी के सिक्कों के प्रलोभन में आकर ईसा को गेथसेमन (Gethsemane) के उद्यान में बन्दी बनवा दिया। गोलगाथा नामक स्थान पर दो डाकुओं के साथ ईसा को 29 ई० में फासी पर लटका दिया गया। इस प्रकार ईसा केवल 33 वर्ष की आयु में ही इस स्वार्थी ससार से सदैव के लिए विदा हो गया। फासी देते समय उसके भाल, वक्षस्थल, दोनों हाथों की हथेलियों व दोनों पावों पर कीलें ठोक दी गई थीं। परन्तु कहा जाता है कि रोम साम्राज्य में मृत्यु-दण्ड देने का यह पाशविक तरीका उस समय आमतौर से प्रचलित था।

ईसा के फासी पर लटकाये जाने के तीन दिन तक उसके अनुयायी हतोत्साह रहे। किन्तु तीन दिन के उपरान्त ही वह निराशा का अन्धकार हट गया जबकि उसके अनुयायियों ने सुना कि ईसा मरा नहीं जीवित है। इंजील में उल्लेखित है कि वह अपने शिष्यों द्वारा स्वर्ग में जाता हुआ देखा गया। रविवार के उपरान्त 40 दिन तक ईसा अपने अनुयायियों के पास आता रहा व उपदेश देता रहा। 40 दिन के उपरान्त वह स्वर्ग चला गया। इस घटना ने उसके अनुयायियों में यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि ईसा मसीह ईश्वर का पुत्र था। अत उसके अनुयायी सहर्ष अपने को ईसाई कहने लगे और उस रविवार को (Easter Sunday) के रूप में मनाने लगे।

धार्मिक सिद्धान्त-शहीदों के रक्त से धर्म का पौधा पुष्पित होता है न कि नष्ट होता है। ईसा फासी पर झूल गया परन्तु उसका धर्म नष्ट नहीं हुआ। उसकी मृत्यु के उसके शिष्यों ने उसके धार्मिक सिद्धान्तों को प्रसारित किया। सन्त पॉल ने इस धर्म

को तन्मयता से प्रसारित किया। उसके प्रयत्नों से यह धर्म रोम व सीरिया आदि स्थानों में फैल गया और सहस्रों नर-नारी इस धर्म के अनुयायी हो गये। यहा तक कि रोम साम्राज्य में तो ईसाई धर्म कान्सटेंटाइन (Constantine) द्वारा 313 ईसवी में राज-धर्म घोषित कर दिया गया। वास्तव में देखा जाय तो ईसाई-धर्म एक उस नदी के तुल्य है जिसमें कई सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। इस धर्म में मौलिकता का अभाव है। जो धर्म उस समय प्रचलित थे, उनके सिद्धातों से ही ईसा प्रभावित था। इसीलिए उसने जूडा धर्म से इसके मौलिक सिद्धान्त लिए। हिब्रू जाति का 'ओल्ड टेस्टामेंट' इसका आधार बना। इसके अलावा ईसा ने नैतिकता के सिद्धान्त भी मूलत हिब्रू धर्माधिकारियों से ही ग्रहण किये। इन सब को आधार मानकर ईसा ने अपने मत के कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1 ईसा का आदेश था कि हमको परमात्मा तथा सृष्टि से समस्त जीवों से प्यार करना चाहिए। उसने सामाजिक समानता पर जोर दिया।

2 वह मनुष्य के सच्चरित्र तथा सद्व्यवहार पर अधिक जोर देता था।

3 उसका कथन था कि ईश्वर एक है और हम सब जीव उसकी सन्तान हैं। वह सर्ववत्सल एव निष्पक्ष है।

4 व्यक्तिगत सम्पदा और सचय तथा विशेषाधिकारों की उसने कटु आलोचना की। सरमन आफ दी माउन्ट में वह कहता है कि ''यदि तुम गरीब हो तो धन्य हो।'' उसका कथन है कि सुई के छिद्र से ऊट का निकालना सभव है परन्तु ईश्वर के राज्य में धनी पुरुष का प्रवेश पाना सभव नहीं।

5 ईसा का कहना था कि बुरे मनुष्य को हेय मत समझो, उसकी बुराई से घृणा करो। उसके आघात का उत्तर करुणा से दो।

6 उसका कहना था कि मैं मसीह (Messiah) (सरक्षक) हू और सर्व शक्तिमान परम-पिता परमात्मा की ओर से आपका (यहूदियों का) मार्ग प्रदर्शित करने इस पृथ्वी पर भेजा गया हूँ।

7 ईसा सासारिक बातों को घृणा की दृष्टि से देखता था और आध्यात्मिकता पर अधिक जोर देता था।

8 उसने जनसाधारण के समक्ष परमात्मा का राज्य (Kingdom of God) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसने लोगों को बताया कि एक दिन पृथ्वी पर परमात्मा का राज्य स्थापित होगा। परन्तु उसके नागरिक वे ही लोग होंगे जो उसकी (परमात्मा की) इच्छा पूरी करेंगे। एच जी वेल्स का कहना है कि स्वर्ग-राज्य का सिद्धान्त जो कि ईसा की शिक्षाओं में प्रमुख है, वास्तव में एक महान् क्रान्तिकारी सिद्धान्तों में से है। उसमें बाह्य कर्मकाण्डों को कोई स्थान नहीं है।

9 किसी भी प्रथा को केवल प्राचीन होने से उपयोगी मत समझो। उसमें समय के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए।

10 ईसा कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखता था। उसका कहना था कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी मृत्यु के पश्चात् कयामत के दिन (Day of Judgement) अपने कार्यों का परमात्मा के समक्ष लेखा देना पड़ता है।

ईसा के ये उपर्युक्त धार्मिक सिद्धान्त "सरमन आन दी माउन्ट" और "फोर गोस्पल्स" (Four Gospels) में उद्धृत हैं। ये फोर गोस्पल्स ईसा की मृत्यु के उपरान्त लिपिबद्ध की गई थीं। ईसा के प्रमुख शिष्यों का कहना है कि इंजील में संकलित सारे उपदेश ईसा के मुख से मुखरित हुए थे। वे स्वयं ईश्वर के पुत्र थे और पृथ्वी पर मानव जाति के कष्टों के निवारण हेतु उनका आविर्भाव हुआ था। ईसा की शिक्षाएं व्यावहारिक तथा सुगमतापूर्वक ग्राह्य हैं। यदि हम उपरोक्त सिद्धान्तों का ध्यान से देखते हैं तो हमें यह स्पष्ट होता है कि ये सिद्धान्त यहूदियों के मनीषियों की शिक्षा पर ही मूल रूप से आधारित थे। ईसामसीह ने उन्हीं शिक्षाओं को इस प्रकार विशद एवं सुग्राह्य बना दिया कि वे यहूदियों तक ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण मानव के लिए अनुकरणीय बन गईं।

धर्म प्रचार के कारण-यद्यपि ईसा स्वार्थी और उससे अनभिज्ञ संसार से शीघ्र ही परलोकवासी हो गया था और उसको अपने विचारों का प्रतिपादन करने का अवसर भी उपलब्ध नहीं हुआ था परन्तु फिर भी उसका धर्म फैला और आज वह विश्व का एक महान् धर्म बना हुआ है। इस धर्म की व्यापकता के कुछ विशेष कारण थे। जब हम इस धर्म का गूढ़ अध्ययन करते हैं तो हमें इसके प्रसार के निम्नलिखित कारण दृष्टिगोचर होते हैं -

1 **ईसा द्वारा जनसाधारण को अपनाना**-ईसा के जन्म के समय राज्यों की सत्ता धनी पुरुषों के हाथों में थी। इसकी स्वयं की जाति (यहूदी) वैभव व सम्पदा में विश्वास रखती थी। पर यह धनी-वर्ग बहुत सीमित था। साधारण लोगों व गुलामों की संख्या उससे अधिक थी। अन्त में दोनों वर्ग उच्च वर्ग के अत्याचार व शोषण से तंग आ चुके थे। *ईसा ने दौलत को स्वर्ग के मार्ग की बाधा बताया। उसने दीन व पीड़ित* मनुष्यों को गले लगाया। अतः यह स्वाभाविक था कि वे लोग इस नूतन धर्म को सहर्ष अंगीकार करते। इसके अलावा ईसा ने अपने अनुयायियों को विनम्र व अनुशासित रहने का भी उपदेश दिया था। अतः इस शिक्षा से धनी लोग भी प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि उनके दास तो इस धर्म को स्वीकार कर ही रहे हैं, यदि हम भी स्वीकार कर लेंगे तो हमारा हमारे गुलामों के साथ संघर्ष नहीं रहेगा। वे विनम्र व आज्ञाकारी होकर हमारी सेवा स्वयं ही करते रहेंगे।

2 **शिक्षा का प्रसार**-ईसा के समय में शिक्षा दिन पर दिन विकसित होती जा रही थी। लैटिन भाषा जनसाधारण की भाषा बनती जा रही थी। शिक्षा के द्वारा ही मानव-समाज में से अज्ञानता के अन्धकार को दूर किया जा सकता है। ईसा ने अपने धार्मिक सिद्धान्त लैटिन भाषा में प्रकाशित किये। यह यूनानी भाषा जैसी सरल एवं सुबोध भाषा थी। इसके अतिरिक्त इस भाषा में कई ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके थे। इस कारण जनसाधारण को ईसा के धार्मिक सिद्धांत समझने व ग्रहण करने में कठिनाई नहीं हुई।

3 **ईसा का व्यक्तित्व**-ईसा एक प्रभावशाली व्यक्ति था। वह अपने भावों को सरल एवं सादे ढंग से कहानियों के रूप में जनसाधारण के समक्ष रखता था। इसके अलावा उसका कहने का ढंग बड़ा ही मोहक था। श्रोता लोग उसके भावों की अभिव्यक्ति पर मुग्ध हो जाते थे। वह मनुष्यों का हृदय टटोलता था और वह उनके कार्य व इच्छाओं

के आधार के पीछे जाता था। इसके अतिरिक्त उसके हृदय में दीन मनुष्यों के लिए असीम प्यार था। उसके सम्भाषण में शोषण से उत्पीड़ित मनुष्यों की चित्कार थी। अत मनुष्य उसके प्रभाव में शीघ्रता से आ जाते थे। इसके अलावा प० नेहरू के शब्दों में **वह एक पैदायशी विद्रोही था**'। वह तत्कालीन विद्यमान परिस्थितियों को बदलने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था। अत वह तन्मयता तथा दृढ़ निश्चय के साथ अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता रहा और शनै शनै जनता उसकी अनुयायी होने लगी। इसके अलावा ईसा के उपदेश मुख्यत नैतिकता पर आधारित थे। अपनी शिक्षाओं में उसने ईश्वर और मनुष्य का तथा मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। यह सही है कि प्रारंभ में उसकी शिक्षाए यहूदियों के पूर्वगामी मनीषियों पर ही आधारित थीं, परन्तु बाद में उसने अपनी शिक्षाओं को इतना विशद तथा व्यापक बना दिया कि वे शिक्षाए केवल यहूदियों तक ही सीमित न रह कर समस्त मानव-जाति के लिए बन गईं।

4 **रोम साम्राज्य में शाति तथा वहा के सम्राटों का सहयोग**-शाति स्थापना से ही राज्यों में विकास व धार्मिक सुधार सम्भव होते हैं। रोम साम्राज्य आगस्टस (Augustus) के शासनकाल से ही शाति का अनुभव कर रहा था। अत इस शाति काल से ईसाई धर्म प्रचारकों ने लाभ उठाया। वे शान्त वातावरण में अपने धर्म का प्रचार करते रहे। 42 ई० से पीटर तथा जॉन ने रोम जाकर अपने मत का प्रचार करना आरभ किया। परन्तु ईसाई धर्म के बढ़ते प्रभाव से रोम शासक सशकित हो गये। वे नहीं चाहते थे कि रोमवासी उनकी उपासना करना छोड़ दें। अत 64 ई० में पीटर की हत्या करदी गई। इसके उपरान्त पॉल इटली में धर्म के प्रचार के लिए आया। उसने नीरो (Nero) सम्राट की निन्दा की। फलस्वरूप वह भी फासी पर लटका दिया गया। उसने भी नीरो के शासन की कटु आलोचना की थी और उसके शासन को शैतान का राज्य बताया था।

ईसाइयों पर रोमन सम्राटों के अत्याचार तीसरी सदी तक चलते रहे। अन्त में 311 ई० में रोमन सम्राट गैलेरियस (Galerius) ने ईसाइयों के प्रति उदार रवैया अपनाया तथा उन्हें कुछ सुविधाए भी प्रदान कीं। 312 ई० में कान्सटेन्टाइन (Constantine) ने मिलन के आदेश (Edict of Milan) से ईसाइयों को और सुविधा दे दी और 313 ई० में उसे राज-धर्म के रूप में स्वीकार किया और सम्राट थियोडोसियस (Theodosius) ने 319 ई० में इस धर्म का और भी सिक्का जमा दिया। यही कारण था कि रोम ईसाई धर्म का केन्द्र स्थल बन गया।

5 **पादरियों का त्याग व बलिदान**—ईसा स्वय तो अपने मत का प्रचार करने के लिए जीवित नहीं रहा। उसका धर्म तो उसके अनुयायियों द्वारा ही प्रसारित किया गया था। इस धर्म के पादरियों ने सासारिक सुखों को लात मार कर व दारुण कठिनाइयाँ सहन करते हुए घर-घर जाकर इस धर्म का प्रचार किया। चाहे इन धर्म प्रचारकों को अग्नि देव के भेंट चढ़ना पड़ा, परन्तु वे अपने सिद्धान्त से टस से मस न हुए। वास्तव में जब कोई भी मनुष्य अपने प्राणों की बाजी लगाकर किसी कार्य को हाथ में लेता है तो दुनियाँ की कोई शक्ति उसे अपने उद्देश्य की पूर्ति से नहीं रोक सकती है। इसी प्रकार चाहे सन्त पाल और सन्त पीटर रोम के शासकों द्वारा मौत के घाट

गये हों, पर उन शहीदों का रक्त धर्म प्रसार में प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहा। सन्त पाल के विषय में एच जी वेल्स लिखता है कि वह एक महान् विद्वान, परिश्रमी तथा धार्मिक आन्दोलनों में गहरी उत्कण्ठा से रुचि रखने वाला था। यह सन्त पाल ही था जिसने कि यहूदियों के धार्मिक विचारों को विश्व के महान् धर्म के अनुकूल बनाया।

6 प्राचीन मूर्ति पूजक धर्मों की समाप्ति-ईसा के जन्म के समय प्राचीन काल से चले आ रहे मूर्ति पूजक धर्म विनाश के गर्त में निपातित हो रहे थे। जनसाधारण का भगवान के साकार रूप में विश्वास नहीं रहा था। इस कारण भी ईसा के उपदेश जन साधारण पर शीघ्र ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए। इसके अलावा रोमन प्रजा को उनके सम्राट उनकी उपासना करने को बाध्य करते थे। रोमन लोग इसको अब उचित नहीं समझते थे। इस कारण भी उन्होंने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया।

7 ईसाई धर्म सुखद भविष्य की कल्पना करता है-ईसाई धर्म में निराशा को स्थान नहीं है। वह अपने अनुयायियों के समक्ष उस लोक (Kingdom of God) की सुन्दर कल्पना करता है। यह धर्म पारलौकिक सुख प्रत्येक प्राणी को सुलभ बताता है। ईश्वर के राज्य का स्वरूप प्रस्तुत करते ईसा कहता था कि यह राज्य न छोटा होगा और न बड़ा। इसमें न धनी होंगे और न निर्धन। सामाजिक असमानता तथा आर्थिक विषमता उस राज्य में व्याप्त नहीं होगी। सभी मनुष्य समान व उदार वृत्ति के होंगे। एक दूसरे की सहायता करने वाले होंगे। इस प्रकार के सुखद राज्य के प्रलोभन में आकर जनसाधारण ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगा।

8 ईसाई धर्म का मानवतावादी दृष्टिकोण-ईसा ने अपने धर्म में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है। उसने ईश्वर को परम-पिता के रूप में चित्रित किया तथा मानव जाति को उसकी सन्तान के रूप में। इस दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ कि मानव जाति में समानता तथा बन्धुत्व की भावना जागृत हुई और जन-साधारण ने सहर्ष इस धर्म को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया।

9 स्त्री-समाज को समान धार्मिक सुविधाएं-ईसा के समय मिथ्राइज्म में स्त्रियों को समानता का अधिकार प्राप्त नहीं था। स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखा जाता था। इसके विपरीत ईसाई धर्म ने उनको प्रत्येक क्षेत्र में समानता का अधिकार दिया। इसके फलस्वरूप स्त्री-समाज भी इस धर्म के प्रति आकर्षित हुआ।

ईसा का वास्तविक रूप तथा उसके धर्म का प्रभाव-नि सन्देह यह सत्य है कि ईसा विश्व के अन्य धर्म प्रवर्तकों की भांति एक उच्च धर्म प्रवर्तक था। उसका त्याग व उसकी सेवायें इतिहास में स्मरणीय हैं और भविष्य में रहेंगी। ईसा भी महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी तथा मुहम्मद साहब के तुल्य एक धर्म प्रवर्तक था और वह मानव समाज का आदर का पात्र है।

जो धर्म आज विश्व का एक महान् धर्म बना हुआ है, उस धर्म के प्रतिपादन से उस समय का समाज प्रभावित हो, यह स्वाभाविक था। इस धर्म के प्रचार ने पाश्चात्य ...ों के समक्ष एक नवीन संस्कृति व सभ्यता प्रस्तुत की। शनै शनै यह धर्म पाश्चात्य ... अपना प्रभाव जमाता रहा और ग्यारहवीं शताब्दी के काल में तो इस धर्म ने

समस्त यूरोप का मानचित्र ही परिवर्तित कर दिया। प्राचीन सस्कृति व सभ्यता इस नवीन धर्म के फेर में विलीन हो गई और एक नवीन सभ्यता का प्रचण्ड मार्तण्ड उदय हुआ।

यह सत्य है कि यह धर्म सब प्राचीन बुराइयों का तो निराकरण नहीं कर सका, पर फिर भी तत्कालीन समाज के कुछ अवगुणों को दूर करने में यह सफल अवश्य हुआ। यद्यपि ईसाई धर्म के प्रसार से शासक अब परमात्मा तुल्य नहीं रहे परन्तु उनके अधिकारों में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। इतिहास जेकॉइस पिरेनी का कहना है कि इसके विपरीत इस धर्म ने शासकों में दैवी-सिद्धात को जन्म दिया। गुलामों के साथ वैसा निष्ठुर व्यवहार अब न रहा। गुलाम-प्रथा भी उतने जोरों पर न रही। स्त्रियों की दशा में आशातीत सुधार हुआ।

यद्यपि यह धर्म वर्ग असमानता को तो सर्वथा नहीं हटा सका, पर यह सत्य है कि जनसाधारण को विकास के रगमच पर इस धर्म ने अवश्य ला दिया। मध्यम-वर्ग अब तुच्छ कोटि का न रहा। जीवन को उन्नत एव विकसित करने के अवसर जनसाधारण को भी उपलपब्ध होने लगे। बन्धुत्व की भावना से मानव- समाज जाग्रत हो उठा।

इस धर्म के प्रादुर्भाव से शासन व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। प्रत्येक प्रान्त में 'द्वैत-शासन' की स्थापना हो गई। प्रान्तपति की नियुक्ति शासक से होती थी और पादरियों की नियुक्ति पोप करता था। वे अपने-अपने अधिकारों में तो स्वतन्त्र थे। धर्माधिकारी यदाकदा राज्यकार्यों में भी हस्तक्षेप कर बैठते थे। इससे शासन में कई खराबिया घर कर गईं।

नवीन सस्कृति व नवीन सभ्यता के विकास के साथ मनुष्यों की विचारधारा ने भी नवीनता का परिधान धारण किया। कलाकार अपने नूतन विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए नवीन शैली की कलापूर्ण रचनायें रचने लगे। हेज व मून लिखते हैं, "इसने सामाजिक सस्थाओं, कला और साहित्य पर पूर्ण प्रभाव दिखाया।" पादरी लोग धार्मिक ग्रन्थ रचकर अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे। शिल्पी ईसा और मरियम की सुन्दर मूर्तिया बनाकर अपनी धार्मिक श्रद्धा का आभास देने लगे। रोम का साम्राज्य सुन्दर एव भव्य गिरजाघरों से अलकृत हो उठा। इस प्रकार से इस नवीन धर्म ने कला को भी उन्नत एव विकसित करने में अपना अपूर्व सहयोग प्रदान किया।

ईसाई धर्म की समालोचना–विश्व में आज यह धर्म सर्व व्यापक है तथा अति प्रभावशाली है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह धर्म पूर्ण रूपेण मौलिक है। इस धर्म पर सर्वाधिक प्रभाव यहूदियों के धार्मिक विचारों का पड़ा है और यहूदियों को मिश्र से आया माना जाता है। इस कारण इस धर्म पर मिस्र का भी प्रभाव पड़ा है। यहूदी व्यापारी होने के कारण भूमध्यसागर पर बसे यूनानियों के भी सम्पर्क में आते थे। अत यूनान का भी इस धर्म पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कई इतिहासकारों की ऐसी भी मान्यता है कि ईसा भारत व तिब्बत भी आया था। इस प्रकार उसके धार्मिक विचारों पर महात्मा बुद्ध व पारसी धर्म का भी प्रभाव पड़ा। इसलिए डॉ० राधाकृष्णन लिखते

हैं कि ईसाई धर्म का हृदय तो पूर्वीय है, इसका मस्तिष्क आत्मविद्या है, इसका शरीर पादरी सम्बन्धी, संगठन यूनानी व रोमन है। इस कथन का समर्थन करते हुए प्रो० वर्नर जेगर लिखता है, ''ये यूनानी ही थे जिन्होंने ईसाई धर्म को सिद्धान्त रूप में परिणित किया और ईसाई धर्म का सैद्धान्तिक इतिहास भी यूनानी संस्कृति पर ही व्यवस्थित किया गया।'' आज के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ शूमा (Schuman) ने अपनी 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' (International Politics) में लिखा है, ''नवीन नैतिक प्रेम, साधु वृत्ति व विश्व-बन्धुत्व जिनका प्रतिपादन नजारथ के ईसा ने किया था, इखनेतन, बुद्ध व कन्फूशियस में भी विद्यमान थे।'' इससे स्पष्ट है कि ईसाई धर्म भी अपने में सर्वथा मौलिक नहीं था वरन् उससे पूर्व प्रचलित अन्य धर्मों से भी प्रभावित था।

ईसाई चर्च का संगठन

ईसाई धर्म के प्रचार में प्रचारकों (Apostles) तथा चर्च-संगठन का सर्वाधिक हाथ रहा है। इस धर्म के प्रचारकों व अनुयायियों को सर्वाधिक दुःख रोम-साम्राज्य में ही उठाने पड़े। परन्तु चौथी शताब्दी का प्रारंभ उनके लिए शुभ रहा। रोमन सम्राट कान्स्टेन्टाइन (Constantine) ने इसे राज-धर्म घोषित कर दिया। मिलान की राज-आज्ञा के उपरान्त यह धर्म रोम साम्राज्य में अति तीव्रता से प्रसारित हुआ। रोम साम्राज्य की राजधानी रोम (Rome) को अपना केन्द्र बना कर रोमन कैथोलिक (सार्वदेशिक) चर्च ने पृथ्वी पर 'ईश्वर का साम्राज्य' (Kingdom of God) स्थापित करने का प्रयास किया। प्रचारकों ने रोमन साम्राज्य की राजधानी रोम को ही रोमन चर्च की राजधानी बनाई और धर्म के सर्वोच्चाधिकारी पोप (Pope) को यहीं रखा। समस्त विश्व की रोमन चर्च इस पोप के आदेशों के अनुसार ही कार्य करती हैं।

पोप (Pope)-यह कैथोलिक धर्म का सर्वोच्च अधिकारी होता है। इसका केन्द्र रोम ही है। सन्त पीटर ने सर्व-प्रथम इस पद को प्राप्त किया था। पोप आज भी समस्त रोमन गिरजाघरों का स्वामी है। रोम में ईसाई धर्म के प्रबल हो जाने के उपरान्त पोप का पश्चिमी यूरोप में प्रभाव बढ़ने लगा। उसका यह प्रभाव इतना बढ़ा कि वह धर्म का ही सर्वोच्च बन होकर राजनीति में भी सर्वोच्च हो गया। यूरोप के ईसाई सम्राट उसके इशारों पर नाचने लगे। जिसे चाहता वह सम्राट बनाता, जिसे चाहता वह पदच्युत कर देता। परन्तु राजनीति में उसकी यह राजनीतिक प्रभुता 15वीं सदी तक ही रही और आज वह केवल धर्म के क्षेत्र में ही सर्वोच्च रह गया है। इसका चुनाव कार्डिनल्स करते हैं और वह आजन्म के लिए निर्वाचित किया जाता है। रोम के समीप ही उसका एक छोटा सा स्वतन्त्र राज्य वेटिकन (Vatican) है और केनौसा (Canossa) एक किला है जहा पोप अपना कार्य करता है।

बिशप (Bishop)—पोप का पद सृजित करने से पूर्व वह रोम का बिशप (Bishop of Rome) कहलाता था। बिशप का अर्थ है पादरी समुदाय का नेता। इसका प्रारंभिक रूप 'एपिस्कोपस' (Episcopas) था, जिसका अर्थ था निगरानी करने वाला। पूरे प्रदेश के ईसाई समुदायों को बिशप की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। प्रारंभ में जब रोमन सम्राट ईसाई धर्म के विरोधी थे तब कहीं गिरजाघर नहीं होते थे। किसी भी ईसाई के

घर में गुप्त रूप से सभा करली जाती थी और उसका अध्यक्ष बिशप ही होता था। परन्तु धीरे-धीरे नगरों में कई पूजा-घर स्थापित होने लगे। चौथी सदी से ईसाई उनमें स्वतन्त्र रूप से एकत्रित होने लगे और एक नगर में ही कई चर्चों का निर्माण आरभ हो गया। उन गिरजाघरों की देख-भाल पादरी करते थे। उस एक नगर की समस्त चर्चों की देख-भाल उस बिशप के नेतृत्व में होती थी और उस नगर के समस्त पादरियों को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था। इसका चुनाव उस नगर के पादरियों द्वारा आजन्म के लिए होता था।

डेकन (Deacon)-ज्यों-ज्यों ईसाई धर्म के मतावलबी बढ़ने लगे उनके गिरजाघर भी बढ़ने लगे। इसके साथ बिशपों के कार्य भी बढ़ने लगे। अपने काम को हल्का करने की दृष्टि से बिशप अपने सहायक रखने लगे। बिशप के वे सहायक ही डेकन कहलाने लगे। डेकन शब्द सर्वप्रथम न्यू-टेस्टामेन्ट में मिलता है जिसका अर्थ होता है ''नौकर''। अत इनका कार्य था चर्च में आने वाले दान व अन्य सामान की देख-रेख करना। प्रथम इन्हें कोई वेतन नहीं मिलता था परन्तु बाद में उन्हें वेतन दिया जाने लगा ताकि वे जीविका-उपार्जन की चिन्ता से मुक्त होकर अपना सारा समय चर्च के लिए दे सकें। इनकी नियुक्ति सर्व-प्रथम जेरूसलम में हुई थी।

आर्क-बिशप-जिस प्रकार एक नगर की सारी चर्चें एक बिशप के आधीन होती थीं उसी प्रकार एक प्रान्त की सारी चर्चें एक आर्क-बिशप की आधीन होती हैं। जिस प्रकार एक राज्यपाल अपने प्रान्त के प्रशासन की देख-भाल करता है, उसी प्रकार एक आर्क-बिशप अपने प्रान्त के सारे धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराता था। अत उसका स्थान रोम के एक राज्यपाल के समान ही होता था।

पादरी (Priests)-पैरिश (Parish) चर्च की सबसे छोटी इकाई होती थी। इसका स्वरूप एक गाव के तुल्य होता था और वहा केवल एक ही चर्च होती थी। उस चर्च का अधिकारी पादरी कहलाता था। इसे अपने नगर के बिशप के नेतृत्व में काम करना पड़ता था।

पैट्रिआर्क (Patriarch)-नि सन्देह रोमन साम्राज्य अति विशाल था और उसमें कई विख्यात नगर थे। उनमें पाच नगर अति महत्त्व के माने जाते थे वे थे- रोम, सिकन्दरिया (Alexandria), कुस्तुनतुनिया (Constantinople),ऐण्टिआक (Antioch) और जेरूसलम। रोम में पाल तथा पीटर ने ईसाई धर्म को फैलाने का खास प्रयास किया था और यहीं उन्हें मृत्यु दण्ड की सजा भुगतनी पड़ी थी। उनकी कब्र भी यहीं थीं। इस कारण रोम ईसाई-धर्म का प्रमुख केन्द्रस्थल समझा जाने लगा था। सिकन्दरिया और ऐण्टिआक के चर्च अति सगठित व सम्पन्न समझे जाते थे। जेरूसलम तो इसाई धर्म का उद्गम स्थान ही माना जाता है और कुस्तुनतुनिया तो विशाल रोमन साम्राज्य की कान्सटेन्टाइन के समय ही दूसरी राजधानी बन गया था। अत यहा रोमन सम्राट का प्रतिनिधि बिशप रहता था। इस प्रकार ये पाच नगर ईसाई धर्म के प्रमुख केन्द्र बन गये थे। इन पाचों नगरों के धर्माधिकारियों को पैट्रिआक कहा जाता था। पैट्रिआक की सर्वप्रथम नियुक्ति कुस्तुनतुनिया में हुई थी। वह रोम के सम्राट के प्रति उत्तरदायी था न कि रोम के पोप

के। आठवीं सदी में तो रोम के पोप और कुस्तुनतुनिया के पैट्रिआक के बीच खुली प्रतिद्वन्द्विता आरंभ हो गई। कुस्तुनतुनिया बाइजैन्टाइन (Byzantine) साम्राज्य की राजधानी था और यहा की भाषा यूनानी थी। यूनानी भाषा उस समय लैटिन भाषा से अधिक प्रचलित थी। इस कारण भी कुस्तुनतुनिया का पैट्रिआक रोम के पोप से अधिक शक्तिशाली था। उसका प्रभाव धर्म व राजनीति दोनों में स्थापित हो गया था। उसी के पद के अनुसार बाद में ये चार पैट्रिआक और नियुक्त हुए थे।

कार्डिनल्स (Cardinals) -उपरोक्त धर्माधिकारियों की नियुक्ति तो पोप करता ही था इनके अलावा वह कार्डिनल्स की नियुक्ति भी वही करता था। ये अधिकारी पद की दृष्टि से पोप के उपरान्त ही आते थे। एक प्रकार से वे पोप की सलाहकार समिति का ही निर्माण करते थे और पोप का चुनाव वे करते थे और आज भी करते हैं। दसवीं सदी तक पोप अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लग गये थे। ग्यारहवीं सदी (1059) में पोप निकोल्स द्वितीय (Pope Nicholas II) ने आदेश निकाला कि अब पोप की नियुक्ति में रोम का सम्राट व सामन्त भाग नहीं लेंगे वरन् वह बिशप, पादरी व डेकन द्वारा निर्वाचित होगा। इस प्रकार पोप के निर्वाचन में भाग लेने वाले प्रमुख धर्माधिकारी ही कार्डिनल्स कहलाये।[1]

उपरोक्त धर्माधिकारी लौकिक (Secular) अधिकारियों की श्रेणी में आते थे, क्योंकि वे नित्य-प्रति लोगों के सम्पर्क में आते थे। दूसरी श्रेणी नियमित धर्माधिकारियों (Regular Clergy) की होती थी। इसमें निम्नलिखित धर्माधिकारी होते थे- मठवासी (Monks), सन्यासी (Friars) व मठवासिनी (Nuns)-ये धर्माधिकारी सासारिक जीवन से मुक्ति लेकर एकान्त में बनी आत्मनिर्भर बस्तियों में रहते थे। उन बस्तियों को मठ (Monasteries) या वैरागनियों का मठ (Nunneries) कहते थे। मठों में सन्यासी रहते थे तथा नन्स अपने अलग मठों (Convents) में निवास करती थीं। ये तीनों धर्माधिकारी धर्म का प्रचार करते हुए इधर-उधर घूमा करते थे। खैरात व भिक्षा पर जीवन व्यतीत करते थे। उनके जीवन के नियम निश्चित थे। इसीलिए वे नियमित धर्माधिकारी कहे जाते थे। 13 वीं सदी में वे बहुत विख्यात हो गये। भिखारी (Friars) लोगों को विश्वास दिलाते फिरते थे कि स्वर्ग का राज्य (Kingdom of God) आने वाला है। इसके साथ ही वे रोगी व कोढ़ियों की सेवा-सुश्रुषा करते थे। जन-साधारण को दान देने का उपदेश देते थे। वे गिरजाघरों की बढ़ती सम्पति को धर्म में बाधक समझते थे। ये लोग मठों में एकान्त जीवन व्यतीत करने से जन-साधारण के सम्पर्क में रहना अधिक अच्छा समझते थे। तेरहवीं सदी में ये भिखारी दो श्रेणियों में विभक्त हो गये। असीसी के फ्रान्सिस (Francis of Assisi 1182 1226 A.D) ने अपने अनुयायियों को फ्रासिस्कन (Franciscans) सम्प्रदाय में गठित किया तो दोमिनिकी (Dominic 1170 1221 A.D) ने अपने अनुयायियों को दोमिनिकियों (Dominicians) के सम्प्रदाय में सगठित किया। फ्रान्सिस्की भिक्षुओं तथा

1 'The electing body came to be known as the college of cardinals.

—J H Hayes

[illegible] भिक्षुओं में प्रमुख अन्तर यह था कि डोमिनिकन भिक्षुओं ने धर्म-ग्रन्थ को अपने विचारों का प्रतिपादन करने वाला जबकि फ्रांसिस्कन भिक्षुओं ने [illegible] के।

ईसाइयों के धार्मिक ग्रन्थ

ईसाई धर्म के भी अन्य धर्मों की भाँति कई धार्मिक ग्रन्थ हैं। परन्तु उनमें तीन प्रमुख ग्रन्थ हैं-1 ओल्ड टेस्टामेंट, 2 न्यू टेस्टामेंट और 3 [illegible]। यहाँ हम केवल इन ग्रन्थों पर ही संक्षेप में लिखेंगे।

ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament)-ईसाई मत का प्रादुर्भाव यहूदियों से ही हुआ है। यहूदी प्रारम्भ में खाना बदोश लोग थे। 1400 ईसा पूर्व के आसपास वे [illegible] में बसने आये जो उपजाऊ जोर्डन नदी की घाटी में 'दूध और शहद' के प्रदेश के रूप में विख्यात था। उनके आने के उपरान्त यहाँ भयंकर अकाल पड़ा। [illegible] से मिस्र जाने को बाध्य हो गये। वहाँ के शासकों (फेरोह) ने उन पर भयंकर अत्याचार किये। 1200 ईसा पूर्व वे केनान के 'प्रतिज्ञात प्रदेश' पहुँचे। परन्तु उनकी उनसे भी नहीं बनी। ग्यारहवीं सदी ई० पू० उन्होंने 'इजराइल' देश की स्थापना की। यहाँ उन्हें पुनः संघर्ष करना पड़ा। 930 ई० पू० सोलोमन (Soloman) ने जेरूसलम बसाया और वहीं [illegible] (Jehovah) का भव्य स्वर्ण-मन्दिर बनवाया। यहाँ पर उनके धार्मिक विचारों में विकास हुआ। इस ओल्ड टेस्टामेंट में यहूदियों के विचारण तथा उनके विभिन्न [illegible] के [illegible] का ही संग्रह है। इसीलिए इतिहासकार जे. ई. स्वेन (J E. Swain) ने [illegible] के इतिहास से की है। इस ओल्ड टेस्टामेंट में भजनों का भी संग्रह है। [illegible] समता शेक्सपीयर (Shakespeare) व गोथे (Goethe) की [illegible] से भी की जाती है।

वास्तव में देखा जाय तो हमें प्राचीन हिब्रू लोगों के विषय में जो कुछ भी मिलता है, व्यवहारत वह सब कुछ बाइबिल के पुराने भाग (Old Testament) से ही ज्ञात हुआ है। इसमें सृष्टि की और महा-प्रलय की कहानियां भी वर्णित हैं। यह सुन्दर कविता ज्ञान की सूक्तियों, उद्दीपक नाटकीय घटनाओं और विधान तथा पूजा विषयक उक्तियों से भरी पड़ी है। इसमें महान् हिब्रू धार्मिक गुरुओं, पैगम्बरों, के प्रेरणाप्रद लेख भी हैं। अमौस से लेकर जैरेमियाह तक सब प्रमुख पैगम्बरों ने धनी लोगों को चेतावनी दी है कि वे गरीब लोगों से अनुचित लाभ न उठावें। उन्होंने अपव्यय और विलास से रहित सादा जीवन बिताने का उपदेश दिया। इस ओल्ड टेस्टामेंट के नई टेस्टामेंट के मिल जाने पर ही ईसाइयों का बाइबिल बना है। इसी में यह घोषणा की गई थी कि मानव-जाति का उद्धार करने के लिए एक मसीह का जन्म होगा। यह ग्रन्थ मौलिक रूप से यहूदियों का था, परन्तु अनेक कथन व सिद्धान्त अपने अनुकूल होने के कारण ईसाइयों ने इसे अपना धर्म-ग्रन्थ बना लिया। इसीलिए ईसाइयों को यह विश्वास हो गया था कि उपर्युक्त घोषणा स्वयं ईसा मसीह के जन्म के लिए की गई थी।

ओल्डटेस्टामेंट में उल्लेखित उपर्युक्त धार्मिक एवं शिक्षाप्रद शिक्षाओं के कारण ही इतिहासकार स्वेन ने इसे मानव-जाति द्वारा रचित साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व सुन्दर बताया है।[1]

न्यू टेस्टामेंट (New Testament)-जिस प्रकार ओल्ड टेस्टामेंट यहूदियों का सर्वाधिक आदरणीय ग्रन्थ है उसी प्रकार न्यू-टेस्टामेंट ईसाइयों का सर्वाधिक पूज्य एवं विश्वसनीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का आरंभकर्ता एक प्रकार से हम पॉल (Paul) को मान सकते हैं। वह एशिया माइनर के नगर (Tarsus) का निवासी था। वह एक यहूदी का पुत्र था जो तम्बू बनाने का काम करता था। वह हिब्रू भाषा का तो ज्ञाता था ही परन्तु प्राचीन यूनानी भाषा का भी अच्छा ज्ञान रखता था। 42 ई० में सीरिया के एण्टीओक (Antioch) नगर में सर्व प्रथम 'ईसाई' (Christian) शब्द का प्रयोग हुआ और उसके उपरान्त ही पॉल इटली में इस ईसाई धर्म के प्रचार के लिए आ गया। 62 ई० में जब तक उसे मौत के घाट नहीं उतार दिया गया, वह धर्म का प्रचार करता रहा तथा नगरों में गिरजाघरों की स्थापना करता रहा। अपने प्रदेश के धर्माधिकारियों को वह निरन्तर पत्र (Epistles) लिख कर धर्म के सन्दर्भ में निर्देश देता रहा। उसके द्वारा ये लिखे गये पत्र ही न्यू-टेस्टामेंट (New Testament) के अंश माने जाते हैं।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि न्यू-टेस्टामेंट जन साधारण के समक्ष प्रथम सदी में आई।

---

1 The old Testament is one of the greatest and most beautiful pieces of literature produced by any people of any time"

J.E. Swain

2. "These (letters) form a part of New Testament and are among the first written records of the Christian religion.

A. Magenis and J. C. Appel.

सम्पूर्ण न्यू-टेस्टामेंट की रचना किसी एक व्यक्ति व किसी अमुक काल की नहीं मानी जा सकती। समय-समय पर लिखे गये शिक्षाप्रद लेख इसमें जुड़ते रहे। 50 62 ई० के मध्य लिखे गये पाल के पत्र ही इस ग्रन्थ के महान् अश माने जाते हैं। इसके उपरान्त दूसरी सदी के मध्य में चार गोस्पल (Four Gospels) ईसाई धर्मावलबियों को देखने को मिले। वे निम्नलिखित थे-

1 मैथ्यू (Mathew) का सुसमाचार
2 मार्क (Mark) का सुसमाचार
3 ल्यूक (Luke) का सुसमाचार
4 जान (John) का सुसमाचार

उपर्युक्त चारों के सुसमाचारों को ईसाई धर्मावलबी श्रद्धा एव विश्वास के साथ पढ़ने लगे और इन्ह वे ओल्ड टेस्टामेंट के पूरक समझने लगे। अपने गोस्पल को निरन्तर रखने की दृष्टि से ल्यूक ने 'The Acts of Apostles' और लिखे। इसी प्रकार जॉन ने Book of Revelation' की रचना की। इन सब रचनाओं ने न्यू टेस्टामेंट की विषय-वस्तु में वृद्धि की और उसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

1453 का वर्ष विश्व-इतिहास में अत्यन्त महत्व का माना जाता है। पूर्वी रोम साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार हो गया। इसके परिणामस्वरूप एशिया माइनर के ईसाइयों को वहा से भागना पड़ा। वे इटली के नगरों में आकर बसने लगे। इटली आते समय वे अपना यूनानी साहित्य भी साथ ले आये। उन्होंने इटली निवासियों में यूनानी साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न की। इसी समय हालैण्ड के नगर रोटरडम (Rotterdom) का निवासी इरासमस (Erasmus,1466 1536) यूनानी साहित्य से बहुत प्रभावित हुआ। वह एक प्रतिभाशाली एव स्पष्ट विचारों का व्यक्ति था। उसने यूनानी साहित्य का हृदय से अध्ययन किया और यूनानी भाषा में सर्वप्रथम उसने न्यू-टेस्टामेंट लिखा तथा उसे प्रकाशित कराया। उसने उस समय ईसाई समाज में प्रविष्ट बुराइयों व अन्धविश्वासों की आलोचना अपनी दूसरी पुस्तक (Praise of Jolly) में की।

मानववाद के प्रसार के साथ ही यूरोप में धर्म-सुधार आन्दोलन (Reformation) आरभ हो गया। प्रोटेस्टेंट धर्म ने कई धार्मिक शाखाओं को जन्म दिया। इसके परिणामस्वरूप यूरोप के लोगों के धार्मिक विचार परिवर्तित हुए, परन्तु कट्टर प्रोटेस्टेंट धर्मावलबियों की श्रद्धा न्यू-टेस्टामेंट तथा ओल्ड-टेस्टामेंट में ज्यों की त्यों बनी रही।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ओल्ड-टेस्टामेंट व न्यू-टेस्टामेंट समय-समय धर्म-प्रचारकों की शिक्षाओं के सग्रहित ग्रन्थ ही हैं। इन ग्रन्थों में मूलत धर्माधिकारियों के आचरण के सम्बन्ध में निर्देश हैं। इनमें समय-समय पर परिवर्तन भी होते रहे हैं। आचरण सम्बन्धी बातों के अलावा इनमें अमरत्व, मोक्ष प्राप्ति, ईश्वर के राज्य व ईसा के अमरत्व के सन्दर्भ में भी आलेख हैं। इतिहासकार स्वेन का कहना है कि हालाकि न्यू टेस्टामेंट में ओल्ड टेस्टामेंट की भाति पौराणिक गाथाओं व इतिहास का पूर्ण भण्डार नहीं तथापि

यह जीवन की काल्पनिक व दार्शनिक महान व्याख्या है।[1]

बाइबिल(Bible)—जिस प्रकार हिन्दुओं को वेद व मुसलमानों को कुरान पूज्य है उसी प्रकार ईसाई धर्मावलंबियों को बाइबिल पूज्य है। हालांकि बाइबिल स्वयं ईसा की कृति नहीं है तथापि इसमें उद्घृत दृष्टान्त व शिक्षाएं ईसा के मुख से प्रस्फुटित ही मानी जाती हैं। हिब्रू साहित्य की दूसरी अमूल्य देन बाइबिल ही मानी जाती है। इसमें उन्होंने साहित्यिक रचनाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं का सुन्दर समन्वय कर दिया है। यह भी किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है। इसमें भी विभिन्न पैगम्बरों के आदर्श व शिक्षाएं लिपिबद्ध है। ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) में हिब्रू लोगों की 39 पुस्तकों का योगदान सम्रहित है। उन 39 पुस्तकों का योगदान बाइबिल (Bible) को भी प्राप्त है। इसीलिए बाइबिल को विभिन्न व्यक्तियों द्वारा रचित पुस्तकों का पुस्तकालय कहा गया है।[2] बाइबिल के माध्यम से हमें हिब्रू लोगों का इतिहास तो ज्ञात होता ही है पर साथ में यह यहूदी लोगों व ईसाई धर्मावलंबियों को धार्मिक प्रेरणा व पथ-प्रदर्शन का भी कार्य करती है।

समय-समय पर जिस प्रकार टेस्टामेंट के सन्दर्भ में विचारों का परिवर्तन होता रहा वही बात बाइबिल के सन्दर्भ में कही जा सकती है। पुनर्जागरण के समय अन्ध-विश्वासों की समाप्ति हुई, उसके साथ ही बाइबिल के सन्दर्भ में भी विचारों का शुद्धिकरण होने लगा। प्रथम बाइबिल लेटिन भाषा में ही उपलब्ध थी और लेटिन भाषा जन-साधारण की भाषा उसी प्रकार नहीं थी जिस प्रकार संस्कृत आज भारत में बोल-चाल की भाषा नहीं है। परन्तु पुनर्जागरण व धर्म-सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप बाइबिल का भी अनेक भाषाओं में अनुवाद होने लगा। वह जनसाधारण की समझ की बात हो गई। इस कारण यूरोप का ईसाइ समाज बाइबिल को सही अर्थ में समझने लगा। प्रोटेस्टेंट धर्म की एक शाखा कालविन (Calvinists) थी। इस सम्प्रदाय के लोग पोप विरोधी अवश्य थे परन्तु वे बाइबिल को मोक्ष का एक मात्र साधन समझते थे। मार्टिन लूथर (Martin Luther) पोपवाद का कट्टर शत्रु अवश्य था परन्तु उसने भी एक साल का अज्ञातवास लेकर जर्मन भाषा में 'बाइबिल' का अनुवाद किया था।

बाइबिल को अधिक लोक-प्रिय बनाने की दृष्टि से गुटनबर्ग (Gutenberg) ने बाइबिल का 1450 में सुन्दर प्रकाशन किया जबकि धर्माधिकारी मठों में रहते हुए इसकी प्रतिया करते रहे। जब बाइबिल जनसाधारण को आसानी से मिलने लगी तो मानववाद (Humanitarianism) व धर्म-सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप बाइबिल के सन्दर्भ में कुछ प्रश्न उठने लगे। 1545 में ट्रेन्ट की काउन्सिल (Council of Trent) हुई और उसमें तय किया गया कि समस्त कैथोलिक न्यू लैटिन में अनुवादित बाइबिल को ही

---

1 While the New Testament has not a rich store of folklore and history like that contained in the old testament, it is a great imaginative and philosophical interpretation of life
J.E. Swain

2. A. Magenis and J.C. Appel A History of the World p 50
This is really a library of books written by a number of men."

विश्वसनीय समझे। उसका नाम 'बाइबिल का लैटिन भाषान्तर' (Vulgate Version) रखा गया। विचारों में मत-भेद होते हुए भी वाईक्लिफ (Wycliffe) ने उद्घोषित किया था कि **बाइबिल ही मानव के आध्यात्मिक चिन्तन व आचरण की एक मात्र मार्ग दर्शिका होनी चाहिए।''**[1] अत स्पष्ट है कि ईसाई धर्मावलम्बियों के जीवन में बाइबिल कितनी महत्त्वपूर्ण है।

ईसाई धर्म की देन

जब पश्चिमी एशिया में ईसाई धर्म का बीज अंकुरित हो रहा था उस समय रोम साम्राज्य स्थापित हो चुका था। आगस्टस के शासन ने स्वर्ण-काल का रूप अवश्य धारण कर लिया था परन्तु वहा सामन्तवाद प्रबल रूप में विद्यमान था। रोमन सम्राट अपनी पूजा करा कर बहुदेववाद का बढ़ावा दे रहे थे। रोमन सामन्त गरीब किसानों का शोषण कर रहे थे तथा गुलामों को नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर रहे थे। परन्तु ईसाई धर्म के पैगम्बरों ने इटली के नगरों में घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार तो किया ही पर साथ में अपने धार्मिक सिद्धान्तों से बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद (Monothesim) का प्रचार किया। गुलामो को दासत्व से मुक्त करा कर उन्हें समाज मे समानता दिलवाई। किसानों को शोषण से बचाने का प्रयास किया।

स्त्रियों की दशा में सुधार-ईसाई धर्म के प्रादुर्भाव से पूर्व यूरोप म स्त्रियो को भी सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं था। सामन्त व धनी पुरुष स्त्रियों को अपनी विलासिता की सहचरी मानते थे। परन्तु ईसाई धर्म ने विवाह को एक सामाजिक बन्धन निर्धारित करके स्त्रियो को समाज व परिवार में आदर का स्थान दिलवाया।

अन्धविश्वासों का निवारण-उपरोक्त विवरण से यह भी स्पष्ट है कि ईसाई धर्म के उद्भव से पूर्व यूरोप में अशिक्षा का बोलबाला था। शिक्षा के अभाव में लोग अन्धविश्वासी थे। गुलामों को बलि चढ़ाने में भी काम लिया जाता था। परन्तु इस धर्म के प्रसार से शिक्षा का भी विकास हुआ और अन्धविश्वासों का भी निवारण हुआ।

कला के क्षेत्र में विकास-हालाकि आगस्टस के शासन-काल में रोम को भव्य भवनों से अलकृत किया गया था। परन्तु ईसाई धर्म के प्रसार के उपरान्त गिरजाघरों के निर्माण स स्थापत्य-कला में जो निखार आया, वह अनुपम था। उस शैली पर आज भी विश्व में अनेक भवन विद्यमान हैं तथा नव-निर्मित हो रहे हैं। चित्र-कला के क्षेत्र में पच्चीकारी (Mosaic) शैली का उद्भव हुआ। तत्कालीन पच्चीकारी शैली में चित्रित चित्र आज भी दर्शनीय बने हुए हैं।

साहित्य के क्षेत्र में देन-ईसाई धर्म के प्रसार ने जिस प्रकार कला के क्षेत्र को प्रभावित किया उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र को भी प्रभावित किया। लेटिन भाषा के साथ-साथ रोम यूनानी साहित्य का भी केन्द्र हो गया। बाइबिल को जनसाधारण के हाथों में पहुचाने की दृष्टि से अनेक भाषाओं का विकास हुआ। जर्मन, फ्रेंच व अंग्रेजी भाषाओं के प्रसार में ईसाई धर्म का बड़ा योगदान रहा है।

---

1 John Wycliffe declared that let Bible be the sole guide of men s spiritual thoughts and conduct.

राजनीतिक क्षेत्र में देन–राजनीतिक क्षेत्र में इस धर्म की महान् देन रही है। सरल एव परिश्रमी तथा त्यागी धर्म-प्रचारकों के प्रयास के कारण यह धर्म विश्व के कोने-कोने में फैल गया। आज यह विश्व का प्रथम धर्म है। इस कारण ईसाई धर्मावलबियों के देश एकता के सूत्र में बध गये। इस धर्म के कारण विश्व-बधुत्व की भावना सृजित हुई। राजतन्त्र के स्थान पर इसने प्रजातन्त्र का प्रसार किया। धर्म प्रसार करने के साथ-साथ धर्म-प्रचारको ने एशिया व अफ्रीका में साम्राज्यवाद का प्रसार भी किया। ईसाइयों ने अपने का विश्व में सर्वश्रेष्ठ समझा और एशिया व अफ्रीका के पिछड़े लोगों का उद्धार करना (White men s burden) अपना परम-कर्त्तव्य समझा। इस धारणा का परिणाम यह निकला कि यूरोप के शक्तिशाली राज्य एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व अमेरिका महाद्वीपो में छा गये। यदि इस धर्म ने यूरोप में गुलाम प्रथा को समाप्त कर सामाजिक समानता स्थापित की तो विश्व के पिछड़े व निर्बल देशा का गुलाम बना कर इसने उनके निवासियों के साथ गुलामा का सा व्यवहार भी किया तथा वहा के दीन मनुष्यो को अपना अनुयायी बना कर वहा अपनी राजनीतिक प्रभुता को प्रबल बनाया।

प्रश्न

1 ईसा कौन था ? उसके धार्मिक विचारों को समझाइये।
Who was Christ ? Explain his religious beliefs

2 ईसाई धर्म के शीघ्र प्रसार के कारणों का पर्यवेक्षण कीजिए।
Discuss the causes of the rapid spread of Christianity

3 'यह स्पष्ट है कि ईसा जन्म से देशद्रोही था जो विद्यमान परिस्थितियों को सहन नहीं कर सका और उनको उसने बदल दिया।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
It is clear that Jesus was a born rebel who could not tolerate the existing conditions and was out to change them , Elucidate

4 चर्च-सगठन पर प्रकाश डालिए। इस सगठन ने ईसाई-धर्म के प्रसार में किस प्रकार योगदान दिया ?
Throw some light on the Church Organisation How did this organisation help this religion in its rapid spread ?

5 ईसाई धर्म में ओल्ड टेस्टामेंट और न्यू-टेस्टामेंट का महत्त्व समझाइये।
Explain the importance of Old Testament and New Testament in Christianity

8

इस्लाम का उत्कर्ष व अरबों की सभ्यता

"इस्लाम धर्म ने साम्यवाद की भाँति ईसाई धर्म की समकालीन बुराइयों को पृथक करने के लिए एक सुधार की व्यवस्था कर अपना मार्ग प्रशस्त किया।"

–आरनोल्ड जे टायनबी

प्रस्तावना–विश्व के दूसरे महान् इस्लाम धर्म का उदय अरब प्रायद्वीप से हुआ है। यह एशिया महाद्वीप के तीन महाद्वीपों म सबसे महान् है और एशिया के दक्षिण पश्चिम म स्थित है। अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर पूर्व मे स्थित होने के कारण यह पश्चिम में लाल सागर, दक्षिण मे हिन्द महासागार तथा पूव में फारस की खाड़ी से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में राक व फारस देश है। जैरुसलम नगर भी इसके उत्तर म ही स्थित है। इराक (मैसोपोटामिया) में असीरियन व बेबीलोनिया सभ्यता का विकास हुआ तथा फारस मे जरतुस्त ने फारसी धर्म का प्रवर्त्तन किया। इसी प्रकार जैरुसलम नगर विश्व के सबसे महान् ईसाई धर्म का उद्गम स्थान रहा। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस्लाम धर्म का जन्म भी ईसाई धर्म की भाति भूमध्यसागर के पूर्व की ओर उस प्रदेश म हुआ जो पूर्णत रेगिस्तानी है। यहा वर्षा की औसत 5 से 10 इच है। अत आर्थिक दृष्टि से यह प्रदेश सर्वथा पिछड़ा हुआ था। देखा जाय तो इस्लाम धर्म के प्रसार से पूर्व अरब के लोग सब क्षेत्रों मे पिछड़े हुए थे।

इस्लाम के उदय के पूर्व का अरबवासियों का जीवन

अरब सेमेटिक जाति के थे। उन्होंने अपने अनेक कबीले बना रखे थे। मरुस्थल में वे बहुत दूर तक भ्रमण नहीं कर सकते थे। इसीलिए उनमें प्रादेशिक भावना थी। एक कबीले का दूसरे कबीले से बहुधा संघर्ष होता रहता था। प्रत्येक कबीले का सरदार योग्यता के आधार पर नेतृत्व प्राप्त करता था तथा उसके आदेश को उसके सब सदस्यों को मानना पड़ता था। जनसख्या का 1/6 भाग समुद्र तटीय प्रदेशों के छोटे-छोटे नगरों में रहता था। यहा के निवासी स्थल मार्ग द्वारा सीरिया व लाल सागर के जल-मार्ग द्वारा अन्य देशों से व्यापार करते थे। कबीलों का सामाजिक जीवन अत्यन्त रोचक था। प्रणय और पारस्परिक द्वन्द्व प्रत्येक के लिए लगभग अनिवार्य था। स्त्री को विवाहित होने के पश्चात् आम तौर पर सम्पत्ति माना जाता था। अरब में पुरुषों की कमी होने के कारण बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। अरब सहस्रों देवी-देवताओं में विश्वास करते थे। प्रत्येक कबीले का अलग देवता होता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म के क्षेत्र में यहा मिस्र, मैसोपोटामिया व यहूदियों की धार्मिक परम्पराए विद्यमान थीं। वे प्रकृति की भी उपासना करते थे। अन्ध श्रद्धा इतनी थी कि वे झरने, वृक्ष व पत्थरों की भी पूजा करते थे। वे प्रेतों से डरे रह कर उनकी पूजा करते थे। मक्का के एक काला पत्थर

(काबा) की आराधना के लिए समस्त अरब से यात्री आते थे। इस काबा की उपासना ने ही उन लड़ाकू व खूखार अरबवासियो मे कुछ एकता उत्पन्न कर रखी थी। उन्होंने आपस में यह समझौता कर लिया था कि काबा की यात्रा पर आने के दिनों आपस में शान्ति रखेंगे। इसीलिए काबा के देवताओं को वे शान्ति के देवता (Gods of Truce) कहते थे। समस्त अरब के यात्रियों के आने से मक्का (Mecca) अरब का एक पवित्र एव महान् नगर बन गया था। मक्का का शासक उस समय कुरेशी (Qurashi) खानदान का था। काबा में यात्रियो से मिलने वाले चढ़ावे से कुरेशी की आर्थिक अवस्था अच्छी थी।

मुहम्मद साहब का जीवन–असभ्य अरबों को अन्धविश्वासों से मुक्त कर एकता के सूत्र मे बाधने का श्रेय मुहम्मद साहब को है। उनका जन्म वीच के अनुसार 570 ईसवी मे मक्का में हुआ। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला तथा माता का नाम अमीना (Amina) था। इनके पिता कुरेशी जाति के थे। अभाग्यवश इनके जन्म के कुछ मास पूर्व इनके पिता का देहान्त हो गया था और जब ये छ वर्ष के हुए तो इनकी माता भी इस लोक से चल बसी थी। अत इनका पालन-पोषण इनके बाबा अब्दुल मुतालिब (Abdul Muttalib) ने किया। परन्तु उनका देहान्त भी एक वर्ष बाद ही हो गया। अत मुहम्मद साहब की देख-रेख इनके चाचा आबू तालिब (Abu Talib) करने लगे। दयनीय आर्थिक अवस्था होने के कारण बाल्य-काल में इनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। बचपन में वे पशु चराते थे। उन्हें काफिलों के साथ जाने के भी अवसर मिलते थे। इस खानाबदोशी के जीवन में भी वे पूर्णरूप से ईमानदार रहे। इसीलिए वे अमीन (Amin) कहलाने लगे थे। उनकी ईमानदारी के कारण वे एक धनी स्त्री खदीजा (Khadija) के सम्पर्क में आये। 24 वर्ष की आयु में उन्होंने अपने से उम्र में अधिक होते हुए भी खदीजा से शादी करली। खादिजा के साथ विवाह हो जाना उनके जीवन की एक विशेष घटना थी। इस विवाह से उनकी आर्थिक दशा में सुधार हुआ। उन्हें उदर-पूर्ति की चिन्ता न रही। खदीजा से दो पुत्र व कई पुत्रिया हुईं। दोनों पुत्र बाल्यावस्था में ही चल बसे। पुत्री फातिमा (Fatima) सब पुत्रियों में विख्यात हुई। उसका विवाह अली (Ali) के साथ किया गया था। इस विवाह के कारण वे मक्का के धनी लोगों के सम्पर्क में आये। धार्मिक व्यक्ति भी उनका आदर करने लगे। परन्तु जब मुहम्मद साहब को इस बात का पता चला कि ये धर्म के नाम पर ढोंग प्रसारित करते हैं तो उन्हें उनसे घृणा हो गई और वे सच्चे धर्म की खोज करने लगे। चालीस वर्ष की आयु में (610 ई०) उन्हें जिब्रायल नामक फरिश्ता से अल्लाह के संदेश प्राप्त होने आरम्भ हुये। उन्होंने एक नये धर्म का प्रचार करना शुरू किया। मक्का में उनका विरोध बढ़ता गया। वे अपने थोड़े से अनुयायियों के साथ 622 ईसवी में मदीना चले गये। मुसलमानों का हिजरी सवत् इसी समय से आरम्भ होता है। मदीना में उनके अनुयायियों की सख्या बढ़ती गई। मदीना में उनके अनुयायी अन्सार (Ansar) कहलाये। वहा उन्होंने अल्लाह की इबादत के लिए एक मस्जिद बनवाई। धीरे-धीरे उन्होंने मदीने में अपनी सरकार बना ली। इससे उन्होंने वहा के यहूदियों को मुसलमान सुगमता से बना लिया। इसके उपरान्त उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ

मक्का पर (630 ई०) आक्रमण किया। मक्कावासियों को युद्ध में परास्त कर उन्होंने वहा इस्लाम का झडा गाड़ दिया। मक्का व मदीना के निवासियों के सघर्ष म अन्त मे मदीना की विजय हुई। मुहम्मद साहब मक्का लौट आये। इस प्रकार मुहम्मद साहब ने अरब मे इस्लाम (परमात्मा के साथ सन्धि) धर्म का बीज आरोपित किया और कालान्तर मे वह विश्व का महान् धर्म बन गया। उनकी मृत्यु 632 ईसवी म हुई।

इस्लाम की भावना-इस धर्म की प्रारम्भिक भावना का ज्ञान हमें अबू बक्र के एक सदेश से होता है। जब उसने अपनी सेना सीरिया के विरुद्ध भजी थी ता उसन अपने सैनिकों को एक सदश भेजा था। उस सदेश का उल्लेख इतिहासकार गिबन (Gibbon) ने किया है। उसका आशय है-"परमदयालु की कृपा से हम समस्त मुसलमानों के सुख तथा स्वास्थ्य की मगल कामना करते हैं। तुम्हें सूचित किया जाता है कि सीरिया प्रदेश को जीतने के लिए और काफिरों को नष्ट करने के लिए भेजा जा रहा है। तुम्हें यह समझ लेना है कि यह धर्म-युद्ध (जिहाद) परमेश्वर की आज्ञा से है। तुम्हें स्मरण रखना है कि तुम अल्लाह के सामने हो, मृत्यु तुम्हारे निकट है और स्वर्ग की तुम्हें आशा है। प्रलय में तुम विश्वास करते हो। अपनी सेनाओं से प्रेम करो। धर्म-युद्ध में कभी पीठ मत दिखाओ।" किन्तु विजयी होने पर स्त्रियों तथा बच्चों का वध न करो। केवल इतने ही पशुओं को मारो जितने कि तुम्हें भोजन के लिए आवश्यकता है। समझौते का ईमानदारी से पालन करो। तुम्हें ऐसे भी लोग मिलेंगे जो मठों में एकान्त जीवन व्यतीत करते हैं और इस भाति परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं। उन्हें तुम मत छेड़ो। कुछ लोग तुम्हें ऐसे भी मिलेंगे जो भिक्षुओं की भाति घुटे सिर हैं और जो मूर्ति पूजा में विश्वास रखते हैं। उनकी खोपड़िया तोड़ दो और उन्हें उस समय तक आश्रय न दो, जब तक वे इस्लाम को स्वीकार न कर लें।"

शिक्षायें-मुहम्मद साहब स्वय को पैगम्बर अथवा खुदा का भेजा हुआ दूत मानते थे। उनका कहना था कि परमात्मा अपना मन्तव्य पैगम्बर के माध्यम से ही व्यक्त करता है और मै उस परमात्मा (अल्लाह) का पैगम्बर हूँ और वह भी अन्तिम पैगम्बर हूँ। उनकी धार्मिक शिक्षाए कुरान में उल्लेखित हैं। कुरान के अनुसार मुहम्मद साहब की शिक्षाए निम्नलिखित है-

1 एकेश्वरवाद-मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियो को कहा कि विश्व म केवल एक परमात्मा (अल्लाह) है। अत मूर्तिपूजकों की धारणा में विश्वास करके अनेक देवी-देवताआ की उपासना मत करा। केवल अल्लाह मे ही अपना विश्वास व्यक्त करो। वह ही सर्वशक्तिमान है।

2 आवागमन के सिद्धान्त में विश्वास-मुहम्मद साहब ने भी आत्मा को अमर माना है। बुरे कर्मवाले को नरक (दोजख) में जाना पड़ता है और अच्छे कर्म करने वाले पर परमात्मा की अनुकम्पा रहती है। इस कारण वह स्वर्ग (बहिश्त) जाता है। इन्सान के मरने के तीन दिन बाद (कयामत का दिन) उसके कर्मों का लेखा-जोखा परमात्मा द्वारा लिया जाता है और उसी दिन उसे स्वर्ग वा नरक भेजने का निर्णय लिया जाता है।

3 जीवन में नैतिकता-इस्लाम धर्म के अनुसार विश्व के सभी मनुष्य 'आदम' की सन्तान है, परन्तु वे दो श्रेणियों में विभक्त है। प्रथम श्रेणी के व्यक्ति अल्लाह के आज्ञाकारी है। उन्हें मुहम्मद साहब ने मुसलमान बताया है। दूसरी श्रेणी मे वे व्यक्ति आते है जो अल्लाह के आज्ञाकारी नहीं हैं। व लोग मुसलमान नहीं होत। किन्तु कुरान म अल्लाह ने व्यक्त किया है कि प्रत्येक व्यक्ति के दिलो के भेद को मै ही जानता हूँ। अत अल्लाह ने अरबनिवासियों को जीवन म नैतिक बने रहने का आदेश उसी प्रकार दिया है जिस प्रकार ईसा ने यहूदियो को दिया था। मुहम्मद साहब ने जीवन में नैतिकता बनाये रखन के लिए वे ही उपदेश दिए है जो कि ईसाई धर्म के 'दस आदेशों' (Ten Commandments of Judaism) में उल्लेखित है। इस्लाम में माता-पिता के प्रति आदर भाव रखन पर जोर दिया गया है तथा जूआ खलना व शराब पीना निन्दनीय बताया है।

4 जीवन में अच्छा व्यवहार-मुहम्मद साहब ने धर्म की व्यावहारिकता पर अधिक जोर दिया है। उन्होंने कहा है कि दार्शनिकों व पुरोहितो के फेर में न पड़कर अपने व्यावहारिक जीवन म अच्छे कर्म करने चाहिए। दु ख-दर्द मे एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए। मनुष्य जाति की सेवा करना ही कुरान मे सर्वश्रेष्ठ उपासना बताई गई है। यदि एक मुसलमान अल्लाह की सभी उपासना नियमित रूप से करता है परन्तु अपने साथियों के साथ वह अच्छा व्यवहार नहीं करता तो अल्लाह उसकी इबादत को मजूर नहीं करता।

5 समाज में समानता-जब मुहम्मद साहब अरब म जन्मे थे उस समय वहा की सामाजिक अवस्था अत्यन्त दयनीय थी। ऊच-नीच का भेद-भाव व्याप्त था। आर्थिक विषमता भयकर रूप स विद्यमान थी। अत मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियो को आदेश दिया कि सब मुसलमान समान है। वे एक अल्लाह के बन्दे हान के नाते भाई-भाई है। जब अल्लाह की निगाह में सब भाई है तो तुम्हें असमानता का व्यवहार करने का क्या अधिकार है ?

मुसलमानों के कुछ कर्तव्य

मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को धार्मिक उपदेश देने के अलावा उनके कुछ कर्तव्य भी निश्चित किए। क्योंकि बिना कर्तव्यपालन क उनका धर्म फलीभूत नहीं हो सकता था। उनके द्वारा निर्धारित कर्तव्यों में से कतिपय निम्नलिखित है-

1 कलमा पढ़ना-प्रथम प्रत्येक मुसलमान को अल्लाह तथा उसके पैगम्बर में पूर्ण आस्था व्यक्त करनी चाहिए। इसको उन्होंने 'कलमा' (Kalma)ए-तौहीद बताया है। कलमे का अर्थ है- अल्लाह (परमात्मा) एक है और मुहम्मद उसका अन्तिम पैगम्बर है (La Ilah illa Allah Muhammad rasul Allah) इस कलमें में विश्वास व्यक्त करन का अर्थ है कि प्रत्येक मुसलमान केवल मात्र एक अल्लाह की इबादत (पूजा) करे और उसके अतिरिक्त अन्य किसी देवी-देवता को उसके समान न समझ।

2 सलात (Salat)-इसका अर्थ है कि प्रत्यक मुसलमान को दिन में पाच बार नमाज पढ़ना चाहिए। प्रत्यक सच्चे मुसलमान को नमाज पढ़न मस्जिद में जाना चाहिए और वहा कुरान के आदेश सुनने चाहिए। कम से कम शुक्रवार को सामूहिक नमाज

पढ़न मस्जिद में अवश्य जाना चाहिए। नमाज को इस्लाम धर्म का स्तभ माना गया है। इसीलिए मुहम्मद साहब ने कहा है कि जिसने नमाज का परित्याग कर दिया है उसने धर्म का विनाश कर दिया। नमाज ही मुसलमानों की वह इबादत है जिसमे वह अल्लाह के आगे झुकता है और उससे लोक-परलोक की सफलता की प्रार्थना करता है।

3 रोजे रखना-वर्ष में एक महीने तक रोजा (उपवास) रखना प्रत्यक मुसलमान का अनिवार्य कर्त्तव्य है। यह उपवास रमजान (Ramzan) के महीने मे रखना पड़ता है। इसम सूर्योदय से सूर्य के छिपन तक कुछ भी खाना-पीना वर्जित रहता है। इसका फल भी अल्लाह द्वारा ही मिलता है।

4 जकात (Zaqqat)-प्रत्येक मुसलमान को गरीबों मे दान बाटना भी आवश्यक बताया है। जकात के अन्तर्गत् प्रत्येक मुसलमान का अपनी आय का ढाई प्रतिशत निर्धनो को दना आवश्यक है।

5 हज (Hajj)-सच्चे मुसलमानों का अन्तिम कर्त्तव्य हज करना बताया है। इसके अन्तर्गत् प्रत्येक मुसलमान का अपन जीवन-काल में कम स कम एक बार मक्का-मदीना की पवित्र यात्रा पर अवश्य जाना चाहिए। परन्तु यदि कोई व्यक्ति आर्थिक कारणों व शारीरिक कठिनाइयों से जाने में असमर्थ हो तो उस हज करना आवश्यक नहीं है।

6 इस्लाम का प्रचार-मुहम्मद साहब न एक सच्चे मुसलमान का कर्त्तव्य इस्लाम का प्रचार करना भी बताया है। उनका कहना है कि इस्लाम की रक्षा व प्रचार तन, मन व धन से करना चाहिए। उन्होंने यहा तक कहा है कि आवश्यकता पड़े तो तलवार के जोर से भी धर्म का प्रचार करो। आगे कहा है, "तुम में से किसी के लिए भी सब प्रकार की अतिरिक्त नमाजें पढ़ने की अपेक्षा युद्ध के मोर्चे पर उपस्थित रहना अधिक अच्छा है।"

कुरान-जिस प्रकार हमने बाइबिल को ईसाइयो का प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ बताया है उसी प्रकार कुरान (Koran) मुसलमानों का प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ है। उपरोक्त धार्मिक शिक्षाए व सच्चे मुसलमान के कर्त्तव्य इसी कुरान व हदीस के आधार पर बताये गये हैं। मुहम्मद साहब के सारे उपदेश इसी ग्रन्थ में सकलित है। एक सच्चे मुसलमान को अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए यह इसमें स्पष्ट किया गया है। जब फरिश्ते जिब्राइल के माध्यम से मुहम्मद साहब का अल्लाह के आदेश मिलना आरभ हो गया तब उनको उनके शिष्यों द्वारा सकलित कर लिया गया। वे सब कुरान में उल्लेखित है।[1] इसीलिए मुहम्मद साहब स्वय ने कहा था, "कुरान तुम्हारे पथ-प्रदर्शक का कार्य करे। वही करो जो यह आदेश देती है। जो इसे स्वीकार नहीं करता-वह इससे अलग रहे।" इस ग्रन्थ में अल्लाह की एकता, मुसलमानो क कर्त्तव्य, उपासना तथा हज सम्बन्धी नियमों का उल्लेख किया गया है। इनके अलावा इसमें विवाह, तलाक व उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम भी दिए गये हैं।

---

1 'The Koran is written in the form of utterances by God himself and it is the Moslem Bibile

—J H. Hayes

हदीस–मुहम्मद ने अपने धर्म को 'इस्लाम' (Islam) नाम दिया जिसका अर्थ है ईश्वर के प्रति *आत्म-समर्पण*। इस्लाम धर्म के अनुयायी 'मुहम्मदी' कहलाये और मुहम्मद स्वय ने जो शिक्षाए अपन अनुयायियों (मुहम्मदी) को दीं वे 'हदीस' में सगृहित हैं। अत 'हदीस' भी कुरान की भाति ही एक धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है।

इस्लाम धर्म की विशेषताए–हालाकि इस्लाम धर्म मौलिक नहीं है। इस पर हिब्रू सस्कारों व ईसाई मत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, तथापि इस धर्म की कुछ निजी विशेषताए हैं। उनमें से कतिपय निम्नलिखित है-

1 इस्लाम धर्म पूर्वी धर्मों से क्या ईसाई धर्म से भी व्यवहार में सरल है।

2 इस धर्म में पुरोहित वर्ग की प्रधानता नहीं है और मस्जिद केवल नमाज पढ़ने का स्थान है। वहा अन्य कोई धार्मिक कर्म-काण्ड नहीं होते। वहा वेदी या मूर्ति आदि नहीं होती।

3 यह एक व्यक्तिगत धर्म है। इसमें अल्लाह (परमात्मा) से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं।

4 इस धर्म में स्वर्ग का ता अति रजित वर्णन किया गया है जबकि नरक का वर्णन अति विषादपूर्ण किया गया है।

5 इस्लाम का अपना सुनहला नियम भी है। 'कोई भी व्यक्ति अपने पड़ौसी के साथ वैसा वर्ताव न करे, जैसा कि वह अपने साथ किया जाना पसन्द न करेगा।''

6 सामाजिक समानता इस धर्म में अनुपम है। मुसलमान यह सगर्व घोषणा करते है कि मुसलमानों में किसी प्रकार का कोई वर्ग-भेद नहीं है।

7 सिद्धान्त इस्लाम मे प्रजातन्त्रीय भावना का समावेश अवश्य है परन्तु व्यवहार मे यह धर्म-प्रधान (Theocratic State) राज्य की स्थापना पर जोर देता है।

8 इस धर्म ने सामाजिक समानता पर अवश्य बल दिया है परन्तु स्त्री जाति की सर्वाधिक दयनीय अवस्था इसी धर्म में पाई जाती है। समाज, राज्य व परिवार में उसे कहीं कुछ अधिकार प्राप्त नहीं है। बहु-विवाह ने उनकी अवस्था को और भी शोचनीय बना दिया है। एक मुसलमान चार विवाह तक कर सकता है। तलाक-प्रथा इतनी सरल बना दी है कि स्त्री कुछ भी कहने या करने की क्षमता नहीं रखती। उदाहरणार्थ हम पाकिस्तान की वर्तमान राजनीतिक अवस्था को ही ले सकते हैं। श्रीमती बेनजीर भुट्टो के प्रधान मन्त्री निर्वाचित हो जाने पर पाकिस्तान के धर्माधिकारी व राजनीतिज्ञों पर क्या गुजरा और आज उसकी क्या दशा हो रही है ?

9 आधुनिक समाजवादी भावना भी इस धर्म में दृष्टव्य है। आर्थिक विषमता को दूर करने का प्रयास किया गया है। दीन-दुखी एव निर्बल व्यक्तियों को राहत देने का प्रयास जितना इस धर्म में किया गया है उतना अन्य धर्मों में नहीं किया गया है।

10 इस्लाम धर्म एक सैनिक धर्म है। नि सन्देह यह धर्म आज विश्व का दूसरा धर्म है और जितनी शीघ्रता से यह धर्म फैला है उतनी शीघ्रता से अन्य कोई धर्म नहीं फैला। इसका मूल कारण यह है कि धर्म तलवार की शक्ति से प्रसारित हुआ। ईसाई की भाति यह धर्म-प्रसारकों की सहायता से प्रसारित नहीं हुआ। आगे खलीफाओं

के वर्णन मे हम देखेंगे कि यह धर्म किस प्रकार तलवार व शक्ति के सहारे फैला है। इसके अलावा इस कथन की पुष्टि इसकी भावना से भी होती है।

खलिफाओं के नेतृत्व में इस्लाम का प्रसार

मुहम्मद साहब ने 630 ई० में मक्का पर आक्रमण किया और उसे इस्लाम का केन्द्र बनाया। अभाग्वश 632 ई० में ही वे इस लोक से चल बसे। परन्तु इस दो वर्ष के अल्प-काल में ही वे समस्त अरब में अपना मत प्रसारित करने में सफल हो गये। इसके उपरान्त यह धर्म स्पेन से पूर्व मे हिन्देशिया तक फैल गया। इस धर्म प्रसार का श्रेय खलिफाओं को भी काफी जाता है।

अबू बक्र (Abu Bekr, 632 34)-मुहम्मद साहब केवल धार्मिक नेता ही नहीं थे वरन् वे राजनीतिक नेता भी थे। इसीलिए इस्लामी राज्य आरभ से धर्म-राज्य (Theocratic State) कहलाता था। 632 ई० में जब मुहम्मद साहब ने इस लोक का परित्याग किया तो उनके कोई पुत्र न होने के कारण उत्तराधिकार-युद्ध (War of Succession) हुआ। युद्ध में उनका दामाद अली (Ali) परास्त हुआ और उनका मित्र अबूबक्र सफल रहा। मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी खलीफा (Caliph or Khalipha) कहलाये। अबूबक्र इस पद पर अरबवासियों द्वारा निर्वाचित हुआ था। उसके उत्तराधिकारी ओमर, ओथमन तथा अली भी निर्वाचित हुए थे। इनके उपरान्त खलीफा का पद भी वशानुगत हो गया। अबूबक्र भी इस पद पर केवल दो वर्ष ही रहा, परन्तु वह इस अल्प काल मे भी सीरिया (Syria) को मुस्लिम देश बना गया। सीरिया के विरुद्ध जब अबूबक्र ने सैनिक अभियान भेजा तो उसने अपने सैनिकों को क्या सदेश भेजा था, उसे इतिहासकार गिबन (Gibbon) ने इस प्रकार व्यक्त किया है, ''परमदयालु परमेश्वर की कृपा से हम सभी मुसलमानों के सुख तथा स्वास्थ्य व मगल की कामना करते हैं। तुम्हें सूचित किया जाता है कि सीरिया प्रदेश को जीतने के लिए और काफिरों को नष्ट करने के लिए भेजा जा रहा है। तुम्हें यह समझ लेना है कि यह धर्म-युद्ध (जिहाद) परमेश्वर की आज्ञा से है ।''

ओमर (Omar, 634 44)-ओमर को खलीफा पद पर कार्य करने को 12 वर्ष मिले। उसने इन 12 वर्षों म इस्लाम साम्राज्य को अति विस्तृत कर दिया। उसने सेनापति खालिद (Khalid) को रोमन सम्राट हेराक्लियस (Heraclius) को परास्त करने भेजा। उसे परास्त कर खालिद ने उससे दमिश्क (Damascus), फिलीस्तीन (Palestine) और फिनेशिया (Phoenicia) प्राप्त कर लिए। इन प्रदेशों को प्राप्त करने के उपरान्त खालिद ने मिस्र (Egypt) को विजित किया। मैसोपोटामिया और फारस को जीत कर ओमर ने पूर्व में भी इस्लाम का प्रसार आरभ कर दिया। 638 में उसने जेरूसलम (Jerusalem) पर भी अधिकार कर लिया। 644 में ओमर का वध कर दिया गया।

ओथमन (Othman 644 56)-ओमर के वध किये जाने पर ओथमन खलीफा चुना गया। उसने भी इस्लामी साम्राज्य पर १२ साल तक शासन किया। उसके शासन-काल में वास्तविक सत्ता उसके भतीजे मोबैय्या (Muawiyah) के हाथों में थी। इसके समय में जहाजी बेड़ा तैयार किया गया और सिकन्दरिया पर अधिकार कर लेने

साइप्रस (Cyprus) को अधिकार में कर लिया। इसक उपरान्त त्रिपाली, ट्यूनिस् (Tunis) एल्जेरिया और मोरक्को पर अधिकार किया गया। इस प्रकार उत्तरी अफ्रीका को विजित कर वहा की बरबर (Berber) तथा मारिश (Moorish) जाति के लागों को मुसलमान बना लिया। इस प्रकार भू-मध्यसागरीय प्रदशो पर इस्लाम का झण्डा लहरा दिया। 656 मे ओथमन का भी वध कर दिया गया।

इस्लाम धर्म का दो सम्प्रदायों में विभाजन-ओथमन के वध किये जाने पर मुहम्मद साहब के दामाद अली को खलिफा-पद प्राप्त करने म सफलता प्राप्त हो गई। हालाकि वह अबूबक्र क विरुद्ध सफल नहीं रहा था। परन्तु अली का खलीफा होना आथमन के भतीजे मोबैय्या को अच्छा नहीं लगा। वह उस समय सीरिया का गवर्नर था। उसने अली क विरुद्ध बगावत करदी और 561 में अली को मौत के घाट उतार दिया। माबैय्या स्वय खलीफा बन बैठा। परन्तु इससे गृह-युद्ध की समाप्ति नहीं हुई। अली के पुत्र हुसैन (Hussain) ने अपने पिता की खलीफात प्राप्त करने का प्रयास किया। परन्तु माबैय्या क पुत्र यजीद (Yezid) ने हुसैन का करबला (Karbala) मे वध कर दिया। इस गृह-युद्ध क फलस्वरूप इस्लाम अब दा सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। अबूबक्र के समर्थक सुन्नी (Sunnis) कहलाये। वे अबूबक्र व उसक दो उत्तराधिकारियों को वैधानिक खलीफा तथा मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी मानत थ। सुन्नी कुरान द्वारा निर्दिष्ट निर्देशा को पूर्णत मानते है। वे सुन्ना (Sunna) म पूर्ण आस्था रखते है। इसके विपरीत शिया (Shias) अबूबक्र तथा उसके दो उत्तराधिकारियो को राज्य-हर्ता मानते है। उनका कहना है कि मुहम्मद साहब का वास्तविक उत्तराधिकारी अली था न कि अबूबक्र। शिया कुरान के निर्देशों को इतनी कट्टरता से नहीं मानते जितन कि सुन्नी मानते है। इसक अलावा शिया मुहर्म (Muharrem) के प्रथम दस दिन तक हुसैन की करबला में हुई मृत्यु का मातम भी मनाते है। इस प्रकार आज भी इस्लाम सुन्नी व शिया दो प्रमुख सम्प्रदायों में विभक्त है।

उमैय्याद (Omayyad) वश के खलीफा-अली क वध किये जान पर उमैय्याद वश के खलीफा बने। इस वश क 90 वर्ष (661 749 ई०) तक खलीफा रहे। अबूबक्र व उसके उत्तराधिकारियों ने अपनी राजधानी मदीना (Medina) रखी थी परन्तु उमैय्याद वश के खलिफाओं ने दमिश्क (Damascus) को इस्लामी साम्राज्य की राजधानी बनाया। इस वश की सबसे महान् उपलब्धि स्पेन (Spain) की विजय थी। सेनानायक तारिक (Tarik) सर्वप्रथम जिब्राल्टर (The Mountain of Tarik) पर उतरा और 711 ई० में अफ्रीका में बन्दी बनाये गये गुलामों की सहायता क उसन स्पेन पर अधिकार कर लिया। स्पेन का विजित करने के उपरान्त वह 732 ई० में अफ्रीका के धर्म-परिवर्तित लोगों की सहायता से पाइरिनीज (Pyrenees) पर्वतमाला को पार करके दक्षिणी फ्रान्स (Gaul) में आ पहुचा। फ्रान्स के ईसाई इस्लामी ज्वार की लहर से भयभीत हो उठे। परन्तु फ्रान्स के सेनानायक चार्ल्स मार्टेल(Charles Martel) ने टूअर्स (Tours) की लड़ाई में मुसलमानों को परास्त कर दिया। यह घटना मुहम्मद साहब की मृत्यु के 100 वर्ष उपरान्त घटी। इस पराजय के उपरान्त मुसलमान वापिस स्पेन आ गये और 1492 तक व वहा बने

रहे। इतिहासकारों की मान्यता है कि यदि टूअर्स के युद्ध में ईसाई हार गये होते, तो आज सारा यूरोप भी शायद मुसलमान होता।[1]

उमैय्याद वश के खलीफाओं ने अपनी विजय-यात्रा स्पेन तक ही सीमित नहीं रखी। 712 में उन्होंने सिन्ध (Sindh) पर अधिकार कर लिया। कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करने को दो प्रयास (673 और 717 ई०) किये गये परन्तु वहा उन्हें दोनों बार ही असफलता मिली। इस प्रकार 749 ई० तक मुसलमानों का प्रभुत्व पश्चिम में स्पेन से लेकर पूर्व में सिन्ध तक फैल गया। विजित प्रदेशों के मनुष्यों को या तो इस्लाम स्वीकार करना पड़ा या उन्हें मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा।

अब्बासी (Abbasids)वश के खलीफा-750 ई० में उमैय्याद वश समाप्त हो गया और उसका स्थान अब्बासी वश ने लिया। अब्बासी वश के खलीफा मुहम्मद साहब के चाचा आबू तालिब के वशज माने जाते है। इस वश सस्थापक का अबुल अब्बास अब्दुल्ला था। यह वश सत्ता में लगभग 500 वर्ष तक रहा और इस काल में 35 से भी अधिक खलिफाओ ने शासन किया। इस वश के खलीफा शिया सम्प्रदाय के थे।

इस्लाम साम्राज्य का दो भागों में विभक्त होना-उमैय्याद वश का एक सरदार अब्दुर्रहमान (Abdur Rahman) बच गया था। अब्बासी वश के सत्ता में आते ही वह स्पेन भाग गया और कारोडोवा (Corodova) को अपना केन्द्र बना कर वहा शासन करने लगा। इस प्रकार स्पेन उमैय्याद वश का स्वतन्त्र राज्य 1492 ई० तक बना रहा। इधर अब्बासी वश के खलीफा राज्य करते रहे। वे शिया थे। अत ईरानी उन्ह अधिक चाहते थे। इस कारण इस वश ने अपनी राजधानी दमिश्क के स्थान पर बगदाद (Baghdad) बनाइ।

अब्बासी वश के समस्त खलिफाओं का वर्णन करना सभव नहीं। अत इस वश के सबसे प्रतापी खलीफा हारु-अल-रशीद (Haroun Al Rashid) का ही हम उल्लेख करना चाहेंगे। 809 ई० में वह इस लोक से विदा हुआ था। उसके शासन की उपलब्धियों का वर्णन हमें 'सहस्र रजनी' (Thousand and One Nights) में मिलता है। इस खलीफा ने बगदाद में (Golden Gate) नामक एक भव्य स्वर्ण प्रासाद बनवाया। वह ईरानी ठाठ से रहने लगा। बगदाद शीघ्र ही एक महलों का नगर तथा राजनीति व मुस्लिम सस्कृति का केन्द्र बन गया। उसका पुत्र मामून (Mamun) भी एक प्रतापी खलीफा हुआ। परन्तु उसके उत्तराधिकारी निर्बल एव अयोग्य सिद्ध हुए। इस कारण विघटनकारी शक्तिया प्रबल हो गईं। दूरवर्ती प्रान्तों में स्वतन्त्र होने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी और दसवीं सदी के अन्त तक अरब साम्राज्य तीन खलीफाओं के आधीन हो गया। उनके केन्द्र थे-अब्बासी खलीफाओं का केन्द्र बगदाद, उमैय्याद वश का कारोडोवा तथा फतिमिद (Fatimid) वश का केरिओ(Cario)।

---

1 नैथिनियल प्लैट विश्व का इतिहास', पृ 175

इस विभाजन के उपरान्त भी शताब्दियों तक इस्लाम साम्राज्य विश्व में एक महान् साम्राज्य बना रहा। 1453 में मुस्लिम कबीले (आटोमान तुर्क) ने पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया (Constantine) पर भी अधिकार कर लिया।

इस्लाम धर्म के प्रसार के कारण

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस्लाम धर्म विश्व में बहुत शीघ्रता से फैला और एक शताब्दी के अन्तराल में ही यह एशिया, यूरोप व अफ्रीका महाद्वीपों के कई राज्यों व नगरों में प्रभावशाली बन गया। इसके इस शीघ्र-प्रसार के कुछ विशेष कारण थे। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित माने जाते हैं-

1 इस्लाम में कुरान का महत्व-कुरान मुसलमानों का सर्वोपरि धार्मिक ग्रन्थ है। आज भी इस कुरान की शरीयतों की कोई साधारण मुसलमान व सुल्तान अवज्ञा नहीं कर सकता है। कुरान में लिखा है-"कुरान को मानो, कर दो या फिर उसे तलवार के घाट उतार दो। यह थी मुसलमानों की उनके धर्म को मानने वालों को चेतावनी। युद्ध करने वाले मुसलमानों के लिए कुरान का आश्वासन था कि उनके पाप क्षमा कर दिए जायेंगे और स्वर्ग में खूब आनन्द मिलेगा।"[1] कुरान के इस आश्वासन से उन्मत मुसलमान गैर मुसलमानो को अपनी तलवार से मुसलमान बनाते ही चले गये।

2 इस्लाम धर्म में बन्धुत्व की भावना-इस गुण का हम पहले भी वर्णन कर आये है। इस बन्धुत्व की भावना ने सारे मुसलमानों को एकता के सूत्र में आबद्ध रखा तथा अन्य धर्मों के दलित लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें आसानी से मुसलमान बनाया।

3 इस्लाम धर्म में अनुशासन-जैसा कि इससे पूर्व ही व्यक्त कर आये है कि इस्लाम एक सैनिक धर्म है। सेना में अनुशासन का होना अत्यन्त आवश्यक होता है और सेना की सफलता की कुंजी उसका अनुशासन ही होता है। इस्लाम धर्म में अनुशासन इतना कठोर है कि इसके अनुयायी बिना किसी तर्क के इसका पालन करते हैं। यदि आज दिल्ली की जामामस्जिद के इमाम बुखारी कोई आदेश देते हैं तो भारत के सारे मुसलमान उसका बिना तर्क के पालन करते है। आज विश्व के सारे मुसलमान अब्दुल रशदी के क्यों प्राण लेना चाहते है क्योंकि इरान के अताउल्ला खुमानी ने उसकी मौत का फतवा जारी कर दिया था।

4 अरब का रेगिस्तानी देश होना-अरब एक रेगिस्तानी देश है। यहा पैदावार न होने के बराबर थी। अरबवासी लुटेरे व खानाबदोश थे जबकि इसके आस-पास के देश हरे-भरे थे। अत अरब के मुसलमान पड़ौसी देशों पर भूखे भेड़ियों की भांति टूट पड़े। उन देशों को जीत कर उन्हे मुस्लिम साम्राज्य का अंग बनाया तथा वहा के निवासियों को मुसलमान बनाया।

नैथिनियल पैट 'विश्व का इतिहास', पृ 175।

5 जजिया–गैर मुसलमानों को या तो इस्लाम स्वीकार करना पड़ता था या उन्हें मौत का सामना करना पड़ता था। मौत से बचने का एक दूसरा उपाय था कर (जजिया) देना, पर यह कर भी काफिरों से बहुत ही अपमानजनक तरीकों से वसूल किया जाता था। अत अपमान तथा जजिया से बचने के लिए गैर मुसलमान शीघ्रता से इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेते थे।

6 सरकारी पद प्राप्त करना–मुस्लिम राज्य धर्म प्रधान राज्य (Theocratic States) होते थे। अत नागरिकता का अधिकार केवल मुसलमानों को ही प्राप्त होता था। सरकारी पद भी उनके लिए ही उपलब्ध होते थे। गैर मुसलमानों को न तो नागरिकता ही प्राप्त होती थी और न राजकीय सेवा ही। अत जीविका उपार्जन के लिए भी काफिर इस्लाम धर्म अंगीकार कर लेते थे।

7 इस्लाम में जाति भेद न होना–इस्लाम धर्म के अनुयायी सब एक अल्लाह की औलाद हैं। इस धर्म में कोई जात-पात नहीं है। इस कारण ऊंच-नीच की भावना भी नहीं है। इसलिए भी अन्य धर्मों के लोग समान आदर पाने की दृष्टि से मुसलमानों की जमात में सम्मिलित हो जाते थे।

8 हजरत मुहम्मद का सादा जीवन–धर्म के प्रसार में सर्वाधिक सहयोगी स्वय धर्म-प्रवर्तक होता है। भारत में जैन व बौद्ध धर्म शीघ्रता से फैले तो महावीर स्वामी व महात्मा बुद्ध के सरल एव सात्विक आचरण के कारण ही फैले। इसी प्रकार इस्लाम के प्रसार में मुहम्मद साहब का सरल व्यक्तित्व बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

9 इस्लाम धर्म का एक व्यावहारिक धर्म होना–इस्लाम धर्म में हिन्दू धर्म की भाति कर्म-काण्डों की प्रधानता नहीं है। एकेश्वरवादी होने के कारण मुसलमान केवल एक अल्लाह को ही अपना सर्वस्व मानते हैं। मस्जिद में नमाज सादा तरीके से पढ़ी जाती है। वहा कोई वेदी या हजरत मुहम्मद की कोई मूर्ति या तस्वीर नहीं होती। पाच बार नमाज पढ़ना आवश्यक है पर स्नान करना आवश्यक नहीं। इसके अलावा नमाज का समय होते ही मुसलमान हर कहीं नमाज अदा कर सकते हैं। उन्हें मस्जिद में जाना आवश्यक नहीं होता। कहावत है कि जहां बिछाया पल्ला, वहीं मौजूद है अल्ला।

10 विशाल साम्राज्य की स्थापना–जिस प्रकार ईसाई धर्म के प्रसार में उनका साम्राज्यवाद सहायक सिद्ध हुआ है, उसी प्रकार मुसलमानों की महान् विजय इस्लाम के प्रसार में महान् सहायक सिद्ध हुई है। विजित देशों के लोगों को या तो बलात् मुसलमान बना लिया जाता था या उन्हें दासों में परिणित कर मुसलमान बनने को बाध्य कर दिया जाता था।

11 अन्य धर्मों का ह्रास–इस्लाम धर्म का प्रचार उस समय हो रहा था जब कि यूरोप तो अन्धकार युग (Dark Age) से गुजर रहा था और भारत में बौद्ध-धर्म नाना प्रकार की बुराइयों का शिकार हो गया था। यहा के लोग धर्म में सुधार चाहते थे। पाखण्ड व अन्ध-विश्वासों से मुक्त होना चाहते थे। इस्लाम धर्म ने उनको यह राहत दी और इन देशों के लोगों ने सहर्ष इस्लाम स्वीकार कर लिया।

खलीफाओं की सांस्कृतिक देन

हजरत मुहम्मद मक्का पर अधिकार करके केवल दो वर्ष ही जीवित रहे। इस कारण उनको इस्लाम धर्म व संस्कृति प्रसार का समय नहीं मिला। नि सन्देह उन्होंने अरब प्रायद्वीप में तो इस्लाम का प्रसार अपने जीवन काल में ही कर लिया था और वहा के सामाजिक ढाचे में भी कुछ परिवर्तन कर दिए थे। परन्तु इस्लामी साम्राज्य की स्थापना तो उनके उत्तराधिकारी खलीफाओं ने ही की थी। उस इस्लामी साम्राज्य पर सैंकड़ों वर्ष शासन भी खलीफाओं ने ही किया। उनके उस महान् साम्राज्य में कई जातियों का मिश्रण था। उन जातियों की विभिन्न भाषाए तथा विभिन्न धार्मिक धारणायें थीं। फलत इस्लामी साम्राज्य में जिस सभ्यता व संस्कृति का विकास हो उसमें उन सबका मिश्रण होना स्वाभाविक था। इस्लामी सभ्यता में पारसी, ईसाई, यहूदी, हिन्दू तथा चीनी सभ्यताओं के तत्वों का सम्मिश्रण हुआ और खलिफाओं ने अपनी उदारता, योग्यता एवं दूरदर्शिता से बहुरंगी सभ्यता को इस्लामी सभ्यता का बाना पहिनाने का प्रयास किया। उनके प्रयासों से जिस अरब सभ्यता का आविर्भाव हुआ, उसके विशेष लक्षणों को हम निम्न अवतरणों में देने का प्रयास कर रहे हैं -

प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन-मुस्लिम साम्राज्य का स्वरूप धार्मिक था। अन्य धर्मावलम्बियों के देशों को विजित करके भी खलीफाओं ने अपने अरब साम्राज्य का प्रधान धर्म 'इस्लाम' ही रखा। इस्लाम धर्म के अनुयायी ही उस विशाल साम्राज्य के नागरिक समझे जाते थे। राज्य में वे ही सम्मान पाते थे तथा राजकीय पदों पर भी वे ही नियुक्त किये जाते थे। साम्राज्य में धार्मिक व्यवस्था भी खलीफा के ही आधीन थी और साम्राज्य का शासन भी उनके सुदृढ़ हाथों में ही केन्द्रित रहता था। अत स्पष्ट है कि खलीफा धर्म व राजनीति दोनों में ही सर्वोच्च होते थे। राजनीतिक कार्यों में वह एक सुल्तान की भांति सर्वे-सर्वा होता था तो धार्मिक विषयों में वह पोप (Pope) की भांति सर्वोच्च होता था। पहले के तीन खलीफा निर्वाचित हुए थे। इस प्रणाली से उन्होंने गणतन्त्र-भावना को जन्म अवश्य दिया परन्तु यह भावना शीघ्र ही समाप्त हो गई। बाद में खलीफा निर्वाचित न होकर तलवार की ताकत से इस पद को प्राप्त करने का प्रयास करने लगे। कालान्तर में यह महत्वपूर्ण पद वंशानुगत हो गया और खलीफा ने सुल्तान का रूप धारण कर लिया। परन्तु धार्मिक मामलों में सर्वोच्च होने के कारण वह सुल्तान न कहला कर 'खलीफा' पदवी से ही अलंकृत रहा।

खलीफा के अधिकार असीम थे। धार्मिक गुरु होने के कारण वह धर्म तथा शासन में कुरान की शरीयतों के अनुसार ही आचरण करता था। खलीफा होने के नाते न्याय के क्षेत्र में वह सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। सेना का प्रधान भी वही होता था। परन्तु यह उनकी प्रशासनिक योग्यता की ही अपूर्व सूझ थी जिसके प्रताप से स्पेन से लेकर मलेशिया तक के विभिन्न धर्मावलम्बियों को राजनीतिक एकता के सूत्र में उन्होंने बांध दिया। अत उन खलिफाओं को हम प्रबुद्ध शासक (Enlightened Rulers) कह सकते हैं।

शासन निरंकुश व एकतन्त्रीय अवश्य था परन्तु वे जनता के भले-बुरे का ध्यान

अवश्य रखते थे। इस दिशा में हारू-अल-रशीद (Haroun Al Rashid) के नाम का उल्लेख कर सकते हैं। वह न्याय-प्रिय तथा मानवतावादी खलीफा था। उसने दीन-दुखियों के भले की ओर पूरा ध्यान दिया। प्रशासन के अलावा उसने साहित्य, ज्ञान-विज्ञान तथा कला के विकास की ओर भी पूरा ध्यान दिया। इसीलिए मुसलमान उसके शासन को स्वर्ण-युग (Golden Age) की संज्ञा देते है।

नौकरशाही–रोमन साम्राज्य के उपरान्त दूसरा साम्राज्य अरब साम्राज्य ही था। क्षेत्रफल की दृष्टि से तो यह रोमन साम्राज्य से भी अधिक विस्तृत हो गया था। अत इतने विशाल साम्राज्य के सुप्रशासन के लिए खलीफा अपनी सहायता के लिए अनेक अधिकारी नियुक्त करता था। इनमें प्रथम अधिकारी 'हाजिब' होता था। वह धार्मिक मामलों में खलीफा की सहायता करता था। इसी प्रकार प्रशासनिक कार्यों में सहायता देने के लिए 'वजीर' होता था। वह नागरिक व असैनिक कार्यों में खलीफा का प्रधान सलाहकार होता था। इनके अलावा विभिन्न प्रशासनिक विभागो के भी अध्यक्ष होते थे। मुसलमानों से 'जकात' तथा विधर्मियों से 'जजिया' वसूल करने को अलग अधिकारी होते थे। खिराज भी वसूल की जाती थी।

प्रान्तीय शासन–जैसा कि इससे पूर्व बताया गया कि मुस्लिम साम्राज्य एक अति विस्तृत साम्राज्य था। अकेला खलीफा उसका शासन मदीना, दमिश्क व बगदाद में बैठा नहीं चला सकता था। इस कारण उसने विशाल साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर दिया था। प्रान्तों के गवर्नरों की नियुक्ति वह स्वय ही करता था और वे उसके प्रति ही उत्तरदायी होते थे। खलीफा के आदेश मानने को वे बाध्य थे। परन्तु सुदूरवर्ती गवर्नर अधिक शक्तिशाली बन जाते थे। राजधानी से दूर होने के कारण वे अपने प्रान्त के सर्वे-सर्वा बन जाते थे। गवर्नर राज्य से कर वसूल कर खलीफा के पास भेज दिया करते थे। राज्य की सुरक्षा का भार उन पर ही होता था। अब्बासी खलीफा के समय इस्लाम साम्राज्य 10 प्रान्तों में विभक्त था। परन्तु खलीफा मामून (Mamun) की मृत्यु के उपरान्त राज्यपालों ने अपने को स्वतन्त्र करने का प्रयास आरंभ कर दिया था।

सेना–अरब साम्राज्य का अस्तित्व सेना पर आधारित था। अत खलीफा सैन्य-सगठन की ओर विशेष रूप से ध्यान देता था। प्रारम्भ में तो खलीफा स्वय एक कुशल योद्धा व दक्ष सेनापति होता था। बाद में खलीफा को सेनापति पर निर्भर रहना पड़ता था। परन्तु फिर भी बड़ी लड़ाई में सेना का नेतृत्व खलीफा ही करता था या उसके परिवार का कोई व्यक्ति करता था। सेना का स्वरूप सामन्तवाद पर आधारित था। तृतीय खलीफा उसमान ने महान् सेना का सगठन किया था। युद्ध के समय वेतन भोगी व जागीर प्राप्त सैनिक तो आते ही थे। इनके अलावा युद्ध में लूट का धन प्राप्त करने की इच्छा से बहुत से सैनिक आते थे। सैनिक धार्मिक जोश में युद्ध करते थे। मुस्लिम सेना की खास ताकत थल सेना पर ही अवलबित रही। खलीफा एक शक्तिशाली जल-सेना का निर्माण नहीं कर सके। यह सही है कि इन्होंने स्पेन, फ्रान्स व अफ्रीका के कई उत्तरी प्रदेशों पर जल-सेना की सहायता से आक्रमण किया था।

सामाजिक अवस्था–आरम्भ में मुसलमानों का जीवन सादगीपूर्ण था। परन्तु इस्लाम साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ खलीफाओं का वैभव भी बढ़ता गया। उनका जीवन विलासी हो गया। उनके महल विलास के स्थान बन गये। उनके महलों में सैकड़ों स्त्रियाँ उनके मनोरंजन के साधन के रूप में विद्यमान थीं। इस प्रकार मुसलमानों में भी दास-प्रथा प्रचलित हो गई।

मुस्लिम समाज का गठन भी सामान्ती ढंग का ही था सामन्तों का जीवन विलासी होता था। व्यापारी वर्ग का जीवन भी सुखी एवं सम्पन्न था। शेष लोग उनके पराम्त देशों के मूल निवासी होते थे। उनका जीवन कठोर एवं दयनीय होता था। साम्राज्य-विस्तार से किसानों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गैर इस्लाम लोगों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। उन्हें नाना प्रकार के कर देने पड़ते थे। इस्लाम के प्रसार के बावजूद भी समाज में अन्धविश्वास विद्यमान था।

इस्लाम के प्रसार के साथ गुलाम प्रथा ने जोर पकड़ा। भारी संख्या में गुलाम बनने लगे। युद्ध के समय परास्त सैनिकों को गुलाम बना लिया जाता था और उनके साथ कठोर व्यवहार किया जाता था। उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता न थी। स्त्रियों की अवस्था भी मुस्लिम समाज में हीन थी। उन्हें दास तुल्य समझा जाता था। उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता न थी। मुसलमानों में बहु-विवाह प्रथा से भी स्त्रियों की अवस्था दयनीय बन गई थी। बाल-हत्या की प्रथा भी प्रचलित थी।

स्त्रियों की दशा–स्त्रियों को कुरान में एक दासी तुल्य बताया गया है। राजनीतिक विषयों में तो उन्हें कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इसके अलावा परिवार में भी उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। उनको घर की चार दीवारियों में बन्द रखा जाता है। उन्हें परदा-प्रथा का कठोरता से पालन करना पड़ता है। परदा का उल्लंघन करना कुरान की शरीयतों का उल्लंघन समझा जाता है। एशियाई खेलों में सम्मिलित होने के लिए पेइचिंग में ईरान की खिलाड़ी औरतों को भी बुर्कों में ही आना पड़ा था। बहु-विवाह मुस्लिम समाज में आम तथा एक धार्मिक रिवाज मानी जाती है। खलीफा व उच्चाधिकारियों के हरम स्त्रियों से भरे होते थे और उनकी देख-भाल के लिए हरम में हिजड़े रखे जाते थे।

आर्थिक दशा–खलीफाओं के शासन काल में अरब व उनके अधीनस्थ देशों ने बहुत अधिक आर्थिक उन्नति की। नहरों के निर्माण द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया गया तथा दलदली प्रदेशों को सुखाया गया। भारत से नारंगी, गन्ना व कपास की खेती सीखी गई। उन्होंने सर्वप्रथम हवा से चलने वाली मिलों का प्रयोग किया। धातु के काम में वे अत्यन्त दक्ष थे। उन्होंने सूती वस्त्र बनाने में भी काफी प्रगति की। ऊनी वस्त्र भी काफी मात्रा में बनते थे। वस्त्रों को रंगने का कार्य, चमड़े को साफ करना, मिट्टी व शीशे के बर्तन बनाना भी उनके प्रमुख उद्योग थे। इस प्रकार कई उद्योगों में पश्चिमी एशिया औद्योगिक समृद्धि को पहुंचने लगा था जिसके फलस्वरूप व्यापार में भी अत्यधिक वृद्धि हुई। मुस्लिम साम्राज्य के विस्तृत होने के कारण भी साम्राज्य के एक भाग से वस्तुएं दूसरे स्थान पर पहुंचाई जाने लगीं। एशिया व यूरोप के कई देशों से स्थल व जल मार्ग द्वारा व्यापार होता था। अरब व्यापारियों के बड़े-बड़े काफिले चीन व भारत

स्थल मार्ग से जाते थे। भू-मध्यसागर व अरब सागर पर अरब व्यापारियों का प्रभुत्व था। अफ्रीका के देशों से भी उनका व्यापार होता था। समरकन्द, बुखारा, बगदाद, काहिरा, दमिश्क व सिकन्दरिया उस समय व्यापार के केन्द्र थे। बुखारा व कोरोडोवा तो व्यापारिक केन्द्र होने के अलावा मुस्लिम सभ्यता व संस्कृति के केन्द्र भी बन गये थे।

बगदाद नगर की स्थापना खलीफा मंसूर ने की थी। कोरोडोवा इस्लामी स्पेन राज्य की राजधानी था। उस समय वह यूरोप का सबसे बड़ा सभ्य व सम्पन्न नगर था। वह विद्या व कला का भी केन्द्र था।

आय के साधन-साम्राज्य विस्तार के लिए निरन्तर युद्ध लड़े गये। उनके लिए धन की परम-आवश्यकता हुई। अतः प्रथम तो लूट से धन बटोरा गया। दूसरे जजिया वसूल करके राज्य की आय बढ़ाई गई। जकात व खिराज भी आय के अच्छे साधन थे। अमीरों से खलीफा को नजर के रूप में भी काफी धन मिल जाता था। विकसित व्यापार से भी राज्य की आय अच्छी होती थी।

शिक्षा-खलीफाओं ने शिक्षा के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। विजित देशों में वे मस्जिदों का निर्माण कराते थे और मस्जिद के साथ ही एक मदरसा होता था। मदरसों में व्याकरण, गणित, इतिहास आदि विषय पढ़ाये जाते थे। काहिरा, दमिश्क, बगदाद व कोरोडोवा उस समय शिक्षा के केन्द्र थे। काहिरा में एक इतना विशाल विश्वविद्यालय था कि जिसमें दस हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। बगदाद बौद्धिक हलचलों का केन्द्र था। कोरोडोवा का पुस्तकालय अति विख्यात था। अरबों ने विदेशी ग्रन्थों का अनुवाद किया था। इनके अलावा दमिश्क व बारसीलोना भी उस समय शिक्षा के अच्छे केन्द्र थे। यहां देश-विदेशों से भारी संख्या में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। शिक्षा के विकास के लिए सरकार प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप स्वीकार करती थी। यूनानी व संस्कृत के ग्रन्थ काफी संख्या में अनुदित हुए। दूर-दूर के ख्याति प्राप्त विद्वान् खलीफा के दरबार की शोभा बढ़ाते थे।

कला-इस क्षेत्र में मुस्लिमों की देन मौलिक नहीं है। कुरान में मानव आकृतियों के चित्रण पर प्रतिबन्ध होने के कारण चित्रकला का बिल्कुल विकास नहीं हुआ। प्रारम्भ में मस्जिदें सादी बनाई जाती थीं, परन्तु बाद में उनके आन्तरिक भागों को अलंकृत किया जाने लगा। मेहराब व फर्श पर चमकीले पत्थर तथा पच्चीकारी का काम होने लगा। कुरान की आयतें भी अंकित की गईं। शासकों व धनवानों के महलों में रंग का प्रयोग अधिक किया गया। मूर्ति-पूजा निषेध होने के कारण मूर्तिकला का अभाव रहा। सुलेख एक कला मानी जाती थी। धातु पर मीनाकारी अत्यन्त सुन्दर होती थी। परन्तु भवन-निर्माण कला में अरब निवासियों ने अच्छी प्रगति करली थी। रामन्स की भांति वे महान् निर्माता माने जाते थे। रोमन्स की गुम्बजों की भांति वे भी अपनी मस्जिदों को महान् गुम्बजों से अलंकृत करने लगे। बगदाद, दमिश्क, कोरोडोवा नगरों को भव्य प्रासादों से सजाया गया। मुस्लिम प्रसाद में स्पेन के नगर ग्रानाडा (Granada) में अलहाम्ब्रा महल सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस महल को स्पेन के मुसलमानों (Moors) ने बनाया था। बगदाद की मस्जिद भी मुस्लिम स्थापत्य-कला का एक अच्छा नमूना है।

साहित्य–अरबों को शायरी का अत्यन्त शौक था। अतः प्रारम्भ में गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक मात्रा में रचा गया जिनमें युद्ध व प्रणय सम्बन्धी गाथाओं का वर्णन किया गया। हसन इब्न हानी ने सुरा, सुन्दरी व संगीत से भरपूर कवितायें लिखीं। अहमद इब्न हुसैन व अल मर्रारी अन्य प्रसिद्ध कवि थे। फारसी का प्रसिद्ध कवि फिरदौसी था जिसका 'शाहनामा' नामक काव्य अमर है। उमर खय्याम की रुबाईयाँ व सादी का गुलिस्ताँ बोस्ताँ अपने ढंग के निराले काव्य हैं। अरबों ने कई इतिहास व जीवन-चरित्र भी लिखे। ईशाक द्वारा लिखी मुहम्मद साहब की जीवनी प्रसिद्ध है। इब्न कातिबा का समार का इतिहास व अल तबारी का राजाओं व धर्म प्रचारकों का इतिहास उल्लेखनीय है।

विज्ञान–अरबों ने भारत व यूनान के विज्ञान का अध्ययन किया तथा उसमें कुछ नयी खोजें कीं। उन्होंने गोलाकार त्रिकोणमिति, द्विज्या व सम्पातिति रेखा का आविष्कार किया। उन्होंने सिफर (Cypher) का प्रयोग सिखाया। भौतिक विज्ञान में उन्होंने पेंडुलम (Pendulum) की खोज की। खगोल व भूगोल शास्त्र में उन्होंने कई नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये। चिकित्सा-शास्त्र में उन्होंने काफी प्रगति की। रेजेज ने चिकित्सा शास्त्र पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। सबसे अधिक खोज उन्होंने रसायन-शास्त्र में की। शोरा, गंधक का तेजाब, पोटास, चाँदी का घोल आदि पदार्थ उन्हीं के आविष्कार है। अलबरूनी एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था।

ज्योतिष–निःसन्देह अरबवासियों ने ज्योतिष में ज्ञान यूनान से प्राप्त किया। यूनानी ग्रन्थों का उन्होंने अपनी भाषा में अनुवाद करवाया तथा बगदाद में एक वेध-शाला स्थापित की। इसके अनन्तर उन्होंने तारों व ग्रहों का अध्ययन किया। कोरोडोवा में ज्योतिष का केन्द्र स्थापित किया गया। मुहम्मद इब्न मूसा ने खगोल विद्या से सम्बन्धित विषयों का एक संकलन तैयार किया। इन उपकरणों से सुसज्जित हो जाने के उपरान्त अरबवालों ने ज्योतिष का ज्ञान आगे बढ़ाने का प्रयास किया। दूरबीन और ध्रुवयन्त्र का प्रयोग सर्व-प्रथम उन्होंने ही किया। अक्षांस व देशान्तर का ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने भूगोल के ज्ञान में वृद्धि की।

भौतिक ज्ञान–अलबरूनी ने भौतिक-शास्त्र में महान् कार्य किया। उसने 18 बहुमूल्य पत्थरों और धातुओं का निकटतम वजन बताया। अबु हाथम ने प्रकाश के सन्दर्भ में एक ग्रन्थ तैयार किया। वह आज उपलब्ध नहीं है। परन्तु उस ग्रन्थ का महत्व यूनानियों ने समझा था। अतः उसका अनुवाद उन्होंने यूनानी भाषा में कर लिया और वह यूनानी अनुवादित ग्रन्थ आज भी उपलब्ध है। केपलर इस विद्वान् से अत्यधिक प्रभावित हुआ था।

चिकित्सा–नवीं सदी में अरबवासियों ने चिकित्सा-शास्त्र में अनुपम योगदान दिया। हालांकि यह ज्ञान भी उनका मौलिक नहीं था, परन्तु खलीफाओं ने इस क्षेत्र में यूनान व भारत से सहयोग लेकर अपने यहा इसे पर्याप्त विकसित किया। उन्होंने शरीर-विज्ञान का अध्ययन कर शल्य-चिकित्सा में दक्षता से कदम बढ़ाया। आज के हकीम भी प्राचीन अरब शल्य-चिकित्सा के सहारे उल्लेखनीय कार्य करते हैं। अली आफतबारी, अलराजी और इब्नसिना ने शल्य-चिकित्सा के सन्दर्भ में अमूल्य ग्रन्थ लिखे। इब्नसिना प्रथम चिकित्सक

था जिसने सिद्ध किया था कि आखों का रोग भी सक्रामक होता है । अरबों ने कई औषधशालाए निर्मित करवाईं और उनके निर्माण-सम्बन्धी टेकनिकल बातों का ज्ञान दूसरों को दिया । चिकित्सा-शास्त्र में योग्यता प्राप्त करने की परीक्षाए अरबों ने आरभ कर दी थीं । चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेशों से भारी सख्या में विद्यार्थी आते थे । रोग-निदान में भी अरबवासियों ने बड़ी दक्षता प्राप्त करली थी । स्त्रियों के उपचार के लिए अलग कक्ष होते थे।

अरब सभ्यता की विश्व को देन

वर्तमान विश्व-सभ्यता किसी एक जाति की प्रगति का ही परिणाम नहीं है । इसके विकास में समय-समय पर विभिन्न देशों का सहयोग मिलता रहा है । इस सहयोग में अरब देश भी पीछे नहीं रहा, हालाकि सातवीं सदी के मध्य तक अरब एक नितान्त पिछड़ा देश था । परन्तु इस्लाम के प्रसार स इस देश का पिछड़ापन दूर हो गया । आठवीं सदी के प्रारभ मे ही अरबों ने अपने साम्राज्य विस्तार के साथ अनेक ऐसे सास्कृतिक कार्य किए जो विश्व की अमूल्य धरोहर (Legacy) बन गये हैं । उन कार्यों पर यहा सक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे ।

1 **मानव के सिंचित ज्ञान की रक्षा**–यूनानी व रोमन सभ्यताओ की विशेषताओं की हम जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । दोनों देश ज्ञान-विज्ञान में बहुत आगे बढ़े हुए थे। परन्तु उन देशों के उस ज्ञान को सुरक्षित रखने का श्रेय अरब वालों को ही जाता है । अरबवासियों ने यूनानी ग्रन्थों का अपनी भाषा में अनुवाद किया और उनके ज्ञान को बढ़ाया तथा उसे सुरक्षित भी रखा । इसीलिए एच जी वेल्स ने लिखा है, " यदि यूनान वैज्ञानिक पद्धति का जनक था तो अरब उसका प्रतिपालक था ।"

2 **स्वास्थ्य के क्षेत्र में अपूर्व देन**–आज यूरोपवासी स्वास्थ्य विज्ञान मे अपने को सबसे आगे समझते हैं परन्तु मध्य-युग में वे इस क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए थे। मुसलमानों ने स्पेन में पदार्पण कर कोरोडोवा को जब पक्की सड़कों से एक सुन्दर नगर में बदल दिया था, उस समय लन्दन और पेरिस में घुटने तक कीचड़ रहता था । रात्रि के अन्धेरे मे वहा चलना खतरनाक लगता था तो कोरोडोवा तथा बगदाद शान से चमचमाते थे । उस काल में यूरोप के सामन्तों के गढ़ भी गन्दे होते थे । जब वे अरबों के सम्पर्क में आये तो उनके सम्पर्क से वे अपने भवन भी स्वच्छ बनाने लगे ।

3 **सभ्यता के प्रसार में योगदान**–सभ्यता के क्षेत्र में अरबों की सबसे महान् देन यह रही कि उन्होंने यूनानी व रोमन भाषा के प्रसार में एक अग्रदूत का कार्य किया। अरब के वैज्ञानिकों ने अन्य देशों (यूनान, रोम, भारत व चीन) से वैज्ञानिक तथ्य ग्रहण कर उन्हें विकसित किया तथा उन्हें अन्य देशों में फैलाया ।

4 **खान-पान व पोशाक में देन**–यूरोपवासियों ने अरबों से शिष्टाचार भी सीखा। खान-पान की विशेष सामग्रिया यूरोपवासी अरब से ही ले गये । यूरोप की प्राचीन पोशाक भी अरब पोशाक से प्रभावित थी । हमारा भारत इन दोनों बातों में अरब का कितना ऋणी रहा है,यह हमसे छुपा नहीं है ।

5 प्रबुद्ध प्रशासन–नि सन्देह सातवीं व आठवीं सदी में विश्व के समस्त देशों में निरकुश राजतन्त्र व्यवस्था प्रचलित थी। परन्तु यह अरब देश ही था जहा कि खलीफा का निर्वाचन करके गणतन्त्र प्रणाली का दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया। जब खलीफा का पद वशानुगत हो गया तो खलीफाओं ने प्रबुद्ध-प्रशासन प्रस्तुत किया जिसका बाद में कई यूरोपीय देशों में तथा भारत में अनुकरण किया गया।

6 साहित्य व इतिहास में देन–अरब में जो साहित्य सृजन तथा इतिहास-लेखन आरभ हुआ, वह अति प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ। कुरान आज विश्व का महान् ग्रन्थ माना जाता है। उसका कई भाषाओ में अनुवाद हो चुका है। एल तबारी (Al Taban) द्वारा रचित 'अरेबियन नाइट' (Arabian Nights) अति लोकप्रिय ग्रन्थ सिद्ध हुआ है। इतिहास के क्षेत्र में फिरदौसी (Furdausı) का नाम उल्लेखनीय है। उसने भारत के विषय में भी काफी लिखा है। अलबरूनी भी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। उसने भी भारत के सन्दर्भ में लिखा है। उसे 'उस्ताद' की उपाधि से अलकृत किया गया था।

7 दर्शन, विज्ञान व चिकित्सा में देन–दर्शन के क्षेत्र में दो विद्वानों (अवीसन्ना तथा एवरोज) के नाम अति उल्लेखनीय है। ये दोनों अरब में ही नहीं वरन् समस्त यू के विख्यात दार्शनिक माने जाते है। अवीसन्ना (Avicenna) का मूल नाम अ अली-अल-हुसैन इब्न सिना (980 1037 ई) था। वह मुस्लिम जगत् का महानत विद्वान् था। प्रारभ में वह एक दार्शनिक था, किन्तु वह विज्ञान व चिकित्सा शास्त्र भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। उसकी रचना 'चिकित्सा के सिद्धान्त' (Cannon of Medicine) चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान कोष माना जाता है। 17 वीं सदी तक इसके लेटिन अनुवादों की भारी माग होती रही। डॉ मैक्स मीरहाफ का कथन है कि, 'सभवत पूर्व में आज भी इसका पर्याप्त प्रचार है।'[1] अवरोज (Averhoes) का असली नाम अबू-अल-वलीद इब्न रशद (1126 1198) था। अवरोज के विचार यूरोपीय विचारधारा में एक जीवित रूप में आधुनिक प्रयोगात्मक विज्ञान के जन्म तक उपस्थित रहे।[2]

8 कला–वास्तुकला के क्षेत्र में अरबों ने ग्रेनेडा में अलहैम्ब्रा का प्रासाद बना कर विश्व में एक आश्चर्यजनक कलाकृति प्रस्तुत करदी। अरब वालों ने अपने विशाल भवन व प्रासाद सारासीनिक (Saracenic) शैली पर निर्मित करवाये। इस शैली में अलकरण पर जोर नहीं दिया जाता है। सादगी तथा भव्यता इस शैली की आत्मा मानी जाती है। मीनार, बुर्ज और मेहराबों के योग से सादा भवन भी भव्य लगते हैं। इस सारासीनिक शैली का मुगलकालीन भवना पर भारी प्रभाव पड़ा। कला के अन्य क्षेत्रों में भी अरबों की देन कम नहीं है। एक विद्वान् का कथन है, 'हस्तकला में उन्होंने ससार के अन्य कारीगरों को कारीगरी की पूर्णता, आकृति की विविधता तथा सौन्दर्य भावना में

1 Legacy of Islam, p 339
Ibid, p 275

पीछे छोड़ दिया।" उन्होंने सोना, चादी, ताबा, कासा व लोहे की वस्तुए बनाई। काच तथा चीनी के सर्वोत्तम बर्तन बनाये। रगसाजी की कला से भी वे परिचित थे और उनका कार्य यूरोप भर मे विख्यात था।"[1]

9 यूरोपीय पुनर्जागरण (Renaissance) की पृष्ठ-भूमि तैयार करना-यूरोपीय पुनर्जागरण को मूल प्रेरणा यूनानी साहित्य से मिली है। उस यूनानी साहित्य के प्रसार में अरबवासियों का योग भी कम नहीं रहा। उन्होंने यूनानी साहित्य का अरबी भाषा में अनुवाद किया और अपने अधीनस्थ यूरोपीय देशों में उसका प्रचार किया। इस साहित्य के प्रसार स यूरोप में शिक्षा का विकास हुआ। शिक्षा के विकास से लोगों के अन्धविश्वास दूर हुए। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक व तार्किक हो गया। इस प्रकार अरबों ने यूरोप में पुनर्जागरण की पृष्ठ-भूमि तैयार करने का कार्य किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अरबों ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में ज्ञान अर्जित कर उसे सुरक्षित रखा तथा यूरोप व एशियाई देशों में उसका प्रसार किया। शोध की भावना को जीवित रख उन्होंने अपनी उपलब्धियों से यूरोप को भी आश्चर्यचकित कर दिया।

प्रश्न

1 इस्लाम के उदय से पूर्व अरबों का जीवन किस प्रकार का था?
What sort of life was led by the Arbs before the rise of Islam?

2 मुहम्मद साहब की धार्मिक शिक्षाओं का वर्णन कीजिए और बताइये कि उन्होंने अरबो के जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया?
Narrate the teachings of Muhammad and show how did they affect the life of the Arabs?

3 खलीफा-पद का उद्भव किस प्रकार हुआ? उसका अरब सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ा?
How did the post of Caliph come into existence How did it influence the Arab Civilization?

4 इस्लाम धर्म के शीघ्र प्रसार के कारणों का पर्यवेक्षण कीजिए।
Discuss the causes of the rapid spread of Islam

5 अरब सभ्यता की देन पर प्रकाश डालिए।
Throw some light on the legacy of Arab Civilization

---

1 एस आर शर्मा 'मानव इतिहास की रूपरेखा' पृ.239

9

मध्ययुगीन यूरोप

''वर्तमान इतिहासकार केवल युद्धों तथा शासकों के षड्यन्त्रों में ही नहीं अपितु भूतकालीन सामाजिक जीवन में रुचि रखता है।''

– एलीन पावर

सामान्यत किसी भी देश व राष्ट्र का ऐतिहासिक विभाजन उस देश की ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही किया जाता है, क्योंकि ऐतिहासिक घटनाएँ परस्पर सम्बद्ध रहती हैं तथा उनके अन्तस्तल में आधारभूत एकता विद्यमान रहती है। इस ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही यूरोप का एतिहासिक विभाजन हमारे भारत की भाति तीन (प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक) कालों में ही किया गया है। सयोगवश जिस प्रकार भारत का मध्य-काल दीर्घकालीन रहा है, उसी प्रकार यूरोप का मध्य-काल भी लबी अवधि का रहा है। इसकी लबी अवधि के सन्दर्भ में कुछ इतिहासकारों के कथनों में कुछ अन्तर अवश्य मिलता है,-परन्तु सामान्यत इसका काल 500 ई० से 1500 ई० माना जाता है। इतिहासकार जे ई स्वेन का कहना है कि ''मध्य-युग सामान्यत उस काल के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो कि पश्चिमी यूरोप में रोमन साम्राज्य के पतन से पुनर्जागरण (Renaissance) और धर्म-सुधार आन्दोलन (Reformation) के प्रारम्भ तक चलता है।[1] इतिहासकार जे सी एपिल ने मध्य-काल का समय पश्चिमी यूरोप में रोमन साम्राज्य के पतन से अमेरिका (America) की खोज हो जाने तक माना है।[2] बी वी रॉय भी यही अवधि मानते हैं।

अत स्पष्ट है कि यूरोप का यह मध्य-युग एक हजार वर्ष तक रहा। जिस प्रकार हमने भारतीय इतिहास के मध्य काल को दो भागों (दिल्ली सल्तनत व मुगल काल) में विभक्त कर दिया है, उसी प्रकार पाश्चात्य इतिहासकारों ने यूरोप के मध्य-युग को दो भागों में विभक्त कर दिया है। उसका प्रथम काल 500 ई० से 1000 ई० तक माना जाता है और इतिहासकारों ने इसे अन्धकार-युग (Dark Age) कहा है। दूसरा काल 1000 ई० से प्रारंभ हो कर 1500 ई० तक माना जाता है। इस काल को

---

1 J E Swain "History of World Civilizations" p 258

"The expression "Middle Ages" is commonly employed to designate the period from the breakdown of the Roman Empire in the West to the beginning of the Renaissance and the Reformation."

2. "The term "Middle Ages" was given to the period of Western European history that extended from the decline of Rome to the discovery of America"

J C. Appeal

इतिहासकारों ने विकसित-युग (Enlightened Age) की संज्ञा दी है । दोनों काल अपनी-अपनी विशेषताएँ रखते है । अंधकार युग वह काल था जबकि यूरोपीय सभ्यता अपनी दयनीय अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी । इतिहासकार जे ई स्वेन (Swain) का कहना है कि मध्य-युग के इस प्रथम काल को अन्धकार युग इसलिए कहा गया है क्योंकि इस काल के सन्दर्भ में विशेष जानकारी नहीं मिलती है । यह भी हो सकता है कि इस काल की घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने का विशेष प्रयास नहीं किया गया हो । यह भी सभव है कि मानववादियों न यह फ्रेज (वाक्य-खण्ड) 15 वीं सदी में इसलिए बना लिया हो कि 500 से 1000 ई० के मध्य यूरोपवासियों ने उच्चकोटि के यूनानी व रोमन साहित्य के अध्ययन में विशेष उत्साह नहीं बताया हो । इतिहासकार यह भी मानते है कि यूनानी व रोमन साहित्य के प्रति अरुचि जर्मन आक्रमणकारियों ने उत्पन्न करदी हो क्योंकि वे रोमन व यूनानी साहित्य के प्रति बहुत ही न्यून आदर भाव रखते थे ।[1]

अन्धकार युग की विशेषताए-

1 शिक्षा का अभाव-इस युग मे शिक्षा का सर्वथा अभाव था । शिक्षा के केन्द्र विद्यालय व विश्व-विद्यालय न होकर मठ ही शिक्षा के केन्द्र होते थे तथा अध्यापन का कार्य धर्माधिकारियों द्वारा ही किया जाता था । प्राय धर्माधिकारी शिक्षा देने में दक्ष नहीं होते थे । कुछ शिक्षित लोग अपने घरों को ही विद्यालयों का रूप देन का प्रयास करते थे, परन्तु बहुधा वे पैसे के लालची होते थे । विद्यार्थियों को सही ज्ञान देने पर ध्यान न देकर वे केवल धन-उपार्जन पर ही ध्यान देते थे । शिक्षा का स्वरूप धार्मिक ही होता था । परन्तु चार्ल्स महान् (Charlemagne 768 814 A D) ने शिक्षा की ओर इतना ध्यान दिया कि फ्रैंक जाति शीघ्र ही दूसरे लोगों को शिक्षा देने समर्थ बन गई ।[2]

2 नागरिक जीवन का अभाव-अन्धकार युग में नगरों का विकास नहीं हुआ था । लोग कृषि करके अपना जीवन-यापन करते थे । हालाकि लघु-गृह-उद्योग भी पनप गये थे- परन्तु वे व्यापार को विकसित करने में समर्थ नहीं हुए थे । लोग छोटे-छोटे कबीलों के रूप मे रहते थ । उनका एक सरदार होता था । वह पड़ौस के अन्य सरदारों से अपनी तथा अपने सरक्षण में रहने वाले लोगों की सुरक्षा के लिए छोटे-मोटे गढ़ों का निर्माण करा लेता था । गढ़ भी गन्दे होते थे तथा ग्राम भी स्वच्छ नहीं होते थे । इसके अलावा जर्मन आक्रमणकारी नगरों में रहना पसन्द नहीं करते थे ।

3 व्यापार का विकसित न होना-अन्धकार युग में प्रत्येक वस्तु का उत्पादन सीमित होता था । लोगों की दैनिक आवश्यकताए ही उससे पूरी होती थीं । अत व्यापार के विकसित होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था ।

---

1 J E. Swain Histo y of World Civilization p 258 59

2 Alice Magenis 'The History of the World p 159
"Charlemagne s plan for education worked so well that a century later the " were able to supply teachers to other people

4 व्यवस्थित सरकार का अभाव-जर्मन आक्रमणकारियों ने रोमन साम्राज्य को समाप्त कर दिया। इस कारण पश्चिम यूरोप की सारी राजनीतिक अवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। जर्मन सरदार रोमन कानून की इज्जत नहीं करते थे। उन्होंने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये थे। सुनियोजित व अच्छी सरकार की स्थापना की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

5 कबीलों के सरदार में बहुधा संघर्ष-जर्मन जाति के आक्रमणों के परिणाम स्वरूप इटली, फ्रान्स, स्पेन व इंगलैण्ड में छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। उनमें राजनीतिक एकता का अभाव था। एक सरदार सदा पड़ौसी निर्बल सरदार के राज्य को विजित करने का प्रयास करता रहता था।

6 परिवारों का स्वावलंबी होना-नि सन्देह अन्धकार युग में लोग अशिक्षित होते थे। विदेशों के साथ वे व्यापार नहीं करने लगे थे। जीवन भी उनका ग्रामीण ही था, परन्तु उनका पारिवारिक जीवन भारतीय ग्रामीणों की तरह स्वावलंबी होता था। आम लोग संयुक्त परिवार के रूप में रहते थे और वे दैनिक जीवन की आवश्यकताएं स्वयं पूरी करते थे।

7 ईसाई धर्म व उसके अधिकारियों की सर्वोच्चता-अन्धकार युग में ईसाई धर्म यूरोप में अपना प्रभाव स्थापित कर चुका था। उस समय समस्त यूरोप में एक ईसाई धर्म था-वह था कथौलिक। इस धर्म के आदर्शों की कोई अवज्ञा नहीं कर सकता था। पोप इस धर्म का सर्वोच्चाधिकारी था। पोप के आदेशों का पालन करना प्रत्येक को आवश्यक था। पोप के अलावा जो अन्य धर्माधिकारी होते थे,उनका भी जनसाधारण पर पूर्ण प्रभाव होता था। अन्धविश्वासी व अशिक्षित होने के कारण यूरोप के लोग धर्माधिकारियों के अन्ध-भक्त होते थे।

अन्धकारयुगीन यूरोप

रोमन साम्राज्य का पतन-रोमन साम्राज्य का पतन विश्व इतिहास की एक अति महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। यह पतन बर्बर जातियों के रोम पर आक्रमण करने से सम्भव हुआ। वे लोग यूरोप में उत्तर पूर्व की ओर से आये थे तथा वे रोम की समस्त व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देना चाहते थे। आरेलियन के शासन काल में रोम की सुरक्षा के लिए पुन किलेबन्दी को सुदृढ़ किया गया तथा डायोक्लेशियन (284 305) ने साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से पश्चिम तथा पूर्व में आगस्टी तथा सीजर नाम के दो अधिकारी नियुक्त किये। सम्राट कान्सटेन्टटाइन (Constantine 306 37) ने बाजेन्टीयन (Byzantine) नगर पुन बसाया और उसका नाम कुस्तुनतुनिया (Constantinople) रखा। थ्याडोसियस (Theodosius) ने गोथ जाति के लोगों को अवश्य परास्त किया और साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखने की दृष्टि से उसने रोमन साम्राज्य को अपने दो पुत्रों में विभक्त भी कर दिया। पर यह विभाजन भी रोमन साम्राज्य को हानिप्रद ही सिद्ध हुआ।

बर्बर जाति के आक्रमण यूरोप पर जारी रहे और 452 ई० में जब चीन में महान् दीवार का निर्माण हो गया तो हूण लोगों ने यूरोप पर आक्रमण आरम्भ कर दिए। उनका नेता अटिल्ला (Attila) था। वह हूण जाति में उस समय महान् वीर एवं योद्धा समझा जाता था। जब उसने यूरोप के पूर्वी देशों पर अधिकार कर लिया तो जर्मन व रोमन

लोग उसे परमात्मा की आपत्ति (Scourage of God) कह कर पुकारने लगे थे। 451 ई० में वह हगरी से फ्रान्स (Gaul) पर आक्रमण करने को आगे बढ़ा। परन्तु केलोन (Chalons) के युद्ध में वह परास्त हो गया। इस प्रकार इस विजय ने यूरोप को हूणों के प्रभुत्व से बचा दिया। हालांकि कलान में परास्त होकर वह 452 ई० में रोम पर चढ़ आया, परन्तु ज्योंहि पोप लियो प्रथम (Leo I) उसे आक्रमण न करने को समझाने आया कि अट्टिला रोम छोड़ गया और हगरी लौट गया। रोम नगर उसक प्रकोप से अवश्य बच गया। परन्तु इटली के अन्य भागों को उसने नष्ट कर दिया। हगरी लौटते समय वह 30 हजार रोमन्स को बन्दी बना कर ले गया। उसके 20 वर्ष उपरान्त 476 ई० में जर्मन नेता ओडासर ने अन्तिम रोमन सम्राट रोमुलस आगस्तुलस (लघु आगस्टस) को रोमन साम्राज्य से खदेड़ दिया। उसने इटली को अपने साम्राज्य का एक भाग बना लिया। परन्तु ओडसर भी इटली का स्वामी न रह सका। वह (489 490 ई में) थ्योडोरिक से तीन बार परास्त हुआ और उसको इटली की गद्दी थ्योडोरिक (Theodoric) के लिए छोड़नी पड़ी।

थ्योडोरिक ने यह आक्रमण पूर्वी रोमन सम्राट के पक्ष को लेकर किया था। वह एक सुयोग्य एव प्रजापालक सम्राट सिद्ध हुआ। उसने इटली के व्यापार को भी विकसित किया तथा अन्य धर्मावलंबियों को धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्रदान की। प्रिस्टले के शब्दो में "**थ्योडोरिक एक महान् राजनीतिज्ञ था जिसने कि आगस्टस के गौरव को पुनर्जीवित किया था।**" परन्तु इसके उपरान्त जर्मनों ने आक्रमण आरभ कर दिए और पाचवी सदी के अन्त तक इटली, फ्रान्स, स्पेन तथा इगलैण्ड पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया। इस प्रकार रोमन साम्राज्य 476 ई० में समाप्त हा गया और पूर्वी रोमन साम्राज्य 1453 ई० तक जीवित रहा।

राजनीतिक अवस्था-रोमन साम्राज्य के पतन के उपरान्त ही पश्चिमी यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। कोई एसा शक्तिशाली शासक नहीं हुआ जो उस अस्त-व्यस्त शासन व्यवस्था में सुधार करता व पश्चिमी यूरोप में एक सुदृढ़ राज्य की स्थापना करता। बर्बर जाति के यूरोप पर निरन्तर आक्रमण होते रहे। फ्रैंक जाति भी यूरोप में आक्रमणकारी के रूप में आई थी। बर्बर जातियो म सर्वाधिक सफलता फ्रैंक जाति को ही मिली। इस जाति के क्लोविस और पेपिन (Clovis and Peppin) ने जर्मन कबीलों को परास्त किया और पाचवीं से नवीं सदी तक अपने वश का राज्य कायम रखा।

732 ई० में इस जाति के शासक चार्ल्स मारटेल (Charles Mortel) ने अरब के मुसलमानों को टूअर्स (Tours) के युद्ध मे परास्त कर उन्हें आगे बढ़ने से रोका। उसकी मृत्यु 741 ई० में हुई। उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र पेपिन उसका उत्तराधिकारी बना और उसका राज्याभिषेक पाप स्टीफेन द्वितीय (Pope Stephen II) के द्वारा हुआ। पेपिन ने कारोलिजियन (Carolingian) वश का आरम्भ किया। 768 ई० में चार्ल्स महान् (Charles, the Great) गद्दी पर बैठा। वह फ्रैंक जाति का सबसे महान् शासक माना जाता है। उसने अपनी विजयों द्वारा एक महान् साम्राज्य स्थापित कर 'महान' की पदवी धारण

की ।[1] 25 दिसम्बर, 800 ई० को जब चार्ल्स महान् संत पीटर के गिरजाघर में प्रार्थना कर रहा था कि पोप लियो तृतीय (Leo III) ने अचानक उसके सिर पर मुकुट रख दिया और उसका राज्याभिषेक कर दिया। चार्ल्स महान् (Charlemagne) को आगस्ट्स (Augustus) की उपाधि से विभूषित किया गया। यह घटना उसके जीवन की एक महान् घटना थी। वह अब अपने को रोमन सम्राट की कोटि में गिनने लगा और उसके साम्राज्य का नाम पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) पड़ा। पवित्र रोमन साम्राज्य एक ऐसी ऐतिहासिक संस्था थी जो एक हजार वर्ष तक अपना अस्तित्व बनाये रही। उन्नीसवीं सदी में नेपोलियन बोनापार्ट (Napoleon Bonaparte) ने इस संस्था का अन्त किया था।

चार्ल्स महान् (शार्लमेन) का विश्व के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। वह यूरोप के मध्यकालीन शासकों में सबसे महान् तथा सबसे योग्य माना जाता है। प्रोफेसर एमर्सन के शब्दों में, "वह एक युग के अन्त और दूसरे युग के प्रादुर्भाव के मध्य में उपस्थित होता है और उसने जो भी किया वह समस्त भावी यूरोप के इतिहास की आधार शिला थी।" अन्य इतिहासकार का कहना है कि आधुनिक विश्व का निर्माणकर्त्ता ही शार्लमेन (Charlegmagne) था। इसलिए पोप लियो तृतीय ने उसके राज्याभिषेक के समय उसकी बड़ी प्रशंसा की थी।

चार्ल्स महान् एक अच्छा राजनीतिज्ञ तथा सुप्रशासक था। उसने निःसन्देह सत्ता का केन्द्रीकरण किया पर स्थानीय स्वतन्त्रता को भी बनाये रखा। उसने समस्त साम्राज्य कई काउण्टियों में विभक्त किया। उनके अध्यक्ष काउण्ट (Counts) कहलाते थे। काउण्ट लोग अपनी शक्ति बढ़ाने तथा अपने पद को पैतृक बनाने की दृष्टि से शासक के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के भी आदि हो गये थे। उन पर नियन्त्रण रखने के लिए चार्ल्स महान् ने अपने विश्वसनीय अधिकारी नियुक्त किये जो मिसी (Missi) कहलाते थे। वे लोग काउण्टियों में घूमा करते थे तथा वहां के काउण्ट के आचरण के बारे में चार्ल्स के पास अपनी रिपोर्ट भेजा करते थे। साम्राज्य की सीमा का विशेष प्रबन्ध किया जाता था। प्रदेशों में दुर्ग होते थे जिनमें रहते हुए काउण्ट व जमींदार अपने प्रदेश की रक्षा करते थे। प्रयास करने पर भी चार्ल्स महान् अपने को काउण्ट व जमींदारों के प्रभाव से मुक्त नहीं रख सका था। सेना अधिकतर उनके ही प्रभाव में रहती थी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चार्ल्स महान् ने प्रशासन के क्षेत्र में कोई नवीन संस्था की स्थापना न कर प्राचीन संस्थाओं को ही क्रियाशील बनाने का प्रयास किया था। काउण्ट्स की शक्ति को पूर्णतः न दबाने पर भी वह अपने साम्राज्य में शान्ति व सुरक्षा स्थापित करने में सफल रहा। उसकी सत्ता प्रत्येक जगह मानी जाती थी। शार्लमेन ने कुछ कानून भी जारी किये थे। उनमें से कुछ शासन संबंधी थे और कुछ नीति विषयक, पर कोई लिखित न्याय-संविधान तैयार नहीं हुआ था। 78 वर्ष की आयु में

1 Dena C. Munro "The Middle Ages" p 89
He had doubled the size of the old kingdom of the Franks and his territories could be described as an empire

(814 ई०) जब वह पैनीज के युद्ध से लौट रहा था तो मार्ग में रॉनमेवैलीज के दर्रे (Pass of Roncevalles) में एक छोटी सी लड़ाई में वह मारा गया। उसके मरते ही उसका विशाल साम्राज्य पुन छिन्न-भिन्न होने लगा।

रोमन साम्राज्य के पतन के कारण- 814 ई० में चार्ल्स के मरते ही उसके विशाल साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया और नवीं सदी के अन्त तक वह छ राज्यो में विभक्त हो गया। केवल इटली और जर्मनी के मध्य साधारण सम्बन्ध रहे। इस विशाल पवित्र रोमन साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण प्रमुख माने जाते हैं -

1 चार्ल्स महान् के साम्राज्य में विभिन्न जातियों का निवास था। उन जातियो में पारस्परिक द्वेष था। इस कारण साम्राज्य का विघटन हो गया।

2 साम्राज्य को विभिन्न काउण्टियों में विभक्त करना भी साम्राज्य के अहित में रहा। प्रथम तो चार्ल्स महान् के मरते ही उसका विशाल साम्राज्य कई राज्यों में विभक्त हो गया। इस कारण साम्राज्य में कोई सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार नहीं रही, क्योकि उन राज्यों क शासकों के पास भी शक्ति नाम मात्र की रही। काउण्टियों के स्वामी दिनोदिन शक्तिशाली बनने लगे और वे केन्द्रीय सरकार के आदेशों की अवहलेना करने लगे।

3 चार्ल्स महान् की धार्मिक कट्टरता भी उसकी मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य के विघटन का कारण बन गई। वह अपने धर्म का कट्टर था। वह अपने धर्म का सर्वत्र प्रसार करना चाहता था। इसी कारण उसने धर्माधिकारियों को अनेक अधिकार देकर उन्हे शक्तिशाली बना दिया था। इसके दो परिणाम निकले- प्रथम तो धर्माधिकारी ही उसकी मृत्यु के उपरान्त स्वतन्त्र हो गये। दूसरे वे धर्म के नाम पर अन्य धर्मावलबियो पर भी अत्याचार करने लगे। चार्ल्स ने भी अपने जीवन-काल में इसी नीति को अपनाया था। इस कारण अन्य धर्मावलंबी उसके मरने के बाद उसके ईसाई धर्म पर आधारित साम्राज्य से स्वतन्त्र होन का प्रयास करने लगे।

4 चार्ल्स के साम्राज्य की विशालता भी पतन का कारण बनी। उस समय यातायात व संदेश-वाहन के साधनों का तो विकास हुआ नहीं था। अत सुव्यवस्था व प्रशासन की दृष्टि से उसे दूरस्थ प्रदेशों में सामन्त नियुक्त करने पड़े। उसकी मृत्यु के पश्चात् वे भी केन्द्रीय सरकार क विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे तथा अपनी स्वतन्त्रता का प्रयास करने लगे।

5 साम्राज्य का विभाजन चार्ल्स महान् की अदूरदर्शिता का परिचायक सिद्ध हुआ। प्रथम उसके पुत्र निर्बल एव अयोग्य थे। उन अयोग्य पुत्रों में साम्राज्य का विभाजन कर चार्ल्स ने साम्राज्य की स्थिरता को नष्ट कर दिया। पुत्रों में साम्राज्य विभाजन की परिपाटी फिर आगे तक चलती रही और उसका विशाल साम्राज्य क्रमश छोटे-छोट राज्यों में विभक्त होता गया और वह विनाश के गर्त में समता रहा।

ओटो (Otto, 936 973) शार्लमेन की मृत्यु स नि सन्देह पवित्र रामन साम्राज्य (Holy Roman Empire) छिन्न-भिन्न हो गया, परन्तु 962 ई में ओटा को पोप जॉन बारहवें (John XII) ने पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट बनाया। उसने रामन साम्राज्य की लुप्त गरिमा को पुन प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उसने लोम्बार्डी के विद्रोही

सामन्तों का दमन कर अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। परन्तु उसका साम्राज्य केवल जर्मनी तथा उत्तरी इटली तक ही सीमित रहा। 973 ई० में वह इस लोक से चल बसा।

सामन्तवाद (Feudalism)- सामन्तवाद का प्रादुर्भाव पाचवीं शताब्दी में हो गया था और यह पन्द्रहवीं सदी तक प्रभाव में रहा। शार्लमेन के शासन-काल में सामन्त काफी शक्तिशाली थ पर उसने अपने काल में सामन्तों को दबा कर रखा था। इस प्रथा के विषय में विशद् रूप से अगले अध्याय मे वर्णन किया जावेगा। सामन्तवाद के कारण उस काल में सैनिकवाद भी प्रभाव में था। सामन्तों में भी परस्पर युद्ध होते रहते थे। शाति क समय भी सामन्त लड़ाइयों का प्रदर्शन करत रहते थे। सामन्तों के प्रदेशों में न्याय व्यवस्था न थी। वे कृषकों का शोषण करते थे तथा मनमाने कानूनों क आधार पर उन पर शासन करत थे।

धार्मिक अवस्था-समस्त मध्य-युग में यूरोप का एकता प्रदान करने वाला वहा एक मात्र कैथोलिक चर्च (Catholic Church) था। मध्य-युग के अधकार में प्रकाश का स्रोत केवल यह धर्म ही था। बर्बर जातियों के आक्रमण के समय भी यह धर्म सभ्यता का रक्षक बना रहा और जब सातवीं शती में इस्लाम-धर्म अपना प्रभाव दिखाने लगा तो यूरोप के सामाजिक तथा धार्मिक स्तर को बनाये रखने क लिए इस धार्मिक-व्यवस्था को और भी प्रबल तथा प्रभावपूर्ण बनना पड़ा।

438 ई० मे थ्योडोसियस ने अपनी विधि-सहिता के अन्तर्गत् चर्च को विशष अधिकार प्रदान किये। पादरियों को विशेष सम्मान दिया गया तथा उन्हें सार्वजनिक कर्त्तव्यों व करा से मुक्त रखा गया। पादरियों के पास अपनी जागीरें होती थीं। धर्म के प्रसार के अलावा वे जनसाधारण को शिक्षा भी देते थे। उनकी अपनी अदालतें होती थीं। नास्तिकों का व अपने निर्णय द्वारा दण्डित कर सकते थे। फ्रैंक जाति के शासक क्लाविस (Clovis) ने अपनी रानी के कारण ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया और उसने भी इस धर्म को प्रबल बनाने का सतत् प्रयास किया।

कैथोलिक धर्म में पाप (Pope) को सर्वोच्च माना जाता है। रोम का प्रथम पोप सन्त पीटर बना था। पोप के कारण रोम कैथोलिक धर्म का केन्द्र बन गया। बर्बर जातियों के आक्रमण क समय पोप ने ईसाई सभ्यता की रक्षा की। इस कारण पोप का प्रभाव व प्रताप पश्चिमी यूरोप म दिनोंदिन बढ़ता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रोम केवल धार्मिक विषयो में ही सर्वोच्च न रहा वरन् राजनीति में भी अपना दखल रखने लगा था। पाप के निर्देशन में भिक्षु भी होते थे। ये दो श्रेणियों में विभक्त हो गये थे- (अ) नियम बद्ध व (ब) सासारिक। इन भिक्षुओं ने भी मध्य-युग में ईसाई समाज को अत्यधिक प्रभावित किया। हमारे ऋषि-महर्षियों की भाति उनका जीवन भी सासारिकता से परे तथा शुद्धिकरण का होता था। प्रो० रोबिन्स का कहना है- "कई शताब्दियों तक यूरोप में भिक्षुओं तथा अन्य धार्मिक सघो ने जो प्रभाव व्यक्त किया, उसका अनुमान लगाना कठिन है।"[1] इन भिक्षुओं में कई उल्लेखनीय दार्शनिक, वैज्ञानिक, इतिहासकार तथा कलाकार हुए।

1. H. Robinson "The Ordeal of Civilization p 62 63

बेनिडिक्ट (Benedict) प्रथम भिक्षु था जिसने कि 526 ई० के लगभग अपने सघ का एक नियमित सविधान बनाया जो आगामी सघो के सन्मुख एक आदर्श रूप में रहा। उसका मठ दक्षिणी इटली मे मान्ट केसीनो नामक स्थान पर था। उसका विश्वास था कि परिश्रम ही पूजा है। लेखनी उसका बिगुल थी। अज्ञान की अर्द्ध रात्रि में उसका विद्यालय एक प्रकाश पुज बन गया। देखा जाय तो महात्मा बुद्ध की भाति बेनिडिक्ट ने भी मध्यम मार्ग ही अपनाया था। उसने अपने अनुयायियो को आदेश दिया कि वे शरीर को अधिक कष्ट न दें क्योंकि ऐसा करने से उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और उनकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा उत्पन्न होगी। इस सघ क 16,000 लेखक तथा 4,600 बड़े पादरी सदस्य थे।

शिक्षा की अवस्था–*अन्धकार युग में शिक्षा का क्षेत्र अति सीमित था।* विद्यालयों के अभाव में जनसाधारण शिक्षा पाने में असमर्थ था। शिक्षा केवल लेटिन भाषा म दी जाती थी और वह भी केवल धार्मिक ही होती थी। परन्तु शार्लमेन ने तथा इगलैण्ड के शासक एलफ्रेड महान् (Alfred the Great) ने शिक्षा के क्षेत्र म सुधार किया। धार्मिक विषया के अलावा गणित, इतिहास व व्याकरण विषय भी पढ़ाये जाने लगे। विषयों की वृद्धि के साथ-साथ अन्य भाषाओं का भी विकास हुआ।

आर्थिक स्वरूप-अ घ युगीन यूरोप में आम लागों की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। अधिकाश लाग कृषक होते थे जो सामन्तों क अधीन होत थे। उनका जीवन कठोर होता था। उनमें अधिकतर दास (Serf) किसान होते थे जा सामन्तों के यहा बिना वेतन लिए खती करत थे। उन्ह हर प्रकार की बेगार भी देनी पडती थी। बिना अपने स्वामी की स्वीकृति के वे न जमीन छाड़ सकत थे और न अपना विवाह ही कर सकते थे। उन्हे झापड़ी में गुजर करने को बाध्य होना पड़ता था। कुछ किसान स्वतन्त्र होते थे जो सामन्त को लगान देकर अपनी खेती करत थे। उनका जीवन दास किसाना से जरा अच्छा होता था। सामान्यत कृषक वर्ग आर्थिक दृष्टि स दयनीय जीवन व्यतीत करता था।

उस युग मे व्यापारीवर्ग का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था क्याकि व्यापार ही उस समय विकसित नहीं था। प्रथम ता उस काल में यातायात के साधन ही नहीं थ और जो थ भी वे सुरक्षित नही थे। अत व्यापार हाने का उस काल म प्रश्न ही नहीं था। मुद्रा भी उस काल में न तो विकसित ही हुई थी और न पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध ही होती थी। बैको की स्थापना नहीं हुई थी। कैथोलिक धर्म रुपय पर ब्याज लेने की अनुमति नहीं देता है। इस कारण भी व्यापार करने के इच्छुक लोगों को धन उधार नहीं मिलता था। व्यापारी घूमते रहते थे तथा जहा जो सामान पैदा नहीं होता था, वह सामान वे वहा बेचा करते थे। नगरों का भी उस काल में विकास नहीं हुआ था। अत व्यापार की मडिया स्थापित नहीं हो पाई थीं। धार्मिक पर्व व अवकाश के समय गावों मे मेले लगा करते थे। आस-पास के लोग आकर उन मेलों में अपने जरूरत की वस्तुए खरीद लेते थे। इसके अलावा उस समय आम लोगों की आवश्यकताए अति सीमित थीं। वे अपनी आवश्यकताओं को अपने यहा उत्पादित वस्तुओं से ही पूर्ण कर

करते थे। सामन्तो का जीवन सुखी एव वैभवपूर्ण होता था। दुर्ग में उनके प्रासाद होते थे। कृषको के शोषण से वे अपना जीवन सुख से व्यतीत करते थे। उनकी महिलायें भी सुन्दर ढग से रहती थीं। उनके वस्त्र सुन्दर होते थे पर उन्हें अधिकार कुछ नहीं प्राप्त थे। आखेट व सैनिक प्रदर्शन सामन्ता के मनोरजन के प्रमुख साधन होते थे।

उत्तर मध्यकालीन यूरोप

ग्यारहवीं सदी के प्रारभ होते ही यूरोप की कायापलट होने लगी। ईसाई सभ्यता के प्रसार से अन्धकार-युग का अन्धेरा शनै-शनै सिमटने लगा। इतिहासकार जे एच हेज ने तो मध्य-काल का समय ही 11 वीं सदी से 14 वीं सदी तक का माना है।[1] उसका कहना है कि यही वह समय था जबकि पश्चिमी यूरोप ने बर्बर अवस्था से निकल कर समाज के हर क्षेत्र मे प्रगति की थी।

उत्तर मध्यकाल की विशेषताए-

1 चर्च की सर्वोच्चता।
2 शिक्षा का विकास।
3 नगरो का विकास।
4 कृषि का विकास।
5 शक्तिशाली राष्ट्रो की स्थापना।
6 धार्मिक युद्ध।
7 पोप व सम्राटों के बीच प्रभुता के लिए सघर्ष।
8 भवन-निर्माण कला का विकास।
9 व्यापार के विकास में गिल्ड-प्रणाली का प्रादुर्भाव।

यूरोप का धार्मिक स्वरूप-उत्तर मध्यकालीन यूरोप की प्रमुख विशेषता थी उसकी धार्मिक एकता तथा धर्म की समाज में प्रधानता। उस समय समस्त यूरोप में केवल एक धर्म था और वह ईसाई धर्म था और वह भी केवल कैथोलिक धर्म। मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ईसाई धर्म की प्रधानता व्याप्त थी। देखा जाय तो दसवीं शताब्दी के उपरान्त और सोलवहीं शती के प्रारम्भ तक तो यूरोप व ईसाई जगत् (Christendom) समानार्थी शब्द बने हुए थे। उस काल में ईसाई जगत से अर्थ उस राजनीतिक तथा धार्मिक सस्था से लिया जाता था जिसके अनुसार धर्म व राजनीति एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हुए भी एक दूसरे के पूरक इकाई बने हुए थे। शासक-वर्ग राजनीति में सर्वोच्च रहना चाहते थे, पर उनके गृहयुद्धों ने उन्हें निर्बल बना दिया था और उनकी निर्बलता व उनके गृह-युद्धों के कारण ही रोमन साम्राज्य का पतन तथा विभाजन हुआ। रोमन साम्राज्य पूर्वी यूरोप में बाईजाईन्टाइन (Byzantine) साम्राज्य के नाम से स्थापित हुआ और उसकी राजधानी कुस्तुनतुनिया (Constantinople) बनी। पश्चिमी रोमन साम्राज्य में कैथोलिक चर्च तथा उसके सर्वोच्च अधिकारी पोप की प्रभुता बनी रही जबकि पूर्वी ईसाइयत

---

1 J H Hays World History p 299
'The Middle Age as we use the term, extended from 11th century to the 14th century

में रूढ़िवादी चर्च प्रधान रहा और वह बाईजाईन्टाइन (यूनान, बाल्कान प्रायद्वीप तथा रूस) साम्राज्य के अधीन एक संस्था के रूप में रहा।

पश्चिमी ईसाईयत (रोमन साम्राज्य) में पोप की सर्वोच्चता थी पर वह अब अधिक दिनों निर्विघ्न न रही। जर्मनी के शासक हेनरी चतुर्थ (Henery IV) व ग्रिगोरी सप्तम् (Gregory VII) म सर्वोच्चता के लिए संघर्ष हुआ। आरम्भ में पोप की विजय हुई और 1075 ई० में हेनरी चतुर्थ के प्रशासन में ग्रिगोरी के धर्माधिकारी ही उत्तरदायी एव महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हुए। धर्माधिकारियों की नियुक्ति मे सम्राट का प्रभाव 1059 ई० मे ही पोप निकोलस द्वितीय (Nicholas II) द्वारा समाप्त कर दिया गया था।

1076 ई० में पोप ग्रिगोरी सप्तम व हेनरी चतुर्थ के सम्बन्ध पुन बिगड़ गये। जब सम्राट सैक्सन जाति को परास्त कर विजय की खुशी मना रहा था तो पोप ने उसे ऐसा करने से मना किया। पहले तो हेनरी ने पोप की आज्ञा की अवज्ञा की पर अन्त मे वह कोनौसा (Cenossa) गया और पोप स क्षमा याचना कर उसकी प्रभुता का उसने स्वीकार कर लिया। पोप की इस विजय को अति महत्वपूर्ण माना गया है, पर जर्मनी के शासकों व पोप-संस्था के मध्य यह सत्ता का संघर्ष जारी रहा। 1084 ई० मे पोप ग्रिगोरी सप्तम् हेनरी चतुर्थ द्वारा ही निष्कासित कर दिया गया और वह अपने निष्कासन काल में ही सेलेरना (Salerno) में इस लोक से विदा हो गया। उसके अन्तिम शब्द ये थे- " मैंने न्याय से प्रेम किया है और असमानता से घृणा। इसी कारण मेरी निर्वासन में ही मृत्यु हो रही है।"[1] उसके इस काल स उठ जाने के उपरान्त ही धर्म-युद्ध (Crusades) आरम्भ हो गये।

धर्म-युद्ध (Crusades)

जब ईसाइयों का पवित्र स्थान जेरूसलम 1076 ई० म सैलजुक तुर्कों के अधिकार में चला गया तो ईसाई समाज बड़ा चिन्तित हुआ। ईसाइयों को वहाँ यात्रियों पर होने वाले तुर्कों के अत्याचारों की गाथा आए दिन विदित हुआ करती थी। अत यूरोप के ईसाइयों ने जेरूसलम को पुन प्राप्त करने के लिए संगठित होना प्रारम्भ किया। इस कार्य के लिए समस्त ईसाई समाज को संगठित करने का श्रेय पोप उर्बान द्वितीय (Urban II) को जाता है। इस संगठन में राजा से लेकर कृषक लोग तक सम्मिलित थे।

धर्म-युद्धों के कारण
Causes of the Crusades)

धार्मिक कारण--जेरूसलम पर 1076 ई० में सेजुलक तुर्कों ने अधिकार कर लिया था। जेरूसलम ईसाइयों का एक अत्यन्त पवित्र तीर्थस्थान था। परन्तु वहा ईसाइयों की संख्या अति न्यून थी। धार्मिक जोश से ओत-प्रोत मुसलमानों (तुर्कों) ने वहा के ईसाइयों पर नाना प्रकार के अत्याचार करना आरम्भ किया। उन्हें बलात् मुसलमान बनाना आरम्भ किया। यूरोप के ईसाई यात्रियों का वहाँ आना वर्जित कर दिया। यदि कुछ ईसाई यात्री

1 "I have loved righteousness and hated inequality Therefore I die in exile "

J R. Strayer

कठोर प्रतिबन्धो के होते हुए भी वहाँ आने में सफल हो जाते तो उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता था। उन्हें विभिन्न प्रकार की कठोर शारीरिक यातनाएं दी जाती थीं। यात्रा-कर के रूप में उनसे भारी रकम वसूल की जाती थी। अत यूरोप के ईसाई-यात्री वहा अति क्षुब्ध हो उठते थे और वे स्वदेश लौटकर अपने भाइयों को वहा की यातनाओं की जानकारी देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के ईसाई धीरे-धीरे वहाँ के मुसलमानों के विरोधी हो गये और व अपन पवित्र स्थान जेरूसलम को पुन प्राप्त करने का प्रयास करने लगे। इसके अलावा स्वय पोप उर्बान द्वितीय भी युद्ध के ही पक्ष में था। वह अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए धर्म-युद्धों को आवश्यक समझता था। इसके अलावा उसने यह भी सोचा था कि धर्म-युद्धों के माध्यम से पूर्वी सनातन कैथालिक धर्म व पश्चिमी रोमन कैथालिक धर्मों में समन्वय भी स्थापित हो सकेगा।

राजनीतिक कारण-तुर्कों का साम्राज्य निरन्तर बढ़ता जा रहा था। उन्होंने पूर्वी यूराप के कई प्रदशों पर अधिकार भी कर लिया था। सातवीं शती के उपरान्त बाईजाईन्टाइन साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया था। अत तुर्कों की दृष्टि उस साम्राज्य पर गई। 1071 ई० म तुर्कों की सेना ने बाईजाईन्टाइन की सेनाओ को परास्त कर दिया। उस समय वहा का शासक अलेसियस (Alesetus) था। उसने अपने साम्राज्य को तुर्कों के प्रभुत्व से बचाने की दृष्टि से पश्चिमी यूराप के राष्ट्रों से सैनिक सहायता मागी। पोप उर्बान द्वितीय ने पैसेनजा (Piarenza) पर एक सभा आमन्त्रित की जिसमें अलेसियस को सहायता देने का निर्णय लिया गया। वह इस प्रकार की सहायता देकर पश्चिमी यूरोप में झगड़न वाले सामन्ता के सघर्षों की भी समाप्ति करना चाहता था। पश्चिमी यूरोप के शासकों ने भी इस सकट का अनुमान किया और उसमें सैनिक सहायता देने को उद्यत हा गये। कुछ इतिहासकारो का यह भी कहना है। कि शासक अपने सामन्तों को युद्ध म भेज कर उनक पीछ से अपनी शक्ति बढाना चाहते थे।

आर्थिक कारण-स्पेन से मुस्लिम प्रभाव समाप्त हो चुका था। अत स्पन के व्यापारी निर्भीक हा भू-मध्य सागर मे व्यापार करने लगे थे। उनके व्यापार को विकसित होता देख इटली के व्यापारिक नगरा के व्यापारियों न भी अपने व्यापार को पूर्वी देशों में बढ़ाने की इच्छा व्यक्त की। जिनेवा तथा वेनिस उस समय इटली के व्यापारिक एव समृद्ध नगर थे। जब उन्होंने पूर्व में बढ़ने का प्रयास किया तो तुर्कों से उनका युद्ध होना स्वाभाविक हो गया। इतिहासकार नैथेनियल पैट का कथन है कि पूर्वी देशों की समृद्धि की कहानियों ने पश्चिम के बहुत से दरिद्र किसानों को भी इन युद्धों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया था।

युद्ध की तैयारी-तत्कालीन पोप उर्बान द्वितीय न क्लैर्मो (Clermont) में एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलन में धर्माधिकारियों के अतिरिक्त शासक व सामन्त भी उपस्थित थे। उपस्थित लोगों को उसने जैरूसलम की रक्षार्थ युद्ध करने को प्रोत्साहित किया। उसके भाषण का प्रभाव ऐसा पड़ा कि समस्त लोग तन व धन से युद्ध में सहयोग देने को उद्यत हो गये।

घटनाए-धर्म-युद्ध चार हुए। प्रथम धर्म युद्ध 1096 ई० में आरम्भ हुआ और यह 1099 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध में किसी राजा ने भाग नहीं लिया था परन्तु सामन्तों का इसमें पूर्ण सहयोग था। सैनिकों में कृषक व साधारण लोग अधिक थे। इस युद्ध में ईसाइयों न अच्छी प्रगति की और वे जेरूसलम तक जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अधिकार भी कर लिया। इस युद्ध में ईसाइयों न वहा के मुसलमानों का कत्लेआम किया। कहते है कि जेरूसलम की गलियों में खून की धारा बह निकली थी और उन्हें घुटने तक के खून में चलना पड़ा था। परन्तु विजयी ईसाइयों में शीघ्र ही मतभेद उत्पन्न हो गये। इसका तुर्कों ने लाभ उठाया तथा उन्होंने ईसाइयों का जेरूसलम छोड़ने का बाध्य कर दिया।

दूसरा युद्ध-यह युद्ध 1147 ई० में आरम्भ हुआ था और 1148 ई मे इस युद्ध का अन्त हा गया। इसका कारण 1144 ई० में मोसुल के अमीर इमादेद्दीन जैंगी द्वारा एक ईसाई राज्य एडीसा (Edessa) पर आक्रमण करना था। इस युद्ध में जर्मनी के सम्राट कॉनरेड तृतीय (Conrad III) व फ्रास के लुई सप्तम (Louis VII) सम्राट ने भी भाग लिया। दोनों की सेनाओं ने एशिया माइनर में प्रवश किया। परन्तु तुर्कों ने दानों सेनाओं को परास्त कर दिया और सम्राट मुह की खा स्वदेश लौट आये।

तीसरा युद्ध-इसका आरम्भ 1189 में हुआ। जब जेरूसलम पर सलादिन (Saladin) का अधिकार 1187 ई० में हो गया तो पोप ने अपने ईसाई बन्धुओं को पुन धर्म-युद्ध करने को प्रोत्साहित किया क्योंकि जेरूसलम के पतन से पोप व यूरोप के शासक-वर्ग को महान् आघात पहुँचा था। इस बार सेना का नेतृत्व रोम सम्राट फ्रेड्रिक बारबारोसा (Emperor Frederick Barbarbossa) ने किया और इगलैण्ड के सम्राट रिचार्ड प्रथम (Richard I) ने उसका साथ दिया। रिचार्ड अपने समय का योग्य सेनानायक था। उसे 'शेरे दिल' (Lion Heart) कहा जाता था। इन दोनों के अलावा फ्रान्स के राजा फिलीप आगस्टस (Philip Augustus) भी उनके साथ गया था। एशिया माइनर में प्रवेश करते समय रोमन सम्राट इस लोक से चल बसा। ईसाई सेना फिर भी बढ़ती रही।पलड़ा भारी मुसलमानों का ही रहा। परन्तु सलादीन रिचार्ड की वीरता से बड़ा प्रसन्न हुआ और 1193 में उसने समझौता कर लिया। समझौते के अन्तर्गत् ईसाइयों को धार्मिक स्वतन्त्रता मिल गई। तीसरे धर्म-युद्ध में ईसाइयों की पराजय का मुख्य कारण जर्मनी के वृद्ध सम्राट फ्रेडरिक का नदी में डूबकर मर जाना तथा इगलैण्ड के शासक रिचार्ड व फ्रास के शासक फिलिप (Philip) का आपस में झगड़ना था।

चौथा युद्ध-सलादीन की मृत्यु 1194 ई० में हो जाने के कारण ईसाइयो को धार्मिक सुविधाएँ अधिक दिनों तक उपलब्ध न रहीं। अत 1202 ई० में उन्हें तुर्कों के विरुद्ध चौथी बार युद्ध छेड़ना पड़ा। यह युद्ध 1204 ई० तक चलता रहा। इस युद्ध का नेतृत्व पोप इनोसेन्ट तृतीय (Innocent III) ने किया। वेनिस के नागरिकों के आर्थिक सहयोग स इस युद्ध के सचालन में पर्याप्त सहयोग मिला। जेरूसलम पर अधिकार भी कर लिया गया। परन्तु उनकी फूट का लाभ उठाकर यूनानवासियों की सहायता से तुर्कों ने जेरूसलम को पुन अपने अधीन कर लिया और उनका वहा अधिकार 1453

ई० तक बना रहा। अत इस युद्ध में भी ईसाइयो को असफलता ही मिली।

इस चौथे धर्म-युद्ध के उपरान्त भी इसाइया ने मुसलमानों क विरुद्ध अपना सघर्ष जारी रखा। कई युद्ध लडे गय पर वे अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझे जाते। इन युद्धों में उल्लेखनीय युद्ध बच्चों का युद्ध था जो 1212 ई० में लड़ा गया था। बीस हजार के करीब बच्चे धर्म-युद्ध के लिए एकत्रित हुए। उन्होंन जन-साधारण में धर्म क लिए उत्साह अवश्य उत्पन्न किया पर उनको भी असफलता ही मिली। बहुत से तो मार्ग में मृत्यु क ग्रास बन गये। बहुत सों का जिनेवा व वेनिस के लालची व्यापारिया ने दासों के रूप में बेच दिया। कुछ ही बच्चे लौटकर घर वापिस आ सके।

धर्म युद्ध के परिणाम–नि सन्देह धार्मिक-युद्धों की घटनाए उत्तर मध्ययुगीन यूरोप की सबसे दर्दनाक घटनाए हैं। इन युद्धा की विफलताओं से ईसाई शासका व सामन्तों का मान घट गया। पूर्वी यूरोप में मुसलमानो का शासन फैलने लगा। ईसाइयो को जैरूसलम में धार्मिक सुविधाए प्राप्त न हुई। यह सब होत हुए भी इन युद्धों के परिणाम यूरोपवासियों को हितकर भी सिद्ध हुए। उन लाभदायक परिणामों में स कुछ उल्लेखनीय इस पकार हैं –

1 युद्धों से पूर्व यूरोपवासी भीरू थे। परन्तु इन युद्धों के उपरान्त व भी सशस्त्र कौम में परिवर्तित हो गय। 2 यूरोप क देश अब सगठित हा गय और वहाँ के लोगों मे राष्ट्रीय भावना भी प्रबल हो गई। 3 इन धर्म युद्धों के कारण पोप की प्रभुता म चढ़ाव भी आया तो उतार भी आया। पाचवें धर्म युद्ध तक पाप धर्म-युद्धों में सक्रिय रहा और उसकी प्रभुता भी चरम-सीमा पर पहुच गई, परन्तु धर्म-युद्धा क समाप्त होते ही पोप की प्रभुता दिना-दिन घटन लग गई। 4 कृपक अब स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारों को व्यक्त करने लगे। 5 इन युद्धों से यूरोप के व्यापार को बहुत लाभ पहुचा है। यूरोपवासी पश्चिमी एशिया के सम्पर्क में आये तथा उनके सहयोग से वे व्यापार के क्षेत्र मे अग्रसर हान लगे। पश्चिमी एशियाई देशों की बढ़ती माग का पूरा करने की दृष्टि से यूरोप का उत्पादन बढ़ने लगा। वेनिस, जिनेवा तथा पीसा (Pisa) व्यापार के केन्द्र बन गये। 6 भारत से व्यापार करने की दृष्टि से नवीन जलमार्गों की खोज की गई। 7 इन युद्धों के कारण यूरोपवासी शिक्षित भी होने लगे तथा वे अपनी सभ्यता को विकसित करने लगे। प्रख्यात यूनानी रोम जैस नगरों में बस गये तथा उन्होंने वहा ज्ञान का प्रसार किया। 8 इन धर्म-युद्धों के परिणामस्वरूप सामन्त प्रथा का ह्रास हुआ एव यूरोप के पुनर्जागरण में धर्म-युद्ध सहायक सिद्ध हुए।

जैसा कि धर्म युद्धों के उद्देश्यों में स्पष्ट कर आय हैं कि पाप इन धम-युद्धों के माध्यम से अपनी शक्ति में भी वृद्धि करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से 1215 ई० में पोप इनोसेंट तृतीय (Innocent III) न चतुर्थ लैटैरन सभा (Fourth Laterran Council 1205) को आमन्त्रित की थी। इसमें उसे सफलता भी मिली। इसक अन्तर्गत् चर्च की किसी भी माग को शासक द्वारा पूरा न करने पर बिशॉप वहा के शासक का बहिष्कार कर सकता था। नास्तिकों को धर्माधिकारी दण्डित भी कर सकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति पर धर्म की विजय हुई और रोमन सम्राट् तथा अन्य सभी शासक पोप

के आधीन हो गये। कैथोलिक चर्च व पोप की सत्ता का सर्वोपरि व सार्वभौम होने के कारण और भी थे। उनमें कतिपय निम्नलिखित थे -

(1) कैथोलिक चर्च का उद्गम ईश्वरीय समझा जाता था।

(2) कैथोलिक चर्च का सगठन विशाल, शक्तिशाली एव सुनियोजित था।

(3) चर्च के सुदृढ होने का एक कारण उसकी सुदृढ आर्थिक अवस्था भी थी।

परन्तु यह सब होते हुए भी चर्च का नैतिक स्तर बहुत गिर गया था। जन-साधारण में धर्माधिकारियों के जीवन की आलोचना होने लग गई थी। सक्षेप में हम कह सकते हैं कि उत्तर मध्य युगीन चर्च बाह्य रूप से सर्वशक्ति सम्पन्न एव साधन सम्पन्न होते हुए भी अपनी आन्तरिक कमजोरियों के कारण अपना गौरव खोने लगी थी।

सामाजिक स्वरूप-उत्तर मध्य काल में समाज प्रधानतया दो वर्गों में विभक्त था (1) अधिकारों से युक्त शासक व उनके सामन्त तथा (2) अधिकारों से वचित कृषक व दास। यद्यपि उस काल म यूरोप के देश भी कृषि प्रधान थे और वहा की अधिकाश जनता किसानों की ही थी। कृषक-वर्ग सामन्तों के पूर्णरूपेण आधीन होता था। किसानों की आर्थिक अवस्था अत्यन्त दयनीय थी तथा वे हर प्रकार से अपने स्वामियों द्वारा शोषित होते थे। पन्द्रहवीं शती तक यूरोप के समाज का यही स्वरूप रहा। परन्तु समाज में अब नव-चेतना भी घर करने लगी थी। शिक्षा के प्रसार से मध्यम-वर्ग पनपने तथा शक्ति में आने लगा था। राजा भी अब सामन्तों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होने लगा था। वह अब सामन्ता पर निर्भर न रहकर मध्यम वग व व्यापारी वर्ग पर अवलबित रहने लगा था। स्त्रियों की दशा भी दयनीय थी। सामन्ता के प्रासादो मे निवास करने वाली महिलाए सामन्तों के मनोरजन का साधन मात्र बनी हुई थीं। परन्तु धर्म-युद्धों के परिणामस्वरूप व 1348 की भीषण महामारी के कारण समाज में महान् परिवर्तन हो गये थे।

राजनीतिक स्वरूप-मध्ययुगीन यूरोप का स्वरूप साम्राज्यवादी था। राजनीतिक सत्ता पूर्णत सम्राट के हाथों में निहित थी। परन्तु प्राचीन रोमन-साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप यूरोप दो स्वतन्त्र इकाइयों म विभक्त हो गया था- (1) पूर्वी साम्राज्य तथा (2) पवित्र रोमन साम्राज्य। चार्ल्स महान् तथा आटो महान् क प्रयासा के परिणामस्वरूप पश्चिमी एव मध्य यूरोप को एक राजनीतिक तथा धार्मिक सस्था में परिणित किया गया जो कि पवित्र रोमन साम्राज्य के नाम से इतिहास में जाना जाता है। परन्तु रोमन साम्राज्य मे अधिक दिनों तक राजनीतिक व धार्मिक सत्ता का समन्वय नहीं रह सका। अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के कारण पश्चिमी ईसाइयत में एक छत्र राजनीतिक सत्ता दुर्बल होने लगी और अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित होने लगे। राजनीतिक दुर्बलता के कारण ही पोप तथा सम्राट् में सत्ता के लिए सघर्ष छिड़ गया था। इस सघर्ष में अन्ततोगत्वा रोम के पोप की विजय हुई। पवित्र रोमन सम्राट् तथा अन्य शासक पोप के आधीन हो गये। पोप, क्या धार्मिक क्षेत्र में और क्या राजनीतिक क्षेत्र में सर्वोच्च बन गया, पर राजनीतिक सगठन का मूलाधार सामन्तवाद ही रहा और राजनीतिक ईकाइयों में राष्ट्रीयता का भी अभाव ही बना रहा।

पन्द्रहवीं सदी में राजनीतिक परिवर्तन लक्षित होने लगे। तेरहवीं सदी तक पोप की सत्ता राजनीतिक क्षेत्र में विद्यमान रही। इसके उपरान्त पोप निरन्तर राजनीति में अपना प्रभाव खोता रहा। पोप ग्रिगोरी दशम् का काल सत्ता की सर्वोच्चता का चरम-काल कहा जा सकता है।[1] परन्तु जब इंगलैण्ड तथा फ्रांस की शक्तिशाली तथा सामन्तों के प्रभाव से मुक्त सरकारों की स्थापना ने पोप की सत्ता की सर्वोच्चता के लिए गम्भीर प्रश्न उत्पन्न कर दिया तो वह राजनीति में अपना प्रभाव खोने लगा। शनै शनै और भी शक्तिशाली राज्य अस्तित्व में आने लगे और वे रोम के पोप से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने लगे। अब उन शक्तिशाली राज्यों में राष्ट्रीय भावना भी प्रबल होने लगी थी। पश्चिमी यूरोप में विविध स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली राज्यों के उत्थान के साथ-साथ औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना हुई। धर्म-युद्धों का एक परिणाम यह भी हुआ था कि यूरोपवासी पूर्वी देशों से सम्पर्क स्थापित करने हेतु जल-मार्गों की खोजों में व्यस्त हो गये। उनके इन प्रयासों के परिणामस्वरूप ही वास्कोडिगामा भारत के समुद्री किनारे पर उतर सका तथा कोलम्बस अमेरिका पहुंच सका था। उनकी इन समुद्री यात्राओं ने ही यूरोप में उपनिवेशवाद का प्रादुर्भाव किया।

राजाओं की शक्ति का केन्द्रबिन्दु अब सामन्त न रह कर व्यापारी वर्ग एवं मध्यम-वर्ग होता जा रहा था। शक्तिशाली शासक सामन्तों की शक्ति को निरन्तर कुचल रहे थे। इसमें उन्हें बारूद के आविष्कार से भी सहायता मिली। मध्यम-वर्ग भी सामंतों की महत्त्वाकांक्षाओं पर अंकुश रखने की नियत से शासक-वर्ग के प्रभाव में आ रहा था। शत वर्षीय युद्ध (Hundred Years War 1340 1453) ने यूरोप की राजनीति में महान् परिवर्तन ला दिए थे। इस युद्ध के उपरांत फ्रांस में शक्तिशाली एवं निरंकुश राज्य की स्थापना हो रही थी तथा इंगलैंड में मैगना कार्टा (Magna Carta 1215) के उपरांत जनता की सत्ता स्थापित होने लगी थी। परन्तु उसकी प्रगति पर ट्यूडर-वंश (Tudor Dynasty) के राजाओं ने अंकुश लगा दिया था।

आर्थिक स्वरूप-मध्य-युग में व्यापार गिल्ड (Guilds) नामक संस्थाओं के माध्यम से होता था। अतः गिल्ड संस्थाएं उस काल में आर्थिक संगठन की मूलाधार बनी हुई थीं। परन्तु बारहवीं व तेरहवीं सदियों में यूरोप का ज्यों ही राजनीतिक विस्तार आरम्भ हुआ तो देशों का आर्थिक विकास भी संभव हुआ। व्यापार का क्षेत्र विस्तीर्ण हो गया। धर्म-युद्धों से भी यूरोप का व्यापार विकसित हुआ था। इन धर्म युद्धों के उपरान्त यूरोपवासी पूर्वी देशों तथा उनके उत्पादित सामान के सम्पर्क में आये तथा वहां के सामान का भारी मात्रा में अपने यहां आयात करने लगे।[2]

प्रत्येक व्यवसाय ने अपना अलग संघ बनाना आरंभ कर दिया। इन संघों के अपने नियम होते थे और इनका मूल उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना होता था। गिल्ड में उत्पादकों, कारीगरों, मालिकों व प्रशिक्षितों का उचित प्रतिनिधित्व होता था। कारीगर प्रशिक्षार्थियों

1 Strayed Munro "The Middle Age p 398

2. Pauline Gregg "The Chain of History p 138

को सिखाते थे। काम सिखाने के पैसे कारीगर नहीं लेता था और प्रशिक्षार्थी को मजदूरी काम सीख जाने पर ही मिलती थी। गिल्ड अपने सदस्यों के कल्याण का ध्यान रखती थीं।

मेलों का महत्व-आन्तरिक व्यापार मेलों के माध्यम से भी होता था। इस प्रकार के मेले गिरजाघरों एव उनके समीप ही लगते थे और बहुधा व धार्मिक पर्व व उत्सवों के समय ही लगते थे ताकि आम लोग धर्म के नाम पर वहा एकत्रित होकर अपनी आवश्यक वस्तुए भी खरीद सकें। इस प्रकार के मेले साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक होते थे। जब इन मेलों का क्षेत्र बढ़ने लगा तो इनकी सुरक्षा का भार शासक वर्ग पर पड़ने लगा। सामन्तों के प्रभाव से मेले मुक्त होने लगे। इस प्रकार के परिवर्तन से राजा की शक्ति तो बढ़ी ही पर साथ ही उसकी आय के स्रोत भी वृद्धि पाने लगे। इस प्रकार के मेले लगने से नगरों की सख्या में भी वृद्धि हुई। नगरों के विकास के साथ-साथ गिल्ड-सस्थाएँ कम महत्व की होती गईं और व्यापारी-वर्ग अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाने लगे। व्यापारी वर्ग धनी वर्ग होता जा रहा था। अत उनके धनी होने के कारण उनके रहन-सहन में भारी परिवर्तन दृष्टिगत होन लगा था। वे अपने निवास के लिए भव्य भवनों का निर्माण कराते थे तथा जीवन-व्यापन के लिए सुख-सामग्री दूर क देशों स मगाते थे।

बैंकों की स्थापना न होने के कारण यहूदी ही बैंकर्स का कार्य करते थे जो ब्याज लेन में काफी बदनाम थे। व्यापारिक मार्गों का निर्माण नहीं हुआ था। भूमध्यसागर में डाकुओं का भय सदा बना रहता था। सब देशों को मान्य एक मुद्रा का प्रचलन भी नहीं हुआ था। जगह-जगह मुद्रा को बदलवाना पड़ता था, पर फिर भी उत्तर मध्य-युग में यूरोप के देश आर्थिक क्षेत्र में उन्नति करते जा रहे थे। इन मेलों स कारीगर, शिल्पकार आदि सब को प्रोत्साहन मिलता था। सामान बेचने की कारीगरों को चिन्ता नहीं रहती थी। हुण्डी प्रथा के प्रचलन से बही-खाते भी रखे जाने लगे थे।

उपनिवेशवाद के प्रसार व पश्चिमी यूरोप में दास-प्रथा की समाप्ति से कृषि के क्षेत्र में भी महान् परिवर्तन लक्षित हुए थे। देशों में उत्पादन बढ़ने लगा था तथा कृषि का क्षेत्र विस्तीर्ण होने लगा था। इससे भी यूरोप की गरीबी व बेरोजगारी घट रही थी तथा आम लोगों का जीवन भी पहले की अपेक्षा सुखी होता जा रहा था। व्यापार व वाणिज्य के विकास से धन में वृद्धि हुई जिसके कारण मध्यम-वर्ग भी समाज में सम्मान-जनक स्थान पाने लगा तथा उसे समाज में महत्वपूर्ण भी समझा जाने लगा। इसी आर्थिक परिवर्तन के कारण यूरोप में कालान्तर में पूँजीवाद व साम्राज्यवाद भी शनै -शनै प्रबल होने लग गया था।

सास्कृतिक स्वरूप-मध्य-युग में सास्कृतिक समन्वय का मूल आधार धर्म था। लोग रूढ़िवादी व अन्धविश्वासी होते थे, परन्तु उत्तर मध्य युग में जब नगरों का विकास हुआ तथा व्यापारिक मेलों का क्षेत्र विस्तीर्ण होने लगा तो सास्कृतिक समन्वय का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ। लोग धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र से बहार निकल कर चिन्तनशील होन लगे थे तथा अपने विचारो में स्वतन्त्रता की भावना रखने लगे थे। धर्म व दर्शन के बीच गठबन्धन अब क्षीण होने लगा था। लैटिन भाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं

का भी विकास होने लगा था जिसके माध्यम से लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान अब सरलता एवं स्वतन्त्रता से करने लगे थे। मेलों में नाना प्रकार के साधनों से मनोरंजन होता था और मनोरंजन करने वाले अनेक स्थानों से वहां एकत्रित होते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि नगर संस्कृति व प्रगति के केन्द्र स्थल बन गये।

बौद्धिक स्वरूप-किसी विद्वान् ने सही कहा है कि भौतिक क्षितिज के विस्तार ने बौद्धिक विकास में अपूर्व योगदान दिया है। कुस्तुनतुनिया के पतन के उपरान्त यूनानी विद्वान् रोम व इटली के अन्य नगरों में आकर बस गये। इनके सम्पर्क में आने से इटली के निवासियों में प्राचीन यूनानी संस्कृति के अध्ययन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। इसके परिणामस्वरूप 'मानववाद' (Humanism) का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रचार से मानव के चिन्तन में महान् परिवर्तन हुआ। उसका चिन्तन-क्षेत्र केवल धर्म न रह कर मानव-समाज के कार्य-कलाप भी चिन्तन के क्षेत्र बन गये। इस क्षेत्र में दाते (Dante, 1265 1321) की कृति 'डिवाइन कामडी' (ईश्वरीय सुखान्त नाटक) ने पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। पैट्रार्क (Petrarch 1304-1374) इस मानववाद का सही रूप में प्रतिनिधि था। वह मध्य-युग का प्रथम विद्वान् था जिसने प्राचीन साहित्य की पूर्णता तथा उसके सौन्दर्य को समझा और उसे संस्कृति के प्रसार का एक सफल माध्यम स्वीकार किया। इस बौद्धिक विकास के अग्रदूत के रूप में हम अलबरटस मैगेनस (1206 80), टामस अकीनास (1226-74) तथा रोजर बेकन (1214 94) को ले सकते हैं।

ज्ञान की प्राप्ति हम दो प्रकार से कर सकते है (1) वाद-विवाद द्वारा तथा (2) प्रयोग द्वारा। वाद-विवाद धारा का प्रादुर्भाव पाण्डित्यवाद (Scholasticism) से हुआ। इस प्रणाली के अन्तर्गत विद्वान् धर्म, विज्ञान एवं दर्शन के विषयों पर तर्क-वितर्क करते थे। वाद-विवाद करते समय प्राध्यापक व विद्वान् चर्च के सिद्धान्तों की सत्यता प्रमाणित करने के लिए अरस्तू के तर्क शास्त्र का उपयोग करते थे। इस धारा के अनुयायी 'स्कूलमैन' कहलाते थे। इनमें सर्व विख्यात् मेधावी पीटर आबेलार (Peter Abelard, 1079 1142) था। सुकरात की भांति वह भी शिष्यों को चुनौती देने वाले प्रश्न पूछ कर उन्हें विचारशील बनाने का प्रयास करता था। उसका मूलमंत्र था, "सन्देह से हम छानबीन करते हैं और छानबीन करने से हम सत्य का पहिचान लेते हैं"। 1200 ई० के आस-पास प्रख्यात मुस्लिम विद्वान् आवेरोइस (Averroes 1126 98) के अरस्तू सम्बन्धी लेख यूरोप के विद्वानों को प्राप्त हुए। उन लेखों से वे भयभीत हो गये और सोचने लगे कि उसके लेखों से इसाइयों के दिलों में अपने धर्म के प्रति शंका उत्पन्न न होने लगे। प्रयोगात्मक खोज प्रणाली के अग्रदूत के रूप में हम रोजर बेकन (Bacon Roger) का ले सकते हैं।

स्कौलैस्टिसिज्म (पाण्डित्यवाद) धारा के सूत्रपात का श्रेय हम बढ़ते हुए शिक्षा के विकास को दे सकते हैं। उत्तर-मध्य युग में शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से होने लगा। बड़े-बड़े नगरों में विश्व-विद्यालयों की स्थापना होने लगी। 1200 ई० में पेरिस में विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई। यहां धर्म की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। धर्म-शास्त्र व ईश्वर-ज्ञान (Theology) पर उस समय बहुत ध्यान दिया जाता था। ईश्वर-ज्ञान के अध्ययन को उस समय 'विज्ञानों की रानी' (Queen of the Sciences) कहा जाता था।

इसके अलावा पेरिस के इस विश्व-विद्यालय मे दर्शन-शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान कराया जाता था। बोलोग्रा (Bologna) में कानून की शिक्षा दी जाने लगी थी। इटली के नगर सालेर्नो (Salerno) में दूसरा विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ जहा कि चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। इसी प्रकार का विश्व-विद्यालय मॉण्ट पिलियर (Mont Pilher) में स्थापित हुआ था। इगलैण्ड में आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी। अब विश्व-विद्यालयो में किसी एक विषय की शिक्षा न देकर धर्म, विज्ञान, चिकित्सा व कानून आदि की शिक्षा दी जाती थी। छापेखाने के आविष्कार ने पाठ्य पुस्तकों के अभाव की पूर्ति करने में अपूर्व सहयोग दिया था।

नगरों का विकास

जैसा कि मध्यकाल की विशेषताओ मे नगरों का विकास भी एक चारित्रिक विशेषता मानी गई है। अन्धकार युगीन यूरोप के ग्राम अब नगरों व बड़े शहरों का रूप धारण करने लगे। य विशाल नगर ही आगे चलकर व्यापार व सस्कृति के केन्द्र बन गये। स्थापत्य-कला का निखार भी भव्य-भवनों के रूप मे इन्हीं नगरों में देखा जाने लगा। उत्तर-मध्य-काल में ही इन नगरों का विकास क्यो हुआ- इसके भी कुछ कारण थे। उनमें से कतिपय निम्नलिखित थे-

नगरों के विकास के कारण-

1 **धर्म-युद्ध-** धर्म-युद्धों के कारण पश्चिमी यूरोप के लोग पूर्वी यूरोप तथा पश्चिमी एशिया के देशों के सम्पर्क में आये। विचारों के आदान-प्रदान के साथ-साथ उन देशा से माल भी आने-जाने लगा। इससे पश्चिमी यूरोप के नगर जो अन्धकार युग मे जीर्ण हो गये थे फिर से अपनी निद्रा का परित्याग कर नगरों में परिणित होने लगे।

2 **मुसलमानों का व्यापार के क्षेत्र में एकाधिकार समाप्त होना-** जब रोमन साम्राज्य का पतन हो गया था तो मुसलमानों का स्पेन तक आधिपत्य जम गया था। वे समस्त भूमध्यसागर के मालिक बन बैठे थे और निर्भीक होकर उस सागर मे व्यापार करने लगे थे। परन्तु शार्लेमेन व उसके उत्तराधिकारियो ने मुसलमानों के उस एकाधिपत्य को समाप्त कर दिया था। इसके उपरान्त धर्म-युद्धों से मुसलमानों के एकाधिपत्य को झटका लगा था। इसका परिणाम यह हुआ कि इटली के नगर अब भूमध्यसागर के व्यापार मे हाथ बटाने लग और वे व्यापारियों के केन्द्रस्थल बन गये। बी वी राय का कहना है कि इतालवी नगरों (वेनिस, जिनोआ व पीसा) ने धर्म-युद्धा के समय पूर्वी दशों से सम्पर्क स्थापित करने में कोई समय नहीं लगाया।[1]

3 **बदलती राजनीतिक परिस्थितिया-** फ्रेंक जाति का राज्य स्थापित हो जाने के उपरान्त उत्तरी यूरोप से आने वाले बर्बर लाग भी ईसाई बनने लगे। ईसाई धर्म के अगीकार करते ही उनक विचारो में परिवर्तन आने लगा। वे शान्ति स रहने लगे। इससे सरकारों में स्थिरता उत्पन्न होने लगी। अपनी सरकार के स्थिर हो जाने पर शासक-वर्ग अपने राज्यों व नगरा के विकास की ओर ध्यान देने लगे।

1 'The Itlian cities like Venice Genoa and Pisa lost no time in establishing tradelinks with orient at the time of crusades

B V Rao

4 जन-संख्या का बढ़ना तथा दास-प्रथा का समाप्त होना- उत्तर मध्य-काल की यह भी विशेषता रही कि गुलाम-प्रथा को यूरोपवासी अब समाज पर एक कलंक समझने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अब सामन्तों व धनी पुरुषों ने गुलाम रखना बन्द कर दिया। इसका फल यह हुआ कि गुलाम बेरोजगार हो गये और वे रोजी की तलाश में शहरों की ओर दौड़ने लगे जैसा कि आज हमारे भारत के नगरों में हो रहा है। इसके फलस्वरूप नगरों का विकसित होना स्वाभाविक था। इसके अलावा जब जन-संख्या में भी वृद्धि होने लगी तो नगरों का रूप दिनों-दिन विशाल होने लगा। दूकानदार व व्यापारियों को नौकर व ग्राहक दोनों भारी संख्या में मिलने लगे और उनका व्यापार दिनोंदिन विकसित होने लगा।

5 लोगों की बढ़ती हुई सम्पत्ति- जब यूरोप का मध्यम-वर्ग व्यापार के कारण दिन पर दिन धनी होने लगा तो उस वर्ग के धनी पुरुष अपनी सुख-सुविधाओं की दृष्टि से नगरों में आकर बसने लगे और वहीं अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने लगे तथा अपने निवास के लिए भव्य-भवन निर्मित कराने लगे। इससे भी नगरों का विकास हुआ।

6 मेलों का आयोजन- प्राचीन काल में यत्र-तत्र निर्धारित समय पर मेले आयोजित होते रहते थे। ये ही वे अवसर होते थे जबकि जन-साधारण अपनी जरूरत की वस्तुएं खरीद पाता था। उन मेलों में आस-पास व दूर के भी व्यापारी आते थे। जब व्यापारी अपने सामान की उन मेलों में अच्छी खपत पाते थे तो वे वहीं बस जाना श्रेयकर समझते थे। इस कारण भी नगरों का विकास संभव हो सका।

7 यातायात के साधनों का विकास- धर्म-युद्धों के परिणामस्वरूप यूरोपवासी भारत व चीन आने को आतुर हो गये। जल-मार्गों की खोज होने लगी। भूमध्य-सागर की भांति ही अरब-सागर व हिन्द महासागर पश्चिमी देशों के नाविकों के आगमन के मार्ग बन गये। लन्दन, जिब्राल्टर, केयरो, अदन, कराची, बम्बई, कोलम्बो, मद्रास, कलकत्ता आदि नगरों व बन्दरगाहों का विकास जल मार्ग के विकसित होने पर ही संभव हो सका है। इसी प्रकार जब उत्तरी यूरोप में फ्लैन्डर्स (Flanders) व्यापार का केन्द्र हो गया तो उसने अपना सामान इंगलैण्ड व बाल्टिक सागर के प्रदेशों में भेजने का प्रयास किया। इस कारण व्यापारिक मार्गों का विकास करना पड़ा और मार्ग में कई नगर व्यापार के केन्द्र बन गये।

8 सामन्तवाद का विकास- नगरों के विकास में सामन्तों का भी महान् सहयोग रहा है। जब सामन्तवाद अपने उत्कर्ष की चरम-सीमा पर पहुंच रहा था तो सामन्त अपने छोटे-कस्बों को महान् नगरों में परिणित करने का प्रयास करने लगे थे। उन्होंने स्वयं के लिए विशाल एवं सुखद गढ़ बनाये। अपनी प्रजा के लिए भी सुरक्षा प्रदान की। व्यापार सुरक्षा से होने लगा। इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े व्यापारी सामन्तों के सुरक्षित नगरों में आबाद होने लगे। वहीं वे अपना कारोबार करने लगे। इसके फलस्वरूप भी नगरों का विकास हुआ।

9 मध्यम वर्ग का उत्कर्ष- मध्यम-वर्ग के उत्कर्ष से भी नगरों का विकास तीव्रता से हुआ। जब मध्यम वर्ग की आर्थिक अवस्था में सुधार हुआ तो वे शिक्षित होने लगे। व सकीर्ण विचारों का परित्याग कर आस-पास के देशों के सम्पर्क में आने लगे। अपने नगरों के प्रशासन मे भी वे रुचि लेने लगे। शिक्षा के विकास के लिए विद्यालय व विश्व-विद्यालयों की स्थापना कराने लगे। उनके इन प्रयासों से भी नगरों के विकास मे महान् सहयोग मिला।[1]

10 रोमन कानून में अभिरूचि- 15 वीं सदी में जन-साधारण की रोमन-कानूनों के प्रति श्रद्धा बढ़ने लग गई थी। वे शक्तिशाली निरकुश शासक के विरोधी नहीं रहे थे। इस कारण अब वे उन शासकों व सामन्तो के राज्यों में बसने को वे तैयार थे जो उन्हें निवास व व्यापार में सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम होते थे।

नगरों की व्यवस्था- प्राचीन काल में नगरो को बसाते समय उनकी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा जाता था। अत सामन्त अपना प्रासाद एक दुर्ग मे बनवाता था। दुर्ग चारो ओर ऊची एव सुदृढ प्राचीर से आवृत्त होता था। दुर्ग व परकोटे का क्षेत्रफल इतना होता था कि आक्रमण के समय नगरवासी उसमें शरण ले सकें। परकोटे के चारों ओर खाई की व्यवस्था का भी प्रयास किया जाता था। परकोटे के प्रमुख द्वार पर मजबूत दरवाजा होता था जो आक्रमण के समय बन्द कर लिया जाता था। नगरो की गलिया तो सकरी ही होती थीं पर उनमें भवन उच्च शिखरों वाले बनने लग गये थे। गलिया कच्ची होती थीं। उनमें कीचड़ भरा होता था। परन्तु मुसलमानों के सम्पर्क में आ जाने पर गलिया पक्की होने लग गई थीं। रात्रि में प्रकाश की भी व्यवस्था की जाने लगी थी। उत्तर मध्य-काल में गिरजाघर बहुत सुन्दर निर्मित होने लग गये थे। वे धन तथा विद्या दोनों के ही केन्द्र होते थे।

नगरों का प्रशासन- मध्यकालीन नगर अधिकाश सामन्तों की जागीर (Fief) के ही होते थे। ऐसे नगरों का स्वामी सामन्त ही होता था। उन नगरों मे सब प्रकार के करो की वसूली सामन्त ही करते थे। पुरवासियों को पूर्णत सामन्त के आधीन रहना पड़ता था। परन्तु जब नगरवासी धनी हो गये तो वे सामन्त को एकमुश्त धन देकर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने लगे थे। ऐसे नगर निवासियों को प्रशासन सम्बन्धी कुछ अधिकार मिल जाते थे। ऐसे नगरों में मेयर की व्यवस्था होने लग गई थी। मेयर को उस काल में 'बर्गोमास्टर' कहा जाता था। कानून बनाने के लिए एक परिषद होती थी। मेयर परिषद की सहायता से कानून बनाता था और वे कानून जागीर (मेनर) के कानूनों व न्यायलयों की अपेक्षा अधिक न्यायपूर्ण होते थे। स्वतन्त्र नगरों के प्रशासन में व्यापारी-व्यवसायी तथा बुद्धिजीवी हाथ बटाते थे। नगरों के मध्यम श्रेणी के लोग अब बुर्जुआ (Bourgeoisie) कहलाने लगे थे। यह शब्द 'बुर्ग' से बना है जिसका अर्थ होता है नगर। नगर प्रशासन में 'श्रेणियों' (Guilds) का भी

1 hard

बड़ा हाथ रहता था। वे अपने सदस्यों के हितों का ध्यान रखती थीं। ये गिल्ड्स ही वस्तुओं के भाव निर्धारित करती थीं। वे अपने सदस्यों द्वारा उत्पादित सामान की क्वालिटी बनाये रखने का भी प्रयास करती थीं। गिल्ड का सदस्य बनते समय मनुष्य का अपनी गिल्ड के प्रति आस्थावान बने रहने की शपथ लेनी पड़ती थी। इस प्रकार की शासन व्यवस्था मे तत्कालीन नगर फलीभूत हो रहे थे।

मध्य युग का सिंहावलोकन- मध्य-युग की प्रमुख विशेषता ईसाई धर्म की प्रधानता रही। पोप व उसके अन्य धर्माधिकारियों का इतना प्रभाव रहा कि यूरोप के नगर कलापूर्ण गिरजाघरों से अलकृत होने लगे थे। परन्तु इनका निमाण बर्बर जाति के आक्रमणों के रोकने पर ही सभव हो सका। जेरूसलम पर अधिकार करके तुर्कों ने यूरोप के ईसाइयो को धर्म-युद्ध करने को बाध्य कर दिया। धर्म-युद्धों के परिणामस्वरूप नि सन्देह पोप की प्रभुता को महान् आघात पहुचा, परन्तु इन युद्धों के कारण यूरोप का व्यापार विकसित हुआ। व्यापार के विकसित होने के कारण धनी-वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ। धनी-वर्ग ने नगरों के विकास के साथ-साथ भवन-निर्माण-कला व मूर्ति-कला के निखार में महान् सहयोग दिया। मानववाद व पाण्डित्यवाद के कारण यूरोप का जन-साधारण अशिक्षा व अन्ध-विश्वासों के तिमिर से बहार निकल सका। अपने विचारों को वैज्ञानिकता का आधार दे कर वह नूतन सभ्यता को विकसित कर पुनर्जागरण व धर्म-सुधार आन्दालन की सुदृढ़ भूमिका तैयार कर सका।

प्रश्न

1 मध्य-युगीन चर्च-व्यवस्था का यूरोप की सभ्यता के विकास में योगदान बताइये।
Trace the contribution of Medieval Church in the development of European Civilization

2 मध्य-युगीन यूरोप की चारित्रिक विशेषताओं का पर्यवेक्षण कीजिए।
Discuss the characteristics of the Medieval Ages

3 धर्म-युद्धों के कारण व परिणामों की विवेचना कीजिए।
Discuss the causes and the results of the Crusades

4 यूरोप के मध्ययुगीन नगरों एवं श्रेणियों पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
Write a critical essay on the Medieval cities and the Guilds

5 पवित्र रोमन साम्राज्य के उत्थान तथा पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the causes of the rise and the fall of the Holy Roman Empire

10

यूरोप में सामन्तवाद

"यह शताब्दी जिसमें सामन्तवाद आरंभ हुआ, एक वह सदी थी जिसमें पुराना समाज समाप्त हो गया था तथा नवीन वर्ग अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ था।"

-स्ट्रेयर और मुनरो

सामन्तवाद का अर्थ-सामन्तवादी व्यवस्था मध्यकालीन यूरोपीय सभ्यता की सबसे प्रमुख विशेषता है। मध्यकालीन यूरोप की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सभी व्यवस्थायें इसके ऊपर आधारित थीं। सामन्तवाद को अंग्रेजी में फ्यूडलइज्म (Feudalism) कहते है। फ्यूडल शब्द की उत्पत्ति फ्यूडम (Feudam) शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है जागीरदार। प्राचीनकाल में जब रोम जैसे विशाल साम्राज्य स्थापित हो गए तो शासक को अपने विशाल साम्राज्य की समय पर उचित रूप में सभाल करना कठिन हो गया। इस प्रकार शासक अपने वशज सम्बन्धियों को अपने राज्य के कुछ छोटे भाग सभालने के लिए देने लग गए। जिन्हें यह भार सौंपा गया उन्हे इसके बदले में शासक द्वारा निर्धारित सैनिक रखने पड़ते थे। परन्तु युद्ध में सहयोग देने के अलावा उन्हें अपने निर्धारित भू-भाग में बसने वाले लोगों की देख-भाल भी करनी पडती थी। वे उनके झगड़े भी वहीं तय करते थे। धीरे-धीरे इन सम्बन्धियों के अधिकार पैतृक हो गये और वे सामन्त कहलाने लगे। अत वेबस्टर (Webster) ने सामन्तवाद का अर्थ इस प्रकार से बताया है- "सामन्तवाद एक ऐसी प्रणाली है जिससे स्थानीय शासक उन शक्तियों का प्रयोग करते हैं जो राजा, सम्राट अथवा किसी केन्द्रीय शक्ति को प्राप्त होती हैं। इस प्रथा के अन्तर्गत् राजा अपने अधीनस्थ भूमि को अपने वीर सैनिकों व अन्य राज्य-भक्त सरदारों में बाट देता था। उस वितरित भू-भाग के स्वामी सैनिक और सरदार बन जाते थे। वे कृषकों से खेती करवाते थे और उनसे अपनी इच्छानुसार कर वसूल करते थे।" पादरी स्टब्स ने सामन्तवाद का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है- "इसे हम उस पूर्ण सामाजिक सगठन के नाम से पुकार सकते हैं जिसका आधार भूमि का स्वामित्व था जिसमें राजा से लगा निम्न श्रेणी के कृषक तक सभी सेवा तथा रक्षा के उत्तरदायित्व से एक-दूसरे से बधे थे। भूमिपति अपने आसामी की रक्षा करता था। आसामी इसके बदले में राजा की सेवा करता था ।" अत प्रधानत सामन्तवाद उस मध्यकानीन शासन-व्यवस्था का नाम था जिसके अन्तर्गत् भू-स्वामी उन प्रभुसत्ता-जनित अधिकारों का उपयोग करते थे जिन पर पहले राजाओं का अधिकार था। वास्तव में देखा जाय तो यह अवस्था थी जिसमें निर्बल व्यक्ति शक्तिशाली व्यक्ति की सेवा करके उसके

सुरक्षा की कामना करता था। इसीलिए हेज व मून ने इसे महान् सकट के समय पारस्परिक सुरक्षा की व्यवस्था बताया है।[1]

सामन्त प्रथा का विकास–इतिहासकार नैथेनियल प्रैट के मतानुसार सामन्त-तन्त्र न कोई प्रणाली थी, न कोई योजना और न काई इसका आयाजन किया गया था। इसके अलावा यूरोप के समस्त देशों में इसका स्वरूप भी एकसा नहीं था। यह तो आवश्यकता के कारण ही विकसित हुई थी। 2500 ई० पूर्व यह प्रथा मिस्र में और होमर-युग में यूनान मे विद्यमान थी। जापान की समाज तो मूलत सामन्तवादी ही थी और उसने अपना यह स्वरूप उन्नीसवीं सदी के मध्य तक बनाये रखा। रोमन साम्राज्य के पतन के उपरान्त यूरोप में एक शक्तिशाली केन्द्र शक्ति अभाव हो गया और यूरोप कई छोटे-छाटे स्वतन्त्र राज्या म विभक्त हो गया। यूरोप में भी इसका आरभ वैसे तो 5वीं सदी मे ही हो गया था परन्तु शार्लमैन (Charlegmagne) ने एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर तथा एक विशेष पकार की शासन-व्यवस्था स्थापित कर के इस प्रथा के स्वरूप पर कुछ नियन्त्रण लगा दिया था। उसने मिसीडेमिनिसाह नामक अधिकारी नियुक्त कर दिए थे। ये अधिकारी प्रान्तीय शासकों पर नियन्त्रण रखते थे। इस कारण स्थानीय भूमीपतियों का प्रभाव नहीं बढ पाता था। परन्तु उसकी मृत्यु (814 ई०) के साथ ही सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता समाप्त हो गई। उन राज्यो क शासक परस्पर में स्वतन्त्र हात थे चाहे शक्ति मे निर्बल ही क्यों न हों। शक्तिशाली केन्द्रीय शक्ति के अभाव में यूरोप में राजनीतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई तथा राज्यों मे अराजकता एव अव्यवस्था घर करन लगी। ऐसी परिस्थितियों में यूरोप विदेशी बर्बर जातियों के आक्रमण का शिकार बन गया। एक के बाद एक विदशी जातिया आती रहीं और यूराप पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास करती रहीं। इन परिस्थितियों में किसानों ने अपनी भूमि शक्तिशाली भूमिपतियों को उनका सरक्षण प्राप्त करन के लिए सौंप दी। बहुत स धर्मपरायण व्यक्तियों ने अपनी भूमि चर्च को अर्पित कर दी और अपने जीवन-काल तक उस पर खती करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। भूमि की रक्षा के अतिरिक्त जन-साधारण के जान-माल की रक्षा हेतु व सामाजिक जीवन ज्यों का त्यों बनाये रखने के लिए एक नवीन व्यवस्था को जन्म देना आवश्यक हो गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत् राज्य के समस्त कार्यों का उचित विभाजन तथा स्थानीयकरण का भी उचित ध्यान रखा गया। अत स्पष्ट है कि मध्य युग की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हतु सामन्तवाद का विकास हुआ, पर फिर भी यह कहना पड़ता है कि यह व्यवस्था कोई नियोजित योजना नहीं वरन् एक स्वाभाविक एव स्वत उत्पन्न होने वाली व्यवस्था थी। इतिहासकार मैगनिस ऐपिल (Magenis Appel) का कहना है कि इस प्रथा का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम फ्रास में हुआ और यहीं यह अपनी चरम-सीमा पर पहुची।[2] फ्रास के अलावा यह प्रथा यूरोप के अन्य देशों में भी प्रचलित

1 Feudalism served as a mutual insurance society in a time of great danger
Hayes and Moon

2. Magenis Appel A History of the World p 183
"Feudalism had its origin in France and there it reached its height"

हुई। इगलैण्ड में इसका सर्वाधिक प्रभाव तेरहवीं सदी में ही रहा और इसका प्रभाव इसी शती में कम हुआ।[1] समय के परिवर्तनों के साथ-साथ इस प्रथा में भी कई उतार-चढ़ाव आते रहे पर इस प्रथा का प्रभाव विशेष रूप से प्रशासनिक कार्यों पर ही पड़ा। आर्थिक व सामाजिक ढाचे पर इसका प्रभाव कम रहा। इसलिए सामन्तवाद को केवल प्रशासन की एक विधि माना है।

सामन्तवाद का जन्मदाता शार्लमैन (Charlegmagne 768 814)-शार्लमैन का दूसरा नाम चार्ल्स महान् था। इसका जन्म 743 ई० में हुआ था और इसके पिता का नाम पेपिन (Pepin) था। पेपिन एक योग्य सेनानायक था। उसने अपनी फ्रैंक जाति को सुगठित किया और इसमें सफलता मिलने पर उसने रोम में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। 768 ई० में जब उसका देहान्त हो गया तो उसका यह विशाल साम्राज्य उसके दो पुत्रों शार्लमैन और कैरलोमैन में विभक्त हो गया। परन्तु भाग्यवश कैरलोमैन केवल तीन वर्ष ही राज्य कर इस लोक से विदा हो गया। इस प्रकार पिता का विशाल साम्राज्य शार्लमैन को ही प्राप्त हुआ।

शार्लमैन भी अपने पिता की भाँति एक अच्छा योद्धा था। उसने अपने शासन-काल में अनेक राज्यों को परास्त कर पिता के विशाल साम्राज्य को और भी विस्तृत कर दिया। परन्तु उस समय तक यातायात के साधन तो सुलभ नहीं थे। अत उस विशाल साम्राज्य की सुरक्षा का प्रश्न उसके समक्ष प्रस्तुत हुआ। इस कारण उसने कुछ योग्य एव विश्वसनीय मनुष्यों को कुछ निर्धारित भूमि देकर उनसे निर्धारित सैनिक रखने के लिए कहा। परन्तु साम्राज्य विशाल होने के कारण सीमावर्ती भागों की फिर भी उचित रूप से देख-भाल नहीं हो सकती थी। इस कारण उसने अपने उन स्वामिभक्त मनुष्यों को ही सीमावर्ती भूमि का स्वामी बना दिया और उनकी देख-रेख भी पूरी तरह से उन पर छोड़ दी। इस प्रकार वे छोटे-छोटे भू-भागों के स्वामी अपने उस भाग में उसकी मृत्यु के उपरान्त सर्वस्व बन बैठे। वहा के लोग उन्हें अपना स्वामी मानने लगे। इसके बदले में सामन्तों को शासक की सहायता के लिए सेना अवश्य रखनी पड़ती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सामन्तवादी प्रथा का जन्म आठवीं सदी के अन्तिम चरण में स्पष्ट रूप से हो गया था और उसका जन्मदाता शार्लमैन माना जाता है। परन्तु उसके शासन-काल में यह प्रथा उस स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकी थी जो उसका नवीं सदी से 14वीं सदी तक रहा था।

सामन्त प्रथा के आधार–जैसा कि हम इससे पूर्व स्पष्ट कर आये है कि यह प्रथा किसी विशेष राजनीतिज्ञ व प्रशासक के मस्तिष्क की उपज नहीं थी, परन्तु फिर भी इस प्रथा का विकास रोमन तथा ट्यूटन प्रणालियों के आधार पर ही माना जाता है। रोमन साम्राज्य के प्रान्तों में कृषि-कार्य कई शताब्दियों तक स्वतन्त्र आसामियों द्वारा होता रहा। इन आसामियों ने अपनी कई शक्तिशाली बस्तिया स्थापित कर ली थीं। अराजकता

1 'The thirteenth century may be called the least feudal or the most feudal century of the Middle Ages.

Pollack and Maitland

के समय ये बस्तिया भूमिपतियों के सरक्षण में रहने लगीं। इस सरक्षण प्राप्ति के बदले आसामियों को अपनी स्वतन्त्रता बेचनी पड़ती थी। ट्यूटन प्रणाली के अन्तर्गत् आसामी शक्तिशाली भूमिपति के अधीन अपने को पूर्णरूपेण सौंप देता था। अपनी सुरक्षा के लिए आसामी अपने को पूरी तरह से अपने शक्तिशाली स्वामियों के आश्रित कर देते थे। नवीं व दसवीं शताब्दियों म तो यूरोप में अराजकता इतनी बढ़ गई थी कि आसामी अपनी सुरक्षा के लिए कुछ भी मूल्य चुकाने के लिए उद्यत रहते थे।

सामन्तवाद के तत्व–सामन्तवाद का आविर्भाव एक आकस्मिक घटना के रूप मे नहीं हुआ। इसके आविर्भाव में भी अनेक तत्वों ने अपना सहयाग प्रदान किया है। प्रो० जे ई स्वेन (J E Swain) ने प्रमुख निम्नलिखित तत्व बताये है –

1 भूमि–सामन्तवाद के आविर्भाव व प्रसार मे भूमि न महान् भाग अदा किया है। जब शासको के पास भूमि इतनी अधिक हो गइ कि वे उसकी पूरी तरह देखभाल नहीं कर सके तभी तो शासकों ने इसका बटवारा अपने सम्बन्धियों व वीर सेनानायकों में किया और व आगे चलकर सामन्त कहलाये। इसक अलावा शासक व सामन्तों के बीच सुरक्षा सम्बन्धी समझौता भी तो भूमि के आदान-प्रदान से ही हुआ। यदि शासक अपने सामन्त (Baron) से अपनी सुरक्षा के लिए कुछ सैनिक मागने का अधिकारी था तो उसे इसके बदले में अपने उसे सामन्त को भूमि अवश्य दनी पड़ती थी। अत सामन्तवाद के विकास मे भूमि का महत्वपूर्ण भाग रहा है।[1] मध्य-युग में आमद व रोजी कमाने का प्रमुख साधन ही भूमि था। यद्यपि व्यापार का विकास होने लग गया था तब भी भूमि ही पूँजी का प्रमुख साधन बनी हुई थी। भूमि के आधार पर ही सामन्त की प्रतिष्ठा होती थी। भूमि का स्वामी तो राजा ही होता था पर वह केवल सिद्धान्त रूप मे ही। भूमि के वास्तविक स्वामी सामन्त बन गये थ जिनको कि सैनिक सहायता के बदले राजा ने भूमि दे दी थी।

2 व्यक्तिगत सम्पर्क–सामन्तवाद का सूत्रपात भी शासक व सामन्त के बीच एक समझौते के परिणामस्वरूप ही हुआ। राजा अपनी भूमि का अपने उन सम्बन्धियों में ही वितरण करता था जिनसे उसके सम्बन्ध अच्छे होते थे। सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य लागों को भी वह अपने साम्राज्य के भू-भाग देता था। परन्तु यह तभी होता था जबकि उसे उनकी स्वामि-भक्ति पर पूर्ण विश्वास होता था। ऐसे अवसर पर एक सामारोह होता था।

यह समारोह बड़े ही नाटकीय ढग से मनाया जाता था। अनुचर (Vassal) शस्त्रहीन हाकर, नंगे सिर अधीश्वर क सामने घुटनों के बल झुकता था। अधीश्वर का हाथ पकड़ कर अपने हाथ में तलवार या बाइबिल लेकर वह स्वामि-भक्ति (Fidelity) की शपथ लेता था। अधीश्वर अनुचर के हाथ में मिट्टी का एक ढेला देता तथा उसे उठा कर एक चुम्बन (Kiss of peace) लेता था। मिट्टी का ढेला जागीर (Fief)

---

1 "Land played an important part in the development of the relationship between vassal and lord"

J E. Swain

का प्रतीक माना जाता था। शिक्षा के विकसित न होने के कारण उस काल में कोई लिखित बॉण्ड तो होता नहीं था। शिक्षा के प्रसार के उपरान्त मिट्टी का ढ़ेला देना बन्द हो गया था। यह उत्सव अधीश्वर अपने दुर्ग के महान् कक्ष में मनाता था तथा उस समय काफी आदमी एकत्रित होते थे। लैटिन भाषा में आदमी को 'होमो' कहते है। अत अनुचर का अधीश्वर के सन्मुख झुकना श्रद्धाञ्जली 'होमेज' (Homage) कहलाता था तथा इस उत्सव का अनुप्रतिष्ठापन (Investiture) का कार्य कहा जाता था। सामन्त का अपनी अदालत (Manonal Court) में न्याय करना तथा आक्रमणकारियो से अपने किसानों की रक्षा करना प्रमुख कर्त्तव्य होता था।

3 वीरता-विशाल साम्राज्य के प्रदेश हर किसी व्यक्ति के हाथों में नहीं सौंप दिए जाते थे। उन प्रदेशों को दूसरों के हवाले करने का मूल कारण उनकी सुरक्षा ही होती थी। अत वे भू-भाग शासक द्वारा केवल उन्हीं लोगों को सौंपे जाते थे जिन्हें शासक वीर समझता था तथा उसे यह पूर्ण विश्वास होता था कि अमुक सरदार अपनी वीरता से उसके साम्राज्य को विदेशी आक्रमणकारियों से बचा सकता है। अत जब किसी को सामन्त बनाया जाता था तो देखा जाता था कि वह वीर भी है या नहीं। अनुचर को अपने अधीश्वर की सेना में कुछ दिन कार्य करना पड़ता था। उस काल में अधीश्वर उसकी वीरता का परिचय लेने का प्रयास करता था। युद्ध के अलावा उसे अपने स्वामी के किले का भी पहरा लगाना पड़ता था। यह कार्य वीर पुरुष ही कर सकता था।[1] अत सामन्तों को सदैव वीरता के कार्य करने पड़ते थे। सच्चे शूरमा सामन्तों से आन व कर्त्तव्य के कुछ नियमों क पालन की आशा की जाती थी जिन्हें वीरत्व (Chivalry) कहते थ। प्रो० स्वेन का कहना कि वीरता के कारण ही मनुष्य समाज म आदर पाता था और इसी के कारण उसे यह स्थान मिलता था। इसीलिए सामन्त को घुड़सवार होना तथा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होना आवश्यक था।

4 जागीर-शासक अपने सामन्तो को जो भूमि देता था वह उनके द्वारा प्रतिपादित मनसबदारी के रूप मे नहीं होती थी। वह भूमि या साम्राज्य का अमुक प्रदेश व नगर उस सामन्त को सदैव के लिए दे दिया जाता था। उस भू-भाग की हर तरह से देखभाल का उत्तरदायित्व उस सामन्त का ही होता था। उस सामन्त के मर जाने पर उसकी भूमि उसके उत्तराधिकारी का मिल जाती थी। इस प्रकार सामन्त का पद भी शनै शनै पैतृक हो गया था और उसकी भूमि उसकी जागीर कहलाने लगी थी। अत सामन्तवाद को सफलता या फलीभूत करने के लिए जागीर स्वीकृत करना भी आवश्यक था।

5 सार्वभौमिकता-जब सामन्तों को जागीर प्रदान कर दी गईं और उन्होंने अपनी जागीर में बसने वाले किसान व अन्य लोगों पर हुकूमत करना आरम्भ कर दिया तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि सामन्तों के पास सार्वभौमिकता (Sovereignty) भी आ गई थी। उनकी जागीर में रहने वाले लोगों को वे सुरक्षा प्रदान करते थे और उसके

1 Strayer & Munro "The Middle Ages p 117

...but only the strongest feudal lords were able to defend and enforce this obligation

बदले सामन्त उनसे नाना प्रकार के कर व बेगार लेत थे। किसानों का जीवन पूर्णत सामन्तों को समर्पित होता था। वे उनसे मनमाने कर लेते थे। सामन्तों के बच्चों क विवाह के समय जागीर में बसने वाले किसानों को सामन्तों के घर पर हर प्रकार का कार्य करना पड़ता था और साथ में धन भी देना पड़ता था। इतना ही नहीं, किसानों का सामाजिक जीवन व व्यक्तिगत् जीवन भी सामन्तों के प्रभाव से अप्रभावित नहीं था। यहाँ तक कि दास-कृषक अपनी पुत्री का विवाह भी अपने सामन्त की अनुमति के बिना नहीं कर सकता था। इससे स्पष्ट है कि सामन्तों को अपनी जागीर में बसने वालों पर पूर्ण प्रभुता प्राप्त थी और बिना प्रभुता के सामन्त अपनी जागीर में शान्ति व व्यवस्था भी नहीं बनाये रख सकता था। अत स्पष्ट है कि सामन्तवाद का एक तत्त्व सार्वभौमिकता भी था। पर यदि हम तत्कालीन सामन्त-प्रथा का सूक्ष्म रूप से अवलोकन करत हैं तो हमें स्पष्ट होता है कि सामन्त के पास वास्तविक रूप में सार्वभौमिकता नहीं हाती थी क्योंकि हम देखते है कि सामन्त को अपने अधीश्वर के आदेशों का पालन करना पड़ता था। अत सामन्त अपनी जागीर में मनमानी नहीं कर सकता था। इसी प्रकार अधीश्वर को भी उसकी प्रदत्त जागीरों में पूर्ण सत्ता प्राप्त नहीं रही थी। वह सामन्तो के नाम आदेश निकाल सकता था, पर वहाँ के निवासी अपने सामन्त के आदेश का पालन पहले करते थे न कि अधीश्वर व उसके आदेश का।

अत हमें यहा सार्वभौमिकता का अर्थ राजनीति शास्त्र में प्रयुक्त सार्वभौमिकता (Sovereignty) से नहीं लेना चाहिए। सामन्तवाद में सार्वभौमिकता का विचार लैटिन भाषा के शब्द डोमिनियम (Dominium) से लिया गया है जिसका अर्थ सार्वभौमिकता न होकर केवल नियन्त्रण (Control) से लिया जाता है। सामन्तों को अपने दास किसानों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने का अधिकार अवश्य होता था पर वे अपने क्षेत्र में सार्वभौमिक नहं होते थे। अत हम यहा सार्वभौमिकता का अर्थ प्रशासन व स्वामित्व के अपूर्ण एव सीमित अधिकारों से ले सकते हैं।

सामन्तवाद व राज्य-सिद्धान्त रूप में राजा सामन्तों का स्वामी होता था, परन्तु व्यावहारिक रूप में राजा सामन्तों पर आश्रित होता था। संकट पड़ने पर सैनिक सहायता राजा को उसके सामन्तों से ही उपलब्ध हाती थी। समय-समय पर सामन्त अपने स्वामी को आर्थिक सहायता भी देते थे। इनके अलावा मुक्ति (Immunity) की प्रथा के अन्तर्गत सामन्त अपने स्वामी से मुक्त हो सकता था। इससे सामन्त कभी-कभी अपने स्वामी राजा से स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर लेते थे। फ्रान्स में उस समय कई घटनाए ऐसी घटीं जिन्होंने सामन्तों को उनके राजा से अधिक शक्तिशाली सिद्ध कर दिया।[1] कालान्तर में जब मध्यम-वर्ग का आविर्भाव हुआ तो राजा को सामन्तों के विरुद्ध सुरक्षा मिली। मध्यम-वर्ग राजा को सामन्तों स अधिक शक्तिशाली देखना चाहता था।

---

1 'Thus many of the nobles tender the feudal system wielded more power than the king.

Magenis of Appel.

सामन्त व्यवस्था का गठन–सामन्त व्यवस्था वास्तव में श्रमिक-योद्धाओं का पोषण करने वाली व्यवस्था थी। इसके अन्तर्गत् भूमि जागीर रूप मे राजा द्वारा केवल उन्ही लोगो को प्रदान की जाती थीं जो वीर होते थे और अपनी वीरता स राजा व राजा की भूमि की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करने में सक्षम होते थे। योद्धाओं को रक्षा करने व स्वामि-भक्त बने रहने की शपथ लेने पर ही राजा उन्हें जागीर प्रदान करता था। अत राजा तो इस सामन्ती पिरामिड का सर्वोपरि हाता था। उसके अधीन अधीश्वर (Lord) होते थे। सामन्ता में अधीश्वर ही सर्वोन्नत एव अधिक शक्तिशाली होते थे। अधीश्वर भी अपनी भूमि के कुछ भाग को अपने से छोटे सामन्तो को प्रदान कर दिया करते थे। ये छोटे भूमिपति आसामी (Vassal) कहलाते थे। इनके भी नीचे छोटे-छोटे भूमिपति होते थे। ये क्रमश ड्यूक (Duke), काउण्ट (Count), बैरन (Barron) तथा नाइट (Knight) कहलाते थ। चर्च क भूमिपति (Lords) भी इसी प्रकार अपनी भूमि आसामी व अपन अनुचरों (Vassals) को दे दिया करते थे। इस सामन्ती पिरामिड की सबसे निचली श्रेणी दास-किसानो (Serfs) की हाती थी। ये दास-किसान भूमि के साथ बधे होते थे। यदि भूमि एक भूमिपति के हाथ से दूसरे भूमिपनि के पास चली जाती तो ये दास-कृषक (Serfs) भी उस भूमि के साथ-साथ दूसरे भूमिपति के आश्रय मे चले जाते थे।

सामन्तवाद के विकास के कारण–कोई भी वस्तु समाज में या ही नहीं पनपती। प्रत्येक के पीछे कुछ कारण होत हैं और जब कि सामन्तवाद तो मध्ययुगीन समाज की प्रबल सस्था एव आधारशिला मानी गई है। अत इसके पीछे भी कुछ ऐसे कारण अवश्य हाने चाहिए जिन्होंने इसकी स्थापना में सहयोग दिया तथा शासक-वर्ग व आम जनता को स्वीकार करने को बाध्य किया। उनमें से कतिपय कारण निम्नलिखित है -

1 **विशाल राज्यों की स्थापना**–उस अन्धकार युग में चाहे समाज का सास्कृतिक व शैक्षणिक विकास अवरुद्ध था परन्तु साम्राज्यवादी भावना उस समय भी अपना रग दिखा रही थी। शक्तिशाली राजा महान् साम्राज्य स्थापित कर रहे थे। परन्तु उस विशाल साम्राज्य को सभालने की क्षमता प्रत्येक शासक में नहीं होती थी। इसके अलावा उनके आन्तरिक झगड़े भी उन्हे निर्बल बना रहे थे। अत उन्होंने प्रशासन व सुरक्षा की दृष्टि से अपने विशाल साम्राज्य को कई भागो में विभक्त कर दिया और वे विभक्त भाग सामन्तों के हवाले कर दिये।

2 **यातायात के साधनों का विकसित न होना**–अग्रेजों ने विश्व मे सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित किया और उनके उपनिवेश विश्व में सर्वत्र विद्यमान रहे, पर उन्होंने इतने विशाल साम्राज्य पर किस प्रकार सफलता प्राप्त की? इसके उत्तर में आज के विकसित यातायात के साधन ही आते हैं। परन्तु प्राचीनकाल में यातायात के साधन न होने के बराबर थे। अत शासक अपने विशाल राज्यों को ठीक तरह नहीं सभाल पाते थे और इसी कारण उनको अपना विशाल साम्राज्य अपने सम्बन्धी व अपने स्वामिभक्तों में बाँटना पड़ा। अत इससे भी सामन्तवाद का विकास हुआ।

3 निरन्तर बाहरी आक्रमण होना–शर्लमैन जैसे प्रतापी एव योद्धा शासक के शासन-काल में भी युद्ध सर्वथा बन्द नहीं हुए थे। युद्ध तो उस युग की दैनिक-चर्चा के विषय बन गये थे। अत साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अच्छी सेना परम्-आवश्यक होती थी। प्राचीन काल में अश्व-सेना ही सेना की आत्मा होती थी। गरीब कृषक न तो अच्छी तरह युद्ध ही कर सकते थे और न वे युद्ध की सामग्री ही जुटा सकते थे। अन्य विदेशी जातियों (Norsemen Magyars and Moslems) के आक्रमणों से राज्य को बचाने के लिए शासकों ने सेनापतियों व अन्य योद्धाओं को भूमि दी और उसके बदले में उन्होंने उनसे अच्छी सेना की माग की। कालान्तर में वे सेनापति ही सामन्त बन गये। इसी प्रकार छोटे-छोटे किसान बाहरी शत्रुओं से अपनी भूमि का सुरक्षित रखने की नियत से महान् एव शक्तिशाली भूमिपतियों के अधीन हो गये जो कि सामन्तों का रूप धारण करते गये।

4 धार्मिक युद्ध–मुसलमानों के चगुल से जेरूसलम को मुक्त कराने के लिए यूरोप के अधिकाश ईसाई सगठित हो गये। इन युद्धो का नेतृत्व सामन्तों को ही मिला था। इससे सामन्तों का समाज में आदर हुआ तथा इस बहाने उन्हें अपनी शक्ति और बढ़ाने का अवसर मिला। यद्यपि सामन्तों के नेतृत्व में ईसाई मुसलमानों पर विजय प्राप्त नहीं कर सके, तथापि ईसाई समाज ने उनके महत्व को समझा तथा उन्हें आदर प्रदान किया।

5 सेना का मूल आधार अश्वरोही सैनिकों का होना–मध्य-काल में यातायात के साधनों के अभाव में पैदल सेना तो युद्ध-स्थल पर समय पर पहुच नहीं सकती थी। अत उस युग में अश्वारोही सैनिक ही युद्ध में सहायक एव उपयोगी सिद्ध हो सकते थे, पर साधारण व्यक्ति अश्व नहीं रख सकते थे और सामन्त घोड़े रखने व अपने सैनिकों को युद्ध के समय अश्व देने मे समर्थ थे। इस कारण भी शासक की दृष्टि में सामन्त महत्वपूर्ण समझे जाने लगे और इस प्रकार भी उनकी सख्या एव शक्ति मे निरन्तर वृद्धि होती रही।[1]

6 प्रिकेरियम व पैट्रासिनयम प्रथा का विकास–रोमन साम्राज्य के पतन के समय ये दोनों प्रथायें यूरोप में विकसित थीं। प्रिकेरियम एक भूमि व्यवस्था थी। इसके अन्तर्गत् तत्कालीन अराजकता के कारण छोटे कृषक अपनी भूमि का असुरक्षित समझते थे। अत वे अपनी भूमि की सुरक्षा के लिए किसी बड़े भू-स्वामी का स्वामित्व स्वीकार कर लेते थे। भूमि पर अधिकार किसान का ही रहता था, पर वह पूर्णत बड़े भू-स्वामी के नियन्त्रण में चला जाता था। अवसर पड़ने पर वह बड़ा भू-स्वामी उस छोटे किसान को उसकी भूमि से वचित भी कर सकता था। पर ऐसे अवसर कम आते थे। शासक-वर्ग इस प्रकार के बड़े भू-स्वामी (शिकमी आसामियों) को प्रोत्साहन देते थे क्योंकि इनसे उनके देहाती इलाकों में सुरक्षा बनी रहती थी। शनै शनै ये बड़े भूस्वामी ही सामन्त बन गये।

---

1 Strayer & Munro "The Middle Ages p 113
"Thus an increase in the number of mounted soldiers meant an increase in the number of vassals

पेट्रोसिनयम प्रथा एक प्रकार से व्यक्तिगत सम्बन्धों पर आधारित होती थी। इस प्रथा को पेट्रोनेज (Patronage) प्रथा भी कहा जाता था, क्योंकि इस प्रथा के अन्तर्गत् धनी व प्रभावशाली व्यक्ति सरक्षक बनकर अपने बहुमत से अनुयायी बना लेते थे। जिस प्रकार छोटे किसान अपनी भूमि की सुरक्षा के लिए बड़े भू-स्वामियों का स्वामित्व स्वीकार कर लेते थे उसी प्रकार भूमिहीन मजदूर व छोटा कारीगर अपनी सुरक्षा के लिए उन धनी एव प्रभावशाली व्यक्तियों का स्वामित्व स्वीकार कर लेते थे। उस अराजकता तथा अव्यवस्था से ग्रसित वातावरण में सुरक्षा तो प्रत्येक व्यक्ति ही चाहता था। इस प्रकार धनी पुरुष अपने नियन्त्रण में रहने वाले व्यक्तियों की अलग बस्तिया बसा लेते थे। शासक उन प्रभावशाली व्यक्तियों को भी अपनी अनुकम्पा के भाजन समझते थे। कालान्तर मे उन शासकों के निर्बल हो जाने पर वे धनी पुरुष अपनी बस्तियों के मालिक बन गये तथा सामन्तवर्ग में आ गये।

7 **जमींदारी प्रथा का प्रचलन**–विशाल रोमन साम्राज्य मे उस समय जमींदारी प्रथा का प्रचलन था। इस प्रथा के अन्तर्गत् उस समय रोमन साम्राज्य में बड़े-बड़े जमींदार थ। उनके पास जमीन काफी मात्रा में होती थी और वे किसानों को पैसा देकर उनकी जमीनें और खरीद लेते थे। इस प्रकार जमींदारा के पास भूमि तो पर्याप्त मात्रा मे हो गई, परन्तु किसानों के भूमिहीन हो जाने के कारण पैदावार घटने लगी। रोमन साम्राज्य के निर्बल हो जाने के कारण जमींदारों को युद्ध-बन्दी मिलना भी कठिन हो गया। इस कारण उनके सामने अब मजदूरों की समस्या उत्पन्न हुई। इस समस्या का समाधान अन्य किसी प्रकार न पाकर जमींदार भूमिहीन किसानों को भूमि देकर उनसे खेतों पर काम लेने लगे। इस प्रकार के किसान 'कम्मी' कहलाने लगे। शनै शनै इस श्रेणी के किसानों की सख्या में वृद्धि होने लगी और वे बधुआ किसान जमींदारों के नियन्त्रण में चले गये। कालान्तर में वे जमींदार भी सामन्तों की श्रेणी में मान लिये गये।

8 **पादरी-वर्ग का शक्तिशाली होना**–कैरोलिंगियन वशज चार्ल्स महान् ने अपनी धार्मिक मनोवृत्ति के कारण धर्माधिकारियों को पर्याप्त अधिकार दकर उन्हें शक्तिशाली बना दिया तथा उन्हें जागीर के रूप में भूमि भी पर्याप्त मात्रा में दे दी थी। पश्चिमी यूरोप में धर्माधिकारियों के पास कुल भूमि का 1/3 भाग अधिकार मे आ गया था। चार्ल्स महान् ने तो धर्माधिकारियों को भी अपने नियन्त्रण में रखा था। परन्तु उसके निर्बल उत्तराधिकारी उन धर्माधिकारियों को अपने नियन्त्रण में नहीं रख सके। उदाहरणार्थ हम हेनरी चतुर्थ (Henry IV) तथा पोप ग्रिगोरी (Gregory VII) सप्तम को ले सकते हैं। ग्रिगोरी धर्म के क्षेत्र में सर्वोच्च बन गया। बिशप की नियुक्ति वही करने लगा। हेनरी ने इसका महान् विरोध किया, पर अन्त में कनोसा (Canossa) जाकर हेनरी को ग्रिगोरी से क्षमा मागनी पड़ी। इस प्रकार पादरी जमींदार भी शक्तिशाली हो गये। उनके आधीन काफी किसान हो गए। समय के परिवर्तन के साथ वे पादरी भी सामन्त बन गये।

9 **सामन्तों के नेतृत्व में व्यापार का सुरक्षित होना**- उत्तर मध्यकाल में तो व्यापार बहुत विकसित हो गया था। यूरोप के लोग भूमध्यसागर में होकर जल-मार्ग द्वारा पूर्वी देशों से व्यापार करने लगे थे। धर्म-युद्धों के उपरान्त तो पूर्वी देशों के साथ यूरोपीय देशों

का व्यापार पर्याप्त मात्रा में बढ़ गया था। थल-मार्ग से व्यापार पहले ही होता था। परन्तु व्यापारी यह समझते थे कि हमारा व्यापार तभी सुरक्षित एव विकसित हो सकता है जबकि हमारे सामन्त शक्तिशाली हो। अत वे अपने व्यापार को विकसित करने हेतु अपने सामन्त के प्रति वफादार तो रहते ही थे पर साथ में उन्हे आर्थिक सहायता भी दिया करते थे। पूव मध्यकाल में तो नगरों व ग्रामों में मेले लगते ही थे। उन मलों की व्यवस्था सामन्त ही करते थे। उनकी सुरक्षा का भार सामन्तों पर ही होता था और जो मेले गिरजाघरो क समीप लगते थे उनकी व्यवस्था पादरी अधीश्वरों के हाथ में रहती थी। इस प्रकार हम दखत है कि व्यापारी वर्ग ने भी सामन्त वर्ग को शक्तिशाली बनाने तथा उसको विकसित बनाने में सहयोग दिया।

10 जर्मन जाति के आक्रमण-जर्मन जातियों के आगमन से भी सामन्तवाद के विकास का प्रश्रय व प्रोत्साहन मिला। पाँचवीं शती म जब पश्चिमी राम साम्राज्य का पतन हा गया और वहा दशों में अशान्ति व अव्यवस्था फैलने लगी ता जर्मन जातियों ने पश्चिमी यूरोप के देशों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ये लोग कबीलों में विभक्त होते थे तथा प्रत्येक कबीले का नेता अलग हाता था। जब वे यूरोप में विजेता के रूप में सर्वत्र छाने लग ता उन नेताओं न अपनी विजित भूमि का इस शर्त पर बाटना आरम्भ कर दिया कि वे उन्हें सैनिक व राजनीतिक सहायता प्रदान करेंगे। इस प्रकार कबीले का नेता अधीश्वर तथा उसके अनुयायी अनुचर (Vassal) बन गय। इस प्रकार भी सामन्तवाद का विकास हुआ। कई विद्वान् तो यहा तक कहते हैं कि सामन्तवाद का विकास ही जर्मन लड़ाकू कबीलों से हुआ। वे प्रदेश पर प्रदेश जीतते चले गये पर सुदृढ केन्द्रीय सरकार की स्थापना की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। डॉ० बालमुकुन्द वीरोत्तम का कहना है कि इगलैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों में इस प्रकार जर्मन विजेताओ ने भूमि बाटकर सामन्त प्रथा को विकसित किया। इतिहासकार बर्न्स (Burns) का कहना है कि इन जर्मन विजेताओं ने विजित लोगों में आदर करने र स्वामि-भक्ति की भावना उत्पन्न की। इस भावना के उत्पन्न करने स भी सामन्तवाद के विकास में महान् सहयोग मिला।

11 गुलाम प्रथा-समाज को कलकित करने वाली यह प्रथा यूराप में अति प्राचीन काल से चली आ रही थी। राम सभ्यता में यह प्रथा काफी विकसित थी। स्वामी अपने गुलामों के साथ अमानुषिक व्यवहार करत थे। इसका परिणाम यह होता था कि गुलाम अपने स्वामी के खेतों में कृषि अवश्य करते थे पर दिल से नहीं। इस कारण उपज दिन पर दिन कम होती गई। मध्य-युग में मालिकों न बढ़ती हुई जनसख्या को ध्यान में रखते हुए उपज बढ़ाने की सोचने लगे। इस दिशा में उन्हें एक ही उपाय दृष्टिगत हुआ- वह यह कि गुलामों के साथ अच्छा व्यवहार किया जावे। उन्हें स्वतत्र करके खेती के काम में जोता जाय। इस श्रेणी के गुलाम ही दास-किसान, (Serfs) कहलाये। उनमें दास मनोवृत्ति तो पहले से विद्यमान थी ही। कुछ स्वतन्त्रता मिल जाने पर वे खेती उन मालिकों की भूमि में ही करते रहे। शनै शनै वे स्वामी सामन्त बन गए तथा गुलाम किसान उनके आश्रित हो गये। इस प्रकार प्राचीनकाल से चली आ

रही गुलाम प्रथा ने मध्य काल में सामन्त प्रथा को प्रबल एव विकसित बनाने में सहयोग दिया।

इसके अलावा सामन्तों ने गुलामों को और तरीके से उत्पादन बढ़ाने में प्रयुक्त किया। जब रोमन साम्राज्य कमजोर पड़ गया तो उसे युद्ध-बन्दी मिलना बन्द हो गया। एक तरफ तो उत्पादन घट रहा था, दूसरी तरफ मजदूर नहीं मिल रहे, ऐसी परिस्थिति में जर्मीदारो ने गुलामों को स्वतन्त्र कर दिया तथा उन्हें अपनी सख्या म वृद्धि करने को प्रोत्साहित किया। मुक्ति मिल जाने पर गुलामों ने अपने स्वामियों की भूमि पर काम करना आरम्भ किया। इससे पैदावार बढ़ी और साथ में ही नियन्त्रण में काम करने वाले मजदूरों की सख्या में भी वृद्धि हुई। इन गुलामों ने भी अपने स्वामियों के प्रभुत्व को बढ़ाकर सामन्त प्रथा को सुदृढ़ बनाया।

12 **केन्द्रीय सरकार का निर्बल होना**–जैसा कि बताया जा चुका है कि चार्ल्स महान् के शासन-काल में सामन्त प्रथा बहुत प्रबल हो गई थी, पर उसके शासन-काल में किसी सामन्त का उसके विरुद्ध सिर उठाने का साहस नहीं हुआ। यह सही है कि सैनिक नियन्त्रण व स्थानीय व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार अधीश्वरों (Lords) के हाथो में जा रहे थे पर फिर भी आसामी सम्राट के आज्ञाकारी थे। परन्तु चार्ल्स महान् की मृत्यु के उपरात जब सम्राट शक्तिशाली न रहे तो पवित्र रोमन साम्राज्य में अशान्ति व अव्यवस्था घर करने लगी। ऐसी परिस्थिति में सामन्तों म एक प्रकार से गृह-युद्ध छिड़ गया। एक सामन्त दूसरे पड़ौसी सामन्त को परास्त कर उसकी भूमि को हथियाने लगा। इसी अराजकता के समय विदेशी आक्रमण होने लग गये। निर्बल शासको मे न तो विदेशी आक्रमणों को रोकने की क्षमता थी और न सामन्तो के बीच चल रहे गृह-युद्ध को रोकने की शक्ति ही थी। इस नवीं तथा दशवीं शती के अव्यवस्थित तथा अशान्त वातावरण में सामन्त-प्रथा एक प्रकार से अपने पूर्ण रूप से विकसित हो गई।

13 **सामन्त-पद का पैतृक होना**–केन्द्रीय सरकार के निर्बल हो जाने पर सामन्त अपनी भूमि को विस्तीर्ण करने में जुट गये तो उच्च पदाधिकारी अपने राजनीतिक अधिकारों की वृद्धि करने में व्यस्त हो गये। उच्च पदाधिकारियों ने अपने अधिकार बढ़ाने के साथ-साथ अपने पदों के पैतृक भी बनाने का प्रयास किया। इसी प्रकार सामन्तों ने अपनी जागीरों को पैतृक बनाने का प्रयास किया। जब 614 ई० में सामन्तों ने इस आशय का एक ज्ञापन दिया तो शासक-वर्ग (Morovingian Monarchy) ने इसे स्वीकार भी कर लिया। आठवीं सदी में इस पर थोड़ा नियन्त्रण किया गया तो 877 ई० में कियरसी की बैठक (Assembly of Kiersy) में सामतों के पैतृक अधिकारों को राजकीय मान्यता प्राप्त हो गई। अत अब सामन्तों ने अपनी जागीरों को बपौती मान लिया। उन्हें अब इस बात का भय नहीं रहा कि शासक उनकी भूमि उनसे छीन लेंगे। उनके मरने पर उनका पुत्र स्वत सामन्त बन जाता था। अत अब तो सामन्त प्रथा स्पष्ट रूप में एक सस्था बन गई और वह उत्तरोत्तर विकासोन्मुख होती रही।

सामन्तों के कार्य–मध्य-काल में सामन्त-प्रथा के होते हुए भी भूमि पर अधिकार राजा का ही होता था। प्रभुता की दृष्टि से भी राजा सर्वोच्च बना हुआ था। सामन्त

सामन्त प्रथा से लाभ

नि सन्देह यह सत्य है कि कालान्तर में सामन्तवाद कोई उपयोगी प्रथा सिद्ध नहीं हुई। जिस देश में यह पाव पसारती उसी देश का केन्द्रीय शासन निर्बल हो जाता था और वह विनाश के गर्त में गिर जाता था। परन्तु यह सब होते हुए भी हम कह सकते हैं कि इस प्रथा ने मध्य-युग में यूरोपवासियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। हालांकि इस प्रथा का नियोजन एक स्थान पर बैठ कर एक अमुक समय में नहीं किया गया था फिर भी इस प्रथा का आविर्भाव यूरोप में उस समय हुआ जबकि यूरोप के देशों में अराजकता पाव पसार रही थी। निर्बल केन्द्रीय सरकार के कारण विदेशी आक्रमण यूरोप पर आरम्भ हो गये थे। अत इस प्रथा से तत्कालीन समाज को लाभ तो पहुँचना स्वाभाविक ही था। इस प्रथा से मानव-समाज को हुए लाभों में से कुछ निम्नलिखित हैं -

1 राज्य सुरक्षित रहे-विशाल साम्राज्य स्थापित हो जाने पर उनकी सुरक्षा का सुगम साधन सामन्तवाद ही सिद्ध हुआ। सामन्तों ने अपनी सेनाओं को दृढ़ किया और बर्बर जाति के आक्रमणों से राज्य को सुरक्षित रखा। इससे राजा को सेना समय पर मिल जाती थी और सुरक्षा का भार भी घट जाता था। मूल रूप से यह एक सैनिक व्यवस्था ही थी। अधीश्वर व अनुचर सदैव अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करने के प्रति जागरूक रहे और सकट के समय उन्होंने शत्रुओं से अच्छी टक्कर ली तथा अपनी जागीरों को सुरक्षित बनाये रखा।

2 नगरों का विकास-सामन्तवाद के प्रबल हो जाने से महान् साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। सामन्त अपने भू-भाग के स्वामी होने के कारण वहा के वे पूर्णत मालिक बन जाते थे। जहा वे रहते वहीं सुन्दर एव व्यापारिक नगर आबाद हो जाते थे। क्योंकि वे अपने नगरों को दुर्ग व परकोटे से सुरक्षित रखने का प्रयास करते थे। इस कारण आसपास के व्यक्ति उन नगरों में अपना जीवन अधिक सुरक्षित समझते थे। इस कारण भी नगरों का निरन्तर विकास होता ही चला गया। इगलैण्ड का वारविक (Warwick), फ्रान्स का एक्सलाशाप्पल तथा जर्मनी का फ्रैंकफोर्ट इसी प्रकार के विकसित नगर थे। अत कई सामन्तों के होने से कई नगर बस गये। विदेशियों के आक्रमण के समय भी ये नगर अपने अस्तित्व को बनाये रहे। ग्यारहवीं सदी के उपरान्त तो इनका विकास और भी तीव्र गति से हुआ। इनकी सख्या में भी वृद्धि हुई। धर्म-युद्धों के उपरान्त ये नगर व्यापार के केन्द्र बन गये।

3 प्रशासन में सुधार-आज के इस विकसित युग में ही जब विशाल साम्राज्य एक व्यक्ति द्वारा शासित नहीं किये जा सकते तो उस युग में किस प्रकार हो सकते थे? परन्तु सामन्त प्रथा के लागू हो जाने से साम्राज्य छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त हो जाता था और उन छोटे-छोटे खण्डों का शासन सामन्त भली-भाँति सचालित कर लिया करते थे क्योंकि वे स्थल पर ही रहते थे। जनता से उनका सीधा सम्पर्क होता था। जनता उनके प्रति स्वामिभक्त भी होती थी। सामन्तों का जनता पर उनका नियन्त्रण भी रहता था। जनता सामन्तों को शिकायत आसानी से कर सकती थी और उसका निवारण भी

राजा क अधीन ही होते थे चाहे किसानों पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव उनका अधिक हो। राजा से भूमि पाकर उन्हें उसके बदले में निम्नलिखित कार्य करने पड़ते थे -

1 सामन्तों का प्रमुख कार्य था किसानों की रक्षा करना तथा बाहरी आक्रमण क समय राजा को सैनिक सहायता देना था मुसीबत के समय अपने आधीन पुरुषों की शत्रु से वे रक्षा करते थे। इसी प्रकार जब राजा पर विपत्ति आती थी तो वचन के अनुसार वे सैनिक राजा की सेवा में भेजते थे।

2 अपन अधीन भूमि में कृषि का विकास करना तथा व्यापार की दृष्टि स आयोजित मेलों की व्यवस्था करना भी सामन्ता का ही कार्य होता था।

3 राजा को सैनिक सहायता देने के अलावा सामन्त प्रशासन में भी उसकी सहायता करते थे। राजा अपने सामन्तो की बैठक आमन्त्रित करता था। राजनीतिक विषयों में उनसे सलाह लेता था। राजनीति व प्रशासन में दक्ष सामन्तों को वह अपने दरबार में ही रखता था। अत सामन्त सैनिक व सेना-नायकों के कार्यों के अलावा राजा के सलाहकार का भी कार्य करते थे।

4 सामन्त अपने अधीश्वर को न्याय करने में भी सहायता करते थे। अधीश्वर अपने प्रदेश में न्याय करके राजा को तथा अनुचर अपनी जागीरों में न्याय करके अपने अधीश्वरों को न्याय-कार्य मे सहायता करते थे। अधीश्वर अपने प्रदेश के अनुचरों की बैठक बुलाता तथा स्वय एक अध्यक्ष के रूप में कार्य करता था। समस्त अनुचर बैठ कर सयुक्त रूप से वैधानिक बातों पर निर्णय लेते थे। अनुचर बैठक में अपनी-अपनी जागीरों की समस्याओं का समाधान खोजते थे।

5 अनुचरों को अपने अधीश्वरों के प्रति स्वामि भक्ति के अलावा आर्थिक क्षत्र में महान् उत्तरदायित्व निभाना पड़ता था। अधीश्वर की ज्येष्ठ कन्या के विवाह में दहेज की व्यवस्था उन्हें ही करनी पड़ती थी। इसी प्रकार अधीश्वर का पुत्र जब 'नाइट' (Knight) की पदवी से विभूषित किया जाता था तब भी अनुचरों को आर्थिक सहायता की व्यवस्था करनी पड़ती थी। नि सन्देह सामन्तों ने अपने स्वामी के प्रति किये जाने वाले कार्य व कर्त्तव्य स्पष्ट रूप से निर्धारित कर लिए थे, परन्तु स्थानों की विभिन्नता के कारण वे सर्वत्र एकसे नहीं रह पाते थे। निम्नलिखित कर्तव्य तो सामन्तों को सर्वत्र समान रूप में ही पूरे करने हाते थे।

(1) सामन्त को वर्ष में कुछ निर्धारित दिनों के लिए तो स्वामी के लिए युद्ध करना ही पड़ता था।

(2) स्वामी के आदेश मिलने पर उसे दरबार में उपस्थित होना आवश्यक था।

(3) समय पड़ने पर उसे अपने स्वामी की तीन सहायता अवश्य करनी पड़ती थी- (अ) स्वामी के ज्येष्ठ पुत्र के नाइट (Knight) बनने पर आर्थिक सहायता देनी पड़ती थी, (ब) स्वामी की ज्येष्ठ पुत्री के विवाह में धन देना पड़ता था, (स) स्वामी के बन्दी बनाये जाने पर उसकी मुक्ति के लिए धन देना पड़ता था।

सामन्त प्रथा से लाभ

निःसन्देह यह सत्य है कि कालान्तर में सामन्तवाद कोई उपयोगी प्रथा सिद्ध नहीं हुई। जिस देश में यह पाव पसारती उसी देश का केन्द्रीय शासन निर्बल हो जाता था और वह विनाश के गर्त में गिर जाता था। परन्तु यह सब होते हुए भी हम कह सकते हैं कि इस प्रथा ने मध्य-युग में यूरोपवासियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। हालांकि इस प्रथा का नियोजन एक स्थान पर बैठ कर एक अमुक समय में नहीं किया गया था फिर भी इस प्रथा का आविर्भाव यूरोप में उस सम्य हुआ जबकि यूरोप के देशों में अराजकता पाव पसार रही थी। निर्बल केन्द्रीय सरकार के कारण विदेशी आक्रमण यूरोप पर आरम्भ हो गये थे। अतः इस प्रथा से तत्कालीन समाज को लाभ तो पहुँचना स्वाभाविक ही था। इस प्रथा से मानव-समाज को हुए लाभों में से कुछ निम्नलिखित हैं -

1 **राज्य सुरक्षित रहे**–विशाल साम्राज्य स्थापित हो जाने पर उनकी सुरक्षा का सुगम साधन सामन्तवाद ही सिद्ध हुआ। सामन्तों ने अपनी सेनाओ को दृढ़ किया और बर्बर जाति के आक्रमणों से राज्य को सुरक्षित रखा। इससे राजा को सेना समय पर मिल जाती थी और सुरक्षा का भार भी बट जाता था। मूल रूप से यह एक सैनिक व्यवस्था ही थी। अधीश्वर व अनुचर सदैव अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करने के प्रति जागरूक रहे और सकट के समय उन्होंने शत्रुओं से अच्छी टक्कर ली तथा अपनी जागीरो को सुरक्षित बनाये रखा।

2 **नगरों का विकास**–सामन्तवाद के प्रबल हो जाने से महान् साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। सामन्त अपने भू-भाग के स्वामी होने के कारण वहा के वे पूर्णतः मालिक बन जाते थे। जहा वे रहते वहाँ सुन्दर एव व्यापारिक नगर आबाद हो जाते थे। क्योंकि वे अपने नगरों को दुर्ग व परकोटे से सुरक्षित रखने का प्रयास करते थे। इस कारण आसपास के व्यक्ति उन नगरों में अपना जीवन अधिक सुरक्षित समझते थे। इस कारण भी नगरों का निरन्तर विकास होता ही चला गया। इगलैण्ड का वारविक (Warwick), फ्रान्स का एक्सलाशाप्पल तथा जर्मनी का फ्रैंकफोर्ट इसी प्रकार के विकसित नगर थे। अतः कई सामन्तों के होने से कई नगर बस गये। विदेशियों के आक्रमण के समय भी ये नगर अपने अस्तित्व को बनाये रहे। ग्यारहवीं सदी के उपरान्त तो इनका विकास और भी तीव्र गति से हुआ। इनकी सख्या में भी वृद्धि हुई। धर्म-युद्धों के उपरान्त ये नगर व्यापार के केन्द्र बन गये।

3 **प्रशासन में सुधार**–आज के इस विकसित युग में ही जब विशाल साम्राज्य एक व्यक्ति द्वारा शासित नहीं किये जा सकते तो उस युग में किस प्रकार हो सकते थे? परन्तु सामन्त प्रथा के लागू हो जाने से साम्राज्य छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त हो जाता था और उन छोटे-छोटे खण्डों का शासन सामन्त भली-भाँति सचालित कर लिया करते थे क्योंकि वे स्थल पर ही रहते थे। जनता से उनका सीधा सम्पर्क होता था। जनता उनके प्रति स्वामिभक्त भी होती थी। सामन्तों का जनता पर उनका नियन्त्रण भी रहता था। जनता सामन्तों की शिकायत आसानी से कर सकती थी और उसका भी

तत्परता से हो जाता था । इसके अलावा इस प्रथा ने शक्तिशाली शासको पर नियन्त्रण लगाने का भी कार्य किया । उदाहरण के लिए हम इगलैंड का मैगना कार्टा (Magna Carta) ले सकते है । इसको स्वीकृत करा कर इगलैंड के सामन्तों ने अपने राजा जॉन के अधिकार बहुत कुछ सीमित कर दिए थे । अत स्पष्ट है कि इस प्रथा से जनतान्त्रिक परम्परा का विकास हुआ । तेरहवीं सदी के प्रारम्भ से ही इगलैड व फ्रास के नागरिक प्रशासन मे भाग लेने लग गये थे । धनी व्यापारी राजा को धन देकर अपने अधिकार प्राप्त कर लेते थे । इटली के कई नगरों ने चार्ल्स महान् के वशज शासकों से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी और वे सामन्तों द्वारा ही शासित होते थे । इस प्रकार प्रशासन विकेन्द्रीकरण तथा कालान्तर म प्रजातन्त्र की ओर अग्रसर हुआ । इसीलिए इतिहासकार (Magenis) व (Appel) ने लिखा है कि तेरहवीं सदी तक ये नगर राजनीतिक दृष्टिकोण से भी महान् महत्वपूर्ण हो गये ।[1]

4 **न्याय-प्रणाली का व्यवस्थित होना**-सामन्त प्रथा के आविर्भाव से न्याय-प्रणाली को लाभ भी पहुँचा । प्रत्येक सामन्त अपने दो प्रकार की अदालत रखता था । प्रथम न्यायालय में वह अपने छोटे सामन्तों के मामले सुनता था तथा दूसरी अदालत में वह कृषक मजदूरों के अभियोग सुनता था । इन न्यायालयो ने यूरोपीय कानून प्रणाली की नींव डाली । आज भी सभ्य देशों में न्यायाधीशों को यार लार्डशिप' से सम्बोधित किया जाता है । सामन्तकालीन कानूनो का प्रभाव आज भी यूरोप क देशों मे परिलक्षित होता है ।

5 **आर्थिक लाभ**-आर्थिक दृष्टि से भी यह प्रथा लाभप्रद सिद्ध हुई । सामन्त कृषकों को भूमि सर्वदा के लिये नहीं देता था । जमीन वह स्वय कृषकों से जुतवाता था और परिश्रम के बदले वह कृषक को पैदावार का कुछ भाग दे दिया करता था । इससे भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त नहीं होती थी । सामन्त समस्त भूमि को एक साथ जुतवाकर कुछ भाग खाली छुड़वा दिया करता था और दूसरी फसल उस रिक्त भू-भाग मे करवाता था । इससे भूमि निरन्तर नहीं जोती जाती थी । शेष के रहने से जमीन अपनी उर्वरता को कायम रखती थी । इस कारण पैदावार खूब अच्छी होती थी । सामन्तो ने अपने प्रदेशों को सुखाकर, बाँध व नहरें बनाकर कृषि योग्य भूमि का विस्तार किया । इसके अलावा वक्त पड़ने पर राजा को पैसा सामन्तों से तथा सामन्तों को पैसा उनके व्यापारियों से मिल जाता था । सुरक्षा के कार्यों में भी शासक को कम खर्च करना पड़ता था ।

6 **कला का विकसित होना**-सामन्तवाद क प्रादुर्भाव से यूरोपीय देशों में विभिन्न कलाओ का भी विकास हुआ । सामन्त अपने निवास के लिए भव्य-प्रासाद बनाते तथा सुरक्षा के लिए दृढ़ दुर्ग बनाते थे । इससे स्थापत्य कला विकसित हुई । इसी प्रकार उनके आश्रय में कवि कविता करने लगे तो मूर्तिकार सुन्दर मूर्तियाँ बनाने लगे । सामन्तों क दरबारों में चित्रकला व सगीत कला भी पीछे न रही ।

---

1 Magenis and Appel A History of world p 190
By the 13th century towns had become important politically

7 समाज को शिष्ट बनाना–सामन्तो का दरबारी जीवन का एक सभ्य जीवन था। सामन्तो के निजी नियम होते थे जिनका पालन करना उसकी प्रजा का परम-कर्त्तव्य होता था। ग्यारहवीं शती म 'शिवैलरी' र्ग का आविर्भाव हुआ। इस वर्ग के सैनिक अश्वारोही होते थे। वीर होने के साथ-साथ वे अपने स्वामी के भक्त एव आज्ञाकारी सेवक भी होते थे। वे अपनी स्त्रियो को प्यार करते थे तथा उनका उचित सम्मान भी करते थे। इससे समाज में नारी का स्थान उन्नत हुआ तथा जनसाधारण परस्पर शिष्टता का व्यवहार करने लगा।

8 सैनिक व्यवस्था प्रदान करना–सामन्त तन्त्र से एक लाभ यह भी हुआ कि इससे एक सैनिक व्यवस्था तो कायम हो गई। प्रत्येक सामन्त को अपने यहाँ निर्धारित सख्या में सैनिक रखने होते थे। उन सैनिकों को सामन्त सुसज्जित करता था। अपने सैनिकों को युद्ध विद्या से परिचित बनाये रखन की दृष्टि से वे सदा युद्ध करते रहते थे तथा युद्ध का अभ्यास करते रहते थे। समय पडने रर राजा को वे सैनिक भेजते ही थे। इस प्रकार राजा को समय पर सुसज्जित एव वीर सैनिक उपलब्ध हो जाते थे।

9 शान्ति व सुव्यवस्था की स्थापना–सामन्त-प्रथा का जन्म ही अशान्त वातावरण में हुआ था। महान् साम्राज्यों की स्थापना अवश्य हा रही थी परन्तु सुप्रशासन के अभाव मे उन विशाल राज्यों में चारों ओर अव्यवस्था व्याप्त थी। विदेशी आक्रमणों से राज्यों में अराजकता फैल रही थी। परन्तु इस प्रथा ने राजनीतिक अराजकता व अव्यवस्था के समय सुदृढ़ सामाजिक सगठन स्थापित करने का प्रयास किया। सामाजिक जीवन में सामन्तों ने सतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। बर्बर जातियों के आक्रमणो को असफल बना कर अपनी सरक्षित जनता को उनकी लूट-मार से बचाया।

10 शूरधर्म का सूत्रपात–शूरधर्म को सामन्तवाद की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति कहा गया है। हैलम के अनुसार **शूरधर्म मध्य-युग में नैतिक अनुशासन का सर्वोत्तम माध्यम** था। वस्तुत शूरधर्म राजनीतिक, धार्मिक एव कानूनी लक्षणों से युक्त एक महत्त्वपूर्ण मध्यकालीन सामाजिक सस्थान था, इसके माध्यम स नारी के प्रति सम्मान, असहाय के प्रति सुरक्षा, चर्च के प्रति आदर की भावना में वृद्धि हुई। वस्तुत शूरधर्म ने सामन्तों को न्याय एव औचित्य का पाठ पढ़ाया।

शूरधर्म की उत्पत्ति–शूरधर्म का उद्भव चार्ल्स मार्टेल (Charles Mortel) की उस अश्ववाहिनी सेना से माना जाता है जिसका गठन उसने मुसलमानों के आक्रमणों को राकने के लिए किया था। फ्रैंको ने अरवा से घोड़ों का सामरिक महत्त्व जाना और शनै शनै यूरोप में अश्वरोही सेना की तुलना में पैदल (पदाति) सना का महत्त्व घटने लगा। अत स्पष्ट है कि शूरधर्म पर इस्लामी जगत् का प्रभाव पड़ा। इसके अलावा मध्य-युग की धार्मिक प्रवृत्ति का प्रभाव भी शूरधर्म पर पड़ा और इसके परिणामस्वरूप शनै शनै इसका स्वरूप ईसाई भाईबन्दी का हो गया।

शूरधर्म का स्वरूप–धीरे-धीरे शूरधर्म समस्त यूरोप के दशों में व्याप्त हो गया। परन्तु इसका सर्वाधिक प्रसार फ्रास में हुआ। मध्यकाल की अनक घटनाए इससे प्रभावित हुई। 1095 ई० में जब प्रथम धर्म-युद्ध हुआ तो पोप ने समस्त सामन्तों को उसमें

योगदान देने को आमन्त्रित किया था। बारहवीं सदी के आरम्भ तक यह यूरोप में सर्वव्यापी बन गया। शूर-धर्म के अन्तर्गत सामन्तों के कर्त्तव्य तो निर्धारित किये गये ही पर साथ में ही इसने उनके मनोरंजन पर भी जोर दिया था। मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन बताया था चक्रस्पर्धा (Tournament) को। यह नाइट (Knight) के दलों के बीच नकली युद्ध होता था। मध्य-युगीन सामन्ती नाइटों के लिए शूरधर्म उच्च आदर्शों का प्रतीक था।

सामन्तवाद से हानियाँ

मध्य-युग के प्रारम्भिक काल में सामन्तवाद के माध्यम से बाह्य-आक्रमणों एवं आन्तरिक अराजकता से स्थानीय सुरक्षा, कृषि का विकास, न्याय की स्थिति में सुधार तथा अन्य सामाजिक कार्य सम्पन्न हुए। परन्तु कालान्तर में यह प्रथा सामाजिक विकास के लिए अभिशाप बन गई। इसका मूल कारण इसकी उपयोगिता का नाश होना तथा इसमे अनेकों बुराइयों का आना था। इस प्रथा से देश व समाज को होने वाली हानियों में से कुछ यहा दी जाती हैं -

1 साम्राज्य की एकता नष्ट होना-सामन्तवाद के उदय ने महान् साम्राज्यों को विभक्त कर दिया। इससे शासन शिथिल पड़ गया तथा जनता की स्वामिभक्ति विभक्त हो गई। इसके अलावा ये सामन्त समय पड़ने पर अपने स्वतन्त्र होने की फिराक में रहते थे। इस प्रकार कई सामन्तों ने अपने स्वतन्त्र राज्य भी स्थापित कर लिये थे और निर्बल शासक उनको स्वतन्त्र होने से नहीं रोक सके।

2 सामन्तवाद ने वर्गवाद को जन्म दिया-सामन्त वर्ग एक वर्ग बन गया। इनको राज्य में कई विशेषाधिकार प्राप्त होते थे।[1] इसके अनन्तर इन्होंने अपनी जागीरों में वर्गवाद उत्पन्न किया। ये भी गरीबों की अपेक्षा धनी व्यापारियों की अधिक चिन्ता करते थे। इस प्रकार से समाज में सामन्तवाद के कारण ऊंच-नीच व असमानता की भावना उत्पन्न हो गई। सामन्त अपने आधीन कृषकों का शोषण करने लगे। उस काल में समाज में असमानता का सिद्धान्त मान लिया गया था। धर्माधिकारी भी सामन्तों का ही पक्ष लेते थे। स्वय पोप इन्नोसेंट ने कहा था कि सामन्तों को भगवान ही दास बनाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामन्तवाद ने समाज में मूल रूप से दो वर्गों को जन्म दिया-(1) अधिकारों से युक्त वर्ग तथा (2) शोषित वर्ग। प्रथम वर्ग में राजा व सामन्त आते थे तथा दूसरे में शोषित किसान।

3 अधिनायकवाद का सूत्रपात-यह सत्य है कि अधिनायकवाद बीसवीं शताब्दी की एक देन है। परन्तु देखा जाय तो इसके कीटाणु सामन्तवाद के साथ ही उत्पन्न हो गये थे। सामन्त शासक से दूर रहते थे। अत राजा का उन्हें भय ही नहीं होता था। जनता की वे चिन्ता नहीं करते थे। अपने खजाने को भरने के लिए वे मनमाने ढ़ग से किसानों से धन वसूल करते थे। इस प्रकार वे अपने शासन में स्वतन्त्र हो गये थे और अपने सैनिकों पर अधिक निर्भर रहते थे।

---

1 Feudal society was aristocratic. — Burns

4 कृषक वर्ग का शोषण–धन की प्राप्ति से शनै शनै ये सामन्त विलासी जीवन की ओर अग्रसर होने लगे थे। अपने विलास की सामग्री जुटाने के निमित उनकी धन की लालसा उत्तरोत्तर प्रबल होती जा रही थी। उन दिनों आय का प्रमुख साधन भूमिकर ही था। अत सामन्त लोग कृषको पर मनमाने ढ़ग से कर लगाने लगे और उनके हितों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। कर देने के अलावा किसानों को और कई तरीकों से सामन्तों को धन देना पड़ता था। उनकी पुत्रियों के विवाह में तथा पुत्रा को नाइट की पदवी से अलकृत कराने में भी उन्हें धन देना पड़ता था। इसके अलावा उन्हें बेगार भी देनी पड़ती थी। इतने आर्थिक शोषण के उपरान्त भी किसान अधिकारहीन प्रा गी बना हुआ था।

5 शान्ति स्थापित न होना–राजाओं ने सामन्त वर्ग को जन्म तो शान्ति स्थापित करने हेतु दिया था, परन्तु परिणाम इसके विपरीत हुआ। इस प्रथा के प्रादुर्भाव से यूरोप में अशान्ति बढ़ी। सामन्त अपने छोटे-छोटे व्यक्तिगत स्वार्थों पर लड़त थे और राजा उनका दबाने में अपने का असमर्थ पाता था, क्योंकि उसकी स्वय की शक्ति सामन्त वर्ग की शक्ति पर आधारित होती थी।

इसके अलावा सामन्तों की भूमि की भूख दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। उस भूख की शान्ति के लिए वे अपने पड़ौसी सामन्तों से युद्ध करते रहते थे। वीरता उनका एक आवश्यक तत्व होने के कारण वे शान्ति के समय भी युद्ध का प्रदर्शन करते ही रहते थे। इन सबका परिणाम यह होता था कि आम जनता शान्ति का अनुभव नहीं कर पाती थी।

6 विलासिता व अनाचार का बढ़ना–कालान्तर में सामन्त अपने आदर्शों को भूल गये। जनता की भलाई को भूलकर वे विलासिता व अनाचार क गर्त में डूब कर उस पर अत्याचार करने लगे। सिद्धान्त रूप में तो वे अपना जीवन नैतिक बताते थे, पर यथार्थ में उनका जीवन अधिकाधिक विलासी होता जा रहा था। वे अपनी स्थिति का ध्यान नहीं रखते थे। वे चरित्र से गिरत जा रहे थे। उनके दुर्ग विलासिता के केन्द्र बनते जा रहे थे।

7 उद्योग धन्धे व व्यापार का विकसित न होना–सामन्त युग में मुद्रा का अभाव था। मुद्रा का प्रचलन अवश्य हो गया था, पर वह थोड़ी मात्रा में हुआ था। इस कारण लोग उद्योग-धन्धे स्थापित नहीं कर सकते थे। उनके पास धन रूप में अनाज ही होता था-जिससे वे नवीन कारोबार चालू नहीं कर सकते थे। सामन्त उन्हें किसी प्रकार सहायक सिद्ध नहीं हो रहे थे। इसके अलावा सामन्तों ने व्यापार को भी विकसित नहीं किया। उन्होंने यानायात के साधनों के विकास की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इसका एक कारण सामन्तों के पास मुद्रा का न होना भी था। उनके पास भी अनाज ही अधिक मात्रा में रहता था। इसके अलावा कृषकों को भी अपनी उपज सस्ती कीमतों पर वहीं बेचनी पड़ती थी। इस कारण भी व्यापार विकसित नहीं हो सका। यदि सामन्तों के पास धन होता भी था तो वे धन को केवल सैनिकों को सुसज्जित करने में ही व्यय करते थे।

योगदान देने को आमन्त्रित किया था। बारहवीं सदी के आरम्भ तक यह यूरोप में सर्वव्यापी बन गया। शूर-धर्म के अन्तर्गत सामन्तों के कर्त्तव्य तो निर्धारित किये गये ही पर साथ में ही इसने उनके मनोरंजन पर भी जोर दिया था। मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन बताया था चक्रस्पर्धा (Tournament) को। यह नाइट (Knight) के दलों के बीच नकली युद्ध होता था। मध्य-युगीन सामन्ती नाइटों के लिए शूरधर्म उच्च आदर्शों का प्रतीक था।

सामन्तवाद से हानियाँ

मध्य-युग के प्रारम्भिक काल में सामन्तवाद के माध्यम से बाह्य-आक्रमणों एवं आन्तरिक अराजकता से स्थानीय सुरक्षा, कृषि का विकास, न्याय की स्थिति में सुधार तथा अन्य सामाजिक कार्य सम्पन्न हुए। परन्तु कालान्तर में यह प्रथा सामाजिक विकास के लिए अभिशाप बन गई। इसका मूल कारण इसकी उपयोगिता का नाश होना तथा इसमें अनेकों बुराइयों का आना था। इस प्रथा से देश व समाज को होने वाली हानियों में से कुछ यहा दी जाती हैं -

1 साम्राज्य की एकता नष्ट होना-सामन्तवाद के उदय ने महान् साम्राज्यों को विभक्त कर दिया। इससे शासन शिथिल पड़ गया तथा जनता की स्वामिभक्ति विभक्त हो गई। इसके अलावा ये सामन्त समय पड़ने पर अपने स्वतन्त्र होने की फिराक में रहते थे। इस प्रकार कई सामन्तों ने अपने स्वतन्त्र राज्य भी स्थापित कर लिये थे और निर्बल शासक उनको स्वतन्त्र होने से नहीं रोक सके।

2 सामन्तवाद ने वर्गवाद को जन्म दिया-सामन्त वर्ग एक वर्ग बन गया। इनको राज्य में कई विशेषाधिकार प्राप्त होते थे।[1] इसके अनन्तर इन्होंने अपनी जागीरों में वर्गवाद उत्पन्न किया। ये भी गरीबों की अपेक्षा धनी व्यापारियों की अधिक चिन्ता करते थे। इस प्रकार से समाज में सामन्तवाद के कारण ऊच-नीच व असमानता की भावना उत्पन्न हो गई। सामन्त अपने आधीन कृषकों का शोषण करने लगे। उस काल में समाज में असमानता का सिद्धान्त मान लिया गया था। धर्माधिकारी भी सामन्तों का ही पक्ष लेते थे। स्वय पोप इन्नोसेंट ने कहा था कि सामन्तों को भगवान ही दास बनाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामन्तवाद ने समाज में मूल रूप से दो वर्गों को जन्म दिया- (1) अधिकारों से युक्त वर्ग तथा (2) शोषित वर्ग। प्रथम वर्ग में राजा व सामन्त आते थे तथा दूसरे में शोषित किसान।

3 अधिनायकवाद का सूत्रपात-यह सत्य है कि अधिनायकवाद बीसवीं शताब्दी की एक देन है। परन्तु देखा जाय तो इसके कीटाणु सामन्तवाद के साथ ही उत्पन्न हो गये थे। सामन्त शासक से दूर रहते थे। अत राजा का उन्हें भय ही नहीं होता था। जनता की वे चिन्ता नहीं करते थे। अपने खजाने को भरने के लिए वे मनमाने ढंग से किसानों से धन वसूल करते थे। इस प्रकार वे अपने शासन में स्वतन्त्र हो गये थे और अपने सैनिकों पर अधिक निर्भर रहते थे।

---

1 "Feudal society was aristocratic."

Burns

4 **कृषक वर्ग का शोषण**–धन की प्राप्ति से शनै शनै ये सामन्त विलासी जीवन की ओर अग्रसर होने लगे थे। अपने विलास की सामग्री जुटाने के निमित उनकी धन की लालसा उत्तरोत्तर प्रबल होती जा रही थी। उन दिनों आय का प्रमुख साधन भूमिकर ही था। अत सामन्त लोग कृषकों पर मनमाने ढ़ग स कर लगाने लगे और उनके हितों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। कर देने के अलावा किसानों को और कई तरीकों से सामन्तों को धन देना पड़ता था। उनकी पुत्रियों के विवाह में तथा पुत्रों को नाइट की पदवी से अलकृत कराने में भी उन्हें धन देना पड़ता था। इसके अलावा उन्हें बेगार भी देनी पड़ती थी। इतने आर्थिक शोषण के उपरान्त भी किसान अधिकारहीन प्रा ी बना हुआ था।

5 **शान्ति स्थापित न होना**–राजाओं ने सामन्त वर्ग को जन्म तो शान्ति स्थापित करने हेतु दिया था, परन्तु परिणाम इसके विपरीत हुआ। इस प्रथा के प्रादुर्भाव से यूरोप में अशान्ति बढ़ी। सामन्त अपने छोटे-छोटे व्यक्तिगत स्वार्थों पर लड़ते थे और राजा उनका दबाने में अपन का असमर्थ पाता था, क्योकि उसकी स्वय की शक्ति सामन्त वर्ग की शक्ति पर आधारित होती थी।

इसके अलावा सामन्तों की भूमि की भूख दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। उस भूख की शान्ति के लिए व अपने पड़ौसी सामन्तो से युद्ध करते रहते थे। वीरता उनका एक आवश्यक तत्त्व होने के कारण वे शान्ति के समय भी युद्ध का प्रदर्शन करते ी रहते थे। इन सबका परिणाम यह होता था कि आम जनता शान्ति का अनुभव नहीं कर पाती थी।

6 **विलासिता व अनाचार का बढ़ना**–कालान्तर में सामन्त अपने आदर्शों को भूल गये। जनता की भलाई को भूलकर वे विलासिता व अनाचार के गर्त में डूब कर उस पर अत्याचार करने लगे। सिद्धान्त रूप में तो वे अपना जीवन नैतिक बताते थे, पर यथार्थ में उनका जीवन अधिकाधिक विलासी होता जा रहा था। वे अपनी स्थिति का ध्यान नहीं रखते थे। वे चरित्र से गिरते जा रहे थे। उनके दुर्ग विलासिता के केन्द्र बनते जा रहे थे।

7 **उद्योग धन्धे व व्यापार का विकसित न होना**–सामन्त युग में मुद्रा का अभाव था। मुद्रा का प्रचलन अवश्य हो गया था, पर वह थोड़ी मात्रा में हुआ था। इस कारण लोग उद्योग-धन्धे स्थापित नहीं कर सकते थे। उनके पास धन रूप में अनाज ही होता था जिससे वे नवीन कारोबार चालू नहीं कर सकते थे। सामन्त उन्हें किसी प्रकार सहायक सिद्ध नहीं हो रहे थे। इसके अलावा सामन्तों ने व्यापार को भी विकसित नहीं किया। उन्होंने यातायात के साधनों के विकास की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इसका एक कारण सामन्तों के पास मुद्रा का न होना भी था। उनके पास भी अनाज ही अधिक मात्रा में रहता था। इसके अलावा कृषकों को भी अपनी उपज सस्ती कीमतों पर वहीं बेचनी पड़ती थी। इस कारण भी व्यापार विकसित नहीं हो सका। यदि सामन्तों के पास धन होता भी था तो वे धन को केवल सैनिकों को सुसज्जित करने में ही व्यय करते थे।

8 सामन्त वर्ग स्वामि-भक्त संस्था में परिणित न हो सका ने अपनी भूमि अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को जागीर में प्रदान की थी तो आशा रही होगी कि ये लोग उसके स्वामि-भक्त बने रहेंगे। परन्तु शासक स्वामिभक्त नहीं बना सका। सामन्तों की स्वामी-भक्ति केवल व्यक्तिगत नहीं बन सकी। जिम सामन्त को जिस शासक से जागीर में भूमि उसी राजा का स्वामिभक्त रहता था। वह उस राजा के । नहीं रहता था।

सामन्तवाद का अन्त-किसी भी राजनीतिक, सामाजिक का सर्वकालीन एक-सा रहना अति कठिन है। चौदहवीं शताब्दी के बदलने लगीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ होते ही यूरोप पतन की ओर जाने लगी। यह प्रथा कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर इसका विनाश भी अवश्यम्भावी था। इसक पतन के कुछ प्रमुख

(1) **नवीन युद्ध-शस्त्रों का प्रचलन**-सामन्तो ने सुदृढ़ बना ली थी। वे दुर्गों की ओट में अपने स्वामी से गये थे। परन्तु बारूद के आविष्कार ने इन किलों की स्थिति किले बारूद की सहायता से उड़ाये जा सकते थे। इसी ने अश्वारोहियों को भी निर्बल बना दिया, क्योंकि वे भाले मध्य-युग के आरम्भ में बन्दूकों का प्रचलन भी हो गया सामन्त की शक्ति का ह्रास हो गया।

(2) **धर्म-युद्ध**-जैसा कि आगे बताया जायेगा प्रमुख रूप से चार धर्म-युद्ध करने पड़े थे। प्रथम तीन गये थे। तीन युद्धों में ईसाइयों को पराजय का मुँह सामन्तों का समाज व शासकों की दृष्टि में मान घट हो गया था कि अब उनका जीवन सामन्तों के नेतृत्व में की चिन्ता न कर अब शक्तिशाली राजाओं की चिन्ता

(3) **कृषक विद्रोह**-सामन्त सर्वाधिक शोषण की विलासिता कृषक-वर्ग के शोषण पर ही क्रुद्ध थे। 1381 ई० में इंगलैण्ड के किसानों ने अपने उसी वर्ष फ्रांस के कृषकों ने विद्रोह कर दिया था। इन की शक्ति घट गई। इन विद्रोहों के उपरान्त कृषक थे। वे अपनी आर्थि- अवस्था में भी कुछ सुधार चाहते अब सामन्तों को समाप्त कर अपना दास-जीवन समाप्त शोषण से बचने के अलावा इन विद्रोहों से किसानों में राष्ट्रीय हो गया। जब इंगलैण्ड में वाट टाइलर (Wat Tyler) के इंग्लैण्ड के एक पादरी जॉन बाल (John Ball) ने अपने प्रेरणा- को उनकी दयनीय आर्थिक अवस्था का आभास

कि आज किसान जो इस दयनीय अवस्था में जीवन-यापन कर रहा है उसका मूल कारण सामन्तों का शोषण है। उसके ओजस्वी भाषण से किसान खुले रूप में विद्रोही हो गये। सामन्तों के प्रभाव से जॉन बाल को फासी पर लटकाया गया और वाट टाइलर को छुरा भौंककर मारा गया। जॉन बाल को इगलैण्ड का प्रथम समाजवादी माना जाता है जिसने कि साम्यवाद का उपदेश दिया था। उन दोनों के वध से किसान सामन्तों के और भी विरुद्ध हो गये।

(4) व्यापारिक वर्ग का अभ्युदय-धर्म-युद्धों का एक अच्छा परिणाम यह निकला कि यूरोप में एक व्यापारी वर्ग का उदय हो गया। यूरोप के व्यापारी पश्चिमी एशियाई देशों के सम्पर्क में आय तथा उनसे व्यापार करने लगे। व्यापार के विकसित होने के साथ-साथ व्यापारी वर्ग भी अधिकाधिक धनी बनता चला गया। मेडसी (Medici) ने इटली के, फ्यूगर्स ने जर्मनी के तथा रोलिन्स (Rolins) ने फ्रान्स के राजा को आर्थिक सहायता दी। व्यापारियों से समय-समय पर आर्थिक सहायता मिलन क कारण सामन्त लोग व्यापारियों से दब कर रहने लगे। व्यापारी-वर्ग के विकास स नगरों का विकास हुआ और नगरों के विकास से व्यापारी वर्ग में स्वतन्त्र सभाषण की भावना पनपने लगी। इसके अतिरिक्त व्यापारी वर्ग ने यह भी समझ लिया कि उनके व्यापार की सफलता अब सामन्त-प्रथा पर नहीं वरन् शक्तिशाली राजाओं पर है। वे लोग ही विदेशों में हमारे व्यापार को सुरक्षित रख सकते हैं। इसके अलावा सामन्तों के राज्य में उन्हें चुगी प्रत्येक सामन्त की जागीर में चुकानी पड़ती थी। अत उन्होंने सोचा कि यदि शक्तिशाली राज्य कायम हो जावेंगे तो हमें चुगी केवल एक ही शासक को देनी पड़ेगी। इन कारणों से व्यापारी वर्ग अब सामन्तों का विनाश चाहने लगा। इससे भी साम न्तवाद दिनोंदिन निर्बल होता चला गया।

(5) राष्ट्रीयता का विकास-1331 ई० से 1443 ई० तक यूरोप में सौ वर्षीय युद्ध (Hundred Years' War) लड़ा गया। हालांकि यह युद्ध फ्रास और इगलैण्ड के बीच ही लड़ा गया था और राष्ट्रीय भावना का विकास प्रथम इन दोनों देशों में ही हुआ था।[1] परन्तु कालान्तर में इस युद्ध ने यूरोपवासियों में राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया। इसके अलावा धर्म-युद्ध से भी राष्ट्रीय भावना को प्रेरणा मिली थी। राष्ट्रीय भावना के प्रसार के कारण जनता सामन्तों का विरोध करने लगी तथा वह केवल अपने राज्यों का ही हित चाहने लगी। अत राष्ट्रीय भावना के प्रसार से भी सामन्तवाद दिनोंदिन शिथिल पड़ने लगा।

(6) मुद्रा का प्रचलन-उत्तर मध्य-काल में अच्छी मुद्रा का पर्याप्त मात्रा में प्रचलन हो गया था। मुद्रा प्रचलन से राजा के कोष में नकद धन आने लगा। उसने भूमि-कर को भी अब प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) में बदल दिया और किसानों से भूमि कर नकद राशि में लेना आरम्भ किया। कृषक-वर्ग से कर लेने के लिए उसे सामन्तों को समाप्त

1 Hayes and Moon World History p 450
The long contest promoted the growth of national feeling in both France and England

8 **सामन्त वर्ग स्वामि-भक्त सस्था में परिणित न हो सका**-जब शासक ने अपनी भूमि अपने विश्वसनीय व्यक्तियो को जागीर में प्रदान की थी तो उसे उनसे यह आशा रही होगी कि ये लोग उसके स्वामि-भक्त बने रहेंगे। परन्तु शासक वर्ग उन्हें अपना स्वामिभक्त नहीं बना सका। सामन्तों की स्वामी-भक्ति केवल व्यक्तिगत रही। वह सस्थागत नहीं बन सकी। जिस सामन्त को जिस शासक स जागीर में भूमि मिलती थी वह केवल उसी राजा का स्वामिभक्त रहता था। वह उस राजा के उत्तराधिकारियो का स्वामी-भक्त नहीं रहता था।

सामन्तवाद का अन्त-किसी भी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्या का सर्वकालीन एक-सा रहना अति कठिन है। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध स परिस्थितिया बदलने लगीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ होते ही यूरोप में सामन्तवादी व्यवस्था पतन की ओर जाने लगी। यह प्रथा कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित थी जिनके कारण इसका विनाश भी अवश्यम्भावी था। इसक पतन के कुछ प्रमुख कारण ये थे -

(1) **नवीन युद्ध-शस्त्रों का प्रचलन**-सामन्तों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ दुर्गों से सुदृढ़ बना ली थी। वे दुर्गों की ओट में अपने स्वामी से मुकाबला करने में समर्थ बन गये थे। परन्तु बारूद के आविष्कार ने इन किलों की स्थिनि को निर्बल बना दिया। किले बारूद की सहायता से उड़ाये जा सकते थे। इसी प्रकार लम्बे धनुप के प्रचलन ने अश्वारोहियों को भी निर्बल बना दिया, क्योकि वे भाल व बर्छों से युद्ध करते थे। मध्य-युग के आरम्भ में बन्दूकों का प्रचलन भी हो गया था। इन शस्त्रों के प्रचलन से सामन्त की शक्ति का ह्रास हो गया।

(2) **धर्म-युद्ध**-जैसा कि आगे बताया जायेगा कि ईसाइयों को मुसलमानों से प्रमुख रूप से चार धर्म-युद्ध करने पड़े थे। प्रथम तीन युद्ध सामन्तों के नेतृत्व में ही लड़े गये थे। तीन युद्धों में ईसाइयों को पराजय का मुँह देखना पड़ा था। इन पराजयों से सामन्तों का समाज व शासकों की दृष्टि में मान घट गया था। जनता को यह विश्वास हो गया था कि अब उनका जीवन सामन्तों के नेतृत्व में सुरक्षित नहीं है। अत वे सामन्तों की चिन्ता न कर अब शक्तिशाली राजाओं की चिन्ता करने लगे।

(3) **कृषक विद्रोह**-सामन्त सर्वाधिक शोषण किसानों का करते थे। उनके जीवन की विलासिता कृषक-वर्ग के शोषण पर ही आधारित थी। अत किसान सामन्तों से क्रुद्ध थे। 1381 ई० में इगलैण्ड के किसानों ने अपने सामन्तों के विरुद्ध बगावत की। उसी वर्ष फ्रास के कृषकों ने विद्रोह कर दिया था। इन विद्रोहों के परिणामस्वरूप सामन्तों की शक्ति घट गई। इन विद्रोहों के उपरान्त कृषक सामन्तों से शोपित नहीं रहना चाहते थे। वे अपनी आर्थि- अवस्था में भी कुछ सुधार चाहते थे। इन कारणों से किसान अब सामन्तों को समाप्त कर अपना दास-जीवन समाप्त करना चाहते थे। सामन्तों के शोषण से बचने के अलावा इन विद्रोहों से किसानों में राष्ट्रीय भावना का भी प्रादुर्भाव हो गया। जब इगलैण्ड में वाट टाइलर (Wat Tyler) के नेतृत्व में विद्रोह हुआ तो इग्लैण्ड के एक पादरी जॉन बाल (John Ball) ने अपने प्रेरणा- दायक भापण के माध्यम से दास-किसानों को उनकी दयनीय आर्थिक अवस्था का आभास कराया। उसने बताया

कि आज किसान जो इस दयनीय अवस्था में जीवन-यापन कर रहा है उसका मूल कारण सामन्तों का शोषण है। उसके ओजस्वी भाषण से किसान खुले रूप में विद्रोही हो गये। सामन्तों के प्रभाव से जॉन बाल को फांसी पर लटकाया गया और वाट टाइलर को छुरा भौंककर मारा गया। जॉन बाल को इंगलैण्ड का प्रथम समाजवादी माना जाता है जिसने कि साम्यवाद का उपदेश दिया था। उन दोनों के वध से किसान सामन्तों के और भी विरुद्ध हो गये।

(4) व्यापारिक वर्ग का अभ्युदय-धर्म-युद्धों का एक अच्छा परिणाम यह निकला कि यूरोप में एक व्यापारी वर्ग का उदय हो गया। यूरोप के व्यापारी पश्चिमी एशियाई देशों के सम्पर्क में आये तथा उनसे व्यापार करने लगे। व्यापार के विकसित होने के साथ-साथ व्यापारी वर्ग भी अधिकाधिक धनी बनता चला गया। मेडसी (Medici) ने इटली के, फ्यूगर्स ने जर्मनी के तथा रोलिन्स (Rolins) ने फ्रान्स के राजा का आर्थिक सहायता दी। व्यापारियों से समय-समय पर आर्थिक सहायता मिलने के कारण सामन्त लोग व्यापारियों से दब कर रहने लगे। व्यापारी-वर्ग के विकास से नगरों को विकास हुआ और नगरों के विकास से व्यापारी वर्ग में स्वतन्त्र सभायण की भावना पनपने लगी। इसके अतिरिक्त व्यापारी वर्ग ने यह भी समझ लिया कि उनके व्यापार की सफलता अब सामन्त-प्रथा पर नहीं वरन् शक्तिशाली राजाओं पर है। वे लोग ही विदेशों में हमारे व्यापार को सुरक्षित रख सकते हैं। इसके अलावा सामन्तों के राज्य में उन्हें चुगी प्रत्येक सामन्त की जागीर में चुकानी पड़ती थी। अत उन्होंने सोचा कि यदि शक्तिशाली राज्य कायम हो जावेंगे तो हमें चुगी केवल एक ही शासक को देनी पड़ेगी। इन कारणों से व्यापारी वर्ग अब सामन्तों का विनाश चाहने लगा। इससे भी सामन्तवाद दिनादिन निर्बल होता चला गया।

(5) राष्ट्रीयता का विकास-1331 ई० से 1443 ई० तक यूरोप में सौ वर्षीय युद्ध (Hundred Years' War) लड़ा गया। हालाकि यह युद्ध फ्रास और इंगलैण्ड के बीच ही लड़ा गया था और राष्ट्रीय भावना का विकास प्रथम इन दोनों देशों में ही हुआ था।[1] परन्तु कालान्तर में इस युद्ध ने यूरोपवासियों में राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया। इसके अलावा धर्म-युद्ध से भी राष्ट्रीय भावना को प्रेरणा मिली थी। राष्ट्रीय भावना के प्रसार के कारण जनता सामन्तों का विरोध करने लगी तथा वह केवल अपने राज्यों का ही हित चाहने लगी। अत राष्ट्रीय भावना के प्रसार से भी सामन्तवाद दिनोंदिन शिथिल पड़ने लगा।

(6) मुद्रा का प्रचलन-उत्तर मध्य-काल में अच्छी मुद्रा का पर्याप्त मात्रा में प्रचलन हो गया था। मुद्रा प्रचलन से राजा के कोष में नकद धन आने लगा। उसने भूमि-कर को भी अब प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) में बदल दिया और किसानों से भूमि कर नकद राशि में लेना आरम्भ किया। कृषक-वर्ग से कर लेने के लिए उसे सामन्तों को समाप्त

---

1 Hayes and Moon World History p 450
'The long contest promoted the growth of national feeling in both France and England

करना आवश्यक था ।[1] सामन्तों को दबाने के लिए अब उसने नकद वेतन देकर सेना रखना आरम्भ कर दिया । मुद्रा प्रचलन से व्यापारी वर्ग भी राजा के प्रभुत्व में आ गए और वे राजा के कोष को नकद धन स भरने लगे।

(7) राजा की शक्ति में अभिवृद्धि-मुद्रा के प्रचलन से राजा अपनी निजी सेना रखने में समर्थ हुआ । उस सेना की शक्ति के सहारे उसकी शक्ति में वृद्धि हुई। उधर धर्म-युद्धों में बहुत से सामन्तों के मारे जाने के कारण उन्हें दबाना राजा को सुगम हो गया । मुद्रा प्राप्ति के उपरान्त राजा ने अपने कर्मचारी नियुक्त कर लिए जिनकी सहायता से वह अपना प्रशासन चलाने लगा । अब वह सामन्तों की मन्त्रणा प्रशासनिक व न्यायिक कार्यों में भी नहीं लेता था । इसका परिणाम यह हुआ कि सामन्तों का प्रभाव राजदरबार से उठ गया । उधर व्यापारी वर्ग का सहयोग भी दिनोंदिन राजा को ही मिलता जा रहा था । अत अब उसे न सामन्तों की सेना की आवश्यकता रही थी और न उनकी आर्थिक सहायता की ।

(8) सामन्त व्यवस्था का समय के अनुसार न बदलना-सामन्त तन्त्र एक रूढ़िवादी तन्त्र सिद्ध हुआ । उसमें समय के अनुसार बदलने की क्षमता दृष्टिगत नहीं हुई है । उत्तर मध्य-काल में किसानों के विचारों मे पर्याप्त परिवर्तन आ गया था। वे अब सामन्तों से अधिक दिन शोषित नहीं रहना चाहते थे । नगरों के विकास ने उनको रोजी का साधन सुलभ बना दिया था । व्यापारी-वर्ग उन्हें वेतन देकर नगरों में आमत्रित करने लगे थे । यह देखकर भी सामन्तों ने अपनी शोषण की मनोवृत्ति को नहीं बदला । इसका परिणाम उन्हे अपने विनाश में ही भुगतना पड़ा ।

(9) सामन्तों का विलासी होना-सामन्त लोग रूढ़िवादी तो थे ही पर उनके विलासी जीवन ने भी उनके विचार में कुछ परिवर्तन किया । कुछ सामन्त इस विचार के हो गये कि गावों की जागीर को छोड़कर अब क्यों न नगरो में चला जाय जहा कि वे आराम का जीवन व्यतीत कर सकेंगे । इसके लिए उन्होंने अपनी भूमि व्यावसायिक लोगों को बेचना आरम्भ कर दिया । इसके अलावा उनके विलासी जीवन ने उन्हें धन की इतनी आवश्यकता में ढ़केल दिया कि उन्होंने अपने दास-किसानों को भी धन लेकर स्वतत्र करना आरम्भ कर दिया । दास-किसान भी नगरों में आकर अपना समय कुछ सुखी अवस्था में व्यतीत करने लगे । इसके परिणामस्वरूप सामन्त-तन्त्र डगमगाने लगा।

(10) बुर्जवा-वर्ग का उत्कर्ष-व्यापार के विकसित होने से बुर्जवा-वर्ग का उत्कर्ष हो गया था । बुर्जवा-वर्ग की उत्पत्ति 'बुर्ज' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है नगरवासी। अत इस वर्ग मे नगर के रहने वाले व्यापारी, व्यवसायी, महाजन आदि होते थे । उनकी आय का स्रोत व्यापार था जिससे पैसा नकद राशि के रूप में मिलता था। धनवान होने के कारण इस वर्ग का प्रभाव समाज व राज-दरबार में दिनोंदिन बढ़ता

---

1 Money aided in the rise of the national stat at the expense of feudalism ..

J E Swain

जा रहा था। आरम्भ में सामन्त वर्ग इस वर्ग का विरोधी अवश्य रहा। पर जब राजा का उन्हें सहयोग मिलने लगा तो वे भी उनके प्रशसक बन गये और यहा तक कि उन्होंने अपनी पुत्रियों का विवाह बुर्जवा वर्ग के लोगों के साथ करना आरम्भ कर दिया। सामन्तों की भूमि भी इन्होंने खरीदना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार इस वर्ग के उत्कर्ष से भी सामन्त-वर्ग पर महान् आघात पहुँचा।

(11) धर्माधिकारियों की विरोधी भावना–धर्माधिकारी भी सामन्तों के समर्थक नहीं रहे। इसका प्रमुख कारण तो यह था कि कुछ धर्माधिकारी भी सामन्त रूप में होते थे। उन्हें भी चर्च के आधीन भूमि का स्वामी बनना पड़ता था। दूसरे, पोप सामन्तों की शोषण करने की मनोवृत्ति से नाराज था। तीसरे, पोप ने दास किसानों से उन्हें स्वतन्त्र कराने का वायदा भी कर लिया था। यह वचन किसानों को उसने उस समय दिया था जबकि उन्हें उसने धर्म-युद्ध में भेजा था। पोप के आव्हान पर भारी सख्या में किसान मुसलमानो से युद्ध करने गये थे। चौथे, पोप सामन्तों के पारस्परिक कलह के कारण भी क्रुद्ध था। वह नहीं चाहता था कि सामन्त आपस में झगड़कर अशात वातावरण उत्पन्न करें। अत उसने भी सामन्तप्रथा के विनाश का मार्ग प्रशस्त ही किया।

सामन्त प्रथा का मूल्याकन–वास्तव में मध्यकालीन यूरोपीय सभ्यता का इतिहास सामन्तवाद की उत्पत्ति, उसके उत्कर्ष तथा उसके पतन का इतिहास है। उस समय मानव-समाज का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं था जो सामन्तवाद से प्रभावित न हुआ हो। सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत् शासन-व्यवस्था में सुधार हुआ। कला का विकास हुआ। कृषि का विकास हुआ। सामन्तवाद के प्रणय और शूरता की परम्पराओं ने कितने ही कवियों व उपन्यासकारों को सरल और श्रेष्ठ साहित्य रचना को लिए प्रोत्साहित किया। इसके अलावा सामन्तवाद ने समाज का कुछ नैतिक स्तर भी उन्नत किया तथा स्त्री-समाज की अवस्था में भी सुधार किया। इसीलिए डॉ० विल डयूरेन्ट (Durant) न लिखा है कि **इतिहास की अधिकाश आर्थिक और सामाजिक रचनाओं के समान सामन्त प्रथा भी स्थान, समय और मानव की आवश्यकताओं के अनुकूल थी।** अत मध्यकालीन यूरोपीय सभ्यता का इतिहास सामन्तवाद की उत्पत्ति और उसके उत्कर्ष और पतन का इतिहास है। उस समय जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जिस पर इस व्यवस्था का प्रभाव नहीं पड़ा हो।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सामन्ती व्यवस्था अपने युग के अनुकूल थी तथापि इसमें अनेक अवगुण विद्यमान थे। प्रथम सामन्त धर्म-युद्धों में मुसलमानों का परास्त करने में असफल रहे। इससे समाज में उनकी साख घट गई। उनके विलासी जीवन से स्त्री-समाज उन्हें घृणा करन लगा। सामन्त लोग अच्छी मुद्रा चलाने में असफल रह तथा अपने व्यापारियों को विदेशों में सुरक्षा प्रदान करने में असफल रहे। अत व्यापारी वर्ग भी उनसे सन्तुष्ट नहीं था। किसान वर्ग जिस पर कि सामन्तवाद टिका हुआ था, उनके शोषण से परेशान था। अत स्पष्ट है इस सामन्ती व्यवस्था की आधारशिला ही विषमता थी। इन्हीं कारणों से इसका पतन अवश्यभावी था।

प्रश्न

1 सामन्तवाद से आप क्या समझते हैं ? वह किन परिस्थितियों में चलाया गया था ?
What do you mean by the term Feudalism ? Under what circumstances it was expounded ?

2 सामन्तवाद के प्रसार के कारणों का पर्यवेक्षण कीजिए।
Discuss the causes of the spread of Feudalism ?

3 सामन्तवाद की विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके पतन के क्या कारण थे ?
Describe the salient features of Feudalism What were the causes of its decline ?

4 सामन्तवाद की परिभाषा दीजिए और मध्ययुगीन यूरोप में इसक विकास की विवेचना कीजिए।
Define the term Feudalism and discuss its evolution in the Medieval Europe

11

पुनर्जागरण

''पुनर्जागरण पाश्चात्य देशों की जातियों की उन परिवर्तित मनोवृत्तियों का द्योतक है जो मध्य-युग और आधुनिक युग में समन्वय स्थापित करती हैं।''

– प्रो एम आ रे

चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य यूरोप मे दो महत्त्वपूर्ण घटनाए घटीं जिनके प्रभाव से यूरोप के इतिहास में एक नवीन युग का सृजन हुआ। प्रथम घटना को पुनर्जागरण (Renaissance) कहा जाता है। इस घटना ने मानव के लौकिक ज्ञान में महान् वृद्धि की। इस लौकिक ज्ञान की वृद्धि से आधुनिक युग की कला, साहित्य, विज्ञान, दर्शन एव जीवन के प्राय सभी क्षेत्रों में नवीन आदर्शों की स्थापना हुई। इससे पूर्व यूरोपीय जनता सामन्त -प्रथा, पवित्र-रोमन साम्राज्य तथा ईसाई धर्म की व्यापकता के अन्तर्गत् प्रगाढ़-निद्रा में साई हुई थी। उस समय शिक्षा का अभाव था। इस अभाव के कारण तथा धर्म की प्रधानता के कारण मानव-समाज में स्वतन्त्र चिन्तन का सर्वथा अभाव था। पादरी-वर्ग धर्म-ग्रन्थों के स्वतन्त्र-मनन तथा बौद्धिक विश्लेषण के सर्वथा विरुद्ध था। अत हम कह सकते है कि उस समय यूरोप का मानव-समाज एक प्रकार से गतिहीन सा हो गया था। बौद्धिक विकास की सभी दिशायें अवरुद्ध थीं। परन्तु यह स्थिति अधिक समय नहीं रही। शनै शनै जन-साधारण मे एक नवीन जिज्ञासा जागृत होने लगी। इसके परिणामस्वरूप मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का उन्नयन प्रारभ हुआ। पन्द्रहवीं व सोलहवीं सदिया में रचनात्मक शक्ति का प्रस्फुरण मानव के कई कार्य-कलापों में दृष्टिगत होने लगा। सभ्यता एव सस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में आशातीत विकास हुआ। यही प्रक्रिया पुनर्जागरण के नाम से इतिहास म विख्यात है।

पुनर्जागरण का अर्थ-सभ्यता व सस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में आशातीत विकास होने के कारण ही इसका अर्थ 'फिर से जागना' बताते है। इतिहासकारों ने भी सामूहिक रूप में इसका अर्थ 'बौद्धिक आन्दोलन' बताया है। जानसन टामसन (J W Thompson) के मतानुसार 'रेनेसा' शब्द का प्रयोग इतिहासकार चौदहवीं शताब्दी में इटली की कला एव ज्ञान के जागरण में करते है जो पन्द्रहवीं शती में आल्पस पर्वत को पार कर सोलहवीं सदी में समस्त यूरोप में व्याप्त हो गया। इतिहासकार ल्यूकस ने भी इस धारणा से सहमति व्यक्त करते लिखा है कि 'रेनेसा' शब्द का अर्थ इटली के उन सास्कृतिक परिवर्तनों से है जो चौदहवीं शताब्दी से प्रारभ होकर 1600ई० तक सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया। इतिहासकार स्वेन (Swain) के अनुसार मध्य-युग के अन्त में जितना बौद्धिक विकास हुआ उसे ही सामूहिक रूप से पुनर्जागरण कहा गया है।

पुनर्जागरण का अग्रेजी शब्द रेनेसा (Renaissance) है। यह फ्रेंच भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'पुनर्जन्म'। अत पुनर्जागरण मनुष्य की उपलब्धियों की आर सकेत करता है। इस आन्दोल~ के परिणामस्वरूप जनसाधारण क्रमश पर-लोक में रुचि कम

रखने लगा और इस लोक के विषय में अधिक जिज्ञासा रखने लगा। यह परिवर्तन भी मानव-समाज में पुनर्जागरण के कारण ही आया। अत पुनर्जागरण एक उदार सांस्कृतिक आन्दोलन था जिसने विज्ञान, व्यवसाय, धर्म और शासन में महान् परिवर्तन किये।

विभिन्न इतिहासकारों की दृष्टि में पुनर्जागरण

लार्ड एक्टन-"नई दुनिया के प्रकाश में आने के उपरान्त प्राचीन सभ्यता की पुन खोज, मध्य-युग के इतिहास को अन्त करने वाली तथा आधुनिक युग के आरभ को सूचित करने वाली दूसरी सीमा की प्रतीक है। पुनर्जागरण यूनानी साहित्य के पुन अध्ययन एव उससे उत्पन्न परिणामों को सूचित करता है।"

सीमोण्ड-"रेनेसा" एक ऐसा आन्दोलन है जिसक फलस्वरूप पश्चिम के राष्ट्र मध्य-युग से निकलकर वर्तमान युग के विचार तथा जीवन की पद्धतियों को ग्रहण करने लगे।

हेज-"राजनीतिक क्षेत्र म राष्ट्रीय राज्यों के उत्थान व निरकुश राजतन्त्रों के अभ्युदय एव व्यापारिक क्षेत्र में पूजीवाद की वृद्धि व यूरोपीय प्रसार की भाति समानरूप से महत्वपूर्ण एव प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति, पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शती की यह वह बौद्धिक जागृति थी, जिसने आधुनिक समाज एव सभ्यता को अत्यधिक मात्रा मे प्रभावित किया।"

वैनलून-"रेनेसा राजनीतिक अथवा धार्मिक आन्दोलन न होकर मानस की एक विशिष्ट स्थिति को उजागर करता था।"

डेविस-' पुनर्जागरण शब्द मानव के स्वातन्त्र्य प्रिय, साहसी विचारों को, जो मध्य-युग मे धर्माधिकारियों द्वारा जकड़े व बन्दी बना दिए गये थे, व्यक्त करता है।"

उपर्युक्त तथ्यों व इसके स्वरूप से यह स्पष्ट है कि पुनर्जागरण एक आकस्मिक घटना नहीं थी। यह एक वह आन्दोलन था जिसकी प्रक्रिया चौदहवीं सदी से सोलहवीं सदी के अन्तिम वर्षों तक चलती रही।[1]

क्या पुनर्जागरण मौलिक था? -नि सन्देह पुनर्जागरण यूरोप की एक महान् युगान्तकारी घटना थी। इसे उत्तर मध्य-युग व आधुनिक युग को मिलाने वाला सेतु कह सकते हैं। उत्तर मध्यकाल को आधुनिक युग से मिलाने हेतु इस आन्दोलन ने मानव-विचारों में परिवर्तन लाने हेतु एक दीर्घकालीन क्राति का आयोजन किया। इसीलिये प्रोफेसर वीच ने कहा है-" "पुनर्जागरण का आरम्भ यूरोपीय इतिहास की कोई आकस्मिक घटना नहीं थी।" चौदहवीं शताब्दी से पूर्व भी समय-समय पर वैयक्तिक अथवा सामूहिक मानसिक उद्वेग, चिन्तन और मनन के उदाहरण मिलते हैं। ऐसे प्रत्येक अवसर पर नवीन चिन्तन का प्राचीनता से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा है। पुनर्जागरण से पूर्व इस प्रकार का बौद्धिक आन्दोलन कैरोलिगियन (*Carolingian*) सम्राट चार्ल्स महान् के समय में हुआ था, पर वह भी यूनान-रोमन सभ्यता के तत्वों से प्रभावित था। यह आन्दोलन समय से पूर्व हुआ क्योंकि चार्ल्स के इस लोक से विदा होते ही उस बौद्धिक आन्दोलन के प्रभाव समाप्त हो गये और यूरोप में पुन अन्धकार छा गया।

---

1 M. Appel A Study of the World History p 227
'The new era known as the Renaissance was not a sudden rebirth but a gradual process over a long period of time

इस प्रकार के आन्दोलन का दूसरा उदाहरण अलबिजेनसियन (Albigensian) आन्दोलन का दिया जा सकता है। यह आन्दोलन बारहवीं व तेरहवीं शताब्दी मे हुआ था। यह धार्मिक से अधिक बौद्धक, सामाजिक व साहित्यिक विकास का उदाहरण था। बहुत सम्भव था कि वहा से पुनर्जागरण का वास्तविक शुभारम्भ हो जाता, किन्तु आत्म-निर्भर, धर्मनिरपेक्ष और आधुनिकता से युक्त इस आन्दोलन स पादरी-वर्ग शकित हा उठा और इसे क्रूरता से दबा दिया।

तीसरा पुनर्जागरण आन्दालन सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय (Frederick II, 1212 50) के समय हुआ। फ्रेडरिक धार्मिक सकीर्णता का विरोधी था तथा मानसिक-स्वतन्त्रता तथा आत्म-निर्भरता का समर्थक था। मानसिक स्वतन्त्रता तथा आत्म-निर्भरता पुनर्जागरण के प्रमुख लक्षण थ। इस स्वतन्त्रता का मूल कारण यह था कि फ्रेडरिक पाश्चात्य विचारों से प्रभावित था। एक अर्थ में वह आधुनिक व्यक्ति था। उसन अरस्तू व अभरोस के कई ग्रन्थों का लेटिन भाषा मे अनुवाद करवाया था। उसने नेपिल्स (Napels) मे एक विश्व-विद्यालय की स्थापना भी की थी। उसने एलबिजेनसियन विद्वानों को अपन यहा आश्रय भी दिया था। उसकी इस नीति के कारण सिसली म उस बौद्धिक एव साहित्यिक वातावरण का सृजन हुआ जिसका पुनर्जागरण काल में इटली के कई शासकों ने अनुसरण किया।

दाते (Dante) ने भी पुनर्जागरण का पूर्वाभास दिया था। उसकी 'डिवाइन कॉमेडी' (Divine Comedy) मध्य-युग का महाकाव्य माना गया है। उसका धर्मशास्त्र मध्य-युग का धर्मशास्त्र था। अपने युग के अन्य लागों की तरह वह भी पोपतन्त्र (Popacy) तथा राज्यतन्त्र क दैवी सिद्धान्त में विश्वास करता था। धर्मद्रोह से उसे चिढ़ तथा भय था। ग्रीको लक्षणा से युक्त होने पर भी वह आने वाले नव-युग का मसीहा तथा पुनर्जागरण का अग्रदूत माना गया है। वर्जिल (Virgil) उसका आदर्श था। अपनी आत्म-निर्भरता, तार्किक प्रवृत्ति और अत्यधिक वैयक्तिकता के कारण वह मध्यकालीन से भी अधिक अर्वाचीन जान पडता है।

अत स्पष्ट है कि पुनर्जागरण एक मौलिक आन्दालन नहीं कहा जा सकता। इसके कई चिन्ह पहले से ही विद्यमान थे। इस आन्दोलन के जो प्रमुख लक्षण माने जाते है, वे लक्षण इससे पूर्व होने वाले बौद्धिक आन्दोलनों में विद्यमान थे। फिर दाते को तो पुनजागरण का अग्रदूत (Apostle) कहा गया है।

पुनर्जागरण के कारण

1 कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार – 1453 ई० में उसमानी तुर्को (Ottoman Turks) ने बाईजाईन्टाइन (Byzantium) साम्राज्य की राजधानी पर अधिकार कर लिया। कुस्तुनतुनिया (Constantine) पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी होने के कारण यूनानी विद्वानों एव कलाकारों का केन्द्र था। परन्तु ज्यों ही यह तुर्कों के अधिकार में गया, मुसलमानों ने ईसाइयों पर नाना प्रकार के अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। उन अत्याचारों से पीड़ित यूनानी विद्वान शरण लेने हेतु पश्चिमी रोमन साम्राज्य की राजधानी रोम (Rome) में आ गये। टर्की से पलायन करते समय यूनानी विद्वान अपने ग्रथों को अपने साथ ले

आये। इस प्रकार उनके आ जाने से रोम यूनानी व रोमन साहित्यिक सामग्री का केन्द्र बन गया। यूनानी विद्वानों ने रोम में आकर रोमवासियों में यूनानी साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की। रोमवासी अपने लेटिन भाषा के साथ-साथ यूनानी साहित्य का भी अध्ययन करने लगे। इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोपवासियों में यूनानी विद्वानों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उनकी धारणाओं को रोमवासियों ने ग्रहण करना आरम्भ किया। उन्होंने यूनानी मूर्ति-कला व स्थापत्य-कला की भी सराहना की। इसका परिणाम यह निकला कि रोम में प्राचीनता के आधार पर साहित्य व कला में नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ जिसके कारण पुनर्जागरण का आरम्भ हुआ।

2 नगरों में वृद्धि-मध्य-युग की समाप्ति तक यूरोप के विभिन्न देशों में बड़े-बड़े नगर आबाद हो गये थे। नगरों के विकास के भी कई कारण थे। उनमें से कुछ का जिक्र इससे पूर्व के अध्यायों में हम कर भी आये हैं, पर मूल कारण व्यापार का विकसित होना था। व्यापार के विकसित होने के कारण धनी व्यापारी-वर्ग नगरों में निवास करने लगा। धन की प्रचुरता से अमीरों की इच्छाएँ दिनों-दिन वृद्धि पाने लगीं और उनका जीवन विलासिता की ओर उन्मुख होने लगा। वे सुन्दर जरीदार वस्त्र धारण करते तथा निवास के लिये उच्च एवं भव्य प्रासादों का निर्माण कराते थे। उनके अभिराम प्रासाद सुन्दर चित्रों व मूर्तियों से अलंकृत होते थे। प्रासाद भी नवीन स्थापत्य गौथिक (Gothic) शैली पर आधारित होने लगे। इस प्रकार नगरों के विकास ने नवीन कला के सृजन में योग दिया।

3 धर्म-युद्ध-अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु ईसाइयों को मुसलमानों के साथ कई धर्म-युद्ध करने पड़े। यह सत्य है कि अधिकांश धर्म-युद्धों (Crusades) में ईसाइयों को मुंह की खानी पड़ी। उनको नाना प्रकार के आघात भी सहन करने पड़े, परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन युद्धों के परिणामस्वरूप ईसाइयों में एकता की भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने सामन्तवाद के स्थान पर शक्तिशाली राष्ट्रीय-राज्यों (National States) को अधिक पसन्द किया। इसके अलावा इन धर्म-युद्धों के समय पश्चिमी यूरोपवासियों को पूर्व के लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। इस सम्पर्क के कारण यूरोपवासी पूर्व के नवीन विचारों से अवगत हुए और उन्होंने उन विचारों को अपने यहां फैलाने का प्रयास किया। इसके अलावा इन युद्धों के समय वे तुर्कों के सम्पर्क में भी आये। उनकी स्थापत्य-कला को देखने का उन्हें अवसर मिला। उनकी मस्जिदों की गुम्बजों व विस्तृत मेहराबों को अपनी स्थापत्य-कला में उतारने का उन्होंने प्रयास किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म-युद्धों के माध्यम से भी पश्चिमी यूरोप में नवीन विचारधारा का प्रस्फुरण हुआ।

4 छापेखाने का आविष्कार-पुनर्जागरण आन्दोलन की सफलता का श्रेय छापेखाने को भी जाता है। इसके अभाव में साहित्यिक व वैज्ञानिक ग्रन्थों की उपलब्धि जनसाधारण को किस प्रकार हो सकती थी ? 1450 ई० में इसका आविष्कार जर्मनवासी गुटनबर्ग (Gutenburg) ने किया था। इसके आविष्कार का परिणाम यह हुआ कि बाईबिल (Bible) ढेरों में मुद्रित होने लगी। जनसाधारण के हाथों में वह सरलता एवं सस्ते दामों पर आने

लगी। जनसाधारण धर्म का सही अर्थ समझने लगा। लोग धार्मिक अन्धविश्वासों से आवृत नहीं रहे। उनके दिलों मे शिक्षा के प्रसार से ज्ञान-दीपक प्रज्वलित हुआ। शिक्षा व धर्म का ज्ञान धर्माधिकारियों की बपौती न रहा। बौद्धिक विकास सम्भव हो सका। जनसाधारण को अपने दयनीय जीवन का आभास हुआ। अब वे आशावादी बनकर अपने सुन्दर भविष्य की कल्पना करने लगे।

5 **मानववाद का प्रचार (Humanism)**-यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'ह्यूमनिटस' (Humanitas) से निकला है जिसका अर्थ 'उन्नत-ज्ञान' है। मानववादी मनुष्य की धर्म-शास्त्र के प्रति कोई रुचि न थी। वे जनसाधारण को सुसस्कृत बनाने के लिए प्राचीन साहित्य पर जोर देते थे। पेट्रार्क (Petrarch) और उसके अनुयायियों ने मानववाद का खूब प्रचार किया। उन्होंने धर्माधिकारियों के जीवन की खिल्ली उड़ाई और मानव-समाज को लौकिक जीवन की ओर अधिक आकर्षित किया। मानववादियों की धारणा थी कि इस जीवन को आनन्द से बिताना चाहिए और दूसरे जन्म के लिए चिन्तित रहना व्यर्थ है। इस धारणा से मानववादी धीरे-धीरे धार्मिक मिथ्याडम्बरों से मुक्त होने लगे और अपना स्वतन्त्र चिन्तन करने लगे। इस वाद का प्रसार सर्व-प्रथम इटली और तदुपरान्त फ्रास मे हुआ। इसके अनुयायी मानववादी (Humanists) कहलाये। मानववादी यूनान के प्राचीन साहित्य से प्रभावित थे। उन्हें केवल इहलोक की चिन्ता थी न कि मध्य-युग की भाति परलोक की।

6 **वैज्ञानिक चेतना**-पन्द्रवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के बीच विज्ञान की शनै शनै प्रगति हुई। वैज्ञानिकों ने अपने अन्वेषणों द्वारा जनसाधारण में विद्यमान जड़ता और अन्ध-विश्वासों को दूर करने का प्रयास किया। इन वैज्ञानिकों ने प्रयोग और तर्क के आधार पर सत्य को खोजने का प्रयास किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्यों के विचार में तर्क प्रधान होने लगा और वे किसी भी बात को बिना प्रमाण मानने को उद्यत नहीं होते थे।

7 **भौगोलिक अन्वेषण**-यूरोप के पुनरुत्थान और विकास में भौगोलिक अन्वेषणों का भी बड़ा हाथ रहा है। इन भौगोलिक खोजों से व्यापारियों के समक्ष व्यापार का क्षेत्र विस्तीर्ण हो गया। यूरोप के व्यापारी भू-मध्यसागर के क्षेत्र से बाहर निकल अन्य महासागरों के महान् वक्षस्थल को विदीर्ण करते विश्व में भ्रमण करने लगे। इससे यूरोपवासियों की कूपमडूकता तथा अन्धविश्वास का निवारण हुआ। नवीन देशों की खोज से वे लोग विश्व की अन्य सभ्यताओं के सम्पर्क में आये। इसके फलस्वरूप यूरोपवासियों में नवीन विचारधाराएँ पनपीं और वे सामन्त तथा धर्माधिकारियों के अत्याचारों से मुक्त होने का प्रयास करने लगे। भौगोलिक अन्वेषणों में सर्वप्रथम पुर्तगाल आगे बढ़ा और उसने एटलाटिक महासागर पर प्रभुत्व जमा लिया। इसके उपरान्त स्पेन ने कई समुद्री मार्ग खोज निकाले। इसके परिणामस्वरूप वह यूरोप में धनी एव शक्तिशाली देश हो गया। वह दूसरे देशों के सम्पर्क में आया और उनके विचारों से प्रभावित हुआ।

8 **व्यापारिक क्रान्ति**-भौगोलिक अन्वेषणों के परिणामस्वरूप यूरोप का व्यापारिक क्षेत्र विस्तृत हो गया। पूर्व में यूरोपवासी भारत तक तथा पश्चिम में अमेरिका तक व्यापार

करने लगे। व्यापार को विकसित एव समुनत बनाने की दृष्टि से उन्होने अच्छे प्रकार के जहाज बनाना आरम्भ किया। योग्य एव समझदार नाविक उन्हें चलाने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप का व्यापारिक क्षत्र दिना-दिन विस्तृत होता गया और विदेशों से यूरोप में धन प्रचुर मात्रा में आने लगा। धनी व्यापारी अब सुख स जीवन व्यतीत करने लगे। व्यापार में अर्जित पूजी से वे नवीन कला पर आधारित भवन बनाने लगे। फुर्सत के समय वे पुस्तकों का अध्ययन भी करने लगे। वे राजनीति व प्रशासन में भाग लेने लगे। शासन-प्रणाली मे परिवर्तन चाहने लगे। व्यापार के माध्यम मे वे जिन देशों के सम्पर्क म आये उनके विचारों को वे अपने यहा स्थान देने लगे। इसके परिणामस्वरूप भी यूरोप में नवीन विचारधारा का आर्विभाव हुआ।

9 **पूजीवाद का प्रादुर्भाव**-व्यापारिक क्रान्ति के फलस्वरूप यूरोप के देशों में पूजीवाद का सूत्रपात हुआ। पूजीवाद से यूरोप में अनेक दोष भी उत्पन्न हुए पर पुनर्जागरण को फलीभूत बनाने में भी पूजीवाद बहुत सहायक सिद्ध हुआ। यह पूजीवादी व्यवस्था ही थी जिससे सुन्दर नगरों का निर्माण हुआ और उनमें नवीन स्थापत्य-कला, चित्र-कला व मूर्ति-कला का विकास हुआ। पूजीपति लोगों के भव्य-प्रासादों में ही इन कलाओ की रमणीयता देखी जा सकती थी। कलाकारो ने इनके आश्रय में ही अपनी कला को निखार दिया। धनी पुरुषों के भवनों में प्राचीन, मध्य-युगीन तथा अर्वाचीन कला व साहित्यिक कृतियों का सग्रह भी देखा जा सकता था। अपने धन की सहायता से धनी-वर्ग ने शासकों को शक्तिशाली बनाया जिन्होंने कि अपने नाविकों को दूसरे देशों के जल,मार्ग खोज निकालने का प्रोत्साहित किया। इन धनी पुरुषों ने ही मानववादी विचारधारा को अपना कर परलोक की चिन्ता छोड़ दी तथा इहलोक में अपना जीवन सुखी बनाने का प्रयास किया। उन्होंने सुख की नाना प्रकार की सामग्रिया जुटाईं। ये सब इस बात का प्रमाण देती थीं कि यूरोप अब नई कला व सभ्यता की ओर उन्मुख हो रहा है।

10 **पाण्डित्यवाद विचारधारा का प्रभाव**-मध्य-युगीन दर्शन स्कालिस्टिक विचारधारा से प्रभावित था। इस विचारधारा का आधार अरस्तू का तर्कशास्त्र और सेन्ट आगस्टाइन का तत्त्व ज्ञान था। इस विचारधारा के व्यक्ति धर्म तथा तर्क दोनों में विश्वास करते थे। 1500 के करीब इस विचार के लोगों का दार्शनिकों से मतभेद हो गया था, परन्तु बाद में इनका मानववादियों की विचारधारा से समन्वय हो गया और यह धारा यूरोप में पुन प्रबल हो गई। पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में यह कई धाराओं में विभक्त हो गया। दो धारायें आधुनिक व प्राचीनता पर आधारित थीं। आधुनिक विचारधारा से इरफर्ट (Erfurt) प्रभावित तथा वियाना (Vienna) का विश्वविद्यालय प्रभावित थे। इस धारा का कहना था कि धर्म-शास्त्र को समझने के लिए श्रद्धा आवश्यक है। मार्टिन लूथर भी इसी विचारधारा से प्रभावित हुआ था जो कि आगे धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रणेता बना। दूसरी धारा ने, जो कि प्राचीनता पर आधारित थी, तर्क पर विशेष जोर दिया। यह थामस एक्वीनास (Thomas Aqunas) के विचारों से प्रभावित थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पाण्डित्यवाद (Scholasticism) ने भी यूरोप के विचारकों में तर्क की भावना तथा विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की। इसका परिणाम यह निकला

कि अब लोग तर्क-सम्मत धारणाओं पर विश्वास करने लगे और तर्कहीन मान्यताओं से मुह मोड़ने लगे।

11 विशाल मगोल साम्राज्य की स्थापना–चगेजखा की मृत्यु के उपरान्त कुबलाई खा ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उसके साम्राज्य में समस्त पोलैण्ड, रूस, हगरी आदि प्रदेश थे। उसके दरबार में विभिन्न देशों के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान सदैव बने रहते थे। पेकिंग व समरकद अन्तर्राष्ट्रीय सास्कृतिक केन्द्र बन गए थे। अत इस युग में पूर्व और पश्चिम में वास्तविक सम्पर्क स्थापित हुआ। वेनिस निवासी मार्को पोलो (Marco Polo) 1272 ई० में उसी के दरबार में गया था। वहा से लौटकर उसने अपनी यात्रा का विशुद्ध वर्णन किया। इस वर्णन से यूरोपवासी एशियायी देशों में जान को आतुर हो गये।

पुनर्जागरण इटली में प्रथम आरम्भ क्यों हुआ ?

1 इटली के नगर ज्ञान व सस्कृति के केन्द्र थे–यूनानी विद्वान् कुस्तुनतुनिया से भागकर रोम ही आये थे। साथ में ही वे अपने ज्ञान की सामग्री भी ले आये थे। इसके अलावा रोम व इटली क अन्य नगरों क चर्च लैटिन साहित्य से परिपूर्ण थे। अत विद्वानों को नवीन ज्ञान का दीप जलाने में यहाँ के सग्रहालय तथा वृहद् पुस्तकालयों से महान् सहायता मिली। इसके अलावा यूनानी व राम विद्वानों ने यहा एक साथ अपने विचारों का आदान-प्रदान कर नवीन विचारधारा को सुगमता से जन्म दिया।

2 इटली के धनी नगर–मध्य-युग में ही इटली के कई नगर पूर्वी देशों से व्यापार कर धनी बन चुके थे। वे सास्कृतिक प्रोत्साहन देने में समर्थ थे। इसके अतिरिक्त इन नगरों के धनी पुरुष नवीन कलाकृतियों को जुटाने में सक्षम थे। उन्होंने अपने धन से भव्य-प्रासाद व सुन्दर उद्यान बनाये। सुन्दर उद्यानों में भी मानववाद पर निर्भर फव्वारे होते थे। चित्र-कला व स्थापत्य-कला का तो निखार सर्वप्रथम इटली के नगरों में ही हुआ था। सन्त-पीटर का गिरजा घर जो रोम नगर में निर्मित है- आज भी विश्व का एक आश्चर्य बना हुआ है। इसके अलावा इटली के नगर यूनान व पश्चिमी एशियाई देशों के सर्वाधिक समीप पड़ते थे। पुनर्जागरण आन्दोलन ने अन्त में सहारा तो प्राचीन सभ्यता का ही लिया था और प्राचीन सभ्यता रोम के नगरों से कभी पूर्णत नष्ट नहीं हुई थी। इस कारण भी इस आन्दोलन को इटली के नगरों से महान् सहयोग मिला।

3 धर्म-युद्धों से लौटने वालों ने भी इटली को ही अपना निवास स्थान बनाया–मुसलमानों के विरुद्ध लड़े गये विभिन्न धर्म-युद्धों में यूरोप के लगभग सभी लोगों ने भाग लिया था। पोप की प्रेरणा से किसान, सामन्त, शासक व व्यापारी इन धर्म-युद्धों में सम्मिलित हुए थे। युद्ध से लौटकर जब व्यापारी, सामन्त व किसान यूरोप आये तो उनमें बहुत से इटली में ही बस गये। इस प्रकार जो वे पूर्वी देशों के व मुस्लिम सभ्यता के विचार अपने साथ लाये, उन्हें वे इटली में प्रसारित करने लगे। इसके परिणामस्वरूप भी यह आन्दोलन प्रथम इटली में ही आरम्भ हुआ।

4 लॉरेन्जो का सहयोग–जैसा कि बताया जा चुका है कि इटली के धनी पुरुषों ने पुनर्जागरण को फलीभूत बनाने में महान् सहयोग दिया। इन धनी पुरुषों में लॉरेन्जो

(Lorenzo the Magnificent) का नाम उल्लेखनीय है। वह फ्लोरेन्स का व्यापारी था और अपने धन की सहायता से फ्लोरेन्स का वह स्वतन्त्र स्वामी बन बैठा था। उसने यूनान के नगर-राज्यो के आधार पर फ्लोरेन्स की शासन-व्यवस्था सचालित की। उसने फ्लोरेन्स को सुन्दर उद्यानों व भव्य-प्रासादों से अलकृत किया। उसने अपने महल में चित्र बनाने हेतु अच्छे चित्रकारों को आमन्त्रित किया। कलाकारों को उसने अपने यहा आश्रय दिया तथा उनकी पैन्शनें नियुक्त कीं। उसके इन प्रयासों का फल यह हुआ कि फ्लोरेंस नवीन कला का केन्द्र तथा पुनर्जागरण में अपूर्व सहयोग देने वाला नगर बन गया। लौरेन्जों ने यूनानी पाडुलेखों का भी लैटिन भाषा में अनुवाद करवाकर पुनर्जागरण में अपना सहयोग प्रदान किया। इन्ही कारणों से वेनिस (Venice) उस समय इटली एथेन्स बन गया था।

5 **पोप निकोलस पचम का सहयोग**–सन्त पीटर का गिरजा का निर्माण कराने वाला निकोल्स पचम (Nicholas V, 1447 55) ही था। उसने वेटिकन पुस्तकालय (Vatican Library) की स्थापना की तथा लगभग समस्त रोम का निर्माण करवाया। उसने भी रोम में उल्लेखनीय विद्वानों तथा कलाकारों को आमत्रित किया। लौरेन्जो यद्यपि पोप की सत्ता का विरोधी था पर वह भी उसके द्वारा आमन्त्रित किया गया तथा सम्मानित किया गया। इसीलिए निकोलस पचम के काल को पुनर्जागरण में स्वर्ण-काल कहा जाता है। पुनर्जागरण आन्दोलन का प्रबल समर्थक होते हुए भी वह विचारों में मध्य-युगीन था। तुर्कों के विरुद्ध धर्म-युद्धों को आयोजित करने मे भी उसका महान हाथ था। उसकी भाति ही दूसरा पोप पियूस द्वितीय (Pius II 1458 64) भी मानवतावादी था तथा पुनर्जागरण का प्रबल समर्थक था। इस कारण वह भी निकोल्स के उपरान्त इस आन्दोलन को अपना सहयोग प्रदान करता रहा।

6 **रोम का लैटिन साहित्य का केन्द्र होना**-पुनर्जागरण आन्दोलन में लैटिन व यूनानी भाषाए ही सहायक सिद्ध हुई हैं। यूनानी साहित्य तो कुस्तुनतुनिया से आने वाले यूनानी विद्वान् अपने साथ लाए तथा लैटिन साहित्य का भण्डार उन्हें इटली में उपलब्ध हुआ। पुनर्जागरण से पूर्व यूरोप की एक मात्र भाषा लैटिन ही थी। सारे ग्रथ लैटिन भाषा में ही रचे जाते थे। अत इटली लैटिन साहित्य का केन्द्र प्राचीनकाल से ही चला आ रहा था और इसी कारण वह इस आन्दोलन को प्रेरणा देने का भी प्रधान केन्द्र बन गया। दाते कवि को पुनर्जागरण का महान् निदशक एव प्रणेता माना जाता है। वह इटली का ही निवासी था और उसने अपनी पुस्तक (Divine Comedy) लैटिन भाषा में ही रची थी। इस ग्रन्थ में पोप तथा सामन्तों के नैतिक पतन की ओर जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया गया था। उसने स्वतत्रता तथा व्यक्तिवाद की भावना का प्रसार किया और यही भावना नवीन सस्कृति के हर पहलू में पाई जाती है।

7 **इटली में विभिन्न जातियों का होना**–इटली में ही पुनर्जागरण आरभ होने का एक कारण यह भी था कि उस प्रायद्वीप में विभिन्न जातियों का निवास था। इन जातियों में गाथ, लोम्बोर्डी, फ्रैंक व अरब जातियाँ प्रमुख थीं। रोमन, बाईजाईन्टाइन तथा अरब सभ्यताओं के पारस्परिक सम्पर्क और समन्वय के फलस्वरूप मानसिक उन्नयन तथा व्यापक सामाजिक एव बौद्धिक आन्दोलन का होना स्वाभाविक था।

इटली में पुनर्जागरण के दो पक्ष

1 पुनर्जागरण का प्रारम्भ सर्वप्रथम इटली मे हुआ जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। इसका यहाँ प्रारम्भ दो पक्षों को लेकर हुआ। प्रथम पक्ष मे इटली के प्राचीन साहित्य एव ज्ञान को पुनर्जीवित करना था। इस पक्ष को सबल बनाने वाले मानववादी थे और उनमें पेट्रार्क का नाम उल्लेखनीय है। पेट्रार्क को समझना पुनर्जागरण को समझना है। वह इटालियन पुनर्जागरण के मानववादी पक्ष का प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि था। मध्य-काल का वह प्रथम विद्वान् था जिसने सास्कृतिक दृष्टि से प्राचीन साहित्य को समझा। उसने 200 पाण्डुलिपियों का सग्रह किया। उसने कुस्तुनतुनिया से प्लेटो (Plato) के 16 ग्रन्थ और होमर (Homer) के इलियड काव्य एक प्रति प्राप्त की। इसके परिणामस्वरूप इटली में जगह-जगह अच्छे पुस्तकालयों की स्थापना हुई। उनम फ्लोरेन्स की मेडिसी (Florence de Medice) तथा रोम का वैटिकन पुस्तकालय अति उल्लेखनीय है। प्राचीन साहित्य के सग्रह के अलावा मानववादियों ने मूल ग्रन्थों म भी वृद्धि की। इन ग्रन्थों से पुनर्जागरण को महान् सहयोग मिला।

2 इटली के पुनर्जागरण का दूसरा पक्ष प्राचीन कला को पुनर्जीवित करना था। कलात्मक पुनर्जागरण का वास्तविक स्वरूप था प्रकृति से तदात्म्य-स्थापन करना। मध्यकालीन कला में स्वातन्त्र्य व प्रकृति-चित्रण का अभाव था। उस कला में सादगी थी। पुनर्जागरण की कला इन प्रतिबन्धों से मुक्त होकर सजीव हुई। अब उस पर प्राचीनता तथा प्रकृति का प्रभाव समान रूप से लक्षित होने लगा। कला के पुनर्जागरण म भी महान् कलाकारों के व्यक्तित्व का विशेष महत्त्व था। यदि पेट्रार्क मानववाद का जन्मदाता था तो निकोला पिसानो पुनर्जागरण की मूर्तिकला का जन्मदाता था। उस पर प्राचीन कृतियों का प्रभाव था। पिसानों के साथ जिस मूर्ति कला का जन्म हुआ उससे चित्र-कला भी प्रभावित हुई। इटालियन पुनर्जागरण की प्रतिनिधि-कला चित्र-कला ही मानी जाती है। शिल्पकला के माध्यम से आशा व विश्वास, खुशी व निराशा की अभिव्यक्ति सफलता से हुई।

पुनर्जागरण के प्रभाव

पुनर्जागरण किसी आकस्मिक घटना का तो प्रतिफल था नहीं। यह आन्दोलन तो यूरोपीय देशो को सदियों तक आन्दोलित करता रहा और मानव-जीवन के अनेक क्षेत्रों को इसने अपना प्रभाव-स्थल बनाया। मानव-समाज का धर्म, विज्ञान, व्यापार, कला, शिक्षा, कृषि आदि सभी तो इसके कार्य-क्षेत्र में समाविष्ट थे। अत यह स्वाभाविक ही था कि इस आन्दोलन के प्रभाव भी व्यापक ही पड़े और मानव-समाज इससे प्रभावित हो।

साहित्य पर पुनर्जागरण का प्रभाव—साहित्य के पुनरुत्थान का पहला केन्द्र इटली था। चौदहवीं शताब्दी से ही इटली मे यूनानी भाषा की ओर रुचि जाग्रत हो रही थी। इस नये युग का निर्देशक महाकवि दाते था। यद्यपि धार्मिक दृष्टिकोण से दाते मध्यकालीन था तथापि अन्य कई क्षेत्रों में यह भविष्य का अग्रदूत था। उसने अपनी मातृभाषा इटैलियन में 'डिवाइन कॉमडी' नामक एक सुन्दर काव्य लिखा। उसने अरस्तू की 'सच्चे दार्शनिक' के रूप में प्रतिष्ठा की और रोम के प्रसिद्ध कवि वर्जिल को अपना पथ-प्रदर्शक समझा। राम तथा यूनान के कवियों के द्वारा उसकी बड़ी प्रशसा की गई है। दाते के पश्चात्

पेट्रार्क ने साहित्य के पुनरुत्थान में बड़ा सहयोग दिया। उसने मध्यकालीन शिक्षा का परित्याग किया और विद्वानो का ध्यान यूनान तथा रोम के प्राचीन साहित्य-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट किया। वह अपनी रचना सॉनेट में रचता था। उसने यूनान और लैटिन भाषा के लगभग दो सौ हस्तलिखित ग्रन्थ सकलित किये। पेट्रार्क को इटली का प्रथम आधुनिक व्यक्ति माना गया है। उसके प्रयत्नो से इटली म पुनर्जागरण ने साहित्य के क्षेत्रों को बहुत प्रभावित किया। उसकी प्रतिभा का महान् प्रभाव फ्लोरेन्स म ही नहीं था वरन् समस्त यूरोप में व्याप्त था। मानववाद को प्रेरणा देने वाला भी यही कवि पेट्रार्क था। उसके मित्र बोकेसियो को आधुनिक इटली के गद्य का जन्मदाता कहा गया है। उसका सबसे अच्छा कहानियो का सग्रह 'दिकामरोन' है। यह 100 कहानियों का सग्रह है। इसकी शैली हास्य प्रधान है। इसमे सामन्तों व पादरियो के भौतिक जीवन पर तो व्यग किया गया है पर साथ में मानव-जाति के प्रति प्रेम व सहानुभूति भी दिखाई गई है।

यूरोप के अन्य देशों में-इटली के उत्तर में स्थित आल्पस पर्वत को पार कर पुनर्जागरण का आन्दोलन अन्य देशो में पहुँचा।[1] इटैलियन भाषा की तरह अन्य देशों मे भी प्रादेशिक भाषाएँ विकसित हुई। फ्रासीसी भाषा सरसता और साहित्य की दृष्टि से लैटिन और इटैलियन भाषा से समता करन लगी। इस समय फ्रास में रेबीलेस (Rabelais 1490 1553) एक अच्छा गद्य लेखक था। उसने अपने उपन्यासों द्वारा मानव के स्वतन्त्र चिन्तन के महत्व पर प्रकाश डाला। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गर्गनतुआ' (Gargantua) पुनर्जागरण की सक्षिप्त कहानी मानी जाती है। उसकी रचानाएँ व्यगात्मक होती थीं। मोन्टेगन (1533 92) एक अच्छा निबन्ध लेखक था। वह अपनी ओजपूर्ण शैली एव भावों के स्पष्ट व्यक्तिकरण के कारण फ्रास का तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक बन गया था। वह वास्तव में व्यक्तिवादी था और व्यक्तिगत अनुभव ही उसकी रचनाओं के विषय थे। गीत-काव्य में रानसर्द (Ransard) विख्यात था। इगलैण्ड में भी साहित्य के क्षेत्र में पुनर्जागरण का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। शेक्सपीयर जैसा विश्व-विख्यात नाट्यकार एव कवि इसी पुनर्जागरण के युग में इगलैण्ड में पैदा हुआ था। उसके दुखान्त नाटक हैमलेट तथा मैकबेथ की तुलना यूनान के दुखान्त एसक्लिस, सोफोक्लीज तथा यूरीयाइडीज से की जाती है। बहुत से आलोचकों का कहना है कि ससार में उसके समकक्ष कोई नाटककार अब तक नहीं जन्मा है। फ्रासिस बेकन (Francıc Bacon) इग्लैण्ड का तत्कालीन एक अच्छा निबन्ध-लेखक था और आज भी उसकी गणना अच्छे निबन्ध-लखकों में होती है। बन फिगर का कहना है कि फ्रान्सिस बेकन ने मानव मस्तिष्क को व्यर्थ के धार्मिक विचारों से हटाकर प्रकृति के अध्ययन व भविष्य के मानव हित की ओर लगा दिया। फिलिप सिडनी (Philıp Sydney) ने इस समय भाषा को सुधारने का प्रयास किया और सर टामस मूर ने उटोपिया (Utopıa) नाम की एक काल्पनिक पुस्तक लिखी। स्पेन में इस समय सर्वान्टीज (Cervantes 1547 1616) एक अच्छा गल्प-लेखक था।

---

1 'The spark of culture that was the spirit of Humanism had crossed the Alps into Germany into France and into England

—J.E Swain

उसने डान किक्जोट (Don Quixote) नामक एक पुस्तक लिखी। पुर्तगाल मे केमोयेन्स (Camoens) एक प्रसिद्ध लेखक हुआ। प्रसिद्ध लेखक जान ड्रिकवाटर के कथानानुसार अंग्रेजी लेखक शेक्सपीयर, फ्रासीसि लेखक रेबीलेस तथा स्पेनवासी सर्वान्टीज इस पुनर्जागरण विचारधारा के तीन प्रकाण्ड पंडित थे। इन सब लेखकों ने कथावस्तु के लिए धार्मिक विषय नहीं चुने। उन्होने अपनी रचनाओ द्वारा मानव-जीवन की साधारण घटनाओ को व्यक्त करने का प्रयत्न किया।[1] भाषा का वैज्ञानिक ढग से अध्ययन होना आरम्भ हुआ। इस प्रकार से पुनर्जागरण के युग में यूरोपीय देशों के साहित्य में नवीन विचारधाराए उत्पन्न हुई और उनके प्रभाव से नवीन ढग की रचनाए रची जाने लगीं। इससे स्पष्ट है कि पुनर्जागरण के समय यूरोप के विभिन्न देशों में साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प० नेहरू लिखते है-"इस प्रकार यूरोप की भाषाओं ने प्रगति की और वे इतनी सम्पन्न एव शक्तिशाली हो गई कि उन्होंने आज की सुन्दर भाषा का रूप धारण कर लिया।"

कला का प्रभाव-कला-क्षेत्र में भी पुनर्जागरण इटली में सर्वप्रथम लक्षित हुआ। कला के विकास में इटली के विकसित व्यापार ने बहुत सहयोग दिया। प्राय प्रत्येक नगर में अच्छे कलाकार होते थे और नगर के धनी लोग उनके सरक्षक होते थे वहा का शासक भी उनका सरक्षक होता। स्थापत्य कला में इटली ने इतनी उन्नति की कि आधुनिक स्थापत्य कला उसकी ऋणी है। फिलीपो ब्रुनेलश्री (Filihpo Brunellecschi) इटली का पुनर्जागरण के समय नवीन स्थापत्य-कला की शैली का प्रणेता था और ब्रेमेन्टी (Bramonte) उस समय का सबसे अच्छा भवन निर्माता था। पुनर्जागरण के समागम के पूर्व इटली की स्थापत्य-कला धार्मिक विचारधाराओं से बधी हुई थी और उस कला के दर्शन भी केवल गिरजाघरों में ही होते थे। पर अब रामनस्क शैली (Romanesque architecture) का ह्रास होन लगा और उसके स्थान पर गोथिक (Gothic) शैली का प्रयोग होने लगा। प्राचीन और अर्वाचीन स्थापत्य-कला को सयुक्त कर नवीन प्रकार की कला को जन्म दिया गया। नवीन भवन-निर्माण कला पर यूनानी कला का प्रभाव बना रहा। इस शैली का सबसे सुन्दर नमूना सेट पीटर (St Peter) का गिरजाघर है। इस शैली के अनुसार भवनों में अब गुम्बद और मेहराब अधिक बनने लगे। गुम्बदों के अलावा बुर्ज (Pinnecles) व आश्रय (Battres) आदि का भी निर्माण होने लगा। खिड़किया चौड़ी होती थीं तथा उनमे रंगीन सुन्दर शीशा लगाया जाता था। इस समय इटली के विख्यात कलाकार माइकेल एन्जलो (Michel Angelo 1475-1564) और रैफल (Raphael 1378 1455) थे। इन कलाकारों के प्रभाव से स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना अब शासकों के महलों और धनी पुरुषो के उच्च प्रसादों में भी दृष्टिगोचर होन लगा।

इटली की चित्रकला भी फ्लोरेन्स (Florence) नगर से विकसित हुई। इस कला को उन्नत बनाने में ल्यूनार्डो डा विन्सी (Leonardo De Vinci 1452 1519)

1 Lord Acton. Lectures on Modern History p 73
"It was the first time that the characters of men were exposed with analytic distinctness

का बड़ा हाथ था। चित्रकार अब धर्माधिकारियों के चित्र ही चित्रित नहीं करते थे, वरन् ये अब अपने चित्रों द्वारा लौकिक जीवन की झाकी से भी जनसाधारण को परिचित कराने लगे थे। माइकेल एन्जलो को भी इस काल को उन्नत करने का श्रेय प्राप्त है। फ्लोरेन्स के मेडिसी प्रासाद की दीवारों पर चित्रित चित्र आज भी पुनर्जागरण के प्रतीक बने हुए हैं। वह सुन्दरता का पुजारी था तथा अपने चित्रों में सजीवता लाने के लिए वह पुरुषों के नग्न चित्र भी अंकित करता था। उसका 'अन्तिम निर्णय' (Last Judgment) नामक चित्र अति विख्यात है।[1] इस चित्र के बनाने में उसे बीस वर्ष लगे थे। इस चित्र को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य भय एव आतक से त्रस्त है तथा उसे ईश्वर से प्रेम व दया की कोई आशा नहीं है।

यूरोप के अन्य देशों में कला का विकास-इटली की स्थापत्य कला का सर्वाधिक प्रभाव फ्रास पर पड़ा। इटली के कारीगरों ने फ्रास जाकर वहा के शासक फ्रान्सिस प्रथम (Francis I) के लिए नवीन शैली पर आधारित अनेक सुन्दर भवन बनाये। स्पेन में फिलीप द्वितीय (Philip II) का भव्य प्रासाद भी इटली की स्थापत्य कला के नमूने पर ही निर्मित है। जर्मन का हैडेलबर्ग किला भी इस बात का द्योतक है कि जर्मनी भी गौथिक शैली से बिदाई ले रहा था और इटली की नवीन शैली से अपना सम्बन्ध जोड़ रहा था। इगलैंड में स्थापत्य कला के क्षेत्र में पुनर्जागरण का प्रभाव देर से पड़ा। वहाँ सत्रवहीं शताब्दी के आरम्भ में इनिगो जौन्स (Inigo Jones) के इटली से लौटने पर इटली स्थापत्य शैली का प्रभाव पड़ा। सेन्ट पॉल का गिरजाघर (St Paul's Cathedral) उस शैली का रम्य नमूना है।

स्थापत्य-कला में कलाकारों ने गौथिक शैली को परित्याग कर यूनान व रोम की प्राचीन कला को अपनाया था, लेकिन साथ में ही उस पर अपने युग की भी छाप रखी। तक्षण-कला के क्षेत्र में जियोवर्टी (Gioverte) तथा दातेलो (Donatello) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इटली की चित्रकला और मूर्तिकला का प्रभाव भी यूरोपीय देशों पर व्यापक रूप से पड़ा। चित्रकला के क्षेत्र में जर्मनी सर्वाधिक इटली से प्रभावित हुआ। जर्मनी के कलाकार ड्यूरर (Durer, 1481-1528) ने जर्मनी चित्रकला का विकास किया। इसके बाद हेन्स हालवेल एक विख्यात चित्रकार जर्मनी में पैदा हुआ। वह उस समय जर्मनी का सबसे महान् चित्रकार था। वह अपने अन्तिम वर्षों में इगलैंड गया और वहा उसने नवीन शैली पर हेनरी अष्टम का एक सुन्दर चित्र तैयार किया। सत्रहवीं शताब्दी में हालैंड में उच्चकोटि के चित्रकार वेलेसक्वीज (Velasquez, 1599 1660) ने अपनी सुन्दर चित्रकारी से स्पेन को अलकृत किया। वह भी उस काल का महान् चित्रकार समझा गया है।

संगीत-कला-इतिहासकार हेज का कहना है कि संगीत कला का विकास सोलहवीं शताब्दी में पर्याप्त रूप से हुआ। इसका कारण यह था कि मध्यकाल में गिरजाघरों में

1 ...and his grand fresco of the Last Judgment, in the Sistine chapel of the Vatican is probably the most celebrated in the world"

—Hayes and Moon

सगीत वर्जित था। बाद में ऐसा न रहा। गिरजाघरों मे सेंट एम्ब्रोस (St Ambrose) ने सगीत का होना आवश्यक बताया। मार्टिन लूथर ने अपना धर्म यूरोप में चलाया तो नवीन धर्म में गीतों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार सगीत कला भी शनै शनै विकसित होने लगी। पैलेस्ट्रीना (Palestrina) उस समय इटली का विख्यात गायक था। इसका यह नाम इसके जन्म-स्थान पर पड़ा। उसने 1554 ई० में अपनी रचना 'Masses' प्रकाशित कराई। इस ग्रथ की रचना इतनी सुन्दर है कि यह आज तक लोक-प्रिय बनी हुई है। पूर्वी प्रभाव के कारण सगीत में नवीन राग-रागनियों का विकास हुआ। इससे आधुनिक सगीत की नींव पड़ी। 'ग्रिगोरियन' (Gregorian Chant) धुन का जन्म पहले तथा 'काउन्टर प्वाइट' का विकास बाद में हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि पुनर्जागरण के फलस्वरूप यूरोप में कला का सर्वांगीण विकास हुआ और उस काल की कला को आज तक मात नहीं दी जा सकी है। उस काल की कला ने मानव क प्रत्येक पहलु को दर्शाना चाहा है। पुनर्जागरण की कला का लोक-प्रिय होने का प्रमुख कारण उसका स्वतन्त्र-चिन्तन एव व्यक्तिवाद पर आधारित होना था।

विज्ञान पर प्रभाव-विज्ञान का विकास मध्ययुग की अन्तिम शताब्दियो में ही आरम्भ हो गया था। रॉजर बेकन (Roger Bacon) प्रयोगीय विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। उसने आर्थिक बधनों की चिन्ता न कर मानव समाज की मूर्खता व अज्ञानता के अन्धकार को दूर करन का सराहनीय प्रयास किया। उसके समय में लोग तर्क की कसौटी पर न कस कर अपनी धारणायें चार बातों पर बनाते थे, वे थी-1 अज्ञ लोगो की भीड़ का निश्चित मत, 2 नवीन विचारों को शका से देखना, 3 अपने को सर्वज्ञ मानना तथा 4 दुर्बल व अवैज्ञानिक प्रमाणों पर अवलबित रहना। मध्य युग के वैज्ञानिक बिना विश्लेषण के प्रकृति के रहस्य तथा उसके चमत्कारों को स्वीकार कर लेते थे। परन्तु सोलहवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने प्रत्येक तथ्य को अगीकार करने के पूर्व उसे तर्क की कसौटी पर कसना आरम्भ किया। प्राचीन काल मे यूनानी वैज्ञानिक टालेमी (Ptolmey) ने मध्य युग में यह प्रमाणित कर दिया था कि पृथ्वी अचल है और सूर्य उसकी परिक्रमा करता है, परन्तु सोलहवीं शताब्दी मे पोलैड के विद्वान् कापरनिकस (Copernicus) ने इसके विरुद्ध यह सिद्ध किया कि सूर्य के चारों ओर पृथ्वी परिक्रमा करती है। परन्तु वह अपना यह मत मृत्यु शय्या पर पहुच कर ही प्रतिपादित कर सका। यदि वह इससे पूर्व कर देता तो टौलमी के समर्थक उसे नाना प्रकार से परेशान करते क्योंकि टौलमी के सिद्धान्त में सबका विश्वास था। कैथोलिक व प्रोटेस्टैण्ट दोनो चर्चों के अनुयायियों ने कोपरनिक्स के सिद्धान्त को भयावह तथा धार्मिक विश्वास के प्रतिकूल माना। परन्तु सोलहवीं सदी में साहसी वैज्ञानिकों ने उसके सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। जर्मन वैज्ञानिक कैप्लर (Kepler) ने अपने गणितीय नियमों के आधार पर कोपरनिक्स के सिद्धान्त की पुष्टि की।

रसायन शास्त्र में भी पुनर्जागरण के प्रभाव से अनेक अन्वेषण हुए। सोलहवीं शताब्दी में एंड्रियस वेसालियस (Vesalius Andreas) ने रसायन-शास्त्र के सहयोग से अनेक

औषधियाँ बनाईं। उसका कहना था कि प्राचीन धारणाओं को चैलेन्ज करना चाहिए और तथ्यों पर आधारित करना चाहिए। हारवे (Harvey) नामक विद्वान् ने यह सिद्ध किया कि रक्त मानव शरीर में चक्कर करता रहता है। इगलैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञ विद्वान् सर आइजक न्यूटन ने आकर्षण-सिद्धान्त (Gravity) का प्रतिपादन भी इसी समय में किया था। उसके आविष्कारों का प्रभाव महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। अब यह स्पष्ट हो गया कि यह विश्व कोई दैवयोग या आकस्मिक घटना नहीं अपितु एक ऐसी वस्तु है, जो प्रकृति के सुव्यवस्थित नियमों के अनुसार चल रहा है। न्यूटन (Newton) कालान्तर मे अपने समय के व्यक्तियों में सर्वाधिक लोकप्रिय बना। अलेक्जण्डर पोप ने भी उसकी प्रशसा की है।

पुनर्जागरण के अन्य प्रभाव-जैसा कि हम इस अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं कि पुनर्जागरण से साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में महान् परिवर्तन हुए और वे परिवर्तन मानव-समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में अति सहायक सिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त पुनर्जागरण से राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक प्रभाव भी बहुत पड़े हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे।

राजनैतिक - (1) सयुक्त यूरोप कई राष्ट्रीय राज्यों में विभक्त हो गया। (2) यूरोप में सामन्तवाद का ह्रास हुआ तथा उसके स्थान पर शक्तिशाली राष्ट्रों का प्रादुर्भाव हुआ। (3) राजनीतिक कार्यों में पोप का प्रभाव समाप्त हो गया। (4) जनसाधारण में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। (5) शक्तिशाली राष्ट्रों के शासन में साम्राज्यवादी भावना का सूत्रपात हुआ। (6) पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप जनता राज्य को ईश्वरकृत न मानकर मानव कृत मानने लगी। अत शासक की आलोचना करना भी वह अपना कर्तव्य समझने लगी।

उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए इटली के राजनीतिक विचारक मैकियावली (Machiavelli) ने अपने ग्रन्थ (The Prince) की रचना की। उसने अपने ग्रन्थ में निरकुश शासन पर बल दिया। इसके विपरीत इगलैण्ड के टामस मूर (Thomas Moore) ने अपने ग्रन्थ यूटोपिया में आदर्श-राज्य की कल्पना की। वह इगलैण्ड में इस प्रकार की शासन-प्रणाली स्थापित करना चाहता था, जिसमें युद्ध, दरिद्रता व अन्याय को कोई स्थान न हो।

धार्मिक-(1) जनता का धार्मिक अन्धविश्वास शनै शनै नष्ट होने लगा। (2) पोप का प्रभाव भी जनता पर से धीरे-धीरे घटने लगा जिसके परिणामस्वरूप यूरोप में धर्म-सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ। (3) जनसाधारण लोग अब रोम को अधिक महत्व न देकर अपने राष्ट्र को देने लगे। (4) लोग अब अपने स्वतन्त्र चिंतन में धर्म को भीति स्वरूप नहीं देखना चाहते थे।

सामाजिक- (1) मानववाद का प्रादुर्भाव हुआ। (2) व्यापारी वर्ग की समाज में शक्ति बढ़ी और वह मध्यम श्रेणी में शक्तिशाली के रूप में उभरा। (3) कुलीन-वशीय लोगों के आदर सत्कार में न्यूनता का समावेश हुआ। (4) जनता अब शिक्षित होने लगी। (5) दास-किसान भी अब स्वतन्त्र हो गये।

आर्थिक प्रभाव-(1) व्यापारिक क्रान्ति का प्रसार दिनोदिन होता चला गया। (2) व्यापारी वर्ग धनी बन गया। इसस यूराप मे पूजीवाद का उदय हुआ। (3) पूजीवाद के उदय से समाज धनी व निर्धन दो वर्गों में विभक्त हो गया। (4) दास किसानों की आर्थिक दशा म सुधार हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि पुनर्जागरण से मानव-जीवन सुखी बना तथा उसका मस्तिष्क जीवन को विकसित करने वाली विभिन्न प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर हुआ। पुनर्जागरण से होने वाले प्रभावों के विषय मे डेविड सेविल मुजे (David Saville Muzzey) इस प्रकार से लिखता है कि इगलैण्ड, फ्रास, जर्मनी के विद्वान जो अब तक यूनान के दर्शन-शास्त्र व अरब के विज्ञान का शोषण कर रहे थे- वह अब बन्द हो गया। बारहवीं और सोलहवीं शताब्दी के मध्य में जो धार्मिक भावनाएँ उत्पन्न हुईं, उन्होंने मध्यकालीन धार्मिक प्रभुता को समाप्त कर दिया और नवीन मानव प्रवृत्तियों को मार्ग दिया।

पुनर्जागरण के सामान्य प्रभाव

पुनर्जागरण के वैज्ञानिक, साहित्यिक, कलात्मक, दार्शनिक तथा बौद्धिक प्रभाव तो जनसाधारण पर लक्षित हुआ ही। परन्तु इनके अलावा इस आन्दोलन से और भी प्रभाव जनसाधारण पर लक्षित हुए। उन्हें हम सामान्य प्रभावों की श्रेणी में उल्लेखित करते हैं।

(1) **जीवन और जगत सम्बन्धी नवीन मान्यताओं का आविर्भाव**-पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप जिस ज्ञान का विकास हुआ, उसने एक नवीन धम-शास्त्र का स्वरूप धारण कर लिया। बिशप क्रिग्टन के मतानुसार **इस नवीन ज्ञान का उद्देश्य सम्पूर्ण यूरोप में एक नवीन सस्कृति को फैलाना था।** अब जनसाधारण मानव की वास्तविक प्रकृति तथा उसके महत्त्व स परिचित हुआ। लागा की धारणा बनी कि परलोक के नाम पर इस लोक क सुख को त्यागना ठीक नहीं। आत्मा का हनन किये बिना भी ज्ञान की पिपासा को शान्त किया जा सकता है। इन नवीन विचारो ने मानव-विकास में पर्याप्त सहयोग दिया। दूसरे शब्दों मे हम कह सकते हैं कि पुनर्जागरण के फलस्वरूप मानव जाति ने आधुनिक युग म प्रवेश किया।

(2) **ऐतिहासिक तारतम्य की स्थापना**-यह सत्य है कि प्राचीन सभ्यता एव सस्कृति के कुछ तत्व पूर्व मध्य-काल में ईसाइयत में भी प्रवेश कर गये थे, परन्तु प्राचीनता की अधिकाश रूप में अवहेलना ही की गई थी। इसका फल यह हुआ कि ऐतिहासिक तारतम्य छिन्न-भिन्न हो गया था। परन्तु पुनर्जागरण के फलस्वरूप ईसाइयत तथा प्राचीन सभ्यता के बीच सामजस्य स्थापित हो सका। इससे प्राचीन तथा अर्वाचीन में भी सम्बन्ध स्थापित हा सका और बीच की खाई पट गई। मानव-जाति के लिए यह भी लाभप्रद सिद्ध हुआ क्याकि प्राचीन सभ्यता में साहित्य, कला और विज्ञान के अनमोल तत्त्व समाविष्ट थे और उनकी उपेक्षा करना न सभव था और न उचित ही था। अब उनका उचित मूल्याकन और उपयोग होने लगा जिससे सौन्दर्य एव सत्य की जानकारी आधुनिक युग को हा सकी।

(3) शिक्षा में सुधार-मानववादी आन्दोलन के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। मध्य-युग में लैटिन भाषा का ह्रास हो रहा था तथा यूनानी भाषा को लोग प्राय भूल चुके थे। अरस्तू व प्लेटो को लोग भूल से गये थे। परन्तु मानववादियों के प्रयासों के फलस्वरूप लैटिन व ग्रीक दोनों भाषायें अपने मूल रूप में पुनर्स्थापित हुईं। प्लेटो का दर्शन अब जनसाधारण के समक्ष आया। ग्रीक रोमन साहित्य उपलब्ध होने लगा। इससे आधुनिकता के उदय तथा विकास में सहयोग मिला। नवीन विद्यालय व विश्व-विद्यालय भी मानववादी आन्दोलन से अप्रभावित न रहे। सभी विश्व-विद्यालय में ग्रीक एव लैटिन भाषाओं की पढ़ाई होने लगी। पाण्डित्यवाद की शिक्षण विधि का स्थान अब मानववादी शिक्षण-विधि ने ले लिया। यह नवीन शिक्षण-विधि वैज्ञानिक शिक्षण-प्रणाली के आरम्भ तक बनी रही।

(4) पुरातत्व ज्ञान का विकास-पुनर्जागरण से पूर्व लोगों को पुरातत्व के ज्ञान में कोई अभिरुचि नहीं थी। इटलीवासी अपने प्राचीन स्मारका के महत्त्व को भूल गये थे। परन्तु इस आन्दोलन ने उनका ध्यान उन स्मारकों की ओर आकृष्ट किया। पन्द्रहवीं शती के अन्त में प्रेमियों विओंडों ने 'रोम रेस्टोर्ड' (Rome Restored) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ से पूर्व रियेन्जी द्वारा 'डिस्क्रीपशन ऑफ दी रोम एण्ड इट्स स्प्लैण्डर' (Description of the Rome and its Splendour) लिखी जा चुकी थी। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रेमियों की पुस्तक अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इससे इतिहास की एक सर्वथा नवीन विद्या का जन्म हुआ जिससे आगे चलकर प्राचीन विश्व सभ्यता के अनेक अज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घोष हुआ।

(5) इतिहास में गवेषणात्मक तथा आलोचनात्मक विधि का अवलम्बन-पुनर्जागरण से पूर्व आलोचनात्मक ऐतिहासिक लेख नहीं लिखे जाते थे। परन्तु पुनर्जागरण ने पुरातत्व की भांति ऐतिहासिक आलोचना-विधि का भी शुभारम्भ किया। लोग अब किसी भी बात को आख मूदकर मान लेने की मध्यकालीन प्रवृत्ति का त्याग कर उसकी प्रामाणिकता पर अधिक ध्यान देने लगे थे। लौरेंसियस ने 'डोनेशन ऑफ कोन्सटेनटाइन,' (Donation of Constantine) लिख कर गवेषणात्मक ऐतिहासिक विधि का शुभारम्भ किया। उसने लिवी की प्रामाणिकता को भी चुनौती दी। इस प्रकार प्रमाणिक सूत्रों पर आधारित आलोचनात्मक इतिहास लेखन की उस प्रक्रिया का आरम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप प्राचीन तथा मध्यकालीन एशियाई तथा यूरोपीय इतिहास को प्रामाणिक रूप दिया जा सका।

(6) धर्म-सुधार आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि तैयार करना-इटली में प्रतिपादित मानववाद जब आल्पस पर्वत को पार कर उत्तरी यूरोप की ओर अग्रसर हुआ तो विद्वानों का ध्यान हिब्रू साहित्य की ओर भी आकृष्ट हुआ। यह साहित्य यूनानी-रोम साहित्य से भी प्राचीन था। छापेखाने का आविष्कार हो जाने के कारण 'बाईबिल' का प्रकाशन अनेक भाषाओं में होने लगा तथा उसका अध्ययन विश्लेषणात्मक विधि से होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तरी यूरोप में ईसाई-धर्म के मूल नैतिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों पर अधिक स्वतन्त्र-चिन्तन एव मनन होने लगा। इस प्रकार के स्वतन्त्र धार्मिक चिन्तन

ने उत्तरी यूरोप में कई धर्म-सुधारकों का जन्म दिया । अत उत्तरी यूरोप के मानववादी धर्म-सुधारक बन बैठे । मार्टिन लूथर (Martin Luther) इस प्रकार की विचारधारा का ही परिणाम था । इसलिए इतिहासकार साइमोंड ने सही कहा कि **धर्म-सुधार आन्दोलन जर्मन-पुनर्जागरण था ।**

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पुनर्जागरण उत्तर-काल मध्यकालीन इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय था । इसकी प्रमुख देन मानव-समाज को यह थी कि इसने प्राचीन अन्धविश्वासो से मानव-जाति को मुक्त कर उसे नवीन चेतना की ओर उन्मुख कर दिया । यह पुनर्जागरण का ही परिणाम था कि यूरोप अपनी प्राचीन बर्बरता का परित्याग कर सुखद आधुनिकता के क्षेत्र में पदार्पण कर सका । इसलिए पुनर्जागरण को उत्तर मध्य-काल की एक युगान्तकारी घटना कहा जाता है ।

प्रश्न

1 पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं ? यूरोप में उससे होनेवाले परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।
What do you understand by the term ' Renaissance ? Enumerate the changes which occurred in Europe by it

2 पुनर्जागरण के कारणों की विवचना कीजिए।
Discuss the causes of Renaissance

3 "कला एव साहित्य के क्षेत्र में योगदान पुनर्जागरण युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
' The Age of Renaissance in Europe is notable for its rich contribu tion in the field of Art and Literature ' Explain the statement

4 पुनर्जागरण से मानव के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारों में क्या परिवर्तन हुए ?
What changes did occur in the social, political and religious ideas of men during the age of Renaissance?

5 पुनर्जागरण से इटली किस प्रकार प्रभावित हुआ।
How Italy was influenced by Renaissance

6 वे कौनसे कारण थे जिनसे पुनर्जागरण सर्वप्रथम इटली में आरभ हुआ ?
What were the causes that led to start Renaissance first of all in Italy ?

12
धर्म-सुधार आन्दोलन

''धर्म-सुधार पोप-पद की सासारिकता व भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक नैतिक विद्रोह था।''

—वारनर एव मार्टिन

धर्म-सुधार आन्दोलन से पूर्व यूरोप की धार्मिक अवस्था-यूरोप में धर्म-सुधार आन्दोलन का आरम्भ सोलहवीं सदी के आरम्भ के साथ हुआ। सोलहवीं शती के आरम्भ तक यूरोप का एक मात्र धर्म कैथोलिक था। यूरोप निवासी इसी धर्म के अनुयायी थे। प्रत्येक ईसाई बच्चा चर्च का उसी भाति जन्म-जात नागरिक माना जाता था जिस प्रकार स कि वह अपने राष्ट्र का जन्म-जात नागरिक होता था। प्रत्येक ईसाई चर्च के नियमों का पालन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता था। इस प्रकार कैथोलिक चर्च की स्थिति उस काल में अति महत्त्वपूर्ण एव अद्वितीय थी। चर्च एक सार्वजनिक तथा सरकारी सस्था मानी जाती थी। प्रत्येक राष्ट्र का शासक व उसकी प्रजा कैथोलिक चर्च के नियमों का पालन करते थे। यदि किसी राष्ट्र के प्रजाजन उसके अनुशासन से बाहर निकलने का प्रयास करते तो उस राष्ट्र का शासक उन्हें दण्डित करता था। सोलहवीं शताब्दि के आरम्भ पर पूर्वी ईसाइयत व पश्चिमी ईसाइयत सयुक्त हो गई थी और उनका सर्वोपरि अध्यक्ष पोप ही होता था।

पोप उस समय इटली की राजधानी रोम में निवास करता था। पोप की शक्ति धर्म व राजनीति में सर्वोपरि बनी हुई थी। हालाकि इस सर्वोपरि सत्ता के लिए शासक-वर्ग व पोप के बीच सघर्ष आरम्भ हो गया था और वह सदियों से चला आ रहा था। पर अनेक उतार-चढ़ाव के उपरान्त वह सार्वभौम सत्ता पोप के हाथों में ही निहित थी। अपने से नीचे के समस्त धर्माधिकारियों की नियुक्ति वह ही करता था तथा वही उन्हें पदच्युत कर सकता था। शासक भी उसके इस अधिकार को चुनौती नहीं दे सकते थे। वे सब उसके चरणों में नत-मस्तक थे।

पोप के आधीन असख्य धर्माधिकारी होते थे जो कि विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होते थे। उदाहरणत बिशप, आर्कबिशप, पादरी, जन-सामान्य (Loity) पादरी। पोप का चुनाव कार्डिनल करते थे। परन्तु सच्चे अर्थ में पोप ही उन सब पर शासन करता था। वह रोम के विटेकिन नगर में एक भव्यप्रासाद में निवास करता था तथा वह अपने न्यायालय अलग रखता था। उसका जीवन आध्यात्मिकता की ओर से शनै शनै हटता जा रहा था तथा वह विलासिता की ओर उन्मुख हो रहा था।

पोप का ही अनुसरण अन्य धर्माधिकारी करते थे। अधिकाश धर्माधिकारी सुख व वैभवता का जीवन व्यतीत करते थे। धन की उनके पास कोई कमी न थी। बड़ी-बड़ी जागीरें उनके नाम पर होती थीं। इसका परिणाम यह होता था कि धर्माधिकारियों के पदों पर सात्विक विचारों के व्यक्ति नियुक्त न होकर राजकुमार नियुक्त होते थे और वे लोग इन पदों को धन की सहायता से खरीद लेते थे। राजपरिवार से आने वाले धर्माधिकारियों का जीवन कैसा हो सकता है ? इसका अन्दाजा हम स्वय लगा सकते है। पादरी व जन-सामान्य पादरियो में अब महान् अन्तर उत्पन्न हो गया था। जन-सामान्य (Loity) पादरी को चर्च की प्रशासन-व्यवस्था से दूर रखा जाता था। चर्च धन से परिपूर्ण होते थे। इसका परिणाम यह होता था कि पादरी (Clergy) परलोक का ध्यान न कर इस लोक के सुख-साधनों की ओर विशेष ध्यान देते थे।

धर्म-सुधार आन्दोलन का अर्थ-यह एक धार्मिक आन्दोलन था। यूरोप का मानव-समाज सोलहवीं सदी के प्रारम्भ तक पर्याप्त रूप से शिक्षित हो गया था। वह अब पोप व उसके अधीनस्थ धर्माधिकारिया का जीवन विलासिता में व्यतीत होता देखने को उद्यत नहीं था। अत लोग चर्च की बुराइयों का निवारण कर उनमें सुधार लाना चाहते थे। पोप के जीवन का वे केवल धार्मिक-कार्यो का सम्पादन करते देखना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि धर्माधिकारी चरित्रहीन एव भ्रष्ट जीवन व्यतीत करें। धर्माधिकारियों की उन चारित्रिक बुराइयों को दूर करने हेतु कुछ प्रतिभासम्पन्न एव आध्यात्मिक पुरुषों के नेतृत्व में यूरोप के जन-समाज ने जो सामूहिक आन्दोलन किया। वही आन्दोलन इतिहास में धर्म-सुधार आन्दोलन के नाम से विख्यात है। यह आन्दोलन भी पुनर्जागरण की भाति विश्व का एक महान एव युगान्तकारी आन्दोलन था। वारनर व मार्टिन ने इस आन्दोलन की सक्षेप में परिभाषा इस प्रकार बताई है-"**धर्म-सुधार पोप-पद की सासारिकता व भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक नैतिक विद्रोह था।**" परन्तु इस आन्दोलन से केवल कैथोलिक धर्म ही प्रभावित नहीं हुआ वरन् मानव-जीवन के अन्य पहलू भी प्रभावित हुए। इसीलिए अन्य विद्वानों न इस आन्दोलन की परिभाषा निम्न प्रकार स दी हैं-

1 रोबर्ट इर्गेग के अनुसार-"धर्म-सुधार आन्दोलन एक जटिल एव सुदूरगामी आन्दोलन था। सास्कृतिक पुनरुत्थान की भाति ही धर्म-सुधार आन्दोलन मध्ययुगीन सभ्यता के विरुद्ध एक साधारण प्रतिक्रिया मात्र थी, परन्तु राष्ट्रों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया, क्योंकि सभी मनुष्य कला एव साहित्य की अपेक्षा धर्म में अधिक अभिरुचि रखते थे। मूलत यह आन्दोलन धार्मिक था। साथ ही इसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एव बौद्धिक पहलू भी सन्निहित थे जिनका धर्म से बहुत दूर का सम्बन्ध था।"

2 इतिहासकार फिशर लिखते हैं-प्रोटेस्टैंट धर्म-सुधार आन्दोलन पोप की धार्मिक निरकुशता या सत्ता, पुरोहितो के विशेष अधिकारों व भूमध्यसागरीय असहिष्णु धर्म (कैथोलिक धर्म) के विरुद्ध एक विद्रोह था। एक ओर इसने अधिकारों और स्वत्वों के विरुद्ध लौकिक विद्रोह का रूप धारण किया इसने धार्मिक पुनरुत्थान व ईसाई धर्म की पवित्रता तथा मौलिकता की पुन की चेष्टा की।"

3 इतिहासकार हेज (J H Hayes) धर्म-सुधार आन्दोलन की परिभाषा स्पष्ट करते हुये लिखते है-"वस्तुत सोलहवीं शती के प्रारम्भ में धार्मिक व विवेक की जाग्रति के कारण बहुसख्यक ईसाई कैथोलिक चर्च के कटु आलोचक थे तथा वे धर्म की सस्था को एक सिरे से दूसरे सिरे तक सुधारना चाहते थे। उनके इस सुधार प्रयास के परिणाम स्वरूप जो धार्मिक आन्दोलन हुआ व उससे उत्पन्न ईसाई धर्म के अन्तर्गत जो नये-नये धार्मिक सम्प्रदाय बने, उसे समष्टि रूप से धर्म-सुधार आन्दोलन कहा जाता है।"

4 डी जे हिल के शब्दों में -"यह जर्मन मस्तिष्क एव प्रकृति के सविधान की तर्कसगत एव आवश्यक उपज थी।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यही स्पष्ट होता है कि धर्म-सुधार आन्दोलन पोप व उसके अधीनस्थ धर्माधिकारियों की चारित्रिक बुराइयों के विरुद्ध एक आन्दोलन था। यह आन्दोलन धर्माधिकारियों की आलोचना कर उन्हें धर्म में सुधार करने हेतु बाध्य करना चाहता था।

धर्म-सुधार आन्दोलन के उद्देश्य-

1 पोप व उसके अधीनस्थ धर्माधिकारियों के जीवन में नैतिक सुधार करना।

2 पोप के असीमित अधिकारों पर नियन्त्रण लगाना।

3 धर्माधिकारियों को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करना।

4 जनसाधारण को मोक्ष-प्राप्ति के लिए पोप के आश्रित न रखकर परमात्मा (Faith) पर अवलबित बनाना।

5 चर्चों में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना।

6 कैथोलिक धर्म से मिथ्याडम्बरों को निवारण कर जन-साधारण के समक्ष धर्म का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करना।

धर्मसुधार आन्दोलन के कारण

धर्म-सुधार आन्दोलन भी पुनर्जागरण की भाति एक आकस्मिक घटना नहीं कही जा सकती। अत इसके कारण भी यूरोप की बदलती परिस्थितियों के साथ बनते रहे और सोलहवीं शती के आरम्भ होते ही वे अपना प्रभाव दिखाने लगे। इसके अलावा इस आन्दोलन का क्षेत्र भी व्यापक था। अत इसके कारण भी केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित न रहे। इस आन्दोलन को प्रेरणा मिली बौद्धिक जागृति से, नवीन देशों की खोज से व विज्ञान के प्रसार से। अत इसके कारणों का क्षेत्र भी व्यापक बन गया। यहा हम उनमें कुछ महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख करते हैं-

धार्मिक कारण

1 **पोप का स्वरूप विकृत होना**-पोप कैथोलिक चर्च का सर्वोच्च एव सर्वसत्ता सम्पन्न अधिकारी होता था। धर्म के क्षेत्र में वह ईसाई जगत् का पथ-प्रर्शन करता था। वह ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। परन्तु उत्तर मध्य-काल में पोप-व्यवस्था अपना स्वरूप बदलते जा रही थी। धर्म के क्षेत्र में रुचि न लेकर वे राजनीति में अधिक रुचि लेने लगे थे। पोप अलेक्जेण्डर षष्ठम् (Alexander VI,(1492 1503) अत्यन्त चरित्रभ्रष्ट पोप था। उसका मूल उद्देश्य अपने पुत्रों के लिए जायदाद, जागीर व सम्पत्ति अर्जित था। जूलियस द्वितीय, योग्य अवश्य था पर वह एक सैनिक था। सैनिक होने

के नाते उसने अपना ध्यान अपने राज्य को सुगठित करने की ओर ही दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पोप धार्मिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने लगे। पोप भव्य-प्रासाद में निवास करता व सासारिक सुखों का आनन्द लेता था। परिणामत जन-साधारण पोप के जीवन की कटु आलोचना करने लगा था। लागो की धर्म से आस्था उठने लगी थी और वे सुधार चाहने लगे थे।

2 **पोप का दरबार भ्रष्ट होना**-पोप धर्म का मार्ग-प्रदर्शक माना जाता था। उसका मूल कर्त्तव्य धर्म की रक्षा तथा उसका प्रसार करना था। उसके दरबार में अच्छे धर्म-विचारकों का जमघट रहना चाहिए था, पर धर्म-विचारकों का स्थान उसके विलासी साथियों ने ले लिया था। विलासिता के उपकरण उसके दरबार मे एकत्रित किये जाते थे। वे चरित्र से गिरते जा रहे थे। पोप के दरबार में चाटुकार व व्यर्थ के दरबारियों का जमघट हो रहा था। पोप क इस वैभवशाली दरबार को देखकर जन-साधारण को जलन तो होती ही थी पर साथ में वे उसकी कटु आलाचना भी करते थे। मार्टिन लूथर (Martin Luther) जिसका वर्णन हम आगे करेंगे, वह पोप के विलासी दरबार को देखकर ही उसका कट्टर विरोधी हुआ था।

3 **धर्माधिकारियों द्वारा अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा**-धर्माधिकारियों की नियुक्ति गिरजों म जनसाधारण को धर्म की शिक्षा देने के लिए की जाती थी। उनका कर्त्तव्य था कि वे लोगों का धर्म के क्षेत्र में सही मार्ग प्रदर्शन करें। परन्तु उत्तर मध्य-काल से ही धर्माधिकारी अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन हो रहे थे। वे जनसाधारण को न तो बाईबिल की सही व्याख्या करते थे और न उनको धार्मिक शिक्षा ही देते थे। केवल अपना नियुक्ति-पत्र लेने वे जाते थे। इसके उपरान्त वे कभी अपने नियुक्ति के स्थानों पर धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराने नहीं जाते थे। इसका एक कारण और भी था। धर्माधिकारियों में अधिकाश इटली के निवासी होते थ। वे अपने प्रभाव व धन के प्रलोभन स अपनी नियुक्ति अवश्य करा लेते थे, पर जर्मनी व फ्रान्स में अपनी नियुक्ति के स्थानों पर वे नहीं जाते थे। इटली में ही रहते हुए वे अपनी जागीर का धन मगा लिया करते थे। जन-साधारण को अब यह बात खटकने लगी। वे धर्माधिकारियों द्वारा धार्मिक कार्य न कराने पर उनकी आलाचना करने लगे और गिरजाघरों में सुधार करने की आवाज उठाने लगे।

4 **धर्माधिकारियों का विलासी जीवन**-पोप के अधीनस्थ धर्माधिकारी भी अब पोप की भाति सासारिक सुखों में आनन्द लेने लगे थे। पैसे की उनके पास कोई कमी नहीं थी। अत उनका कहना था कि भगवान ने उनको ये नाना प्रकार के सुख प्रदान किये हैं-हम उनको उपभोग क्यों न करें ? अत धार्मिक चिन्तन से वे विमुख होने लगे। विलासिता उनकी सगिनी बनने लगी। नैतिकता क्या है- इसका उनके जीवन में कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। धर्माधिकारियों के जीवन से नैतिकता का उठ जाने व विलासिता के घर कर जान का एक कारण और भी था। धर्माधिकारियों में आध्यत्मिक चिन्तन करने वाले व्यक्ति अब दिन पर दिन कम होते जा रह थे क्योंकि अब उनके स्थानों राज-परिवार के सदस्य व सैनिक नियुक्त हो जाते थ। राजकुमार व सैनिकों के में धार्मिक चिन्तन कहा से आ सकता है ? परन्तु उनका विलासी जीवन अब की कटु आलोचना का पात्र बनता जा रहा था।

5 **धर्माधिकारियों का अशिक्षित होना**–धर्माधिकारियों का शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक था। शिक्षित होने पर ही उन स्वय को धर्म का ज्ञान हो सकता था। जब उन स्वय को धर्म का ज्ञान नहीं होता तो व जनसाधारण को धर्म के विषय में क्या प्रवचन दे सकते थे ?[1] धर्म-प्रसार के अतिरिक्त उत्तर मध्य-काल तक धर्माधिकारियों को ही अपने गिरजाघरों में अपने यहा के लोगों को शिक्षा देनी पड़ती थी। अशिक्षित धर्माधिकारी जनसाधारण को क्या शिक्षा दे सकते थे ? वे तो दिन पर दिन भौतिकवादी होते जा रहे थे। इसके विपरीत जनसाधारण की शिक्षा के प्रति अभिरुची बढ़ती जा रही थी। वे शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे। जब धर्माधिकारी शिक्षा देने मे असफल रहे तो शिक्षा के इच्छुक लोग उनकी आलोचना करने लगे तथा शिक्षित धर्माधिकारियों की माग करने लगे।

6 **धर्माधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर न होना**–धर्माधिकारियों की नियुक्ति के समय उनकी कुछ योग्यताओं पर अवश्य विचार होना चाहिए था, पर उनके पद तो अब व्यावसायिक होते जा रहे थे। ये पद अब बेचे जाने लगे थे। धनी पुरुष अपने पैसे के सहारे धर्माधिकारियों के पद प्राप्त कर रहे थे क्योंकि धर्माधिकारियों को पैसे के अलावा भी कई अन्य विशेषाधिकार प्राप्त होते थे। वे अपनी अदालते लगाते थे तथा न्याय करते थे। वे अपनी जागीर के लोगों पर कर भी लगाते थे। एक प्रकार से वे राजा के प्रभाव से मुक्त रहते थे। इन कारणों से धर्माधिकारियों के पद उस समय धन व प्रतिष्ठा प्राप्ति के साधन बने हुए थे। अत यह स्वाभाविक ही था कि इन पदों पर धनी पुरुष व राज-परिवारों के सदस्य अपना अधिकार स्थापित करें। अत इन पदों पर धार्मिक विचारक नियुक्त नहीं होने लगे। यह बात इस दिशा में योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को अखरने लगी। उन्होंने कहा कि धन व राजनीतिक प्रभाव के माध्यम से स्थान प्राप्त करने वाले धर्माधिकारियों को पदच्युत किया जावे और उनके स्थान पर योग्य, धर्म का ज्ञान रखने वाले व उसमें चिन्तन करने वाले व्यक्तियों को नियुक्त किया जावे।

7 **छोटे पादरियों में असन्तोष व्याप्त होना**– धर्माधिकारी भी कई श्रेणियो में विभक्त थे। उनके स्तर में समानता नहीं थी। छोटे धर्माधिकारियों को धन-प्राप्ति के साधन कम प्राप्त होते थे। इस कारण वे बडे पादरियों से उनके वैभव, धन व प्रतिष्ठा के कारण द्वेष रखते थे। इसके अलावा बड़े धर्माधिकारी स्वय तो विलासिता व सासारिकता में निमग्न रहते थे तथा अपने कार्यों को सम्पन्न कराने हेतु साधारण वेतन पर वे शिक्षित व्यक्ति नियुक्त कर लेते थे। जन-साधारण के समक्ष उन शिक्षित एव वेतन भोगी पादरियो को ही आना पड़ता था। जनसाधारण की आलोचना का सामना छोटे पादरियों को ही करना पड़ता था। इसके अलावा उन्हें अपने स्वामी धर्मा-अधिकारियों के दोषपूर्ण आदेशों का भी पालन करना पड़ता था। इससे भी उनकी आत्मा को क्लेश होता था। इस कारण छोटे पादरी

---

1 The clergy often were so poorly informed that they could not hold their own views against the most cultivated Humanists laymen.

—J.E.Swain

बड़े पादरियों की स्वय आलोचना करते थे तथा उन्हें हटाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते थे। वे चाहने लगे कि गिरजाघरों के नियमों में परिवर्तन हो। अयोग्य व कर्त्तव्यो के प्रति उदासीन रहने वाले धर्माधिकारियों को पदच्युत किया जावे। धर्म की बुराइयो का वे भी विरोध करने लगे। इस प्रकार छोटे पादरियों का असन्तोष धर्म-सुधार आन्दोलन के लिए भूमिका तैयार करने लगा।

8 धर्म-यात्राओं का आरम्भ-जिस प्रकार हमारे भारत में हिन्दू लोग अपने तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हैं तथा मुसलमान मक्का जाकर हज करते है, उसी प्रकार ईसाई लोग जैरूसलम की तीर्थ-यात्रा करते थे। धर्म-युद्ध इसीलिए लड़े गये थे कि वहा ईसाइयों के आने पर तुर्कों ने प्रतिबन्ध लगा दिए थे। पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध तथा सोलहवीं सदी के आरम्भ में पोप ने ईसाइयों को रोम में सन्त पीटर क गिरजा में आने को प्रोत्साहित किया। शनै शनै फ्रान्स व जर्मनी में भी कई तीर्थ स्थान बन गये जहा कि ईसाई हजारों की सख्या में एकत्रित होते थे। जर्मनी के आकन (Aachen) तीर्थ पर ही 1496 में एक दिन में 1,40,000 तीर्थ यात्री एकत्रित हुए थे। स्पेन के नगर कम्पोस्टेला (Compostella) में सत जेम्स (St James) का पवित्र स्थान था। इन तीर्थ यात्राओं को प्रोत्साहित करने का धर्माधिकारियों क मुख्य उद्देश्य धन-उपार्जन करना था। इसीलिए धर्माधिकारी अब जैरूसलम (Holy Land) की यात्रा को इतना प्रोत्साहन नहीं देते थे क्योंकि वहा के यात्रियों से यूरोप के धर्माधिकारियों को आय नहीं होती थी। इस प्रकार इन यात्राओं से धर्माधिकारी धन अर्जित कर अपने विलास में व्यय करते थे। शनै शनै इस प्रकार की तीर्थ यात्राए भी जनसाधारण में आलोचना की विषय बन गई।

9 धार्मिक सम्मेलन-पन्द्रहवीं शती में यूरोप के विभिन्न स्थानों पर अनेक धार्मिक सम्मेलनों का आयोजन किया गया। इन सम्मेलनों का उद्देश्य तो ईसाई जगत् में धार्मिक एकता उत्पन्न करना था पर इनके परिणाम इसके विपरीत हुए। 1409 ई० में पोप के अधिनस्थ कार्डिनल्स ने पीसा (Pisa 1409) में धर्माधिकारियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। पर इस सम्मेलन का परिणाम यह निकला कि यूरोप में तीसरे पोप का स्थान और सर्जित कर दिया। सम्राट सिगिसमड (Sigismund) ने कान्सटैन्स (Constance) स्थान पर सन् 1414 में एक धार्मिक सम्मेलन आमन्त्रित किया। यह कौंसिल (Council of Constance) सन् 1418 तक कार्य करती रही। परन्तु इस कौंसिल में भी यूरोप के बढ़ते धार्मिक मतभेद दूर नहीं हो सके। इस सम्मेलन का यह परिणाम अवश्य निकला कि विक्लिफ (Wycliffe) को अग्नि के भेंट चढ़ना पड़ा। परन्तु साथ में ही धर्म में सुधार करने की आवाज बुलन्द हो गई। इसका परिणाम यह निकला कि 1431 ई० में बेसिल की सभा (The Council of Basel, 1431 49) का आयोजन किया गया। परन्तु यह सभा पश्चिमी यूरोप के शासकों के मतभेदों के कारण अपने उद्देश्यों में सफल नहीं रही। इसी प्रकार के अन्य धार्मिक सम्मेलन आयोजित हुए। ये कहीं पोप के कारण तो कहीं शासकों के सीमा-सम्बन्धी प्रश्नों के कारण असफल रहे। परन्तु इन

का यह परिणाम अवश्य निकला कि धर्म में सुधार करने का जनमत उत्तरोत्तर प्रबल होने लगा।[1]

10 **धर्म में मिथ्याडम्बरों का समावेश**-कैथोलिक धर्म अब अन्धविश्वासों व मिथ्याडम्बरों का धर्म होता जा रहा है। धर्माधिकारी जनसाधारण को धर्म का सही अर्थ न बता कर उनमें प्राचीन रूढ़ियों व परिपाटियों के सहारे ही धार्मिक आस्था बनाये रखने का प्रयास करते थे। पोप ने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि वह किसी भी पापी को मुक्ति दिलाने में सक्षम है। पोप के इस कथन से पूर्व मोक्ष-प्राप्ति के लिए इच्छुक ईसाई को परमात्मा में श्रद्धा (Faith) रखते हुए उपासना, अनुताप, तप, दान, व सेवा आदि करना आवश्यक होता था। अत पोप का यह कथन हास्यप्रद समझा जाने लगा और जनसाधारण म शनै शनै यह धारणा घर करने लगी कि कैथोलिक धर्म अब एक व्यवसायिक धर्म बनता जा रहा है और इसमें अनैतिकता व अन्धविश्वास अपना प्रभुत्व जमाते जा रहे है।

11 **विभिन्न धर्म-सुधारकों का आविर्भाव**- जब भी समाज में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाता है तो वह धीरे-धीरे जनसाधारण के ध्यान में अवश्य आ जाता है पर लोगों मे खुले रूप से आलोचना करने का साहस नहीं होता। सामान्य-लोग यह साहस किसी प्रतिभा-सम्पन्न एव साहसी व्यक्ति के नेतृत्व में ही करते है। कैथोलिक धर्म में भी जब नाना प्रकार की बुराइयो का समावेश होने लगा तो यूरोप के विभिन्न देशों में विभिन्न सुधारक उत्पन्न हुए। हालांकि उस समय पोप का प्रभुत्व इस प्रकार का था कि कोई भी व्यक्ति उसकी तथा कैथोलिक धर्म की बुराइयों की अलोचना करने का साहस नहीं कर सकता था। यदि कोई करता भी तो उसे नाना प्रकार के कष्ट दिए जाते थे। पोप उसको जाति से बाहर कर देता था और यहा तक कि उसे जीवित अग्नि-देवता की भेंट चढ़ा दिया करता था। परन्तु इन अत्याचारों के बावजूद वे धर्म सुधारक स्पष्ट रूप से कैथोलिक धर्म की बुराइयों पर प्रकाश डालने लगे तथा पोप व उसके अधीनस्थ धर्माधिकारियो के विलासी जीवन पर भी आक्षेप करने लगे। धार्मिक आध्यात्मिकता बनाये रखने के लिए वे धर्म में तथा धर्माधिकारियों के जीवन में सुधार की माग करने लगे। यद्यपि इस कार्य में कई धर्म-सुधारकों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े, परन्तु उन्होंने जन-साधारण में धर्म में सुधार की माग को प्रबल बना दिया। उन धर्म सुधारकों में से कुछ का यहा सक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

वालडैन्सैस (Waldensians)

यथार्थ रूप में कैथोलिक धर्म की बुराइयों के विरुद्ध सर्वप्रथम आवाज वाल्डैन्सैस नामक समाज से आई थी। इस समाज का सस्थापक पीटर वाल्डो (Peter Waldo) था। इस वर्ग में मुख्य दो जातिया थीं और वे जातियाँ आल्पाइन घाटी में रहती

---

1 H.J Grimm 'The Reformation Era p 47

'Yet the high idealism and the demand for reforms persisted even after men had lost confidence in the ability of a Church Council to solve their problems.

थीं। इन जातियों ने हस्तलिखित धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और उनका अपनी भाषा में अनुवाद किया। इनके लोग सादगी का जीवन व्यतीत करते थे। पोप व अन्य धर्माधिकारियों के राजसी ठाट-बाट की वे निन्दा करते थे। वे पोप तथा अन्य धर्माधिकारियों के आदेशों का पालन करने स्थान बाईबिल की शिक्षाओं पर आचरण करना अधिक अच्छा समझते थे। इसके अतिरिक्त वे पुजारियों की स्तुति, मृत मनुष्य की प्रार्थना और नरक में विश्वास नहीं रखते थे। इसी कारणवश उनको बारहवीं शताब्दी में पोप द्वारा विधर्मी घोषित किया गया था। उनके आन्दोलन को कुचलने के लिए उन पर पोप तथा उसके समर्थक शासकों द्वारा निर्मम अत्याचार किये गये। उनके नास्तिक नेता पोप द्वारा अवश्य मौत के घाट उतार दिए गये, परन्तु उनके विचार आनेवाली पीढ़ियों तक जीवित रहे। इन लोगों का प्रभाव फ्रान्स में अधिक था। मार्टिन लूथर क प्राटेस्टेंण्ट धर्म के सिद्धान्तों को ही वे अधिकाश मानते थे। 1530 ई में पीटर वाल्डो ने अपने दो प्रतिनिधियों को लूथर के धर्म सुधारकों के पास भेजा। वह उनके साथ एकता स्थापित करना चाहता था। अपने उद्देश्य म वह असफल अवश्य रहा परन्तु उसके अनुयायिया ने प्राटेस्टैण्ट धर्म का खुले रूप से समर्थन किया। इसीलिए वाल्डैसियन्स धर्म-सुधार आन्दोलन मे सौतले बच्चे कहे जाते हैं।[1]

वाइक्लिफ (Wycliffe, 1330 84)

वाइक्लिफ इगलैंड निवासी था। वह ऑक्सफोर्ड का विद्वान था। वह सासारिक वस्तुओं को घृणा की दृष्टि से देखता था। पोप व पादरियों का विलासी जीवन उसकी आखों में काटा बना हुआ था। उसने पोप की सार्वभौमिक सत्ता की कटु आलोचना की।[2] इसका द्रव्यान्तर (Transubstantiation) सिद्धान्त में विश्वास न था तथा उसने अपने इगलैण्ड प्रवासियों को बाईबिल का सही ज्ञान कराने हेतु उसका अग्रेजी में अनुवाद किया। उसमें भाषण देने की अभूतपूर्व शक्ति थी। इस कारण शीघ्र ही लाखों व्यक्ति उसके अनुयायी बन गये और वे लोलार्डस (Lollards) कहलाये। वाइक्लिफ ने तर्क व श्रद्धा के मध्य अन्तर खोजने का प्रयास किया और इस खोज में उसने सन्त आग्साटाइन (St Augustine) के सिद्धान्तों का अवलम्बन किया। उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने ईसाई भाइयों को यह भी बताने का प्रयास किया कि मध्य-काल में चर्च में कितनी सादगी थी और उत्तर मध्यकाल में धर्माधिकारियों का जीवन कितना भौतिक एव विलासी बन गया। इसीलिए उसने पोप के वैभवशाली तथा विलासी जीवन की कटु अलोचना की तथा धर्माधिकारियों को जागीर में दी गई भूमि को वापिस लेने की माग रखी। इगलैण्ड के शासक पोप की सत्ता के विरोधी होते जा रहे थे। अत वाइक्लिफ के विचारों का वहा स्वागत हुआ।

---

1 G.R. Elton 'The Reformation P 133
'The (Waldensians) haev been described as 'The step children of the Reformation
2 John Wycliffe the morning star of the Refomation in England rebelled against the arbitrary power of the Pope ..

- J E. Swain

परन्तु जब सन् 1494 ई० में चार्ल्स अष्टम् (Charles VIII) ने इटली पर आक्रमण किया तो उसने राजनीति को अपना लिया। राजनीति के क्षेत्र मे आने के पश्चात भी वह पोप के राजसी-ठाट की आलोचना करता रहा। पोप अलेक्जेण्डर षष्ठम् (Alexander VI) ने उसे फुसलाने का बहुत प्रयास किया। अन्त में जब पोप अपने उद्देश्य मे असफल रहा तो 1495 ई० में उसे धर्मोपदेशक के पद से हटा दिया। परन्तु सन् 1496 ई० में उसने एक बड़ा प्रभावोत्पादक भाषण दिया। जिसमे उसने धर्माधिकारियों की स्पष्ट रूप से अलोचना की। इस पर सन् 1497 ई० में पोप ने उसका ईसाई-समाज से बहिष्कार कर दिया और उसको धमकी दी कि वह धार्मिक कार्य बन्द (Interdict) कर दे। परन्तु उसने ईसा का जन्म दिन सेन मारको (San Marco) में मनाया। इस पर पोप ने उसे मार्च सन् 1498 ई० में सिगनरी (धार्मिक उच्च परिषद्) द्वारा धर्म-प्रचार क्षेत्र से अलग करवा दिया।

विधर्मी के अभियोग में उसे 7 अप्रेल, 1498 ई० में कहा गया कि वह अग्नि पर चलकर अपने धर्मात्मा होने का परिचय दे, पर भाग्यवश उस दिन वर्षा होने के कारण वह निठुर कार्य न हो सका। अन्त में 23 मई, 1498 ई० को पैजा (Pizza) के स्थान पर इस धर्म-सुधारक को फासी के तख्ते पर झुलाकर तथा उसको जलाने के लिये उसके नीचे आग जलाकर पोप ने अपना क्रोध शात किया। परन्तु उसके अनुयायियों के उत्साह को पोप समाप्त न कर सका।

इरासमस (Erasmus, 1469 1536)

इरासमस हालैण्ड के रोटरडम् (Rotterdam) नगर का निवासी था। वह यूरोप के तत्कालीन विख्यात मानववादियों मे एक विख्यात मानववादी था। उसने प्रारम्भ में डेवेन्टर (Deventer) में शिक्षा पाई थी। उसको अपनी इच्छा के विरुद्ध मठ में भेजा गया। वहा से वह पेरिस के विश्वविद्यालय में गया और तत्पश्चात् 1498 ई० में आक्सफोर्ड गया। वहा उसने यूनानी भाषा का अध्ययन किया। यहा उसकी प्रतिभा का विकास हुआ। वह अपने विचारो की गहनता एव सुन्दर लेखनशैली के कारण यूरोप में एक विख्यात विद्वान बन गया। वह व्यक्तिगत रूप से गिरजाघरों में कोई परिवर्तन करने का पक्षपाती नहीं था, पर वह यह अवश्य चाहता था कि धार्मिक शिक्षा का प्रसार हो और धर्माधिकारी भ्रष्टाचार के गर्त म गिरने से बचाये जावें।

विचारक के रूप में उसका सालहवीं शती के आरम्भ में वह प्रभाव पड़ा जो कि वालटायर (Voltair) का अठारहवीं सदी में पड़ा था। उसने मानव की दैनिक समस्याओं पर अधिक लिखा और उसने अपने समकालीन विचारकों व सुधारकों को अपने विचारों स बहुत प्रभावित किया। हालाकि वह व्यगात्मक शैली में लिखता था, पर फिर भी उसने विचारो की स्वतन्त्रता पर अधिक जोर दिया। वह कैथोलिक धर्म से पाखण्डों का निवारण कर उसे शुद्ध रूप में देखना चाहता था। वह अपने समय का अच्छा दार्शनिक तथा मानववादी था।

उसने अपने विचारों का प्रतिपादन लेखों द्वारा किया। उसने 1503 ई० में अपनी पुस्तिका पॉकेट डेगर में लिखा कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा के प्रति व्यतक्तिगत रूप से उत्तरदायी है। उसने अपने दूसरे ग्रन्थ 'मूर्खता की प्रशसा' (The Praise of Folly)

जॉन हस(John Huss 1369 1415)

इगलैण्ड के सम्राट रिचर्ड द्वितीय (Richard II) की शादी बोहमिया की राजकुमारी एने (Anne) के साथ हुई थी। इस विवाह-सम्बन्ध के कारण दोनों देशों में सम्पर्क स्थापित हुआ। वाइक्लिफ की रचनाओं को जेरोम (Jerome) प्रेग (Prague) ले गया। जॉन हस भी यहीं का निवासी था। उस पर वाइक्लिफ की रचनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने वाइक्लिफ की शिक्षाओं पर एक प्रभावोत्पादक भाषण दिया। तत्पश्चात जॉन हस एक सुविख्यात नेता बन गया। उसने अपने देश में राष्ट्रवाद की भावना उत्पन्न की तथा पोप की पोपलीला तथा उसके पाखण्ड की कटु अलोचना की। उसने पाप-मोचन पत्रों का (Declaration of Indulgence)का भी मजाक बनाया तथा अपने अनुयायियों से उन्हें न खरीदने का अनुरोध किया। इस पर क्रुध होकर पोप ने उसका बहिष्कार (Ex Communicate) कर दिया। इस पर वह प्रेग (Prague) से बहार चला गया और वहा अपना समय अध्ययन व लिखने में व्यतीत करने लगा। सन् 1414 ई० में समस्त चर्चों की एक परिषद धार्मिक भेद को दूर करने के लिए कान्सटेंस (Constance) नगर में बुलाई गई। उस सभा में जॉन हस भी सम्राट सिगिसमैड (Sigismund) की ओर से अभयदान के आश्वासन के साथ निमन्त्रित किया गया। परन्तु वहा जाते ही जॉन हस को बन्दी बना लिया गया और उस पर नास्तिकता का आरोप लगाया गया। सन् 1415 ई० में उसको इसी आरोप में जीवित अग्नि के भेंट चढ़ा दिया गया। उसके शहीद हो जाने पर भी उसके धार्मिक विचार नहीं मरे।

सैवोनारोला (Savonarola 1452 98)

सैवोनारोला का जन्म 1452 ई० में फेरारा (Ferrara) नामक स्थान पर हुआ था। उसके पितामह एक डॉक्टर थे। अत आरम्भ में उसकी रुचि डॉक्टर बनन की ही थी। परन्तु कालान्तर में सैवोनारोला की इच्छा बदल गई। वह बाल्यावस्था में ही एग गम्भीर प्रकृति का मनुष्य था। अत वह अपना अधिकाश समय ईश्वरोपासना में ही व्यतीत किया करता था। 1475 ई० में वह चुपचाप घर से चल दिया और बोलोगना (Bologna) में सन्त डोमीनिक का अनुयायी बन गया। उसने कई वर्ष मठ में व्यतीत किए। 1486 ई० में उसकी बक्तृता-शक्ति विकसित हुई। तदनन्तर वह अपने क्षत्र में सुविख्यात हो गया और 1490 ई० में वह पादरी बन गया। वह धर्म में सुधार करना चाहता था। वह कला का विरोधी था और लोगों को शिक्षा देता फिरता था कि कला की सभी अमूल्य निधियों को व्यर्थ की वस्तुएं समय कर उन्हें नष्ट कर देना चाहिये। उसने जनसाधारण के समक्ष कहना आरम्भ कर किया कि ईश्वर ने उसे पृथ्वीतल पर यह बताने भेजा है कि लोगों को कयामत के दिवस (Day of Judgment) के पूर्व अपने कुकर्मों का प्रायश्चीत करना चाहिए। उसने फ्लोरेन्स (Florence) निवासियों में भय उत्पादक धार्मिक उपदेश भी देना आरम्भ किया। उसने कहा कि मैं जो कुछ कहता हूं या जो भी भविष्यवाणी करता हूँ, वह प्रत्यक्ष रूप से मुझे ईश्वर से मिलती हैं। उसने इन्नोसेन्ट अष्टम् (Innocent VIII) की मृत्यु की, देश पर विदेशी आक्रमण की तथा फ्लोरेन्स में मेडीसी (Medice) परिवार के शासन के समाप्ति की भविष्यवाणी करदी थी और वे सब सत्य उत्तरीं। इससे जनसाधारण पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया था।

परन्तु जब सन् 1494 ई० में चार्ल्स अष्टम् (Charles VIII) ने इटली पर आक्रमण किया तो उसने राजनीति को अपना लिया। राजनीति के क्षेत्र में आने के पश्चात भी वह पोप के राजसी-ठाट की आलोचना करता रहा। पोप अलेक्जेण्डर षष्ठम् (Alexander VI) ने उसे फुसलाने का बहुत प्रयास किया। अन्त मे जब पोप अपने उद्देश्य में असफल रहा तो 1495 ई० में उसे धर्मोपदेशक के पद से हटा दिया। परन्तु सन् 1496 ई० में उसने एक बड़ा प्रभावोत्पादक भाषण दिया। जिसमे उसने धर्माधिकारियों की स्पष्ट रूप से अलोचना की। इस पर सन् 1497 ई० में पोप ने उसका ईसाई-समाज से बहिष्कार कर दिया और उसको धमकी दी कि वह धार्मिक कार्य बन्द (Interdict) कर दे। परन्तु उसने ईसा का जन्म दिन सेन मारको (San Marco) में मनाया। इस पर पोप ने उसे मार्च सन् 1498 ई० में सिगनरी (धार्मिक उच्च परिषद्) द्वारा धर्म-प्रचार क्षेत्र से अलग करवा दिया।

विधर्मी के अभियोग में उसे 7 अप्रेल, 1498 ई० में कहा गया कि वह अग्नि पर चलकर अपने धर्मात्मा होने का परिचय दे, पर भाग्यवश उस दिन वर्षा होने के कारण वह निहुर कार्य न हो सका। अन्त में 23 मई, 1498 ई० को पैजा (Pizza) के स्थान पर इस धर्म-सुधारक को फासी के तख्ते पर झुलाकर तथा उसको जलाने के लिये उसके नीचे आग जलाकर पोप ने अपना क्रोध शात किया। परन्तु उसके अनुयायियों के उत्साह को पोप समाप्त न कर सका।

इरासमस (Erasmus, 1469 1536)

इरासमस हालैण्ड के रोटरडम् (Rotterdam) नगर का निवासी था। वह यूरोप के तत्कालीन विख्यात मानववादियों में एक विख्यात मानववादी था। उसने प्रारम्भ में डेवेन्टर (Deventer) में शिक्षा पाई थी। उसको अपनी इच्छा के विरुद्ध मठ में भेजा गया। वहा से वह पेरिस के विश्वविद्यालय में गया और तत्पाश्चात् 1498 ई० में आक्सफोर्ड गया। वहा उसने यूनानी भाषा का अध्ययन किया। यहा उसकी प्रतिभा का विकास हुआ। वह अपने विचारों की गहनता एव सुन्दर लेखनशैली के कारण यूरोप में एक विख्यात विद्वान बन गया। वह व्यक्तिगत रूप से गिरजाघरों में कोई परिवर्तन करने का पक्षपाती नहीं था, पर वह यह अवश्य चाहता था कि धार्मिक शिक्षा का प्रसार हो और धर्माधिकारी भ्रष्टाचार के गर्त में गिरने से बचाये जावें।

विचारक के रूप में उसका सालहवीं शती के आरम्भ में वह प्रभाव पड़ा जो कि वालटायर (Voltair) का अठारहवीं सदी में पड़ा था। उसने मानव की दैनिक समस्याओं पर अधिक लिखा और उसने अपने समकालीन विचारकों व सुधारकों को अपने विचारों से बहुत प्रभावित किया। हालाकि वह व्यगात्मक शैली में लिखता था, पर फिर भी उसने विचारों की स्वतन्त्रता पर अधिक जोर दिया। वह कैथोलिक धर्म से पाखण्डों का निवारण कर उसे शुद्ध रूप में देखना चाहता था। वह अपने समय का अच्छा दार्शनिक तथा मानववादी था।

उसने अपने विचारों का प्रतिपादन लेखों द्वारा किया। उसने 1503 ई० में अपनी पुस्तिका पॉकेट डेगर में लिखा कि प्रत्यक मनुष्य परमात्मा के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है। उसने अपने दूसरे ग्रन्थ 'मूर्खता की प्रशसा' (The Praise of Folly)

में पादरियो के दैनिक-जीवन पर व्यग किया है । मानव जो तीर्थयात्रा करना अपना एक धार्मिक कार्य समझता था, उसको इसने मूर्खता तथा अन्ध-विश्वास का कार्य बताया । अत इस ग्रन्थ से चर्च की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा । परन्तु उसका साहित्य-क्षेत्र मे अधिक नाम उसके न्यू टेस्टामैन्ट (New Testament) के प्रकाशन के उपरान्त हुआ। यह ग्रन्थ 1516 ई० में प्रकाशित हुआ था । यह ग्रन्थ शीघ्र ही यूरोप में इतना विख्यात हुआ कि वह तुरन्त यूरोपीय सभी देशा में उपलब्ध होने लगा । उसने ईसाई समाज की कैथोलिक धर्म की बुराइयों के प्रति आँखे खोल दीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये धर्म-सुधारक सोलहवीं सदी में होने वाले धर्मसुधार आन्दोलन की भूमिका तैयार कर रहे थे । यह सही है कि उनको धर्म म सुधार करन में विशेष सफलता नहीं मिली और इसके विपरीत कई सुधारकों को तो अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा । कई सुधारक दबा दिये गये । परन्तु पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में एक निर्भीक एव साहसी धर्म सुधारक उत्पन्न हुआ । वह पाप की धमकियों की तनिक भी चिन्ता न करता हुआ कैथोलिक धर्म की बुराइयों व पोप के विलासी जीवन की कटु आलोचना करता रहा । वह वीर एव साहसी युवक जर्मनी का निवासी मार्टिन लूथर (Martin Luther) था जिसका अगले अवतरणों में विशद वर्णन किया जावेगा।

राजनीतिक कारण

1 **कैथलिक चर्च का एक राजनीतिक सस्था होना**-चर्च को सच्चे अर्थ में तो एक धार्मिक सस्था होना चाहिए, पर मध्य काल में उसकी प्रभुता बहुत बढ़ गई। धर्माधिकारियों ने धार्मिक क्रिया-कलापों से तो मन हटाना आरम्भ कर दिया और दिनोंदिन अपनी अभिरुचि राजनीतिक कार्यों में प्रदर्शित करना आरम्भ किया । यह परिवर्तन पोप से लेकर छोटे पादरी तक की स्थिति में हुआ । धर्माधिकारी स्वय की अदालतें लगाते थे तथा वे अपने क्षेत्र में बसने वाले लागो को न्याय देने का प्रयास करते थे । किसानों व सामान्य लोगों पर वे कई प्रकार के कर लगाते थे । इस प्रकार गिरजाघरों ने स्वय एक राज्य का रूप धारण कर लिया था ।[1] धर्माधिकारी स्वय तो अपने प्रभुत्व में बसने वाले लोगों पर अत्यचार करते ही थे और इसके साथ ही शासकों के प्रभुत्व से वे अपने को बचाने का प्रयास करते थे । जिस प्रकार वैदिक युग में व उसके बाद भी ब्राह्मण दण्ड से मुक्त थे उसी प्रकार कैथोलिक धर्म के पादरी सोलहवीं शती के आरम्भ तक शासकों के प्रभाव से मुक्त रहे। शासक उन्हें दण्डित नहीं कर सकते थे। धर्माधिकारियों का इस प्रकार विशेषाधिकार से सुसज्जित रहना राजा व जनता दोनों की ही निगाह में खटकने लगा था।

2 **राष्ट्रीय राज्यों का उदय** पन्द्रहवीं शताब्दी से ही यूरोप में अब शक्तिशाली राज्यों का उदय होने लग गया था । शासक राजनीति में स्वय को पूर्ण स्वतन्त्र रखना चाहते थे । वे अब अपने राजनीतिक कार्यों में पोप व उसक अधीनस्थ धर्माधिकारियों का हस्तक्षेप सहन करने को उद्यत नहीं थे । जनता में व्यापारी वर्ग भी राष्ट्रीय राज्यों का पक्षपाती होता जा रहा था क्योंकि वह जानता था कि उनका व्यापार शक्तिशाली राज्यों

---

1 "The Church was a state witnin a state"

के आश्रय में फलीभूत हो सकता है। इस समय जिन राजनीतिक विचारकों का आविर्भाव हुआ वे भी राजा की प्रतिष्ठा एव शक्ति-वर्धन के ही समर्थक थे। मैकियावेली (Machiavelli) तथा जीन बोडीन (Jean Bodin) ने राजा क निरकुश रूप का समर्थन किया तथा उनक दैवी-सिद्धान्त को समाज में न्यायोचित ठहराया। इसके अलावा राजा भी यह चाहने लगा था कि उसकी जनता राज्य में सर्वाधिक प्रतिष्ठा उसकी ही करे। राजनीति में तो उसे सर्वोपरि माने ही पर कला व सस्कृति के विकास म भी जनता उसका नेतृत्व स्वीकार करे। इस क्षेत्र में अपनी छाप जमाने हेतु शासक-वर्ग ने अपने राज्यों मे विश्वविद्यालयो की स्थापना करना आरम्भ किया तथा भव्य-प्रासादों का निर्माण भी करवाया जा तत्कालीन कला के अच्छे केन्द्रस्थल बन गये। इन साधनो से भी वे अपनी जनता को अपने प्रभुत्व मे ला सके और उसके सहयोग से ही वे अपने राज्यों को उत्तरोत्तर शक्तिशाली बनाने लगे।

3 **शासकों में निरकुशता की भावना**-शासक वर्ग तथा पोप में प्रतिष्ठा का प्रश्न तो मध्य-काल से ही चला आ रहा था, परन्तु सोलहवीं शती के आरम्भ से यह प्रश्न और भी उग्र बन गया था। शासक वर्ग नहीं चाहता था कि धर्माधिकारी अपने यहा न्यायालयों की स्थापना कर न्याय प्रदान करने का अधिकार रखे। शासको व राजकुमारो में निरकुशता की भावना इतनी तीव्र हो गई कि वे धर्म तथा राजनीति दोनों में ही निरकुश रहना चाहते थे।[1] अत वे पोप की सत्ता के दिनोदिन विरुद्ध होते जा रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि धर्माधिकारी किसानों से कर वसूल करे। वे यह भी नही चाहते थे कि पादरी लोग विशाल भू-भाग के स्वामी बन रहें। परन्तु शासक इन उद्देश्यों की प्राप्ति उसी दशा में कर सकते थे जबकि वे पोप से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर उसकी प्रभुता को नकार दें। पोप की प्रभुता से मुक्त होने का उस समय एक ही साधन था कि वे धर्मसुधार आन्दोलन मे सम्मिलित हो जावे और पोप की प्रभुता का विरोध करे। जर्मनी के सामन्त-वर्ग ने तथा स्केन्डिनाविया (Sacandinavia) के राजाओं ने केवल इसी उद्देश्य से इस धर्म सुधार आन्दोलन में अपना सक्रिय योग प्रदान किया। शनै शनै राजाओं का इस आन्दोलन को इतना सहयोग प्राप्त होने लगा कि लोग इसे धार्मिक आन्दोलन न कहकर राजनीतिक आन्दोलन पुकारने लगे।

4 **शासक-वर्ग अपनी जनता को अपने प्रति निष्ठावान बनाना चाहते थे**-उत्तर मध्य-काल से राजाओं की शक्ति सामन्तो म निहित न रह कर 'व्यापारी वर्ग में निहित होती जा रही थी। वे अपनी शक्ति का वर्धन व्यापारि-वर्ग के धन से तथा सामान्य जनता के सहयोग से करना चाहते थे। पर जनता को अपने प्रति निष्ठावान बनाने हेतु उन्हें भी तो कुछ जनता के लिए करना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने धर्माधिकारियों से भूमि छीनकर अपने आदमियों को देने का इरादा किया। जिस प्रकार पोप अपने आदमियों को धर्माधिकारी के पद पर नियुक्त कर उन्हें अपना समर्थक बनाता

1 'The rise of autocracy heightened the ambition of kings and princes to be autocrates in religion as well as in politics

था, उसी प्रकार शासक-वर्ग ने चर्च से जमीन छीन कर और उस जमीन को अपने आदमियों में बाट कर उन्हें अपना बनाने का इरादा किया। पर यह तभी सभव हो सकता था जब कि वे धर्म-सुधार आन्दोलन को अपना सहयोग प्रदान करें। इस नीति के अवलबन से वे धर्म-सुधारकों व देश-भक्तों का विश्वास भी प्राप्त कर सकते थे।

5 राजनीति में पोप का घटता हुआ प्रभाव-जैसा कि हम स्पष्ट कर आये हैं कि पोप का धर्म व राजनीति दोनों में प्रभुत्व था। परन्तु उत्तर-मध्यकाल में पोप के पद को लेकर धर्माधिकारियों में द्वेष के बीज पैदा हो गये थे। इसी कारण 1378 ई० में पश्चिमी यूरोप में ही पोप के दो पद बन गये थे। एक पोप रोम में निवास करता था जबकि दूसरा अविगनन (Avignon) में निवास करने लगा था। परन्तु दो पद हो जाने पर भी धर्माधिकारियों के मत-भेद समाप्त नहीं हुए। इसका परिणाम यह निकला कि 1409 ई० में पीसा के सम्मेलन (Pisa, 1409) में पोप को तीसरा पद और सर्जित करना पड़ा। इससे स्पष्ट है कि पोप की सत्ता का दिनों दिन ह्रास होता जा रहा था और उनको पवित्र रोमन साम्राज्य में जो अधिकार प्राप्त थे, उनमें दिन पर दिन कमी आती जा रही थी। इसके विपरीत शासक-वर्ग में भी स्वतन्त्रता की भावना घर करने लगी थी। जीन-बोडिन ने उनकी इस भावना को और प्रबल बना दिया, क्योंकि उसका कहना था कि प्रभुता सर्वोच्च होती है, वह अविभाज्य है और वह राजा में ही सन्निहित रहनी चाहिए। इस कारण भी धर्म-सुधार आन्दोलन शीघ्रता से सफलता की ओर अग्रसर हुआ।

6 राष्ट्रीयभावना का उदय-राष्ट्रीय राज्यों के उदय के साथ जन-साधारण में राष्ट्रीय भावना भी उदय हो रही थी। एक राष्ट्र के निवासी अपने राष्ट्र की ही भाषा पढ़ना चाहते थे। वे रोम के पोप को विदेशी पोप तथा रोम की चर्च को विदेशी चर्च समझने लगे थे। शासक व जनता अपनी चर्च देखना चाहते थे। रोम के वैभव से यूरोप के लोग चिढ़ते थे।[1] वे नहीं चाहते थे कि उनका नाना विधि से अर्जित पैसा रोम के वैभव में लगाया जावे। अत वे चाहते थे कि उनका धन उनके राज्यों के विकास में ही व्यय हो तथा उनके शासक के द्वारा ही व्यय किया जावे। इस प्रकार राष्ट्रीय भावना भी धर्म-सुधार आन्दोलन का एक प्रमुख कारण बन गई। राष्ट्रीय भावना नगर के रहने वाले व्यक्तियों में और भी प्रबल रूप से उभर रही थी। वे नहीं चाहते थे कि उनके राज्य अशक्त रहें तथा परस्पर में झगड़ने से ही वे बनते व मिटते रहें। वे नहीं चाहते थे कि सत्ता में विकेन्द्रित निर्बल मध्य-कालीन राज्य अब भी कायम रहें और राजनीतिक एकता का सूत्र पोप के हाथ में ही रहे। इसके अलावा उनमें व्यक्तिवाद की भावना भी अपना प्रबल स्थान जमा रही थी। वे चाहते थे कि उनके नगरों में विभिन्न प्रकार की कौंसिलों की स्थापना हो, जिसमें उनको सदस्यता प्राप्त हो। कौंसिल की सदस्यता प्राप्त करके वे अपने बौद्धिक-विकास व प्रशासनिक योग्यता का परिचय दे सकते थे। इन कारणों

---

1 The development of national feeling of national patriots gave popular strength in the agitation to free the church

Hayes and Moon

से वह राज्यों को शक्तिशाली एव उन्नत बनाना चाहते थे और धर्म-सुधार आन्दोलन के माध्यम से वे धर्माधिकारियों के प्रभुत्व को समाप्त करना चाहते थे क्योंकि वे उनके राष्ट्रीय विकास में प्रमुख रूप से बाधक बने हुए थे।

आर्थिक कारण

१ व्यापारिक क्रान्ति का आरम्भ-पन्द्रहवीं शती के अन्त तक यूरोप के देशों ने विश्व के कई देशों की खोज करली थी। कोलम्बस ने (1492) नई दुनिया (उ० अमेरिका) को खोज निकाला था जबकि वास्कोडिगामा (Vascodigama) भारत के पश्चिमी तट के कालीकट नगर (1498) में आ पहुचा था। यूरोपवासी अफ्रीका के प्रदेशों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करने लगे तथा सुदूर-पूर्व के देशों में भी वे अपने पाव पसारने लगे। इन देशों की खोजों का प्रभाव व्यापार पर पड़ा। सोलहवीं सदी के आरम्भ से ही यूरोप के देश अपना व्यापार इतनी तीव्र गति से बढ़ाने लगे कि वहा व्यापारिक क्रान्ति का सूत्रपात हो गया। यातायात के साधन सुगम हो जाने व बैंक व्यवस्था के चालू हो जाने स व्यापार का क्षेत्र भी दिनों-दिन विस्तृत हाने लगा और व्यापार भी उत्तरोत्तर विकसित होने लगा। परिणामत व्यापारी वर्ग का अविर्भाव हुआ। व्यापारी लोग स्वतन्त्र तथा व्यक्तिवादी भावना के होते थे। धन अर्जित हो जाने के कारण उनकी धर्म व भगवान में आस्था कम हो गई थी। मोक्ष पाने के लिए वे अब धर्माधिकारियों की शरण लेना पसन्द नहीं करते थे। इस कारण वे अब पादरी लोगों के जीवन व उनके वैभव की स्पष्ट रूप से आलोचना करने लगे। इसके अलावा कैथोलिक चर्च की उनके द्वारा निन्दा करने का एक कारण और भी था। व्यापारी चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो उसे पैसों की तो आवश्यकता पड़ती है और कैथोलिक धर्म ब्याज पर रुपया उधार देना अधार्मिक ठहराता है। अत सोलहवीं सदी के आरम्भ में ही व्यापारिक वर्ग ऐसा धर्म चाहने लगा जो व्यापारियों को सूद पर धन उधार देने व लेने से न रोके। इसक अलावा वे यह भी नहीं चाहते थे कि धर्माधिकारी नाना प्रकार के धार्मिक कर लेते रहें। पूजीपति वर्ग अब पोप व उसके अन्य धर्माधिकारियों को पूजीपति बनते नहीं देख सकते थे।

2 पूजीवाद का उदय-व्यापारिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोप में पूजीवाद का आना स्वाभाविक था। पूजीपति धन से अपने जीवन को दिनोदिन सुखद बनाते आ रहे थे और उनकी धन की भूख तृप्त नहीं हो रही थी। वे धर्माधिकारियों की भूमि व उनकी दौलत भी हथियाना चाहते थे। इसके लिए वे धन देकर राजाओं से राजनीतिक प्रभाव खरीद रहे थे। शासक-वर्ग को अपने प्रभाव में लेकर वे व्यापार में अपना एकाधिपत्य स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे, पर छोटे व्यापारी धन के अभाव में ऐसा नहीं कर पा रह थे। अत वे उनके एकाधिपत्य को चैलैन्ज कर रहे थे और उनके मार्ग में बाधा प्रस्तुत करने हेतु धर्म-सुधार आन्दोलन में सम्मिलित हो रहे थे।

3 धर्माधिकारियों द्वारा विभिन्न कर वसूल करना-धर्म-सुधार आन्दोलन से पूर्व यूरोप की एक चौथाई भूमि के स्वामी धर्माधिकारी थे। वे किसानों से कर लेते तथा स्वय राजा को कोई कर नहीं देते थे। टिथ कर वो लेते थे तथा धर्म-यात्राओं को
कर उन्हें भी अपनी आय का साधन बना रहे थे। किसान लोग टिथ

थे तथा यात्री धर्म यात्रा-कर नहीं देना चाहते थे। अत वे धर्माधिकारियों के विरुद्ध आलोचना का विष उगल रहे थे। इनके अलावा व्यापारी व पूजीपति भी धर्माधिकारियों के विरुद्ध हो रहे थे।[1] पूजी अर्जन का साधन कृषि करना भी बनता जा रहा था। अत अब कृषि बड़े पैमाने पर होने लगी थी। व्यापारी लोग अपने धन से भूमि के विशाल भागों पर अधिकार कर उत्पादन में वृद्धि कर खूब धन कमा रहे थे। अधिक भूमि प्राप्ति के लिए वे धर्माधिकारियों की भूमि हड़पना चाहते थे। लोक-कल्याण का सहारा ले वे शासक-वर्ग को धर्माधिकारियों से भूमि छीन लेने को उकसा रहे थे। इस कारण भी धर्माधिकारियों का समाज में विरोध दिन पर दिन बढ़ रहा था।

4 रोम का वैभव-कैथोलिक धर्म के सर्वोच्च धर्माधिकारी पोप का निवास स्थान रोम था। अत पोप इटली में रोम का अपना स्वतन्त्र एव सुदृढ़ राज्य की स्थापना का प्रयास कर रहा था। उसे सुदृढ़ बनाने के अलावा वैभवशाली भी बना रहा था। वहा स्थापत्य, चित्र व मूर्ति-कलाओं का अच्छा निखार हो रहा था। इन सबके लिए पैसा यूरोप के समस्त देशों के निवासियों स विभिन्न करों के रूप में लिया जाता था। पर अब रोम यूरोपवासियों के जलन का केन्द्र बन गया था।[2] वे नहीं चाहते थे कि उनका पैसा किसी भी रूप में रोम जावे और वह रोम के विकास का साधन बने। इसके विपरित वे चाहते थे कि उनका पैसा उनके देश में ही रहे और वह उनके देश के विकास का साधन बने। इसके अलावा वे इस धन से अपने व्यापार को भी विकसित करना चाहते थे। इस कारण रोम का वैभव यूरोपवासियों की आखों में खटकने लगा और वे पोप की प्रभुत्ता का विरोध करने लगे।

5 धर्माधिकारियों का ख़र्चीला जीवन-जिस प्रकार पोप का विलासी जीवन जनसाधारण की आँखों में काटा बना हुआ था उसी प्रकार उसके अधीनस्थ धर्माधिकारियों का जीवन भी लोगों को खटक रहा था। उस समय तक धर्माधिकारियों में बहुत से लोग राज परिवारों में से आ गये थे। उनका कहना था कि भगवान ने पृथ्वी पर सुखद वस्तुए भोगने के लिए ही उत्पन्न की हैं। अत वे अपने सुख-साधनों पर खूब धन व्यय करने लगे और उन साधनों को जुटानेके लिए वे धन भी खूब अर्जित करने लगे। इससे धर्माधिकारी दिन पर दिन पूजीपति बनने लगे। उस अर्जित अतुल धन से वे अपने जीवन को भोग-विलास में अधिकाधिक लगाते गये और अपने धार्मिक कर्त्तव्यों से व विमुख होते गये।[3] जनसाधारण उन्हें धर्माधिकारी न समझ धन एकत्रित करने वाला बनिया समझने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि एक तरफ तो पादरियों की प्रतिष्ठा जन-समाज में गिरने लगी दूसरी तरफ जनसाधारण उनका विरोध करने हेतु धर्म-सुधार आन्दोलन में सम्मिलित होने लगा।

---

1 Heavy ecclesiastical taxation antogonized the growing capitalistic class
— J.E Swain

2 Rome became the centre of envy of most powerful kings — J E Swain

3 The accumulation of wealth and wordly power offered a temptation for the clergy to neglect their spiritual duties and become engrossed in worldly pursuits
— J.E. Swain

अन्य कारण

1 मानववाद-मानववाद का अर्थ हम पिछले अध्याय में स्पष्ट कर आये है। यह बौद्धिक जाग्रति का ही एक पहलू था। इस वाद ने मानव का दृष्टिकोण तार्किक एव वैज्ञानिक बनाया। बौद्धिक जाग्रति का ही एक भाग होने के कारण हालाकि इस वाद के अनुयायी अधिक लोग नहीं थे पर जो भी थे वे विद्वान एव विख्यात् दार्शनिक थे। इसक अनुयायी धार्मिक तत्वों का विवेचन करते थे। उन्होंने ईसाई धर्म के प्राचीन स्वरूप का अध्ययन किया और उसकी तुलना मध्य-युगीन धर्म से की। उनको मध्य-युगीन कैथोलिक धर्म में अन्ध-विश्वास व मिथ्याडम्बर अधिक दृष्टिगत हुए। धर्माधिकारियों का जीवन धार्मिक क्षेत्र से परे उन्हें नजर आया। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा धर्म का सही रूप जनसाधारण तक पहुचाने का प्रयास किया। बाईबिल व अन्य महत्त्वपूर्ण धार्मिक पुस्तकों का उन्होंने प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद किया। अनुवादित सामग्री को उन्होंने प्रकाशित करवाया। उस अनुवादित सामग्री के माध्यम से उन्होंने धर्म-सुधार तथा धर्माधिकारियों के जीवन में नैतिक उत्थान लाने की माग की।

मानववादी नहीं चाहते थे कि धर्माधिकारियों का जीवन भौतिकवाद से प्रभावित हो तथा धर्म में व्यर्थ का व्यय व दिखावा हो। वे धर्म के इतने विरोधी नहीं थे जितने कि धर्माधिकारियों द्वारा प्रस्तावित धार्मिक क्रिया-काण्डों के थे। इस समय मानव मानववादी होता हुआ भी पक्का कैथोलिक था। ये लोग चिन्तन व आध्यात्मिकता पर विशेष जोर देते थे। सन्त आगस्टाइन (St Augstine) के सिद्धान्तों में भी उनकी आस्था नहीं थी। इस प्रकार मानववाद ने पुराने प्रतिबन्ध व अन्ध-विश्वास को निष्क्रय बना दिया और शिक्षित लोगों में धर्म के सही रूप को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। रोबर्ट इर्गिंग का कथन है- प्रोटेस्टैण्ट धर्म के उत्थान में मानववाद का प्रभाव बड़ा महत्त्वपूर्ण था। मानववादियों ने बौद्धिक स्वतन्त्रता को जागृत कर जिज्ञासा की भावना को प्रोत्साहित किया। धर्म में व्यक्तिगत् विशेषता पर जोर देकर चर्च व पोप के धार्मिक व अन्य अधिकारों का विरोध किया और इस प्रकार मानववाद ने सुधार-आन्दोलन को पर्याप्त सहायता प्रदान की।

2 पाप-मोचन पत्र-पाप-मोचन-पत्रों को अंग्रेजी में (Indulgence) कहते हैं। यह लैटिन भाषा के शब्द (Indulgentia) से बना है जिसका अर्थ है आज्ञा। यदि हम इन पत्रों की उत्पत्ति की ओर दृष्टिपात करते है तो हमें पता चलता है कि पहले इस प्रकार के पत्र पोप द्वारा गुणज्ञ व्यक्तियों को पुरस्कार स्वरूप जारी किये जाते थे। परन्तु पन्द्रहवीं सदी व सोलहवीं सदी में तो इन पत्रो के गुणों को इतना विकृत कर दिया कि ये हर किसी मनुष्य को रुपये के बदले बेचे जाने लगे।

इन पत्रों के जारी करने से पूर्व मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यों को तप, उपवास व प्रायश्चित आदि करने होते थे। उन्हें ईश्वर (Christ) में पूर्ण विश्वास (Faith) व्यक्त करना होता था। परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी व सोलहवीं शती के आरम्भ में पोप ने घोषणा कर दी कि अब मोक्ष-प्राप्ति के लिए तपस्या व उपवास करने की आवश्यकता नहीं। वह अपने सचित पुण्य (Treasury of Merits) के बल पर किसी भी पापी मनुष्य

को पापों से मुक्त कर उसे मोक्ष प्राप्त करने के सक्षम बना सकता है। पापी को पापों से मुक्ति दिलाने में इन 'पाप-मोचन-पत्रों' को सक्षम बताया गया। इन पत्रों की जानकारी होते ही जनसाधारण ने भारी संख्या में इन पत्रों की खरीद जारी की और इनकी बिक्री पोप की आय का अच्छा साधन बन गई।

जब हम इन पत्रों की विज्ञप्ति का कारण खोजते हैं तो पता चलता है कि इनके जारी करने का मूल कारण धन प्राप्ति करना ही था। ये पत्र सर्वप्रथम रोम में धर्म-यात्रा पर आने वाले यात्रियों का दिए जाते थे। पोप बोनीफेस सप्तम् (Boniface VII) ने इनको जुबली पत्रों (Jubilee Indulgence) के नाम से सन् १३०० में जारी किये थे। अत इस प्रकार के पत्र फिर १४०० में जारी हुए। इसके उपरान्त ये 1450 ई० में जारी किये गये। स्पष्ट है कि 100 वर्ष के स्थान पर अब ५० वर्ष कर दिए गये। इसके उपरान्त ये 1475 व 1500 में जारी कर दिए गये। अत स्पष्ट है कि जारी करने के समय में फिर 25 वर्ष कम कर दिए गये। ऐसा क्यों किया गया ? प्रत्युत्तर में यह तथ्य सामने आता है पोप का लालची हो गया था। पोप इन पत्रों की आय से इतना लोभी बन गया कि उनके जारी करने की अवधि में कटौती करता गया और पत्रों की संख्या में निरन्तर भारी वृद्धि करता गया। इसके उपरान्त इनको जारी करने का कोई निर्धारित समय नहीं रखा गया। 1503 ई० में पोप जुलियस द्वितीय (Pope Julius II, 1503 13) ने सन्त पीटर के गिरजाघर के निर्माण हेतु ये पत्र जारी किये। उसके उपरान्त पोप लियो दसम (Leo X) ने हिचकिचाहट के साथ 1513 ई० में इन्हें जारी किया। इसके अनतर तो बिना किसी निश्चित अवधि के यूरोप के प्रत्येक भाग में ये बेचे जाने लगे और इनकी बिक्री दिनोंदिन तीव्र गति से बढ़ती गई।

इन पत्रो की बिक्री में तीव्रता आने के कई कारण थे। इनका बेचना केवल धर्माधिकारियों का ही काम न रह कर अन्य कई व्यक्तियों का भी हो गया था। इनकी बिक्री से होने वाली आय का एक तिहाई पोप के कोष में जाता था। शेष धन आर्कबिशोप, अमीर दलाल व शासकों की जेबों में जाता था। इनकी बिक्री में सहयाग देने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपना कमीशन लेता था। शासक-वर्ग भी इसमें पीछे नहीं रहा। जर्मनी के राज्यों में प्रथम तो इन पत्रों की बिक्री पर प्रतिबन्ध था। परन्तु जब एलबर्ट (Albert) को आर्कबिशॉप का पद खरीदने हेतु धन की आवश्यकता हुई तो उसने अपने राज्यों में इन पत्रों की बिक्री वैध करदी और यही वह समय था जब कि मार्टिन लूथर (Martin Luther) ने इनको लिपजिग (Leipzig) में टटजैल (Tetzel) द्वारा बेचते देखा था। वह इन पत्रों का कड़ा विरोधी बन गया था।

इन पाप-मोचन-पत्रों ने पोप व अन्य धर्माधिकारियों को धनी तो बनाया ही पर साथ में वे धर्माधिकारियों व समाज के भ्रष्टाचार के मूल साधन भी बन गये। इन पत्रों की बिक्री से धर्माधिकारियों की आय में इतनी वृद्धि हुई कि हर आदमी आर्कबिशॉप का पद खरीदने का प्रयास करने लगा। शासक-वर्ग के लोग इन पत्रों की खरीद (Simony) में सबसे आगे आने लगे। पदों की खरीद की भूख इतनी बढ़ी कि एक व्यक्ति पाच स्थलों का आर्कबिशॉप बनने का प्रयास करने लगा। धनी लोग भी इनकी बिक्री में दलाल की

भूमिका अदा करने लगे। वे इनसे उत्तरोत्तर मालदार बनते जा रहे थे और अशिक्षित लोग बड़े चाव से भारी सख्या में इन्हें खरीद रहे थे।

इन पत्रों का मज़ाक सर्वप्रथम मार्टिन लूथर ने उड़ाया जो कि इस आन्दोलन का अग्रदूत माना जाता है। उसने पोप व अन्य धर्माधिकारियों के इस कार्य की कटु आलोचना कि और कहा कि अब तो धर्म भी पैसे में बिकने लगा है। उसने जनसाधारण को इन पत्रों के खोखलेपने से परिचित कराया। उसके नेतृत्व में अन्य सुधारकों ने भी इन पाप मोचन-पत्रों की आलोचना की। उसने अपने ९५ सिद्धान्तों के रूप में इन पत्रों के विरोध छपवा कर विटेनबर्ग की चर्च पर लटका दिया। जर्मनी की उत्तेजीत भीड़ न मार्टिन लूथर का समर्थन किया। अत इस आलोचना से पत्रों की बिक्री पर बुरा असर पड़ा। पोप को यह बात अखरी। उसने लूथर व उसके समर्थक धर्माधिकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करना आरम्भ किया। इसका समाज पर विपरीत असर पड़ा। पाप-मोचन-पत्रा की निन्दा बढ़ती गई। इन सुधारकों के अलावा छोटे पादरियों ने भी इनकी निसारता पर प्रकाश डालना आरम्भ किया। वे जनसाधारण के प्रवक्ता के रूप में आगे आकर 'इन पाप मोचन-पत्रों' की कटु आलोचना करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि ये 'पाप-मोचन-पत्र' ही आगे चलकर धर्म-सुधार आन्दालन के प्रमुख कारण बन गये।

3 **वैज्ञानिक आविष्कार तथा नवीन देशों की खोज**–उत्तर मध्य-युग में कई वैज्ञानिक आविष्कार हुए जिन्होंने कि उस युग क अन्धविश्वासों तथा मिथ्या-धारणाओं को बदल दिया। परन्तु मध्य-युग में वैज्ञानिक होना व अपना कोई नवीन सिद्धान्त प्रतिपादन करना कोई सुगम कार्य न था। वैज्ञानिकों को जेल-यातनाए सहन करनी पड़ती थीं। कई वैज्ञानिकों को तो फासी के तख्ते पर भी चढ़ने को बाध्य होना पड़ा था। कापरनिकस ने पृथ्वी के घूमने व सूर्य के अचल हान का सिद्धान्त अपनी मृत्यु-शैय्या पर प्रतिपादित किया था क्योंकि उसे भय था कि उसे कहीं जीवन से हाथ न धोना पड़े। परन्तु फिर भी इसका सिद्धान्त धार्मिक सिद्धान्त के प्रतिकूल ही माना गया। जर्मन वैज्ञानिक केपलर ने इस सिद्धान्त की पुष्टि की थी। इसके उपरात अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी गैलिलियो (Galileo) इस क्षेत्र में आगे बढ़ा। उसने भी पृथ्वी के घूमने के सिद्धान्त का समर्थन किया तथा एक दूरबीन का भी अविष्कार किया। न्यूटन ने विज्ञान के क्षेत्र में आकर वैज्ञानिकों के क्षेत्र को सुगम बना दिया। दिशा सूचक-यन्त्र (कुतुबनुमा) का आविष्कार पहले ही हो चुका था। इस यन्त्र की सहायता से पुर्तगाल के नाविक अब नवीन जल-मार्गों की खोज करने लगे। कोपरनिकस ने यह सिद्ध कर ही दिया था कि पृथ्वी गोल है। अत कहीं पृथ्वी के छोर पर गिरने का भय नहीं है। इस वैज्ञानिक धारणा ने ही कोलम्बस को 1492 ई० में अमेरिका व वास्कोडिगामा को 1498 ई० में भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर पहुचने को प्रोत्साहित किया था।

अमेरिका की खोज व भारत में पुर्तगालियों के आगमन ने यूरोप के इतिहास में ही नहीं वरन विश्व के इतिहास में महान परिवर्तन ला दिए। यूरोप में व्यापारिक क्रान्ति का सूत्रपात तथा पूजीवाद का उदय इन खोजों के कारण ही हुआ। इससे पूर्व हम स्पष्ट कर ही आये हैं कि व्यापारीक क्रान्ति तथा पूजीवाद पश्चिमी यूरोप में धर्म-सुधार के कारण किस प्रकार बने।

4 छापेखाने का आविष्कार तथा शिक्षा का विकास–छापेखाने का आविष्कार बौद्धिक विकास व धर्म-सुधार का प्रमुख कारण बना। इसकी सहायता से बाईबिल की हजारों की सख्या में प्रतियां मुद्रित हो कर जनसाधारण के हाथों में जाने लगीं। उनकी सहायता से सर्वसाधारण ने धर्म का सही अर्थ समझा। इसी प्रकार अन्य धार्मिक ग्रन्थ भी विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने लगे और यूरोप का जन-समाज उनसे लाभान्वित होने लगा। इसी प्रकार शिक्षा प्राप्ति के जिज्ञासु बन्धुओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध होने लगीं। इन पुस्तकों की उपलब्धि से शिक्षा सुगम एव सुलभ हो गई। सन् 1500 ई० में जर्मनी के नगर फैंकफुर्ट (Frankfurt) में पुस्तकों की एक महान प्रदर्शनी लगी। यह इस बात की प्रतीक थी कि प्रेस के आविष्कार से पाठ्य-पुस्तकों की अब कमी नहीं है। पुस्तकों की प्रचुरता नें शिक्षा के क्षेत्र को विस्तृत किया। शिक्षा के प्रसार से यूरोप में बौद्धिक जाग्रति सम्भव हो सकी। बौद्धिक जाग्रति के परिणामस्वरूप यूरोपवासी अब अन्धविश्वासी नहीं रहे। वे किसी भी सिद्धान्त को केवल इसीलिए स्वीकार नहीं करते थे कि वह पोप या अन्य धर्माधिकारी द्वारा प्रतिपादित किया गया है। वे उसे तर्क की कसौटी पर कसते थे। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो गया था। इसीलिए शिक्षित लोग धर्म में सुधार करने के पक्षपाती हो गये थे। वे धर्म-यात्राओं में जाकर पोप से पाप-मोचन-पत्र खरीदना पसन्द नहीं करते थे।

5 पुनर्जागरण–पुनर्जागरण व धर्म-सुधार आन्दोलन को एक दूसरे का पूरक माना गया है। पुनर्जागरण ने मानव समाज में स्वतन्त्र चिन्तन व धार्मिक विषयों के अध्ययन की भावना उत्पन्न कर धर्म-सुधार आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि तैयार कर दी। इसी प्रकार यदि धर्म-सुधार आन्दोलन नहीं होता तो पुनर्जागरण का कार्य सम्पूर्ण नहीं होता। अत जब हम देखते हैं कि पुनर्जागरण ही धर्म-सुधार आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि तैयार करता है तो वह इस अन्दोलन का एक मूल कारण भी बनता है। पुनर्जागरण ने ही सर्व-साधारण में कला व साहित्य के क्षेत्र में नवीन अभिरुचि उत्पन्न की। इसने मानव-समाज का दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक बनाया। इन्हीं उपलब्धियों से यूरोप का जन-साधारण पोप द्वारा थोपे गये धार्मिक बन्धनों को तोड़ने के लिए सौलहवीं सदी के आरम्भ में आतुर हो उठा।

धर्म-आन्दोलन का यूरोप में प्रसार

स्वीट्जरलैण्ड (Switzerland)

ज्वींगली–रोमन कैथोलिक धर्म का विरोध केवल जर्मनी में ही नहीं हुआ वरन् यूरोप के अन्य देशों में भी हुआ था। सन् 1518 ई० में स्वीट्जरलैण्ड के ज्यूरिक (Zurik) नगर में ज्वींगली (Zwingli) नामक व्यक्ति ने कैथोलिक धर्म की बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई। ज्वींगली सन् 1484 ई० में मार्टिन लूथर के जन्म के दो मास बाद ही पैदा हुआ था। अत मार्टिन लूथर और ज्वींगली दोनों ही समकालीन धर्म-सुधारक थे। ज्वींगली पर मार्टिन लूथर के धार्मिक विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था। परन्तु ज्वींगली उग्र विचारों का था और मार्टिन लूथर अनुदार विचारों का। सन् 1523 ई० से उसने अपने उग्र विचारों का सम्पादन आरम्भ किया। वह यथार्थवादी व मानववादी धर्म-सुधारक था। उसकी प्राचीन साहित्य व मानववाद में महान अभिरुचि थी। वह इसीडेलन मठ में रहता

था, जहा सभी भागों से यात्री एकत्रित होते थे। इस कारण ज्वींग्ली का अपन विचार प्रसारित करने का अच्छा अवसर मिल जाता था। 1523 ई० में ज्यूरिक में एक धर्म-सभा का आयोजन हुआ था। उस सभा में उसने अपने ओजस्वी भाषण से अपनी धाक जमा ली। उसने 67 प्रसग लिखे जिनसे उसके धार्मिक विचार स्पष्ट हात है। उसने कास्टेन्स (Constance) के बिशप की सत्ता का उन्मूलन किया और लैटिन भाषा में बाइबिल का अध्ययन बन्द करवा दिया। धर्माधिकारियो म व्याप्त भ्रष्टाचार की उसने कटु आलोचना की। चर्च में मठा की आय शिक्षा-प्रसार में प्रयुक्त होने लगी और पादरियों को विवाह करने की अनुमति दे दी गई। ज्वींग्ली के प्रतिपादित धर्म-सुधार सिद्धान्त केवल जर्मन-भाषी पूर्वी स्वीट्जरलैण्ड में ही सफल हुए। परन्तु उसके धर्म-सुधार आन्दोलन से स्विस कैथोलिक क्रुद्ध हो गये। स्विस सघ के कैथोलिक जिलों के सघ ने ज्यूरीक पर सन् 1529 ई० में आक्रमण कर दिया। यह कैथोलिक व प्रोटेस्टैन्ट धर्मावलम्बियों के बीच एक गृह-युद्ध था। इस युद्ध में लड़ते-लड़ते 11 अक्टूबर सन् 1531 ई० में ज्वींग्ली वीरगति को प्राप्त हुआ। उस वीर सुधारक के अन्तिम शब्द ये थे- **''वे शरीर को मार सकते हैं, आत्मा को नहीं।''**

प्रारम्भ में ज्वींग्ली के धार्मिक विचार लूथर से मिलते थे। परन्तु उग्रता के प्रश्न पर दोनों में मतभेद हो गये। 1529 ई० म राजा फिलिप ने इन दोना सुधारको के मतभेदो को मिटाने का प्रयास किया, परन्तु लूथर की हठधर्मी के कारण मतभेद दूर नहीं हो सके और ज्वींगली के धार्मिक विचार अलग ही प्रसारित होने लगे।

कालविन (1509 64)- स्वीट्जरलैण्ड में पूरा धर्म सुधार ज्वींग्ली द्वारा ही नहीं हुआ था। पश्चिमी स्वीट्जरलैण्ड के फ्रेंच-भाषी प्रान्तों में कालविन (Calvin) न भी धर्म सुधार किया था। कालविन फ्रास का निवासी था। उसका जन्म 11 जुलाई सन् 1509 ई० मे नीओ नगर में हुआ था। उसको अपने नवीन धार्मिक विचारों के कारण तथा वहा के शासक फ्रान्सिस प्रथम की दमनकारी नीति के कारण अपने प्राण बचाने के लिए फ्रास छोड़ना पड़ा। उसका विश्वास था कि ईश्वर ने उस कैथलिक धम छाड़ने तथा पवित्र ईसाई धर्म के प्रसार के लिए भेजा है।[1] सन् 1536 ई० में जिनेवा (Geneva) पहुचकर उसने नवीन धर्म का सगठन किया। इसी वर्ष में उसने शुद्ध ईसाई धर्म पर एक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ (The Institutes of Christan Religion) लिखा। वहा की जनता को उसने अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा प्रभावित किया और शीघ्र ही वह पोटेस्टेंट धर्म के अनुयायियों का पथ-प्रदर्शक बन गया। कालविन भाग्यवादी था। भाग्यवादी होने क अलावा वह रक्ति के सिद्धान्त में भी विश्वास करता था। उसका कहना था **'सभी मनुष्य समान नहीं होते। कुछ के भाग्य में अमरता है और कुछ के में नर्क की प्रज्वलित अग्नि''**। इस अन्धकारपूर्ण सिद्धान्त के होते हुए भी काल्विन ने उस समय के अर्द्ध मूर्ति पूजक समाज पर अपना अच्छा प्रभाव डाला। उसक धार्मिक विचार तर्कपूर्ण थे। इस कारण उसन राम के कैथोलिक-धर्म से अपना सम्बन्ध सर्वथा विच्छेद कर लिया।

1 Calvin believed that he had been divinely called to forsake Catholicism and a purer Christianity

उसका मत था कि ईश्वर-सेवा मानव-सेवा से अधिक आवश्यक है। ईश्वर की उपासना सादगी से होनी चाहिए। सन् 1564 ई० में वह अपने धर्म का प्रचार करता हुआ इस लोक से सिधार गया।

कल्विन के सिद्धान्त भी लूथर के सिद्धान्तों से समता रखते थे। लूथर की भाति काल्विन भी बाईबिल को ही सर्वोच्च मानता था। मोक्ष-प्राप्ति के लिए वह भी ईश्वर में विश्वास आवश्यक मानता था। इसके अलावा काल्विन पुराने टैस्टामैंट का अधिक प्रमाणित मानता था जब कि लूथर नई को मानता था।

स्काटलैण्ड (Scotland)

पुनर्जागरण का प्रभाव स्काटलैड पर कम पड़ा था। धर्म-सुधार आदोलन के आरम्भ होने तक यहा धर्माधिकारियों की सर्वोच्च-सत्ता स्थापित थी। मनुष्य शिक्षित होते हुए भी पिछड़े हुए थे। परन्तु सर्व प्रथम अपने पड़ौसी देश इगलैण्ड के विद्वान वाइक्लिफ की शिक्षाओं का प्रभाव स्काटलैण्ड-वासियों पर पड़ा। यहा लूथर की विचारधारा का प्रचार जेम्स पचम के समय से हो गया था। यहा आधी भूमि धर्माधिकारिया के अधिकार में थी और बड़े धर्माधिकारी बड़े अमीर थे। अत वहा की जनता उनके विरूद्ध थी। परन्तु 1525 ई० में स्काटलैड की ससद ने कानून पास करके लूथर की धार्मिक सामग्री स्काटलैंड आने से वर्जित कर दी। विधर्मियों को वहा भी अन्य देशों की भाति अग्निदेव के भेंट किया जाता था। सन् 1520 ई० से मार्टिन लूथर की विचारधारा का स्काटलैण्ड में प्रचार होने लगा। कैथोलिक धर्म की बुराइयों की आलोचना करने पर सन् 1528 ई० में पैट्रिक हैमिलटन (Patrik Hamiltor) को वहा जीवित अग्नि में जलवा दिया गया। सन् 1543 ई० में जार्ज विशहर्ट (George Weshart) इगलैण्ड, स्वीटजरलैण्ड और जिनेवा होता हुआ स्काटलैण्ड पहुचा। उसने भी वहा नवीन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया। इस कारण-1546 ई० में उसे विधर्मी होने के आरोप में जला दिया गया।

जॉन नॉक्स (Johan Knox 1505 72)- इस प्रकार शनै शनै धर्म सुधार की लहर स्काटलैण्ड में फैलती रही। परन्तु स्काटलैण्ड में धर्म-सुधार आन्दोलन को प्रबल रूप देने वाला जॉन नॉक्स था। वह 1505 ई० में उत्पन्न हुआ था। आरम्भ में वह जार्ज विशहर्ट के साथ रहा परन्तु 1546 ई० तक उसकी प्रतिभा विकसित नहीं हुई।/ वह 1549 ई० मे इगलैण्ड में गया और सन् 1552 ई० में वहा से जिनेवा गया। वह वहीं आबाद हो गया। इस अवसर पर उसका वहा काल्विन से सम्पर्क हुआ। वह काल्विन का शिष्य बन गया। वह भी मूर्ति-पूजा तथा पोप दोनों ही से घृणा करता था। सन् 1555 और 56 ई० के बीच वह अपने देश स्काटलैण्ड लौट आया और वहाँ उसने नवीन प्रोटैस्टेन्ट धर्म का प्रचार किया। परन्तु अपने जीवन को सकट में देख वह फिर जिनेवा चला गया। 1559 ई० में स्काटलैण्डवासियों की प्रार्थना पर वह पुन स्काटलैण्ड आया। वहा आते ही उसने धर्म का प्रचार आरम्भ किया। स्काटलैण्ड में जॉन नॉक्स द्वारा प्रतिपादित मत का नाम प्रेसबिटरियन (Presbitarian) पड़ा। उसके द्वारा स्थापित चर्च स्काटलैण्ड में तीन शताब्दी तक प्रभाव में रही। स्काटलैंड के धर्म-सुधारवादी आयरलैंड गये और वहा अग्रेज प्राटेस्टेंटो स मिलकर अलस्टर की समस्या खड़ी करदी।

इगलैण्ड (England)

इगलैण्ड भी धर्म सुधार के प्रभाव से नहीं बच सका। परन्तु इगलैण्ड में धर्म-सुधार जनता से न किया जाकर वहाँ के शासक-वर्ग से किया गया। वहा उसके प्रचार के कारण राजनैतिक भी थे। सर्वप्रथम हैनरी अष्टम ने 1534 ई० में पोप की सत्ता इगलैण्ड से हटा दी और स्वय धर्म का सर्वोच्चाधिकारी (Act of Supremacy) बन गया। यथार्थ में हैनरी अष्टम स्वय कैथोलिक धर्म के विरुद्ध नहीं था। उसको तो कैथेराइन (Catherine) के तलाक के प्रश्न ने पोप से सम्बन्ध-विच्छेद करने को बाध्य किया था। परन्तु फिर भी छ धाराओं वाले नियम (Act of Six Articles) से उसने इगलैण्ड की जनता को कैथोलिक धर्म स विमुख नहीं होने दिया। 1546 ई० में इगलैण्ड के एक नवीन विचारधारा के व्यक्ति ने एक प्रोटेस्टेन्ट को इस प्रकार लिखा था- ''हमारे शासक ने पोप को नष्ट कर दिया है परन्तु पोप का प्रभाव आज भी है।''

उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र एडवर्ड षष्ठ 1547 ई० में गद्दी पर बैठा। वह पिता के देहान्त के समय केवल 9 वर्ष का था। उसके सरक्षक सोमरसेट (Somerset) और नॉर्थम्बरलैण्ड (Duke of Northumberland) दोनों ही प्रोटेस्टेन्ट धर्म के समर्थक थे। अत यह स्वाभाविक ही था कि उनकी सरक्षता में इगलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म उन्नति करे। क्रेनमर (Cranmer) द्वारा अनेक धार्मिक परिवर्तन किये गये। बाईबिल का अग्रेजी में अनुवाद हुआ। गिरजाघरों में लैटिन भाषा के स्थान पर अग्रेजी भाषा में प्रार्थना होने लगी। 42 धाराओं वाला कानून (Act of 42 Articles) पास हुआ। गिरजाघरों से मूर्तियाँ हटा दी गईं और दीवारों पर चित्रित चित्रों पर सफेदी पोत दी गई। मठों व गिरजों की सम्पत्ति का अपहरण किया गया। इस प्रकार एडवर्ड षष्ठ के समय इगलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म का पर्याप्त प्रचार हुआ।

एडवर्ड षष्ठ की मृत्यु के उपरान्त मैरी ट्यूडर (Mary Tudor) 36 वर्ष की आयु में इगलैण्ड की गद्दी पर बैठी। यह स्पेन की राजकुमारी कैथेराइन की पुत्री थी और पक्की कैथोलिक थी। अत उसने गद्दी पर बैठते ही एडवर्ड षष्ठ के धार्मिक नियम रद्द कर दिये। कैथोलिक धर्म को पुन उसके शासन-काल में राज्य-धर्म घोषित किया गया। उसने अपनी माता का तलाक अवैध ठहराया। क्रेनमर (Cranmer) लैटिमर (Latimer), रिडले (Ridley), और हूपर (Hooper) आदि प्रोटेस्टेन्ट नेताओ के उसने जीवित अग्नि में जलवा दिया। मैरी इस प्रकार के निर्मम अत्याचारों से देश में प्रोटेस्टेन्ट धर्म को नष्ट करना चाहती थी, पर रानी क उन अत्याचारों से भी जनता की सद्भावना नवीन धर्म के साथ बनी रही।

सन् 1558 ई० में मैरी ट्यूडर की मृत्यु हुई और उसके स्थान पर एलिजाबेथ (Elizabeth I) प्रथम इगलैण्ड की रानी बनी। उसके समय में इगलैण्ड की धार्मिक अवस्था बड़ी सकटमय थी, परन्तु उसने अपनी सहिष्णुता की नीति से सब ठीक कर लिया। उसने इगलैण्ड मे एग्लीकन (Anglican) चर्च की स्थापना की। पोप से इगलैण्ड का सम्बन्ध विच्छेद रहा। गिरिजाघरों में प्रार्थना अग्रेजी की प्रार्थना पुस्तक से होती रही, परन्तु उसने कैथोलिक धर्म के अनुयायियों पर अधिक अत्याचार नहीं किए। इसका फल यह हुआ कि इगलैण्ड में धार्मिक युद्ध नहीं हुए और जनता ने सुख एव शान्ति का अनुभव किया। धर्म आज भी इगलैण्ड का राज-धर्म बना हुआ है।

नार्वे (Norway)

नार्वे में धर्म-सुधार इगलैण्ड की भांति वहा के राजा द्वारा ही किया गया। परन्तु आरम्भ में वहा के लोग धार्मिक सुधारा के इतने पक्षपाती नहीं थे जितने की धर्माधिकारियों के धनी जीवन के विरोधी थे। अत प्रथम वहा धर्माधिकारियों की आलोचना आरम्भ हुई। नार्वे का शासक फ्रेडरिक प्रथम (Fredenck I) मार्टिन लूथर के सिद्धान्तों से प्रभावित था। 1533 ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् नार्वे में गृह-युद्ध आरभ हो गया, पर अन्त मे 1534 ई० में फ्रेडरिक प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र क्रिश्चियन (Chnstian III) तृतीय विजयी हुआ। वह प्रोटैस्टैन्ट धर्म का प्रबल समर्थक था। अत उसके शासनकाल में नार्वे में प्राटैस्टेंट धर्म का विकास हुआ। कैथोलिक धर्माधिकारियों के स्थान पर लूथर के समर्थक नियुक्त हुए। परन्तु वहा प्रोटैस्टैण्ट धर्म के ज्ञाता व समर्थक धर्माधिकारी पर्याप्त सख्या में उपलब्ध नहीं हो सके। अत वर्षों तक कई स्थान रिक्त पड़े रहे। इस कारण नवीन धर्म के विचार भी अच्छी तरह वहा प्रसारित न हो सके। इसके विपरित वहाँ के आर्थिक व सामाजिक जीवन मे अव्यवस्था और फैल गई।

स्वीडन (Sweden)

जून 1523 ई० में गुस्टावस (Gustavus) स्वीडन का सरक्षक बना। उस समय स्वीडन की आर्थिक दशा शोचनीय थी। अत राजकोष की वृद्धि करने हेतु वह धर्माधिकारियों मे धन लेना चाहता था। इसलिए उसने धर्माधिकारियों के अवगुणों की आलोचना करना आरम्भ किया। प्रोटैस्टेन्ट धर्म के सिद्धान्तो का उसने बेरोक-टोक अपने यहा प्रसार होने दिया। स्वीडन की भाषा में बाईबिल का अनुवाद हुआ और उसकी प्रतिया जनता में वितरित की गई। इस प्रकार हम देखते है कि प्रोटैस्टेन्ट धर्म का प्रचार जर्मनी के बाद नार्वे और स्वीडन मे भी पर्याप्त रूप में हुआ।

अत स्पष्ट है कि स्वीडन में नवीन धार्मिक विचारधारा स्वीडन की स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रसारित हुई। गुस्टावस सत्ता में आने से पूर्व ही मार्टिन लूथर से प्रभावित था। अत ज्यों ही वह स्वीडन का राजा निर्वाचित हुआ, उसने लूथर के विचारों को मान्यता प्रदान की और उनका प्रसार किया। इसके अलावा वहा की दयनीय आर्थिक अवस्था ने तो उसे कैथोलिक धर्माधिकारियों के विरुद्ध जिहाद बोलने को बाध्य ही कर दिया था।

धर्म-सुधार आन्दोलन में मार्टिन लूथर का योगदान

धर्म सुधार के समय जर्मनी की अवस्था-धर्म-सुधार आन्दोलन के समय जर्मनी में राजनीतिक एकता विद्यमान नहीं थी। इस कारण पोप को जर्मन-राज्यों पर अपनी प्रभुता दृढ़ता से स्थापित करने का अवसर मिल गया। प्रभुता के अलावा वह वहा से धन भी खूब अर्जित करता था। वहा के अधिकाश शासक अब भी कैथोलिक धर्म के ही समर्थक बने हुए थे। वे जर्मनी में नवीन धार्मिक विचारधारा को प्रसारित होता देखना नहीं चाहते थे। परन्तु कुछ शासक पोप की सार्वभौमिक सत्ता से मुक्त होकर चर्च की अतुल सम्पत्ति को हड़प कर पवित्र-रोमन सम्राट के विरुद्ध अपनी शक्ति को सुदृढ़ करना तथा जनसाधारण में धर्म-सुधार की मार्गों की पुष्टि करना चाहते थे। इन ही परिस्थितियों में जर्मनी में धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रभाव फैलने लगा।

***धर्म सुधार आन्दोलन का अग्रदूत मार्टिन लूथर*-जर्मनी में धर्म-सुधार आन्दालन फैलाने वाला मार्टिन लूथर (Martin Luther) था। इस धर्म-सुधारक का प्रभाव केवल जर्मनी तक ही सीमित नहीं रहा वरन् कालान्तर में समस्त यूरोप में दृष्टिगत हुआ। हालाकि इससे पूर्व यूरोप मे कई धर्म-सुधारक अवतरित हो चुके थे, पर उनके विचार जीवन-काल मे अधिक प्रभावशाली सिद्ध न हुए और इससे पूर्व की वे अपने विचारों को चिरस्थायी बना पावे वे या तो निर्मम अत्याचारो से दबा दिए गये या वे अग्नि के भेंट चढा दिए गये। परन्तु यह साहसी एव निर्भीक मार्टिन लूथर ही था जिसने पोप व सम्राट के क्रोध का सामना करते हुए निडरता से अपने धार्मिक विचारों को फलीभूत बनाया। इसलिए मार्टिन लूथर को धर्म-सुधार आन्दोलन का अग्रदूत (Apostle) माना जाता है।

मार्टिन लूथर (1483 1546)-प्रारम्भिक जीवन-मार्टिन लूथर अत्यन्त मेधावी, दृढ़ सकल्प साहसी एव निडर युवक था। इसका जन्म 1483 ई० में सैक्सनी के आइबेन नामक एक छोटे से ग्राम में हुआ था। बाल्यकाल से ही वह महत्त्वाकाक्षी तथा शिक्षा का जिज्ञासु युवक दृष्टिगत होता था। इसके पिता का नाम हान्स (Hans) तथा माता का नाम मारगारेथी-नी-जैगलर (Margarethe nee ziegler) था। प्रारम्भ में उसने मैन्सीफिल्ड (Mansfild) से शिक्षा पाई थी।

सन् 1501 में वह इरफर्ट (Erfurt) के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने गया। वह विश्वविद्यालय मानववाद के क्षेत्र में अति प्रसिद्ध था। माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध मार्टिन ने यहा धर्मशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया, क्योंकि पिता इसे वकील बनाना चाहता था। सन् 1505 ई० में उस विश्वविद्यालय में स्नातक बन जाने के पश्चात् वह धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगा। मठ में रहकर प्राय ईश्वर-चिंतन में ही वह निमग्न रहता था। सन् 1505 ई० में वह जोन् स्टोप्टिज (Johan Staupitz) के आदेशानुसार विटनबर्ग (Wittenberg) के विश्वविद्यालय में आगस्टाइन (Augustine) की रचनाओं का अध्ययन करने आया। विटनबर्ग में वह धर्म का प्राध्यापक बन गया था और उस समय तक वह सन्त आगस्टाइन का अनुयायी भी बन चुका था। सन् 1511 ई० में उसे रोम जाने का अवसर प्राप्त हुआ। पवित्र स्थान रोम में वह एक धर्म-परायण यात्री के रूप में गया था। परन्तु वहा कैथोलिक जगत् के पवित्र स्थान रोम के चर्च के विकृत रूप व पोप में अनेकानेक दोष देखकर उसके अन्त करण को अत्यन्त क्षोभ हुआ। यह होते हुए भी उसकी कैथोलिक धम में आस्था कम नहीं हुई। सन् 1517 ई० में पाप लियो दशम् (Leo X) के आदेश से जान टैटजैल (John Tetgel) विटनबर्ग में पाप-मोचन-पत्र (Indulgences) बेचने लगा। यद्यपि जनता उन पत्रों को अन्ध-विश्वास के कारण खरीदने को उद्यत थी और श्रद्धा से खरीद भी रही थी पर लूथर के विरोध करने के फलस्वरूप वहा बहुत कम लोगों ने वे पत्र खरीदे। इस घटना ने लूथर के जीवन में महान परिवर्तन ला दिया। इन 'पाप-मोचन-पत्रों' के विरुद्ध उसने 95 प्रसग (Theses) लेख लिखे। इन प्रसगों में लूथर ने न केवल 'पाप-मोचन-पत्रों' की निन्दा ही की वरन् उसने सत्कर्म के सिद्धान्त का भी विरोध किया।

मार्टिन लूथर द्वारा पाप-मोचन-पत्रों का विरोध-लूथर के 95 प्रसगों ने धर्माधिकारियों की समाज में बड़ी खलबली मचादी क्योंकि इन प्रसगों को विटन वर्ग के चर्च पर उसने 31 अक्टूबर 1517 को लगाया था और उसी दिन वहा (All Saints Day) मनाया जा रहा था और उस अवसर पर वहा सैंकड़ों धर्म यात्री एकत्रित हुए थे। इस कारण लूथर के 95 प्रसग वाद-विवाद के विषय बन गये। हालाकि टैटजेल 'पाप-मोचन-पत्र' पोप लियो दशम् के आदेश से बेच रहा था और उनसे अर्जित धन सन्त पीटर के गिर्जे के निर्माण में लगाया जाता था। पर लूथर ने कहा कि पोप दीन मनुष्यों से इस प्रकार पैसा क्यों ऐंठता है ? वह अपने अतुल धन को उसमें व्यय क्यों नहीं करता। उसने कैथोलिक चर्च की सत्ता को भी अमान्य कर दिया। इसके साथ ही उसने कैथोलिक धर्माधिकारियों के परम्परागत् अधिकारों को स्वीकार करने से भी इन्कार कर दिया। उसने चर्च की दैवी-सत्ता में भी अविश्वास व्यक्त किया। परन्तु यह सब करते हुए भी वह कैथोलिक धर्म से सम्बन्ध विच्छेद करना नहीं चाहता था। नवीन धर्म चलाना उस समय तक उसकी कल्पना में भी नहीं था।

मार्टिन लूथर तथा पोप-ज्यों-ज्यों समय बदलता गया-लूथर के विचारों में भी परिवर्तन आता गया। उस पर वाइक्लिफ तथा जान हस के विचार प्रभाव डालने लगे और उधर जर्मनी के लोगों में उसका प्रभाव बढ़ने लगा। लूथर के बढ़ते प्रभाव को देख पोप को चिन्ता हुई। 1520 ई० में लूथर ने अपनी तीन रचनाओं में पोप व कैथोलिक धर्म की बुराइयों पर और प्रकाश डाला। वह पोप की महत्ता के स्थान पर बाइबिल को अधिक महत्व देता था तथा उसे अधिक प्रमाणिक मानने लगा। लूथर की इन कार्यवाहियों से विक्षुब्ध हो पोप ने 1520 ई० में उसके विरुद्ध धर्म-निष्कासन की घोषणा की। पोप के इस आदेश से भी लूथर नहीं डरा और उस आदेश पत्र को विटनबर्ग के भरे बाजार में उसने जला दिया।

मार्टिन लूथर तथा सम्राट चार्ल्स पचम-उस समय पवित्र रोमन सम्राट चार्ल्स पचम था। वह कैथोलिक धर्म का कट्टर अनुयायी था। वह नहीं चाहता था कि लूथर इस प्रकार कैथोलिक धर्म की कटु आलोचना करे। अत 1521 ई० में उसने वर्म्स (Worms) स्थान पर एक धर्म-सभा का आयोजन किया। उस सभा में उसने लूथर को भी आमत्रित किया और उसने विश्वास दिलाया कि उसके प्राणों को किसी प्रकार आच नहीं आवेगी। समर्थकों द्वारा न जाने की सलाह देने पर भी लूथर उस सभा में उपस्थित हुआ। सभा में लूथर को धर्म-विरोधी विचारों को त्यागने की चेतावनी दी गई। प्रत्युत्तर में लूथर ने कहा, "जब तक मुझे बाइबिल या तर्क द्वारा गलत प्रमाणित न करदे मैं किसी चीज का प्रात्याख्यान नहीं कर सकता और न करूगा, क्योंकि अन्त करण के विरुद्ध आचरण करना न पवित्र है और न सुरक्षाजनक।" इस पर वर्म्स की सभा ने लूथर को नास्तिक व धर्मद्रोही घोषित कर दिया। लूथर ने इस निर्णय की ... परवाह नहीं की और वह निश्चल भाव से अपने मार्ग पर अग्रसर होता रहा

लूथर के धार्मिक विचारों का नामकरण ...

के परिणामस्वरूप अपनी रक्षार्थ लूथर सैक्सनी के स...

वर्टबर्ग के (Wartbarg) के दुर्ग में निवास करते हुए उसने बाइबिल का जर्मनी में अनुवाद किया। यह अनुवादित ग्रन्थ बड़ा लोकप्रिय हुआ। इसके उपरान्त उसके विचार जर्मनी में तेजी से प्रसारित होने लगे। उसका सुधार-आन्दोलन लोकप्रिय व राष्ट्रीय आन्दोलन हो गया। परन्तु 1524 ई० में जर्मनी में किसान आन्दोलन आरभ हो गया। उस आन्दोलन से लूथर के विचारों के प्रसार में कुछ बाधा उत्पन्न हुई। 1525 ई० में किसान आन्दोलन दबा दिया गया। लूथर किसान आन्दोलन के विरुद्ध था। उसके उपरान्त लूथर का सुधार आन्दोलन पुन जोर पकड़ने लगा। इस पर 1526 ई० में स्पीयर (Speyer) की प्रथम-सभा व 1529 ई० में दूसरी धर्म-सभा हुई। इन दोनों सभाओं का मूल उद्देश्य कैथोलिक व लूथरवाद के बीच समझौता कराना था। परन्तु दूसरी सभा में लूथर के समर्थकों ने चार्ल्स पचम के निर्णयों का स्पष्ट रूप से विरोध (Protest) किया। अत १५२९ ई० के उपरान्त लूथरवाद व लूथर के विचार प्रोटेस्टैन्ट धर्म के नाम से विख्यात हुए। इसके उपरान्त प्राटेस्टैन्ट धर्म उत्तरोतर उन्नति करता गया। पर चार्ल्स पचम समय-समय पर इसके विकास को अवरुद्ध करने का प्रयास करता रहा। 1555 ई० में आग्सबर्ग की सन्धि हुई और उसकी शर्तें 1619 ई० तक क्रियान्वित रहीं। इस सन्धि के उपरान्त प्राटेस्टैन्ट धर्म काफी विकसित हो गया।

प्रोटैस्टैंट धर्म का स्वरूप-1520 ई० के उपरान्त ही लूथर ने अपने विचारों को धर्म के क्षेत्र में निर्धारित कर लिए थे और वह समय के साथ-साथ उनमें कुछ परिवर्तन भी लाता रहा। उसके धार्मिक विचारों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

(1) शासक व सामन्तों को शीघ्र ही चाहिए कि वे अपने प्रजाजनों को पोप को टैक्स (Annates) देने से वर्जित कर दें। यह टैक्स चौदहवीं शती से आरभ हुआ हुआ था।

(2) शासक व सामन्तों को भी चाहिए कि वे अब पोप को किसी प्रकार का टैक्स (Benefice) न भेजें।

(3) अब कोई भी धार्मिक मामला पोप के पास न भेजा जा कर धार्मिक अधिकारियों पर ही छोड़ दिया जावे।

(4) पोप का रोम स्थित दरबार भी समाप्त कर देना चाहिए और उसके दरबार में कीड़े-मकौड़ों की भाति भरे उसके सेवकों को कम कर देना चाहिए ताकि उसके दरबार के वैभव में न्यूनता आ जावे।

(5) पोप का शासको पर कोई प्रभुत्व नहीं रहना चाहिए। केवल राज्याभिषेक के समय आर्कबिशप की भाति वह ताज धारण करा सकता है।

(6) पोप के चरणों का चूमने की प्रथा समाप्त कर देनी चाहिए।

(7) रोम में धर्म-यात्रियों का आना बन्द किया जाना चाहिए। उसकी धारणा थी कि ईसाई जितना समीप रोम के जाता है वह भगवान से उतना ही दूर होता जाता है। (The nearer to Rome the farther from Christ)

(8) धर्माधिकारियों को विवाह करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(9) धर्म से बहिष्कार करने की सजा समाप्त कर देनी चाहिए क्योंकि इसका सूत्रपात शैतान के द्वारा हुआ है।

(10) ईसाई समाज में भीख मांगने की प्रथा भी समाप्त की जानी चाहिए।

(11) विश्वविद्यालयों की शिक्षा में भी सुधार होना चाहिए।

प्रो० हर्नशा ने प्रोटेस्टैण्ट सुधार आन्दोलन का स्वरूप इस प्रकार बताया है- ''जर्मनी का प्रोटेस्टैंट सम्प्रदाय ट्यूटन जाति का रोमनों के आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह था, सासारिक प्राणियों का पादरियों के आधिपत्य के विरुद्ध, मितव्ययी धन कमाने वालों का सिद्धान्तहीन अपव्ययी के विरुद्ध तथा बौद्धिक, स्वतन्त्रता के समर्थकों का पोप के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह था ।'' इन सबसे बढ़ कर यह धर्म-परायण जाति का ऐसी प्रथा के विरुद्ध विद्रोह था, जिसे 'क्षमा-पत्रों' की बिक्री कहा जाता था और जिससे अत्यधिक दोष उत्पन्न हो गये थे।[1]

प्रोटैस्टैंट धर्म का अन्य देशों में प्रसार-यह सत्य है कि प्रोटैस्टैंट धर्म समस्त जर्मनी पर तो अपना प्रभाव नहीं जमा सका था, परन्तु इसने यूरोप के अन्य देशों को अवश्य प्रभावित किया। राजकीय सरक्षण मिल जाने के कारण यह धर्म नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क व इग्लैंड म प्रसारित हो गया। फ्रेडरिक प्रथम ने इसे नार्वे तथा डेनमार्क में प्रसारित किया। वहा यह राजधर्म भी घोषित कर दिया गया था। स्वीडन में चार्ल्स नवम् के प्रयत्नो से यह धर्म प्रतिष्ठित हो गया। इन देशों के अलावा यह धर्म बाद में फिनलैंड व आइसलैड में भी प्रभावशाली बन गया था। प्रो० रोबिन्सन का कथन कि लूथर की मृत्यु के कम से कम 100 वर्ष पश्चात् रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्टों के झगड़े सभी देशों के इतिहास की प्रमुख घटनाए बन गईं। इटली और स्पेन इस नियम क अपवाद हैं। कहने का तात्पर्य है कि इटली और स्पेन लूथर के धर्म से अप्रभावित रहे।

प्रोटैस्टैंट धर्म के प्रसार के कारण-

1 यूरोप के अधिकाश देशों में कैथोलिक धर्म की दयनीय अवस्था हो गई थी।

2 कैथोलिक धर्म में अनेक बुराइयों का समावेश हो गया था।

3 जर्मनी की तत्कालीन राजनीतिक अवस्था तथा जनता की जागरुकता भी इसका कारण थी।

4 मार्टिन लूथर के महान् व्यक्तित्व तथा सफल नेतृत्व ने इसे खूब फैलाया।

5 शासक-वर्ग से सहायता मिलने से भी यह धर्म प्रसारित हुआ।

6 धर्म के विषय में शासक-वर्ग का एक मत न होने से वे कैथोलिक धर्म को नहीं बचा सके।

7 मानववादी विचारधारा से भी इस धर्म के प्रसार में महान सहयोग मिला।

---

1 Prof Hernshaw-- A First Book of World History p 152

धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रभाव

यद्यपि धर्म-सुधार आन्दोलन एक धार्मिक आन्दोलन था, तथापि इसके प्रभाव व्यापक सिद्ध हुए। इसके अलावा कई इतिहासकार इसे पूर्णत धार्मिक आन्दोलन भी नहीं मानते थे। कोई इतिहासकार इसे राष्ट्रवादी आन्दोलन बताते है तो कोई राजनीतिक आन्दोलन। इसमें सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन ने मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि इसका महत्व मानव-समाज के कई क्षेत्रो में दृष्टिगत हो। राज्य के शासन के स्वरूप में भी इस आन्दोलन के प्रभाव दृष्टिगोचर हुए। जिन क्षेत्रो पर धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रभाव पड़ा, वे निम्नलिखित है -

धार्मिक प्रभाव-जैसा कि आन्दोलन के नाम से ज्ञात होता है कि यह आन्दोलन धार्मिक था। अत इसका प्रभाव धार्मिक क्षेत्र पर तो पड़ना स्वाभाविक था। प्रथम यूरोप में कैथोलिक धर्म तथा उसके साथ उसके सर्वोच्चाधिकारी पोप की सार्वभौमिकता समाप्त हो गई। कैथोलिक धर्म अब यूरोप के समस्त देशो को इकाई मे पिरोने की कड़ी नहीं रहा। इसी प्रकार यूरोप के देशों में पोप की प्रभुता भी नहीं रही। चारों ओर उसके विलासी जीवन की आलोचना होने लगी। धर्माधिकारियों के जीवन में भी सुधार हुआ। उनका अनुकरण जनसाधारण अब अन्धविश्वास के वशीभूत होकर नहीं करता था। यूरोप में प्रोटेस्टैन्ट, प्यूरिटन तथा कालविन धर्म अपना प्रभाव दिखाने लगे। इन धर्मों के प्रचारक अपने क्षेत्रो में अपने-अपने धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न करने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि जनसाधारण की धार्मिक असहिष्णुता विलुप्त हो गई। अब उनके सामने केवल एक ही धर्म न था। वे कोई सा भी एक धर्म अंगीकार कर सकते थे। इसके अतिरिक्त धर्म अब मानव-विकास में बाधक नहीं रहा। इसके साथ ही कैथालिक धर्मावलम्बियो ने पोप के नेतृत्व में बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

नैतिक प्रभाव-इस धार्मिक आन्दोलन से लोगों के जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। कैथोलिक धर्म के धर्माधिकारियों का कलुषित जीवन जनसाधारण की आखों में खटक रहा था। इस धर्म आन्दोलन ने उनके जीवन पर कटु आक्षेप किए। इसका परिणाम यह हुआ कि कैथोलिक धर्माधिकारियों द्वारा अपने जीवन में सुधार किया गया। पोप ने 'पाप-मोचन-पत्र' का बेचना बन्द कर दिया। प्रोटैस्टैन्ट धर्म के अन्तर्गत् धर्माधिकारी विवाह कर सकते थे, किन्तु उन्हें सादगी का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उनके जीवन में सच्चरित्रता तथा सादगी का समावेश करने के लिए गिरजाघर भी सादा बनाये जाने लगे तथा गिरजाघरों में नृत्य वर्जित कर दिया गया। सासारिकता की ओर से अपना मन हटाकर धर्माधिकारी आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होने लगे। गिरजाघरों में भी वे अपने उत्तरदायित्व को निभाने लगे। इससे जनसाधारण के जीवन पर भी प्रभाव पड़ा और मनुष्य अपन नैतिक जीवन की ओर विशेष ध्यान देने लगे।

शिक्षा-सम्बन्धी-धर्म-सुधार आन्दोलन से शिक्षा के प्रसार में विशेष उन्नति हुई। जब कैथालिक धर्म का दिनों-दिनों ह्रास होने लगा तो पोप ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और गिरजाघरों में धार्मिक शिक्षा के प्रसार पर ध्यान दिया जाने लगा। धार्मिक

शिक्षा के अतिरिक्त अन्य प्रकार की शिक्षाएं भी दी जाने लगीं। उधर अन्य धर्मावलम्बी तो शिक्षा को ही कैथोलिक धर्म के अवगुणों के निराकरण का मूल साधन समझते थे। प्रोटेस्टैन्ट तथा प्यूरिटन धर्म-प्रचारकों की मान्यता थी कि जब शिक्षा का विकास होगा तो लोग धार्मिक अन्धविश्वास में नहीं रह सकेंगे। अत उन्होंने गिरजाघरों की सम्पत्ति जब्त करके उसे शिक्षा के विकास में लगाया। प्रादेशिक भाषाओं ने उन्नति की और बाइबिल का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होने लगा।

राजनैतिक-मार्टिन लूथर का आन्दोलन धार्मिक था, परन्तु उसका असर राजनीतिक क्षेत्र पर भी दृष्टिगोचर हुआ। प्रथम पोप की राजनीतिक सत्ता समाप्त हो गई। अब यूरोपीय देशों के राजा उसका राजनीतिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम यह निकला कि यूरोप में अब निरकुश शक्तिशाली शासक होने लगे। कई शासक तो धार्मिक क्षेत्र में भी अपने देश के सर्वोच्च बन गये। इसके फलस्वरूप वे अपने विरोधियों का दमन धर्म-रक्षा की ओट में करने लगे। द्वितीय जनसाधारण में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। जब धनी-वर्ग नवीन-धर्म के अन्तर्गत् पोप की प्रभुता से स्वतन्त्र हो गये तो उनमें पूजीवाद (Capitalism) की भावना जाग्रत हुई। पूजीपति वर्ग ने धर्माधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के कर लगाने का विरोध किया। शासक-वर्ग ने धर्माधिकारियों द्वारा कर वसूल करने का अधिकार अवैध कर दिया। उनके अतिरिक्त शासक-वर्ग भी धन-सचय के विभिन्न साधनों की तलाश करने लगे। कई विद्वानों की यह भी धारणा है कि सोलहवीं शताब्दी के प्रोटेस्टैन्ट धर्म के विकास ने प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों (Democratic principles) को भी जन्म दिया। परन्तु ऐसा स्वीकार करना पूर्णत सत्य नहीं है। इस आन्दोलन से मध्यम-वर्ग अवश्य प्रभावशाली बन गया जिसने कि आगे चलकर प्रजातन्त्र में सहयोग दिया। परन्तु इसके साथ ही पोप की राजनीतिक सत्ता समाप्त होते ही शासक सर्वोच्च हो गया।

कई देशों में धर्मसुधार के कारण सघर्ष हुए। जर्मनी के प्रोटेस्टैन्ट व कैथोलिक राज्यों में तीस साल तक युद्ध चला। अन्य देशों में भी दोनों मतों के अनुयायियों के बीच सघर्ष की भावना बढ़ी। इसके अलावा एक दूसरे ने धार्मिक अत्याचार भी किए। इग्लैण्ड के कैथोलिक अपना देश छोड़ अमेरिका चले गये।

आर्थिक-प्रोटैस्टैण्ट धर्म के प्रसार से ईसाई लोग भी ब्याज लेकर धन उधार देने लगे। इसके फलस्वरूप व्यापारिक क्रान्ति दिनोंदिन प्रगति करने लगी। व्यापारिक क्रान्ति की सफलता के साथ-साथ पूजीवाद प्रबल बनता ही चला गया। धनी लोगों ने धन की सहायता से धर्माधिकारियों के पदों पर भी अधिकार करना आरभ कर दिया। धन अर्जित करने की महत्वाकाक्षा ने सामन्त व व्यापारियों में गिरजाघरों की सम्पत्ति पर अधिकार करने की भावना को भी जन्म दिया।[1] पोप को धर्म-यात्रायें भी बन्द करनी पड़ीं जिसके फलस्वरूप धर्माधिकारियों की आय पर कुठाराघात हुआ। छोटे पादरियों की आर्थिक अवस्था में कुछ सुधार हुआ।

---

1 'The growing ambition for wealth on the part of noblemen and merchants bred in them a desire to seize the estates of the church.

— *Hayes and Moon*

इस तरह से हम देखते है कि धर्म-सुधार आन्दोलन के प्रभाव व्यापक तथा चिरस्थायी सिद्ध हुए। इसने उस कार्य को पूरा किया जिसे कि पुनर्जागरण ने आरम्भ किया था। यूरोप को आधुनिक रूप प्रदान करने वाला यही धर्म-सुधार आन्दोलन था। क्रेन ब्रिन्टन (Crane Brinton) का कहना है कि जो लोग प्रोटैस्टैन्ट धर्म के अनुयायी बन गए थे वे आधुनिक एव प्रगतिशील भी बन गए। इसीलिए इतिहासकार स्वेन ने भी लिखा है कि यह महान धार्मिक विद्रोह केवल धार्मिक परिवर्तनों का ही परिचायक नहीं था। बल्कि इस ने नवीन-युग का उद्घोष किया।

धर्म-सुधार आन्दोलन का उत्तरदान (Legacy)

धर्म-सुधार आन्दोलन सोलहवीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में आरम्भ हुआ और 1650 ई० तक चलता रहा। इन 150 वर्षों के काल में यूरोप में अनेक धर्म सुधारक उत्पन्न हुए। उन सबका लक्ष्य कैथोलिक धर्म में सुधार करना था, पर इस साध्य के साधन विभिन्न थे। धर्म-सुधारकों ने अपने साधन अपने देश की परिस्थितियों को देख कर अपनाये। अत सुधारकों के विचारों में मतभेद तथा साधनों में विभिन्नता का होना स्वाभाविक था। इस दीर्घ सुधार-काल में अनेक उतार-चढ़ाव के साथ यह आन्दोलन जन-साधारण को प्रभावित करता रहा और प्रभावित भी विभिन्न प्रकार से किया है। जैसा कि सुधार-आन्दोलन के प्रभावों स स्पष्ट होता है कि इसने मानव-समाज के कई पहलुओं को प्रभावित किया। अत इसने अपनी वसीयत (Legacy) भी मानव-समाज के सामने विभिन्न रूपों में छोड़ी है। यहा हम सक्षेप में इसके द्वारा छोड़ी गई वसीयत के कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे-

1 **धार्मिक क्षेत्र**-धार्मिक सुधार आन्दोलन का आरम्भ तो धार्मिक कटुता के साथ हुआ था, पर जब यह समाप्त हो गया तो इसने मानव-समाज के समक्ष अच्छे प्रभाव छोड़े। प्रथम, तो इसने धार्मिक कटुता के स्थान पर धार्मिक-सहिष्णुता की भावना उत्पन्न कर दी। इस आन्दोलन के उपरान्त यूरोपवासी अपने-अपने धर्म पर आचरण करते हुए अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु रहने लगे। यूरोप में अब किसी एक धर्म का आधिपत्य नहीं रहा। द्वितीय, धर्म के नाम पर अत्यचार होना बन्द हो गये। अब धर्म-सुधारकों को फासी के तख्ते पर नहीं झूलना पड़ता था। धर्म क क्षेत्र में जन-साधारण स्वतन्त्र हो गया। वे किसी भी धर्म-सम्प्रदाय का अनुसरण कर सकते थे।

2 **राजनीतिक क्षेत्र**-धर्म सुधारकों के विचार धार्मिक अवश्य थे पर उन्होंने यूरोप की राजनीति को भी प्रभावित किया। उनकी प्रथम धारणा थी कि राज्य भी एक चर्च की भाति परमात्मा द्वारा ही निर्मित है। अत राज्य का चर्च के आधीन रहना आवश्यक नहीं। परन्तु राज्य में रहते हुए भी एक सच्चे ईसाई को अपने अन्त करण (Conscience) के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिये। यदि उसका अन्त करण राज्य के आदेशों का पालन करना ठीक नहीं समझता तो उसे सहर्ष दण्ड स्वीकार कर लेना चाहिये। यह सिद्धात हमें गाधीवादी सिद्धातों का तथा सुकरात के अन्तिम कथन का स्मरण कराता है। धर्म-सुधारकों

1 J E Swain A History of World Civilization p 375

ने राजा को सर्वोपरि भी माना है तथा उसकी सार्वभौमिकता को सर्वोच्च एव अविभाज्य भी माना है, पर साथ उन्होंने सरकार की आलोचना करना भी एक सच्चे ईसाई का कर्त्तव्य बताया है । काल्विन ने परमात्मा को ही सच्चे शासक के रूप में स्वीकार किया है । साथ में ही काल्विन ने यह भी बताया है कि राज्य को चर्च का समर्थन करते हुए ईसाई धर्म के प्रसार का भी प्रयास करना चाहिए । जीन बोडिन (Jean Bodin) ने बताया कि राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य राज्य म शान्ति व व्यवस्था रखना है । उसे धार्मिक विषयों में कम अभिरुचि लेनी चाहिए । एल्थूसियस (Althusius) राजनीति-शास्त्र को धर्म-शास्त्र से अलग रखने के पक्ष में था । ग्रोटियस (Grotius) ने भी अपने ग्रन्थ (The Law of War and Peace) के द्वारा इसी मत का समर्थन किया है । इस प्रकार इस आन्दोलन ने राज्यों को धर्म-निरपेक्ष रहना भी सिखाया ।

आर्थिक-क्षेत्र-हालाकि धर्म-सुधारकों ने अर्थ-व्यवस्था पर कम ध्यान दिया, फिर भी उनके विचारों ने उस क्षेत्र को भी प्रभावित किया । हालाकि लूथर मध्य-युगीन समाज को अधिक पसन्द करता था पर उसने मजदूरों के भले के लिए राज्य को उत्तरदायी ठहराया। उसने कहा कि राज्य को अपने दीन मजदूरों के भले के लिये सुनियाजित रूप से ध्यान देना चाहिए । जिस प्रकार वह आध्यात्मिक विषयों में ईश्वर-निन्दा बुरा समझता था, उसी प्रकार वह व्यापार मे लालच को बुरा समझता था । काल्विन ने बताया कि मनुष्य को अपनी समाज की सेवा ईश्वर की इच्छानुकूल करनी चाहिये । लूथर की भाति बूसर (Bucer) अधिक ब्याज लेने पर राज्य के नियन्त्रण का समर्थक था, पर बाद म उसने कहा कि अधिक ब्याज (Uscery) लेना भी कोई बुरा नहीं यदि वह (Golden Rules) के अनुसार न्यायपूर्वक लिया जाता है। कहने का तात्पर्य है कि ब्याज लेना धर्म-सुधार आन्दोलन के अन्तर्गत् उचित ठहराया गया और इसने आगे चलकर यूरोपीय देशों की आर्थिक व्यवस्था को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया । धर्म सुधारकों ने यह भी बताया कि धर्माधिकारियों को धन सचय नहीं करना चाहिए । धन उनको आध्यात्मिकता से हटा कर भौतिकवादी बनाता है । अत धर्म सुधारकों ने पोप व उसके अन्य धर्माधिकारियों को कई आर्थिक अधिकारो से वचित कर उन्हें धनवान बनने से रोक दिया ।

शिक्षा का क्षेत्र-शिक्षा के क्षेत्र में कैथोलिक व प्रोटैस्टेन्ट दोनों ही धर्मों ने अपनी-अपनी कुछ वसीयत छोड़ी । यह लूथर था जिसने सर्वप्रथम नि शुल्क (Free Education) शिक्षा का विचार राज्य व जनता के समक्ष रखा । शिक्षा के क्षेत्र म भी वह केवल धार्मिक-शिक्षा का ही पक्षपाती न था पर शिक्षा के माध्यम से वह छात्रों को अपनी सस्कृति से भी अवगत कराना चाहता था । हालाकि नि शुल्क शिक्षा का विचार धर्म सुधारकों ने यूरोप में प्रसारित किया था पर इस पर आचरण सर्वप्रथम अमेरिका के उपनिवेशों ने किया था। प्रोटैस्टेन्ट धर्म से प्रभावित राज्यों ने शिक्षा देने का कार्य स्वय सभाला जबकि कैथोलिक धर्म से प्रभावित राज्यों में शिक्षा गिरजाघरों के ही अधिकार-क्षेत्र में रही । इस आन्दोलन के उपरान्त शिक्षा का विस्तार खूब हुआ और अच्छे-अच्छे विश्व-विद्यालय स्थापित किये गये । परन्तु विश्व विद्यालयों के व्याख्याता शिक्षा देने में पूर्ण स्वतन्त्र नहीं थे । विश्व विद्यालयों में विभिन्न विषय पढ़ाये जाते थे पर राजनीति-शास्त्र दिनोंदिन अध्ययन का प्रमुख

विषय बनता जा रहा था। छापेखाने के आविष्कार व विभिन्न धर्मों के विभिन्न विचारो से साहित्य के कलेवर में भी वृद्धि हुई। धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र जर्मनी सोलहवीं सदी का सर्वाधिक पुस्तकें प्रकाशित करने वाला देश बन गया और फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) के मेले के माध्यम से जर्मनी ने सर्वाधिक पुस्तकें अन्य देशों को वितरित कीं।यूरोप के देशो मे जगह-जगह विशाल पुस्तकालय स्थापित किये गये। अपने-अपने धार्मिक विचारो को जनता के सामने सुगमता से प्रस्तुत करने की दृष्टि से अच्छे नाटक लिखे गये तथा विद्यार्थी व जैसूट लोगों द्वारा वे जनता के सामने अभिनय के रूप में प्रस्तुत किए गए। वैज्ञानिक आविष्कारों से जनसाधारण का दृष्टिकोण वैज्ञानिक ही बन गया था। अन्ध-विश्वासों से जनसाधारण मुक्त होता जा रहा था, पर भूत-प्रेत व जादू-टोना मे यूरोपवासी अब भी विश्वास रखते थे। प्रगतिशील विचार रखते हुए भी प्रोटैस्टेन्ट भूत-प्रेत विद्या मे विश्वास रखते थे।

धर्म-सुधार के इस विशद् वर्णन के करने व उसकी देन को समझने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि सत्य की खोज (Search for Truth) इस सुधार आन्दोलन का प्रमुख लक्ष्य था। परन्तु आन्दोलन की समाप्ति पर इस सत्य की खोज का स्थान शक्ति की खोज (Search for Power) ने ले लिया। यूरोप के देश शक्ति की प्रतिस्पर्धा म जुट गये। उनके राज्यो का गठन उन्हीं सिद्धान्तों पर हुआ जिनका हमने वर्णन इसके उत्तरदान (Legacy) में किया है। आर्थिक व्यवस्था को आधार इन्हीं सिद्धान्तो ने बनाया तथा निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का आधार भी धर्म-सुधार आन्दोलन ने ही प्रस्तुत किया। वैज्ञानिक आविष्कार इस आन्दोलन के उपरान्त होते चले गये। यूरोप के देशो पर जब कभी मुसीबत आती है तो वहा के लोग इन्हीं धर्म-सुधारको का स्मरण कर उनके निर्धारित सिद्धान्तो पर आचरण कर के मानसिक शान्ति प्राप्त करने का आज भी प्रयास करते है।

प्रश्न

1 यूरोप मे धर्म-सुधार आन्दोलन के प्रमुख क्या कारण थे ?
What were the main causes of Reformation in Europe ?

2 मार्टिन लूथर ने धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रारभ क्यों किया ? इसके तात्कालीन परिणाम बताइये।
Why did Martin Luther start Reformation ? Point out its immediate results

3 धर्म-सुधार आन्दोलन का क्या अभिप्राय है ? इसका यूरोप पर क्या प्रभाव पड़ा ?
What is ment by Reformation ? What were its effects on [illegible]e ?

4 16वीं शताब्दी में मध्य और पश्चिमी यूरोप में प्रोटैस्टैंट धर्म-सु[illegible]
का परीक्षण कीजिए।
Examine the background of Protestant Reformation [illegible]
Western Europe in the 16th Century

1

प्रतिवादात्मक धर्म सुधार आन्दोल

"प्रोटेस्टैण्ट विद्रोह का एक महत्वपूर्ण परिणाम रोमन कैथोलिक चर्च ही सुधार करने की प्रेरणा देना था।"

- जे ई

प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन से तात्पर्य- पिछले अध्याय म हम कर आये है कि मार्टिन लूथर व अन्य धर्म-सुधारकों के प्रयासों से यूरोप में एक धार्मि आन्दोलन हुआ। यह धर्म-आन्दोलन सोलहवीं सदी के पूवार्द्ध तक चलता रहा। धर्म-सुधार अन्दोलन के परिणामस्वरूप यूरोप की धार्मिक एकता समाप्त हो गई। कैथालि धर्म के अलावा अन्य कई धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित हो गये। कैथोलिक धर्म का ह्र तीव्र-गति से होने लगा तथा पोप भी अपनी प्रधानता खो चुका था। अपने सम्मान कमी आने से पोप ने अपने अन्य धार्मिक सहयोगियों तथा अपने समर्थक शासकों प्रयास से कैथोलिक धर्म में प्रविष्ट बुराइयों का निवारण कर उसे पुन यूरोप का सर्वोच व सर्वमान्य धर्म बनाने का प्रयास किया। पोप व कैथोलिक धर्म के अन्य पदाधिकारि का यह प्रयास सोलहवीं सदी के मध्य में आरम्भ हुआ। वे चाहते थे कि कैथोलिव धर्म के मूल सिद्धान्त, उसके परम्परागत रीति-रिवाज व उसकी एकता तो अक्षुण बनी रहे तथा उसमे प्रविष्ट बुराइयों का निवारण कर दिया जावे। धर्म के नाम पर होने वाली अनैतिकता को समाप्त कर वे धर्म में आध्यात्मिकता की अपूर्व शक्ति को पुन देखना चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु पोप ने अपन अन्य धर्माधिकारियों के सहयोग से कैथोलिक चर्च में प्रविष्ट बुराइयों को समूल नष्ट करने का प्रयास किया। उनके इस प्रयास के फलस्वरूप प्राटैस्टेंट धर्म की प्रगति में शिथिलता आई तथा कैथोलिक चर्च अपने लुप्त गौरव को पुन प्राप्त करने लगा। अत पोप का यह धर्म-सुधार मार्टिन लूथर द्वारा प्रतिपादित धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रतिरोधी आन्दोलन कहलाया और यही इतिहास में प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार (Counter Reformation) आन्दालन के नाम से विख्यात हुआ।

इतिहासकार हेज (Hayes) कैथालिकों क इस धर्म-सुधार की विवेचना करते हुए लिखता है- ' जिस प्रकार यूरोप की आशिक धार्मिक-प्रवृत्ति या शक्ति यूरोप के अर्द्धांश में क्रान्तिकारी प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदायों व चर्चों की स्थापना में सहायक सिद्ध हुई, उसी प्रकार दूसरी आशिक धार्मिक-प्रवृत्ति या शक्ति ने कैथोलिक चर्च की व्यवस्था में सुधार किये "
साउथ गेट के मतानुसार "कैथोलिक धर्म-सुधार का उद्देश्य मुख्यत कैथोलिक चर्च मे पवित्रता व ऊँचे आदर्शों को स्थापित करना था।"

प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन के उद्देश्य-

1 इस धर्म सुधार आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य कैथोलिक चर्च के भीतरी सगठन सुधारना था।

2 इसके अलावा यह सुधार आन्दोलन कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तों में भी सुधार ा चाहता था।

3 कैथोलिक धर्म को अपनी जिन बुराइयों के कारण पतनोन्मुख होना पड़ा था, ुराइयों को भी यह सुधार-आन्दोलन धर्म से बहिष्कृत करना चाहता था।

4 पोप पॉल चतुर्थ (Paul IV) इस आन्दोलन के माध्यम से अपने पद की लुप्त ा के पुन प्राप्त करना चाहता था।

ादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन को सफल बनाने के साधन-

मार्टिन लूथर को अपने धर्म-सुधार आन्दोलन में सफलता मिलने का मूल कारण लिक चर्च व पोपशाही में उत्पन्न व्यापक दोष थे। पोप स्वय के विलासी जीवन थोलिक धर्म को अवनत बनाया था। अत प्रतिवादात्मक-धर्म सुधार को सफल ने हेतु पोप स्वय ने अपने व्यक्तिगत् जीवन व अपने आचरण में महान में परिवर्तन । इन नूतन परिवर्तनों का श्रीगणेश पोप पॉल तृतीय व चतुर्थ ने किया। इस आन्दोलन नेतृत्व पॉल चतुर्थ ने किया। उसके अथक प्रयासों के फलस्वरूप कैथोलिक चर्च र्माधिकारियों के आचरण में नैतिकता व पवित्रता अपना प्रभाव जमाने लगीं। उनमें र अनुशासन तथा कर्त्तव्य-परायणता की पवित्र-भावना उत्पन्न की गई। इन सबका ाम यह हुआ कि कैथोलिक धर्म में नवीन शक्ति व स्फूर्ति उत्पन्न हुई। परन्तु इस ा शक्ति व प्रेरणा उत्पन्न करने हेतु मुख्यतया चार साधनों को प्रयुक्त किया गया था वे साधन निम्नलिखित थे-

(1) ट्रेन्ट की कौसिंल (Council of Trent, 1545 65)-कैथोलिक धर्म में त बुराइयों को दूर करने व धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण हेतु 1545 में जर्मनी के नगर ट्रेन्ट में एक धर्म-सभा का आयोजन किया गया। यह सभा 1565 में जर्मनी के नगर ट्रेन्ट में एक धर्म-सभा का आयोजन किया गया। यह सभा 1565 तक कार्य करती रही। इस धर्म सभा के प्रमुख उद्देश्य कैथोलिक धर्म के आधारभूत ान्तों का स्पष्टीकरण करना व कैथोलिक सम्प्रदाय के सगठनों को सुदृढ़ बनाना था। के अलावा यह धर्म-सभा यूरोप में कैथोलिक धर्म की लुप्त एकता को पुन स्थापित करना चाहती थी। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस सभा में निम्न निर्णय लिए गये-

(अ) कैथोलिक चर्च के सप्त-सस्कारों' को अनिवार्य बताया गया।

(ब) धर्म के क्षेत्र में पोप की प्रधानता पुन उचित ठहराई गई।

(स) बाइबिल का लैटिन अनुवाद प्रामाणिक ठहराया गया।

(द) मार्टिन लूथर के श्रद्धा समन्वित' सिद्धान्त को असत्य करार दिया गया।

उपर्युक्त निर्णय प्रतिक्रियावादी अवश्य थे, ... लिक ... ि भी पुष्ट बना दिया। हालाकि प्रारम्भ में इस धर्म-सभा ने प्रोटेस्टेन्टों के ... ा का भी प्रयास किया था परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से उसने उनके साथ किया।

ट्रेंट की सभा कैथोलिक चर्च के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करने तक ही नहीं रही वरन् उसने धर्म कई महत्त्वपूर्ण सुधार भी किये । उनमें से प्रमुख हैं-

(अ) धर्माधिकारियों के जीवन को सदाचारी, नैतिक अनुशासनयुक्त तथा बनाने हेतु कई नियम बनाये ।

(ब) चर्च के पदो की बिक्री बन्द कर दी गई तथा उन स्थानो पर नियुक्तियँ योग्यता के आधार पर होने लगीं ।

(स) चर्च के पदाधिकारियो को अपना जीवन सासारिकता से हटाकर आध्यात्मि की ओर लगाना आवश्यक कर दिया गया ।

(द) चर्च का सगठन नये सिर से किया गया तथा धर्माधिकारियों का शि होना आवश्यक कर दिया गया ।

(य) पाप-मोचन-पत्रों का दुरुपयोग रोका गया ।

(र) कैथोलिक चर्चों में पूजा की एकसी-विधि व एक-सी प्रार्थना-पुस्तक गई ।

उपर्युक्त सुधारों से चर्च-व्यवस्था में व धर्माधिकारियों के जीवन में पर्याप्त सु हुआ। पादरी सदाचारी, शिक्षित, नैतिक एव धार्मिक कार्यों के प्रति सजग रहने ल इतिहासकार हेज ट्रेन्ट की सभा की सफलता के विषय में लिखता है- ''ट्रेन्ट की कौन्सि ने कैथोलिक चर्च में महान् सुधार कर मुख्य रूप से कैथोलिक धर्म के अस्ति की रक्षा में बड़ा योग दिया ।'' साउथगेट हेज का समर्थन करते हुए लिखता है- ''ट्रे की कौन्सिल की मुख्य सफलता कैथोलिक चर्च के सिद्धान्तों की स्पष्ट परिभा थी । इसने कैथोलिक चर्च को सुदृढ़ एव निश्चित स्थिति प्रदान की ।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि ट्रेन्ट की सभा के कार्य द्वि-मुखी थे । प्रथम सैद्धान्ति द्वितीय सुधारात्मक । इस सभा को अपने दोनों ही क्षेत्रों में अपूर्व सफलता मिली । प्रथ क्षेत्र में कैथोलिक चर्च के सिद्धान्तों को स्पष्ट कर दिया गया तथा दूसरे क्षेत्र में धर्माधिकारि के जीवन में आशातीत सुधार किया ।

(2) जैसुइट सघ व इगनेशियस लोयला-प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोल का लक्ष्य केवल अपने चर्च के दोषों का निराकरण करना मात्र ही न था वरन् वह प्रोटैस्टें धर्म की प्रगति पर अकुश भी लगाना चाहता था । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सोलहवं सदी के उत्तरार्द्ध में कई धार्मिक सगठन स्थापित किये गये । उसमें यह जैसुइट-सघ प्रधान था । इस सगठन का सस्थापक इगनेशियस लोयला (Loyola Ignatius) था । उसने इसकी स्थापना 1534 ई० में की थी और 1540 ई० में पोप पॉल तृतीय द्वारा इसे मान्यता प्रदान करदी गई ।

इगनेशियस लायला स्पेन का निवासी था । प्रारभ में वह एक सैनिक था और चार्ल्स पचम (Charles V) के समय उसने फ्रास के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था । सयोगवश वह इस युद्ध में घायल हो गया और उस अपने उपचार के लिए दीर्घ काल ़ अस्पताल में रहना पड़ा । इस काल में उसने धर्म पर अनेक पुस्तकें पढ़ीं । इसका

फल यह हुआ कि उसकी प्रवृति भौतिक से आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर अग्रसर हुई। उसने अपने को ईसा मसीह का सच्चा सेवक समझा और कैथोलिक धर्म की सेवा का उसने बीड़ा भी उठाया। धार्मिक ज्ञान के सचय हेतु वह पेरिस के विश्वविद्यालय में गया और वहा उसने प्राचीन साहित्य, दर्शनशास्त्र व धर्म-शास्त्र का गूढ़ अध्ययन किया। यहीं उसने अपने चन्द साथियों के सहयोग से एक सघ की स्थापना की और वही सघ जैसुइट सघ (Order of Jesuits) के नाम से विख्यात हुआ। इस सघ के सदस्य जैसुइट कहलाते थे। इस दल के सदस्यों को आज्ञा-पालन, दरिद्रता तथा ब्रह्मचर्य के प्रति अनुराग व पोप के प्रति भक्ति का व्रत लेना पड़ता था। वे अपने विनयशील व्यवहार, त्याग व बौद्धिक ज्ञान से जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते थे। पोप पाल तृतीय (Paul III) ने यीशु (ईसा) मसीह की इस सघ-सेना को स्वीकृति प्रदान करते हुए इस सघ का निम्न उद्देश्य बताया था-

"ईसाई जीवन तथा सिद्धान्तों की उन्नति में सहयोग प्रदान करना। परमात्मा के नैतिक-ज्ञान द्वारा आध्यात्मिक अभ्यास तथा दान-पुण्य द्वारा विशेष रूप से नवयुवकों तथा अपरिचितों में ईसाई-सिद्धान्तों का प्रचार करना और धर्म-प्राण सच्चे इसाइयों को पोप-स्वीकृति ईसाई धर्म की उन्नति में सहयोग प्रदान करना।"

प्रारभ में इस सस्था की सदस्य सख्या केवल सात थी। परन्तु बाद में यह सख्या 1500 हो गई। इस सघ का सगठन बड़ा कठोर एव रूढ़िवादी था। वास्तव में देखा जाय तो इस सस्था का स्वरूप एक सैनिक सस्था की भाति था। इसका प्रधान जनरल (सेनापति) कहलाता था। उसकी नियुक्ति पोप द्वारा आजन्म के लिए की जाती थी और उसे पोप के प्रति सदैव वफादार रहने की शपथ लेनी पड़ती थी। उसे रोम में ही रहना पड़ता था। सस्था के समस्त सदस्यों को उसकी आज्ञा मे रहना पड़ता था। योग्यता, शिक्षा व कार्य-क्षेत्र के आधार पर सदस्य कई श्रेणियों में विभक्त होते थे तथा उन्हें अपने कार्य-सम्पादन हेतु कई मास तक ट्रेनिंग लेनी पड़ती थी।

जैसुट सघ के सदस्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति कई साधनों से करते थे। आज के साम्यवादियों की भाति वे साधन की श्रेष्ठता में विश्वास नहीं करते थे। वे केवल अपने कार्य की सिद्धि चाहते थे चाहे उसके लिए साधन कैसा भी अपनाना पड़े। राजनीति, छल, बल, षड्यन्त्र, प्रचार-कार्य व जन-साधारण को शिक्षा देना आदि सभी प्रकार के साधन उनके द्वारा अपनाये जाते थे। उनके धर्म उपदेश सार-गर्भित, आकर्षित एव प्रभावोत्पादक होते थे। धर्म-प्रसार में वे अच्छे धर्मोपदेशक सिद्ध हुए। शिक्षक के रूप में भी वे अपने विचारों की सफलता से प्रसारित कर सके और शिक्षा के सहारे कैथोलिक चर्च को वे केवल यूरोप में ही प्रबल नहीं बना सके वरन् एशिया, अफ्रीका व अमेरिका को भी उससे अप्रभावित नहीं रहने दिया। एच जी वैल्स ने इसका समर्थन करते अपनी पुस्तक 'इतिहास की रूप रेखा' (Outline of History) में लिखा है- **मिंग वंश के पश्चात् चीन में ईसाई धर्म को फैलाना जेसुट पादरियों का काम था। भारत तथा उत्तरी अमेरिका में उन्होंने प्रमुख रूप से ईसाई धर्म का प्रचार किया। उनकी शिक्षा यूरोप में अनुकरणीय बन गई।** लार्ड वेरूलम ने ठीक ही कहा है **"शिक्षण कला के लिए जेसुट विद्यालयों**

की ओर ध्यान दो क्योंकि उनकी शिक्षा प्रणाली सर्वोत्तम है।" मार्ग में आने वाली मुसीबतों की उन्होंने तनिक भी चिन्ता नहीं की। उन्हें विश्व के किसी भी दूर के कोने में भेजा जाता वे सहर्ष जाते थे। उत्तरी अमेरिका की मिसीसीपी नदी को पार कर जैक्विस मारक्वेटी गया और वहा के मूल निवासियों को उसने ईसाई बनाया। इसी प्रकार फ्रांसिस जेविर जापान गया और वहाँ उसने कैथोलिक धर्म का प्रसार किया। इस प्रकार यह धर्म अमेरिका से जापान तक प्रसारित हो गया। बहुत से जैसूट कई राजाओं के यहा उच्च स्थान पाकर उनके धार्मिक सलाहाकार बन गये और वहा कैथोलिक चर्च को प्रबल बनाने लगे। अत उनके सतत प्रयत्नों से सोलहवीं सदी के मध्य तक इटली, स्पेन, पुर्तगाल, पोलैंड, दक्षिणी जर्मनी, हगरी आदि देशों में कैथोलिक धर्म पुन प्रबल एव सुप्रतिष्ठित हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैसूट-सस्था ने कैथोलिक चर्च में कई सुधार किए तथा उसे पतन से बचाया।[1] ट्रेंट की कौंसिल के उपरान्त प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार का यह दूसरा साधन था जिसने कि कैथोलिक धर्म के क्षेत्र में कई प्रभावशाली कार्य किये।

यह सत्य है कि जैसूट सस्था ने कैथोलिक धर्म को प्रबल बनाने में सराहनीय कार्य किया। परन्तु उससे जन-साधारण पर कुछ बुरे प्रभाव भी पड़े। इससे व्यक्ति की विचार-स्वतन्त्रता नष्ट हो गई। इस सस्था के कठोर अनुशासन के कारण मौलिक चिन्तन का क्षेत्र समाप्त हो गया। सबको बिना तर्क के सन्त थोमस (St Thomas) के सिद्धान्तों का स्वीकार करना पड़ता था। आम प्रचलित धारणाओं पर सबको आचरण करना पड़ता था। इस प्रकार की व्यवस्था का जनता पर यह प्रभाव पड़ा कि लोगों का चिन्तन एक ही श्रेणी का हो गया।

(3) इन्क्वीजिशन (Inquisition) का धर्म न्यायालय-प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन को सफलीभूत बनाने में धर्म-न्यायलय भी अति सहायक सिद्ध हुए। धर्म-विरोधियों को दण्डित करने के उद्देश्य से पोप पॉल तृतीय ने 1542 ई० में रोम में इन्क्वीजिशन की स्थापना की। इसकी स्थापना के मूल उद्देश्य अग्र लिखित थे -

(अ) नास्तिकों का पता लगा कर उन्हें कठोरता से दण्डित करना।

(ब) कैथोलिक चर्च के आदर्शों को लोगों से बलपूर्वक मनवाना।

(स) धर्म-विरोधी व प्रोटेस्टेंटों के निर्दयता से कुचलना।

(द) कैथोलिक-धर्म विरोधी प्रचारकों के विरुद्ध अभियोग लगाना तथा उन्हें दण्डित करना।

(य) दूसरे देशों से धार्मिक मामलों के आये अभियोगों की अपील सुनना।

धार्मिक अभियोगों की अपील सुनने के लिए यह सर्वोच्च न्यायालय के स्वरूप थी। इसके अधिकारी भी सर्वोच्च होते थे। इसकी कार्य-पद्धति कठोर थी। धर्म-विरोधियों को दण्ड बड़ी कठोरता से दिया जाता था। पोप ही चर्च के शासक के रूप में अपराधी

---

1 'Thus selfless and dedicated work carried out by these jesuits went a long way in restoring the grandeur and glory of the Roman Catholic Church.

— B V Rao

का निर्णय सुनाता था तथा राज्य के शासक की हैसियत से वही अपराधी को जला कर मारने का आदेश देता था।[1] इस दिशा में यह धर्म-न्यायालय मध्य-कालीन धर्म-न्यायालयों से भी आगे बढ़ गया था। मध्यकालीन धर्म-न्यायालयों में चर्च अपराध लगाता था तथा राज्य अपराधी को दण्डित करता था। इस प्रकार के न्यायालय अन्य राज्यों में भी स्थापित किए गये थे।

धर्म न्यायालयों से कैथोलिक-धर्म के प्रसार में महान सहयोग मिला हो-यह तो संदिग्ध है- पर इनसे शासकों को स्वेच्छाचारी एव निरंकुश शासन-स्थापन में अवश्य सहायता मिली। स्पेन के शासक फिलिप द्वितीय (Philip II) के हाथ मे यह न्यायालय निरंकुशता का प्रधान साधन बन गया। उसने इस न्यायालय के माध्यम से स्पेन के प्रोटैस्टेंटों को इतनी निष्ठुरता से दबाया कि स्पेन में प्रोटैस्टेंटों की छाया भी नहीं रही। इटली में भी इन अदालतों के माध्यम से प्रोटेस्टेंट-धर्म का समूल विनाश हो गया।

धर्म न्यायालय के दु:खद परिणाम-

(अ) नीदरलैण्ड में इन अदालतों के परिणामस्वरूप भारी विद्रोह हुआ तथा वहा लोगों मे व्यापक असतोष फैल गया।

(ब) जन-साधारण के स्वतन्त्र चिन्तन पर इन अदालतों से भारी आघात पहुँचा।

(स) यूरोप के कई देशों में निरंकुश-शासन की स्थापना हुई।

(द) निसन्देह इन अदालतों की स्थापना से प्रोटेस्टेंट धर्म की प्रगति अवरुद्ध हो गई पर साथ में ही कैथोलिक-चर्च की प्रतिष्ठा पर भी प्रभाव पड़ा। इन अदालतों के निर्णय इतने कठोर तथा निष्ठुरता लिए होते थे कि उनसे ईसा के करुणाजनक उपदेश निष्ठुरता से आवृत हो गये।

(4) **राजनीतिक परिस्थितिया**-प्रोटैस्टेंट धर्म के प्रचारकों ने भी अपने धर्म प्रसार में राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ उठाया था। जिन शासकों ने प्रोटैस्टेंट धर्म का अगीकार कर लिया था उनके, सहयोग से यह धर्म उनके राज्यों में बहुत प्रबल हुआ। इसी प्रकार प्रतिवादात्मक-धर्म-सुधार आन्दोलन को सफल बनाने हेतु पोप ने भी राजनीतिक परिस्थितियों का सहारा लिया। उसने फ्रान्स, स्पेन व पुर्तगाल के शासकों से धर्म-सन्धिया (Peace of Religion) कीं। इस प्रकार की सन्धिया सम्पन्न हो जाने के उपरान्त उन शासकों ने निर्दयता के साथ प्रोटैस्टेंट-धर्मावलबियों को दबाना आरम्भ किया। स्पेन व पुर्तगाल के शासकों ने यह सन्धि केवल अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की थी। वे अपने को अपने राज्य में सर्वशक्तिशाली बनाना चाहते थे तथा अपना शासन निरंकुशता के साथ चलाना चाहते थे। इसीलिए व चाहते थे कि पोप को प्रसन्न करने हेतु प्रोटैस्टेंटों को निर्दयता से दबाया जावे। आस्ट्रिया का सम्राट चार्ल्स पचम तुर्की के विरुद्ध पोप से सहायता

1 Acton 'Lectures on Modern History' p 113
'The deliquent was tried by the Pope as a ruler of the Church and was burnt by the Pope as a ruler of the State

लेना चाहता था । इसीलिए उसने भी पोप के साथ धर्म-सन्धि की । इगलैण्ड की रानी मेरी ट्यूडर ने अपनी माता कैथेराइन के अपमान का बदला लेने हेतु इगलैण्ड में पुन पोप की सर्वोच्चता स्थापित की । नवीन धर्म के समर्थकों को उसने जीवित अग्नि में जलवा दिया। इस प्रकार हम देखते है इन राजनीतिक गतिविधियों के परिणाम-स्वरूप फ्रान्स कैथोलिक-चर्च का सुदृढ़ गढ़ बन गया तथा स्पेन, पुर्तगाल, इटली, दक्षिणी नीदरलैण्ड, बवेरिया व आयरलैण्ड में यह धर्म पुन प्रतिष्ठित हो गया।

प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार की प्रगति-इस सुधार-आन्दालन का आरम्भ ट्रेंट की सभा से हुआ । पियूस चतुर्थ ने सभा को समाप्त किया और उसमें लिए गये निर्णयों को क्रियान्वित करने का उसने अथक प्रयास किया । उसको इस कार्य में चार्ल्स ब्रोरोमिओं, मत फिलिप नेरी तथा एलेक्सजेन्ड्रिना ने महान सहयोग दिया । एलेक्सजेन्ड्रिनो ही बाद में पियूस पचम के नाम से पोप बना । वह अत्यन्त कठोर तथा धार्मिक-कार्यों में परम उत्साही पोप था । पोप बनने से पूर्व वह धार्मिक अदालतों में कार्य कर चुका था । उसके काल म प्रतिवादात्मक सुधार आन्दोलन ने बहुत प्रगति की । उसने फ्रान्स का गृहयुद्ध क लिए भड़काया तथा एल्वा (Alva) के तरीकों की बड़ी सराहना की । उसके समय मे इटली से तो प्रोटैस्टेंट धर्म लुप्त ही हो गया । स्पेन में भी प्राटैस्टेंट धर्म की यही गति हुइ । यह धर्म-सुधार आन्दोलन सन्त बथोलोम्यू (St Bartholomew) की हत्या के साथ अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गया था ।[1] 1590 ई० तक यह आन्दोलन निरन्तर प्रगति करता रहा । परन्तु एलिजाबेथ प्रथम के समय जब मेरी ट्यूडर इस लोक से चल बसी और स्पन का अजय आरमेडा (Invincible Armeda) परास्त हो गया तो इस आन्दोलन की गति शिथिल हो गई । इगलैण्ड व स्काटलैण्ड की गद्दी प्रोटैस्टेंट वश के लिए सुरक्षित हो गई । मध्य-यूरोप क देश जो मार्टिन लूथर के प्रभाव में आ गये थे, वहा भी प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार का प्रभाव आशाप्रद सिद्ध हुआ । जर्मनी व आस्ट्रिया पुन कैथोलिक देश बन गये । इस प्रकार मध्य-यूरोप के देश जो पचास वर्ष तक प्रोटैस्टेंट धम से प्रभावित रहे, वे पुन कैथोलिक प्रदेश बन गये ।

प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन की सफलता के कारण

(1) यूरोप के अधिकाश लोग चर्च के विरुद्ध विद्रोह करना नहीं चाहते थे-नि सन्देह मार्टिन लूथर के प्रभाव से यूरोप के लोगों में कैथोलिक धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न हुई । उन्होंने प्रोटैस्टेंट धर्म क सिद्धान्तों का समर्थन भी किया । परन्तु उनके दिल स प्राचीन धर्म के प्रति आस्था सर्वथा विनिष्ट नहीं हुई थी । वे कैथोलिक चर्च के अन्तर्भूत दोषों का केवल निराकरण मात्र चाहते थे । ट्रेंट-सभा व अन्य साधनों से जब कैथोलिक चच की बुराइया दूर हो गईं तो वे पुन कैथोलिक चर्च के समर्थक हो गय ।

(2) ट्रेंट की सभा के सुधार-ट्रेंट की सभा ने अपने सुधारों द्वारा धर्माधिकारिया के जीवन को पवित्र एव शिक्षित बनाया । पाप-मोचन पत्रों की बिक्री समाप्त कर दी'

---

1 Acton 'Lectures on Modern History P 122
The Counter Reformation touched high water mark with the massacre of St Bartholomew

इसके अलावा धर्माधिकारियों के पदो की बिक्री भी समाप्त कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि कैथोलिक लोगों की अपने धर्म के प्रति उत्पन्न घृणा समाप्त हो गई और जो लोग प्रोटेस्टेंट धर्म के प्रभाव में चले गये थे, वे भी पुनः कैथोलिक चर्च के ही अनुयायी बन गये।

(3) जैसूट लोगों का सहयोग-प्रतिवादात्मक धर्म सुधार को सफल बनाने का सर्वाधिक श्रेय जैसूइट-सम्था को जाता है। इसके सदस्य परम उत्साही धर्म-प्रचारक सिद्ध हुए। उन्होने इस धर्म का प्रभाव न केवल यूरोपीय देशो मे ही पुनः स्थापित किया वरन् इस धर्म हेतु वे विश्व के दूर-दूर के देशों तक चले गये। अपने धर्म के दीक्षार्थियों की तलाश में वे नवीन देशो व प्रदेशो की खोज कर पहुँच गये।

(4) कैथोलिक चर्च का विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त होना-जिस प्रकार नवीन धर्म प्रोटेस्टेंट भी कई सम्प्रदायो में विभक्त था, उसी प्रकार, कैथोलिक चर्च भी विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त था। जिस प्रकार भारत की विभिन्न जातियां भारतीय सस्कृति की रक्षा मे सहायक सिद्ध हुईं उसी प्रकार कैथोलिक धर्म के ये विभिन्न-सम्प्रदाय कैथोलिक चर्च को पुनः प्रबल बनाने में सहयोगी सिद्ध हुए।

(5) शासकों का सहयोग-प्रोटेस्टेंट धर्म के प्रसार मे भी कुछ सीमा तक शासकों का सहयोग मिला था पर कैथोलिक चर्च को पुनः प्रतिष्ठा के स्थान पर लाने में यूरोप के शासकों ने महान् सहयोग दिया। इगलैण्ड, पुर्तगाल, पोलैण्ड, स्पेन, फ्रांस, द० जर्मनी आदि देशो के शासको ने प्रतिवादात्मक धर्म सुधार आन्दोलन (Counter Reformation) को सफल बनाने में अपना महान् सहयोग दिया। उन्होने निर्दयता के साथ नवीन धर्म को दबाया तथा उनके प्रचारकों को नाना प्रकार की यातनाए देकर उनका जीना दुलर्भ बना दिया।

(6) प्रोटेस्टेंट धर्म में दुर्बलता का आना- मार्टिन लूथर के जीवन-काल तक तो प्रोटेस्टेंट धर्म तीव्र गति से प्रसारित होता रहा, परन्तु उसकी मृत्यु उपरान्त इस धर्म में शिथिलता आ गई। इस शिथिलता का लाभ कैथोलिक चर्च ने उठाया। कैथोलिक चर्च में जैसूट लोगो के अथक प्रयास से नवीन शक्ति व स्फूर्ति उत्पन्न हुई और यह धर्म पुनः यूरोप व विश्व के अन्य देशों मे आशातीत प्रगति करने लगा।

(7) पोप का सादा व सदाचारी जीवन-कैथोलिक चर्च के प्रति जन-साधारण की आस्था पोप के विलासी जीवन के कारण ही कम हुई थी। परन्तु इस प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार ने पोप के जीवन का सरल, त्यागमय एव उच्च आदर्शों पर चलने वाला बना दिया। सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध मे पोप सदाचारी, कर्तव्य-परायण तथा धर्म के प्रति निष्ठावान होने लगे। उनके इस पवित्र जीवन का जन-साधारण पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वे पुनः कैथोलिक चर्च में आस्था रखने लगे।

प्रतिवादात्मक धर्म सुधार आन्दोलन के परीणाम

जिस प्रकार मार्टिन लूथर व अन्य धर्म-प्रचारकों के कारण धर्म-सुधार आन्दोलन (Reformation) का प्रभाव यूरोप के कई क्षेत्रों पर लक्षित हुआ, उसी प्रकार पोप द्वारा प्रतिपादित इस प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन का प्रभाव भी यूरोप के कई क्षेत्रों में लक्षित हुआ।

इसक प्रभाव इतन व्यापक थ कि कई इतिहासकार तो उसक मूल्याकन में अपने विभिन्न मत प्रतिपादित करते हैं। परन्तु यदि हम 1517 ई० से 1618 ई० तक यूरोप में घटने वाली राजनीतिक व धार्मिक स्थितियों का सिहावलोकन करत हैं तो हमें इस आन्दोलन के निम्नलिखित परिणाम दृष्टिगत होते है-

1 ईसाई जगत् का विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त होना-सोलहवीं शती के आरम्भ में कैथोलिक धर्म-सुधार आन्दोलन पर्याप्त रूप से प्रगतिशील हो गया था और उसन यूरोप को दो भागों में विभक्त कर दिया था। पूर्वी यूरोप के देश रूढ़िवादी चर्च क अनुयायी थे जबकि मध्य व पश्चिमी यूरोप क देश कैथोलिक चर्च के अनुयायी थे। परन्तु जब धर्म-सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ तो प्रोटैस्टेंट धर्म का उत्थान और हो गया। अत सोलहवीं सदी के अन्त में यूरोप में तीन धार्मिक धाराएँ प्रचलित हो गईं-रूढ़िवादी, कैथोलिक एव प्रोटैस्टेंट।

2 प्रोटैस्टेंट धर्म का ह्रास हुआ-कैथोलिक चर्च व प्रोटैस्टेंट धर्मों में मतभेद तो प्रारम्भ से ही थे, परन्तु प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार की प्रगति से दोनों सम्प्रदायों में मतभेद और भी कटु हो गये। उनमें असहिष्णुता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी और उस असहिष्णुता ने घृणा का रूप धारण कर लिया। घृणा के परिणामस्वरूप तीस वर्षीय युद्ध हुआ। इस युद्ध में प्रोटैस्टेंट धर्म को क्रूरता से दबाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रोटैस्टेंट धर्म की प्रगति यूरोप में अवरुद्ध हो गई। प्रतिवादात्मक धर्म सुधार आन्दोलन ने बहुत सीमा तक प्रोटैस्टेंट धर्म की प्रगति को अवरुद्ध ही कर दिया।[1]

3 सुदृढ़ एव निरकुश राज्यों का विकास-प्रतिवादात्मक धर्म सुधार आन्दोलन को सफलीभूत बनाने हेतु पोप ने शासकों से भी सहयोग चाहा था। स्पेन, फ्रान्स, पुर्तगाल, इटली व आस्ट्रिया के शासकों न सहर्ष पोप को इस कार्य में सहयोग दिया। उन्होंने कैथोलिक चर्च का अनुमोदन करते हुए अपने देशों में आबाद प्रोटैस्टेंट धर्मावलम्बियों को निर्दयता से कुचल दिया। उन्होंने हजारों प्रोटैस्टेंट धर्मावलबियों को मौत के घाट उतार दिया। इस कार्य सम्पादन हेतु उन देशों के शासकों ने अपन अधिकारों म वृद्धि की। पोप अब अपने समर्थक शासकों के धार्मिक व राजनीतिक अधिकारों पर अकुश नहीं लगाता था। अब तक पोप ही अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था, पर अब शासक भी दैवी सिद्धान्त में अपना अटूट विश्वास व्यक्त करने लगे। उधर मार्टिन लूथर स्वय राजा को शक्तिशाली देखना चाहता था। लूथर के इस विचार का प्रभाव डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन व फिनलैण्ड के शासकों पर पड़ा। जब कैथोलिक समर्थक प्रोटैस्टेंट धर्मावलबियों को निर्दयता से मौत के घाट उतार रह थे उसी समय प्रोटैस्टेंट मत के समर्थक नरेशों ने कैथोलिकों को मौत के घाट उतारना आरम्भ किया। जनता ने भी उनका साथ दिया और वे शासक भी दैवी-सिद्धान्त में विश्वास रखते हुए अपने अधिकारों में वृद्धि करने

1 'The success of Counter Reformation can be measured to a degree by the fact that the rapid spread of Protestantism was halted

J E Swain

लगे। अत हम देखते हैं कि प्रतिवादात्मक धर्म सुधार आन्दोलन के सफल होने के उपरात सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में शक्तिशाली राज्यों का विकास आरम्भ हो गया।

4 **राष्ट्रीय भावना का विकास**-इस प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन का एक परिणाम यह भी हुआ कि यूरोप में राष्ट्रीयता दिनों-दिन प्रबल होने लगी। लूथर ने जर्मन राष्ट्रीयता, कैलविनवाद ने डच व स्काटिश राष्ट्रीयता, एग्लीकन चर्च ने ब्रिटिश राष्ट्रीयता को जन्म दिया। उसी प्रकार प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन ने पुर्तगाल, स्पेन, फ्रान्स व इटली में राष्ट्रीय भावना को जन्म दिया। इतिहासकार स्वेन (Swain) का कहना है कि राष्ट्रीयता को बढ़ावा विद्रोहों से ही मिला है। इस प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन ने यूरोप के विभिन्न देशों में विद्रोह करवाये। जैसूट लोग तो विभिन्न देशों में जाकर वहा के कैथोलिक लोगों को वहा के शासक के विरुद्ध विद्रोह करने को भड़काते थे। इन विद्रोहों का परिणाम यह हुआ कि जनसाधारण अपने देशों के प्रति वफादार व शुभचिन्तक बनने लगे। हालाकि उस काल में राष्ट्रीयता को प्रबल बनाने के और भी कई कारण थे। परन्तु प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन भी उनमें से एक प्रमुख कारण था। इसीलिए स्वेन ने लिखा है कि, ''राष्ट्रीयता व धार्मिक परिवर्तनों में गहरा सम्बन्ध था।''

5 **साहित्य व सास्कृतिक क्षेत्र में विकास**-यह सत्य है कि जैसूट सस्था द्वारा कठोर अनुशासन थोपा गया था। कैथोलिक-चर्च विरोधी पुस्तको पर प्रतिबन्ध लगा दिए गये। परन्तु फिर भी जनसाधारण में स्वतन्त्र चिन्तन का विकास जारी रहा। शिक्षा का विकास सुव्यवस्थित रूप में हुआ। कैथोलिक-चर्च के धर्माधिकारी अब स्वय शिक्षित होने लगे और चर्च में वे अपने धर्मावलबियों को भी सुचारू रूप से शिक्षा देने लगे। जैसूट लोग तो शिक्षा के माध्यम से अपने धर्म का प्रचार तो करते ही थे पर शिक्षक के रूप में भी वे अत्यन्त सफल रहे। अत लेटिन के अलावा अन्य भाषाओं का भी विकास हुआ। शिक्षा व विभिन्न भाषाओं के अलावा कला के क्षेत्र मे भी विकास हुआ। लूथर के प्रभाव से कलापूर्ण चर्चों का निर्माण बन्द-सा हो गया था, पर जब प्रतिवादात्मक धर्मसुधार आन्दोलन दिनों-दिन सफलता की ओर अग्रसर होने लगा तो कलापूर्ण गिरजाघरों का निर्माण पुन होने लगा। गिरजाघरों को कलापूर्ण चित्रों से अलकृत किया जाने लगा। इसी प्रकार मूर्ति कला का भी विकास हुआ।

6 **धर्माधिकारियों के जीवन में नैतिकता का विकास**-प्रोटेस्टेंट धर्म को तीव्रता से यूरोपीय दशों में प्रसारित होता देख पोप यह भली-भाति समझ गया था कि इस तीव्र प्रसार का कारण हमारे जीवन में नैतिकता का ह्रास है। इसीलिए पोप ने तो अपन जीवन में आशातीत सुधार किया ही पर ट्रेंट की सभा मे विभिन्न निर्णय लेकर अपने चर्च के धर्माधिकारियों के जीवन में भी सुधार किया। कैथोलिक चर्च के धर्माधिकारी अब सादा, सदाचारी एव त्याग का जीवन व्यतीत करने लगे। वे अब शिक्षित होते थे और अपने धर्मालबियों को सच्चे रूप में धार्मिक शिक्षा देते थे। चर्च अधर्म के स्थान पर अब सच्चे अर्थ में शिक्षा व नैतिकता के घर बन गये। धर्माधिकारी अब धन के उपासक न रहकर नैतिक्ता के उपासक बन गये। वे अपना जीवन उच्च आदर्शों पर आधारित
रूप में व्यतीत करते थे। उन्हें पद अब धन की सहायता न उपलब्ध नहीं इस कारण वे अब धर्म-परायण तथा कर्त्तव्यनिष्ठ होते थे।

इस प्रकार हम देखते है यह प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन भी यूरोप के धार्मिक इतिहास मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अगर यह आन्दोलन नहीं होता तो सम्भवत कैथालिक चर्च का आज विश्व म यह स्थान नहीं रहता। सम्भवत पोप भी अपना अन्तर्राष्ट्रीय स्थान खा बैठता। पोप व उसके सहयागी धर्माधिकारियों का जीवन ईसाई-जगत् में अनुकरणीय नहीं रहता। मार्टिन लूथर के प्रभाव स कैथालिक चर्च जो पतन की ओर निरन्तर बढ़ने लगा था, और जो जन-साधारण की आस्था खा चुका था, वह अब पुन प्रगति के पथ पर अग्रसर होने लग गया था तथा यूरोप के ईसाई पुन कैथालिक चर्च म अपना विश्वास व्यक्त करने लगे थे। कैथोलिक चर्च मिथ्याडबरों से रहित हा सरल एव सादा बनता जा रहा था। लुप्त नैतिकता पुन कैथोलिक चर्च का अलकरण करने म समर्थ हा गई थी। इन सब धार्मिक परिवर्तनों का श्रेय हम इस प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दालन को ही देते है।

प्रश्न

1 "प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दालन" से आप क्या समझते है ? इसके कारण बताइये। What do you mean by Counter Reformation ? Narrate its causes

2 कैथोलिक चर्च न अपने धर्म की लुप्त गरीमा को पुन स्थापित करने के लिए क्या कदम उठाय ? उनके परिणामों की विवेचना कीजिए।
What steps were adopted by the Catholic Church to restore its lost prestige ? Discuss its results.

3 प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन की प्रगति तथा उसके परिणामों का पर्यवेक्षण कीजिए Explain the progress and results of the Counter Reformation

4 "प्रतिवादात्मक धर्म-सुधार आन्दोलन निरकुश शासन व राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में महान सहायक सिद्ध हुआ।" इस कथन को समझाइये।
Counter Reformation proved itself a great factor in promoting despotic rule and national states Elucidate